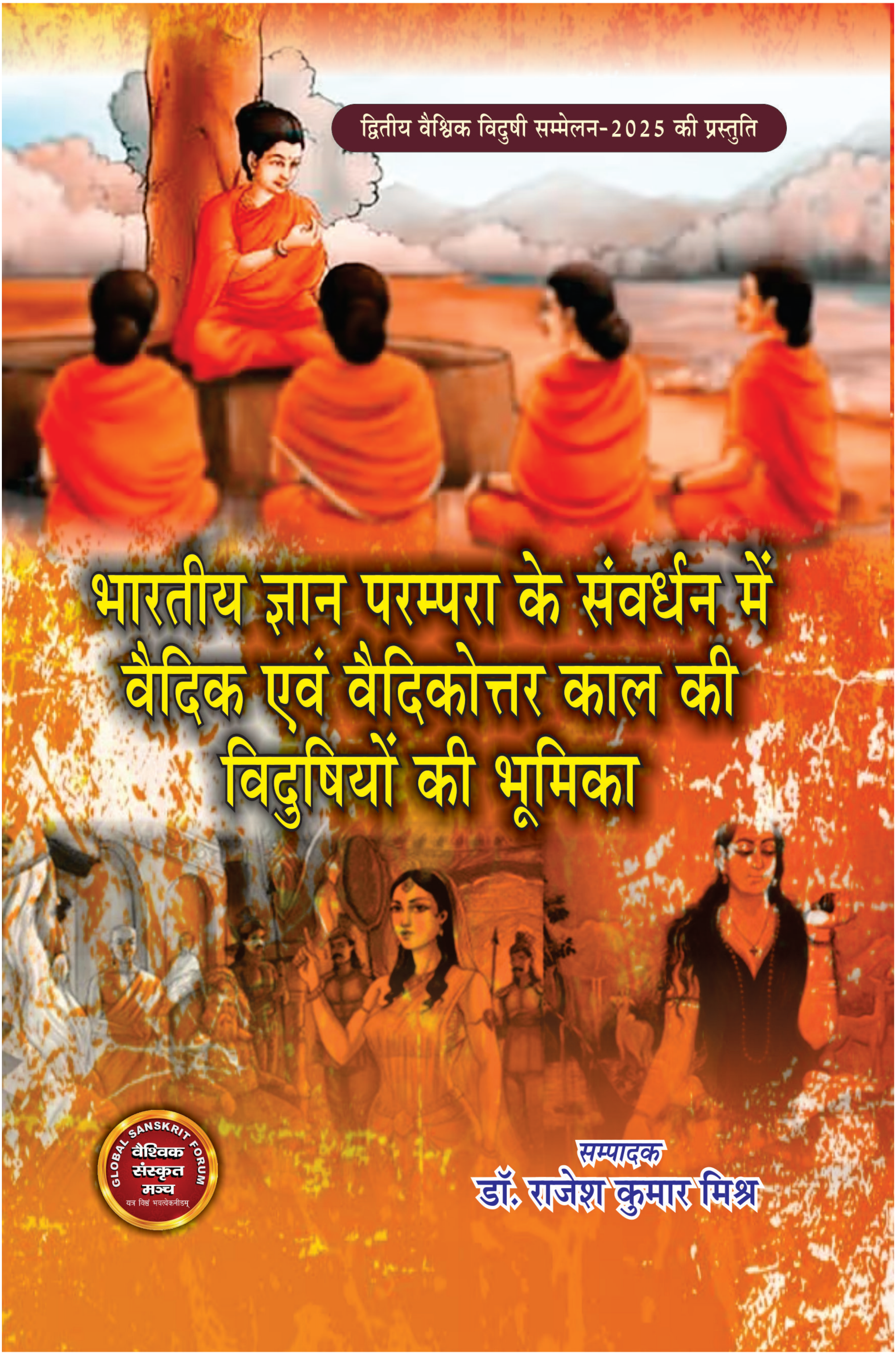

द्वितीय वैश्विक विदुषी सम्मेलन-2025 की प्रस्तुति

भारतीय ज्ञान परम्परा के संवर्धन में वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल की विदुषियों की भूमिका

सम्पादक

डॉ. राजेश कुमार मिश्र

GLOBAL SANSKRIT FORUM
वैश्विक संस्कृत मञ्च
यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्

वैश्विक संस्कृत मञ्च की प्रस्तुति

भारतीय ज्ञान परम्परा के संवर्धन में वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल की विदुषियों की भूमिका

अमृतब्रह्म प्रकाशन
Amritbrahma Prakashan
प्रयागराज

भारतीय ज्ञान परम्परा के संवर्धन में वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल की विदुषियों की भूमिका

सम्पादक

डॉ. राजेश कुमार मिश्र

प्रकाशक

अमृतब्रह्म प्रकाशन

प्रयागराज

ISBN: 978-81-989024-2-9

प्रकाशक

अमृतब्रह्म प्रकाशन

63/59, मोरी, दारागंज, प्रयागराज – 211006

सम्पर्क +91-9450407739, 8840451764

Email: amritbrahmaprakashan@gmail.com

भारतीय ज्ञान परम्परा के संवर्धन में वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल की विदुषियों की भूमिका

सम्पादक : डॉ. राजेश कुमार मिश्र

© ग्लोबल संस्कृत फोरम, नई दिल्ली

प्रथम संस्करण : 2025

मूल्य : 899/-

The responsibility for facts stated, opinion expressed or conclusion reached and plagiarism, if any, in this book is entirely that of Author. The publisher/Editors/Editorial Board bears no responsibility for them whatsoever.

मुद्रक

Infinity Imaging Systems

नई दिल्ली

संपादकीय

संस्कृत के क्षेत्र में कार्य करना यज्ञ करने के समकक्ष है। विद्वानों के प्रति आभार ज्ञापित करते हुए पुलकित हृदय से यज्ञ की सम्पन्नता का फल यह पुस्तक संस्कृत समाराधकों को समर्पित कर रहा हूँ।

विदित है कि **"भारतीय ज्ञान परंपरा के संवर्धन में वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल की विदुषियों की भूमिका"** इस विषय पर भारती महाविद्यालय, माता सुंदरी कॉलेज फॉर वूमेन, दिल्ली विश्वविद्यालय एवं ग्लोबल संस्कृत फोरम, दिल्ली प्रान्त के संयुक्त तत्त्वावधान में 20&21 मार्च 2025, को आयोजित दो दिवसीय अन्ताराष्ट्रिय संगोष्ठी का आयोजन किया गया। क्योंकि भारतीय ज्ञान परंपरा विश्व की प्राचीनतम और समृद्ध बौद्धिक परंपराओं में अग्रणी रही है। इस परंपरा के संवर्धन और संरक्षण में जहाँ ऋषियों और आचार्यों का योगदान रहा, वहीं वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल की विदुषियों की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण और प्रेरणास्पद रही है।

वैदिक काल में स्त्रियों को शिक्षा, यज्ञ और दार्शनिक विमर्श में समान सहभागिता प्राप्त थी। गार्गी वाचक्नवी और मैत्रेयी जैसी विदुषियों ने ब्रह्मविद्या और आत्मविद्या पर गहन संवाद कर उपनिषदों की दार्शनिक परंपरा को समृद्ध किया। गार्गी का याज्ञवल्क्य के साथ ब्रह्मतत्त्व पर शास्त्रार्थ यह सिद्ध करता है कि स्त्रियाँ केवल सहभागी ही नहीं, बल्कि ज्ञान-विमर्श की अग्रणी प्रतिनिधि थीं। इसी प्रकार अपाला, घोषा और लोपामुद्रा जैसी ऋषिकाओं ने ऋग्वैदिक मंत्रों की रचना कर वैदिक साहित्य में अपनी सृजनात्मक उपस्थिति दर्ज कराई।

वैदिकोत्तर काल में भी विदुषियों ने साहित्य, दर्शन, व्याकरण और भक्ति परंपरा में उल्लेखनीय योगदान दिया। बौद्ध और जैन परंपराओं में भिक्षुणियों एवं साध्वियों ने ज्ञान के प्रसार में सक्रिय भूमिका निभाई।

मध्यकाल में भक्ति आंदोलन की संत कवयित्रियों ने आध्यात्मिक चेतना को जन-जन तक पहुँचाया, जिससे ज्ञान परंपरा अधिक लोकव्यापी और सुलभ बनी।

आज आवश्यकता है कि इन विदुषियों के योगदान का पुनर्स्मरण कर उन्हें शैक्षिक विमर्श और पाठ्यक्रमों में समुचित स्थान दिया जाए। यह संपादकीय पुस्तक न केवल उनके बौद्धिक अवदान का पुनर्मूल्यांकन है, बल्कि समकालीन समाज को यह संदेश भी देती है कि भारतीय ज्ञान परंपरा की आधारशिला स्त्री-पुरुष की समान सहभागिता पर स्थापित रही है। इस प्रकार, वैदिक एवं वैदिकोत्तर काल की विदुषियाँ भारतीय ज्ञान परंपरा की सशक्त संवाहक रही हैं, जिनका योगदान युगों-युगों तक प्रेरणा प्रदान करता रहेगा।

देश-विदेश के प्रतिष्ठित शैक्षणिक संस्थानों से विद्वानों ने इस सम्मेलन में उत्साह से प्रतिभाग लिया। सभी के वैचारिक तथ्यों का संकलन इस पुस्तक के माध्यम से आज हमारे समक्ष है यह अत्यंत हर्ष की बात है कि यह संगोष्ठी केवल वाचिक प्रस्तुति न रही अपितु पुस्तकाकार में हमारे समक्ष है। आशा है कि यह कृति युवा विद्वानों को गहन शोध के लिए अभिरुचि विकसित करने के लिए प्रेरित करेगी।

डॉ. राजेश कुमार मिश्र
अंतर्राष्ट्रीय महासचिव, ग्लोबल संस्कृत फोरम एवं असिस्टेंट प्रोफेसर
नव नालन्दा महाविहार, संस्कृति मंत्रालय, भारत सरकार

विषयानुक्रमणिका

क्र.	आलेख	लेखक/लेखिका नाम	पृ.सं.
1.	महाभारत में स्त्री-उत्पीड़न और समाज की भूमिका: आज के संदर्भ में विश्लेषण	Dr. (Mrs) Kirthee Devi Ramjatton	13
2.	The Seeresses of Ramayana Period and their Contribution in Development of Indian Knowledge System	Prof. (Dr.) Priyanka Murria	21
3.	द्रौपदी- एक दैवी शक्ति के रूप में	डॉ. (श्रीमती) भवानी रामचंद्रन	30
4.	THE DIVINE FEMININE IN EPICS	Dr. S. Durgaparameswari	39
5.	रामायण: स्त्री विमर्श	डॉ. रीता	43
6.	प्रागैतिहासिककालीनाः विविधविज्ञानकलासु कुशलाः महिलाः	डॉ. ज्योति-बोथरा	53
7.	Ambādevi Tampurāṭṭi: A Pioneering Female Scholar in Sanskrit Literature	Dr. Lisha C.R	62
8.	"उपनिषद् में वर्णित विदुषियों के संवाद"	भारतीबहेन प्रभुभाई परमार	71
9.	रामायणकालीन विदुषियां एवं ज्ञान	सहा. प्रा. डॉ. प्रज्ञा इंगळे	79

	संवर्धन में उनका योगदान		
10.	Dramaturgical Contribution of Nāṭyaśāstra in 'Pallīkamalam Nātakam' by Dr. Roma Chaudhuri.	Prabhakar Karmakar	86
11.	Maitreyi: The Illuminating Scholar of Mithila: A Beacon of Intellectual and Spiritual Excellence	Prof. (Dr.) Suprita Jha	92
12.	समकालीन स्त्रियों के जीवनोत्थान में संस्कृत ज्ञानधारा का प्रवाह: एक चिन्तन (स्मृति ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में)	डॉ. उपासना सिंह	97
13.	आधुनिक संस्कृत कथा साहित्ये आचार्याश्री योगिनी व्यासमहोदयायाः विशिष्टं योगदानम्	व्यासः पारुल जयन्तिलालः	106
14.	संस्कृतसाहित्येषु मेघदूते स्त्रीचर्यावर्णनम्	बिप्लबसरकारः	119
15.	आधुनिकसंस्कृतसाहित्येषु प्रमुखसंस्कृतकवयित्रीणाम् अवदानम्	दिपाली बाहादुर	126
16.	महाभारतकालीन विदुषियाँ एवं धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र के संवर्धन में उनका योगदान	सौ. मृणालिनी वाघमारे मार्गदर्शकः डॉ. पल्लवी कर्वे	137
17.	वैदिक साहित्य मे चर्चित विदुषियाँ	प्रा. मेघा विश्वनाथ कुलकर्णी	149
18.	रामायणकालीन विदुषियां एवं ज्ञान संवर्धन में उनका योगदान	कुमारी जया	156
19.	वेदकालीन विदुषियाँ एवं उनका योगदान	डॉ. विमला एस. चौधरी	175

20	ब्रह्मज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा करने वाली मैत्रेयी तथा गार्गी प्राक्कथन	डॉ. दर्शना सायम	186
21.	श्रुति से स्मृति पर्यन्त नारी शक्तिस्वरूपा या शोषिता	डॉ. निशीथ गौड़	191
22	राष्ट्र एवं समाज क्षेत्रे विदुषिनां योगदानं	G PAVAN KUMAR	201
23	अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय में गुर्जरराज्य की विदुषी: प्रो. (डॉ.) हंसाबहन हिण्डोचा का योगदान	सोलंकी मयूरी शशिकान्त	214
24	"संस्कृत साहित्य में चर्चित विदुषियाँ"	डॉ. गौरी चावला	227
25	उपनिषदों में नारी का चरित्र-चित्रण	जानी वन्दना यज्ञप्रकाश	243
26	The Divine Feminine in Epics	Dr. Sistla Sailaja	253
27	जैन दर्शन में पौराणिक महाविभूति द्रौपदी	SONAL MAHENDRA BORA	266
28	'संस्कृत साहित्य में महिला कवयित्रियों के प्रसिद्ध कृतियों का योगदान'	Dr. Kanak Lata	276
29	पञ्चमहाकाव्येषु स्त्रीपात्राणां वैदुष्यम्	Dr. Y. Suresh	285
30	प्राचीन भारतीय इतिहास में नारी: एक अवलोकन	डॉ. शीतल ए अग्रवाल	297
31.	The Spiritual Authority and Status of Female Rishis in Vedic Society	Suman Naskar	306
32	वैदिककालीन विदूषियां एवं उनका	सुमन लता	316

	योगदान		
33	Early Buddhist Women, Especially in the Bhikkhuni Saṇgha, were Instrumental in Promoting Inclusivity and Human Dignity in Buddhist Teachings	Ritesh Prakash Ovhal	322
34	वैदिक काल में महिलाओं की धार्मिक भूमिका	डॉ. रेखा कुमारी	326
35	वैदिक साहित्य में चर्चित विदुषियाँ	विजेन्द्र कुमार	332
36	भारतीय ज्ञान परम्परा के संवर्धन में वैदिक विदुषियों की भूमिका	डॉ. अर्चना सिन्हा	341
37	श्रीमद्भागवत महापुराण में स्त्री सशक्तिकरण के आधारभूत तत्त्व	अजय कुमार	346
38	भारतीय ज्ञान परंपरा में शबरी का योगदान	Solanki Binalben	352
39	Indian Women and Economic System During Vedic Times	Dr. Niti Arora	364
40	भारतीय विदुषियों का राष्ट्र निर्माण में योगदान	डॉ. अनामिका	374
41.	वैदिककाले विदुषीनां भूमिका तथा योगदानम्	डॉ. प्रज्ञा कोनार्डे	381
42	संस्कृत नाटको में नारी	डॉ. रीटा एच. पारेख	387
43	नारी शिक्षा एवं स्वामी दयानंद सरस्वती	गोपाल कृष्ण	397
44	संस्कृत साहित्य में वर्णित विदुषियां	वैशाली शर्मा	407

45	आधुनिक नारी- वैदिक संदर्भ	डॉ. (श्रीमती) शैल वर्मा	416
46	वेदस्थ वैचारिकी में स्त्री-विमर्श एवं उसकी वर्तमान में प्रासङ्गिकता	डॉ. रश्मि यादव	427
47	संस्कृत साहित्य के संवर्धन में वैदिक एवं आधुनिक काल की विदुषियों का योगदान	डॉ. मधु	442
48	महाकाव्यों में नारी की दिव्यता	मेघना हर्षवर्धन भट्ट	448
49	उपनिषदों में वर्णित विदुषियों के संवाद बृहदारण्यकोपनिषद् मैत्रेयी संवादः	Dr. K.V.R.B. VARA LAKSHMI	458
50	देवीभागवत पुराण में स्त्री विमर्श	डॉ. एकता वर्मा	467
51.	Theme of Urbanization in Kamala Markandaya's "Nectar in a Sieve" and "Some Inner Fury"	Dr. Vaishali Madje	480
52	वेदकालीन विदुषियाँ एवं उनका योगदान	डॉ. शाहिना तहसीन	485
53	वैदिक विदुषियों के योगदान से भारतीय ज्ञान-परंपरा की अभिवृद्धि	डॉ. वन्दना द्विवेदी	499
54	महाराष्ट्रिया आधुनिक-संस्कृत-विदुषी तस्या: साहित्यञ्च	सौ. कविता किशोर: जोशी	514
55	जैन संस्कृत महाकाव्यों में नारी का चित्रण	Dr. Ruchi jain	520
56	नारी और षोडश संस्कार	डॉ. प्रज्ञा शंकर	530

57	संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित जीवन-मूल्य	प्रो. (डॉ.) नीभा शर्मा	535
58	वैदिक समाज में नारी की स्थिति	प्रो. (डॉ.) सत्यवती प्रो. (डॉ.) सत्यवान आर्य	544

महाभारत में स्त्री-उत्पीड़न और समाज की भूमिका: आज के संदर्भ में विश्लेषण

Dr (Mrs) Kirthee Devi Ramjatton
Lecturer, Department of Sanskrit
Mahatma Gandhi Institute, Moka, Mauritius

प्रस्तावना

महाभारत भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण महाकाव्य है, जो धर्म, नीति और समाज की विभिन्न परतों को उजागर करता है। यह महाकाव्य न केवल एक विशाल कथा संग्रह है, बल्कि यह एक ऐसा दर्पण भी है, जिसमें तत्कालीन समाज की वास्तविकताएँ प्रतिबिंबित होती हैं। इसमें स्त्रियों के प्रति समाज की मानसिकता को विभिन्न घटनाओं के माध्यम से देखा जा सकता है।

द्रौपदी चीरहरण, कुंती का संघर्ष, गांधारी का बलिदान, अंबा का प्रतिशोध ये सभी प्रसंग हमें यह दर्शाते हैं कि उस काल में स्त्रियों की स्थिति क्या थी और समाज की भूमिका कैसी थी? यह शोध-पत्र महाभारत में स्त्री उत्पीड़न के विविध रूपों की विवेचना करता है और उसे आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषित करता है।

महाभारत में कई ऐसे उदाहरण मिलते हैं, जहाँ स्त्रियों को उत्पीड़न का शिकार होना पड़ा। इनमें से कुछ प्रमुख उदाहरण निम्नलिखित हैं:

द्रौपदी का चीरहरण

द्रौपदी का चीरहरण स्त्री गरिमा पर आघात को दर्शाता है। महाभारत के सभा पर्व में घटित द्रौपदी के चीरहरण की घटना भारतीय समाज में स्त्री के प्रति अन्याय और पितृसत्तात्मक विचारधारा का घृणित

प्रतीक है। जब युधिष्ठिर जुए में अपनी पत्नी द्रौपदी को हार जाता है, तब दुर्योधन के आदेश पर दुःशासन उसे भरी सभा में अपमानित करता है।

ततो दुःशासनो राजन् द्रौपद्या वसनं बलात्।
सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाक्रष्टुं प्रचक्रमे।।

(महाभारत, सभा पर्व ६८.४०)

प्रस्तुत श्लोक में दुःशासन द्वारा द्रौपदी के वस्त्र हरण का वर्णन है जो मात्र एक स्त्री का निरादर ही नहीं, अपितु संपूर्ण समाज की नैतिकता का पतन था। यह घटना न केवल स्त्री के प्रति अमानवीय क्रूरता को दर्शाती है अपितु उस समय की त्रुटिपूर्ण न्याय व्यवस्था को भी उजागर करती है। इस घटना में विडंबनापूर्ण बात यह है कि सभा में उपस्थित भीष्म, द्रोण, विदुर, धृतराष्ट्र एवं अन्य गणमान्य जन मौन दर्शक बने रहते हैं। इस प्रकार की सामाजिक उदासीनता आज भी कई प्रान्तों में देखी जा सकती है जहां महिलाओं पर अत्याचार होते हुए भी समाज या न्याय प्रणाली उन्हें न्याय दिलाने में असमर्थ रहती है। इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि स्त्री की गरिमा की रक्षा करना केवल उसका व्यक्तिगत उत्तरदायित्व नहीं, अपितु संपूर्ण समाज का नैतिक कर्तव्य है। और जो समाज अन्याय के विरुद्ध मुखर नहीं होता, तो वह स्वयं भी अधर्म का सहभागी बन जाता है।

अंबा का प्रतिशोध

अंबा का प्रतिशोध पितृसत्ता के विरुद्ध प्रतिरोध का स्वर है। अंबा, अंबिका और अंबालिका को जब भीष्म अपने पराक्रम से हरण कर लाते हैं ताकि वे कौरव वंश के लिए योग्य वधू बन सकें तब अंबा, जो शाल्व राजकुमार से प्रेम करती थी, इस विवाह को अस्वीकार कर देती है, परंतु उसे समाज से कोई समर्थन प्राप्त नहीं होता। वह प्रतिशोध की ज्वाला में तपकर, शिव से वरदान प्राप्त कर शिखंडी के रूप में जन्म लेती है और अंततः भीष्म का वध करती है। यह कथा स्त्री के आत्मसम्मान और सामाजिक बंधनों के द्वंद्व को स्पष्ट रूप से दर्शाती है।

यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च।
हन्यते प्रेक्षमाणानां हतास्तत्र सभासदः।।

(मनुस्मृति ८.१४)

अर्थात् जहाँ धर्म को अधर्म द्वारा और सत्य को असत्य द्वारा नष्ट किया जाता है और वहाँ उपस्थित लोग केवल देखते रहते हैं, तो वे सभासद भी मरे हुए (यानी अर्थहीन) माने जाते हैं।

तात्पर्य यह कि धर्म से बढ़कर कुछ नहीं और यदि धर्म की रक्षा के लिए संघर्ष करना पड़े, तो वह भी पुण्य का कार्य है। अंबा का संघर्ष केवल व्यक्तिगत प्रतिशोध नहीं था, अपितु उस व्यवस्था के विरुद्ध एक सशक्त प्रतिरोध था जिसमें स्त्रियों को उनकी इच्छाओं के विरुद्ध जीवन जीने के लिए विवश किया जाता था। अंबा का यह रूप हमें यह बोध कराता है कि अन्याय को मौन रहकर सहना भी अन्याय को बढ़ावा देना है। यह प्रसंग वर्तमान में स्त्रियों के आत्मसम्मान और न्याय की लड़ाई के संदर्भ में भी उतना ही प्रासंगिक है, क्योंकि आज भी दक्षिण एशिया में पितृसतात्मक समाज के साथ-साथ यह भी देखा जाता है कि कन्याओं को अपना वर स्वयं चयन करने का अधिकार नहीं है। यदि कोई ऐसा कर जाए तो उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है। कई बार ऐसी कन्याओं एवं उनके पतियों की उनके परिजनों द्वारा ही हत्या तक कर दी जाती है। ऐसी घटनाएं बहुधा भारतीय समाचार पत्रों में देखने को मिलती हैं।

जब हम महाभारत की बात करते हैं और समाज की बात करते हैं तो हम यह पाते हैं कि महाभारत से पूर्ववर्ती समाज की जो उदारता स्त्रियों के प्रति दिखाई देती थी, वह महाभारत कालीन समाज में संकुचित होने लगी थी। भारतीय धर्म शास्त्रों में व परंपरा में नियोग की प्रथा प्रचलित एवं स्वीकार्य थी। इसी प्रकार अविवाहित कन्या की संतान भी समाज में स्वीकार्य होती थी और ऐसी संतान को कानीन कहा जाता था। **कन्यायाः कनीन च** ***(अष्टाध्यायी ४.१.११६)*** इस सूत्र से 'कानीन' शब्द बनता है जिसका अर्थ होता है कन्या का पुत्र। विवाह से पूर्व, कन्या से उत्पन्न संतान

उसी पुरुष की मानी जाती थी जिस पुरुष से उस कन्या का विवाह होता था। किन्तु महाभारत काल तक आते-आते यह स्थिति बदलने लगी और उसका परिणाम यह दिखाई देता है कि कुंती को अपने कौमार्य अवस्था में उत्पन्न अपनी संतान कर्ण को न केवल छोड़ना पड़ा अपितु नदी के प्रवाह में उसे प्रवाहित करना पड़ा।

गांधारी भी पितृसतात्मक समाज के ताप से अछूत नहीं रह पायी। पिता द्वारा उसके लिए नेत्रहीन पति का चयन कर लिए जाने पर वह उसका विरोध नहीं कर पाई अपितु उसे जीवनभर अपनी आंखों पर पट्टी बांधकर अपने पति का अनुसरण करना पड़ा।

आधुनिक समाज में स्त्री की स्थिति

वर्तमान संदर्भ के साथ जब हम महाभारत के स्त्री-उत्पीड़न प्रसंगों को जोड़ते हैं तो पाते हैं कि महिलाओं की सामाजिक और राजनीतिक प्रगति में भी एक विरोधाभास का पुट है। आज समाज ने निश्चित रूप से प्रगति की है और महिलाएँ राष्ट्रपति, मंत्री, न्यायाधीश, डॉक्टर, शिक्षिका, बैरिस्टर, पायलट इत्यादि उच्च पदों पर कार्यरत हैं। इससे यह स्पष्ट होता है कि स्त्रियों ने अपने अधिकारों को पुनः प्राप्त किया है और समाज में समानता का स्थान प्राप्त किया है। फिर भी, कई क्षेत्रों में अभी भी लैंगिक भेदभाव और उत्पीड़न देखने को मिल ही जाता है। इसके अतिरिक्त, दक्षिण एशिया के कुछ प्रांतों पर दृष्टिपात किया जाए तो देखा जा सकता है कि आज भी पितृसतात्मक समाज में कन्याओं को अपना वर तक चुनने का अधिकार नहीं है। यदि कोई ऐसा कर जाये तो उसे हेय दृष्टि से देखा जाता है। अनेक बार ऐसी कन्याओं की एवं उनके पतियों की परिजनों द्वारा हत्या तक भी कर दी गयी है। ऐसी घटनाएं बहुधा भारतीय समाचार पत्रों में देखने को मिलती हैं। इतना ही नहीं, भारतीय समाज यत्र-तत्र भ्रूण-हत्या के भी अनेकानेक मामले सामने आए हैं। कई परिवारों की यह मान्यता रही है कि वंश का नाम लड़कों से ही आगे बढ़ता है लड़कियों से नहीं। उनके विचार से लड़के विवाह के समय दहेज लाते हैं यथा वे ही

उनके बुढ़ापे का सहारा बनते हैं, जबकि लड़कियों का जन्म उनको कर्जे में डुबो देता है क्योंकि उनके ब्याह के लिए उनको दहेज का खर्च उठाना पड़ता है। इसलिए बहू के गर्भवती होते ही वे उसका चिकित्सकीय परीक्षण करवाते हैं यह देखने के लिए कि गर्भ में लड़का है या लड़की। यदि बेटा निकला तो ठीक किन्तु ज्यों ही ज्ञात होता है कि बेटी का जन्म होगा तो वे भ्रूण-हत्या करवा देते हैं। और इस प्रकार मात्र लड़के ही जीवित रह पाते हैं चाहे वे कैसे ही क्यों न हों। ऐसा अधिकतर अशिक्षित समाज में पाया जाता है। यदि समाज शिक्षित होता तो उन्हें ज्ञात होता:

एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन साधुना।
आह्लादितं कुलं सर्वं यथा चन्द्रेण शर्वरी॥

(चाणक्य नीति ३.१६)

अर्थात् जिस प्रकार एक ही चंद्रमा के निकालने से सम्पूर्ण रात्रि जगमगा उठती है, उसी प्रकार एक ही सुशिक्षित सदाचारी संतान द्वारा पूरा परिवार सुखी रहता है। तात्पर्य यह कि संतान चाहे पुत्र हो या पुत्री, यदि शिक्षित है, सदाचारी है तो वह निःसन्देह अपने कुटुम्ब का नाम रोशन करेगी। इसीलिए भारतीय सरकार द्वारा **'बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ'** अभियान चलाया गया जिसका उद्देश्य है भ्रूण-हत्या को रोकना और लड़कियों की शिक्षा एवं स्वस्थ्य पर ज़ोर देना।

न्याय व्यवस्था और महिलाओं की सुरक्षा

हम देखते हैं कि न्याय प्रणाली और महिलाओं की सुरक्षा एक निरंतर संघर्ष है महाभारत में द्रौपदी को न्याय तब मिलता है जब स्वयं कृष्ण हस्तक्षेप करते हैं। आज भी महिलाओं को न्याय प्राप्त करने के लिए एक लंबा और कठिन संघर्ष करना पड़ता है इसीलिए तो प्रतिवर्ष हमें स्त्री दिवस मनाना पड़ता है ताकि महिलाओं के अस्तित्व, उनकी गरिमा के प्रति समाज को जागरूक रखा जा सके।

समाधान एवं संभावनाएँ

अब यदि हम स्त्री-उत्पीड़न के समाधान एवं संभावना की बात करें तो यही मिलेगा कि शिक्षा ही वह प्रमुख आधार है जिससे समाज में परिवर्तन लाया जा सकता है, जागरूकता लाई जा सकती है।

स्त्रियों के अधिकारों के प्रति समाज को शिक्षित करना महाभारत से प्राप्त एक महत्वपूर्ण शिक्षा है। यदि हम अपने ऐहिहासिक नाटकों की ओर भी दृष्टिपात करते हैं तो हम यही पाते हैं कि प्रमुख स्त्री पात्रों के अतिरिक्त लगभग अन्य सभी नारी पात्र प्राकृत में ही वार्तालाप करती हैं अर्थात अशिक्षित थीं। अतएव नारी सशक्तीकरण हेतु शिक्षित नारी समाज का होना अत्यंत अनिवार्य है।

इतना ही नहीं समाज में कठोर कानूनी- नियमों का होना भी अत्यंत महत्वपूर्ण है महाभारत में स्त्री उत्पीड़न की घटनाओं में न्याय मिलने में देरी हुई या मिला ही नहीं। द्रौपदी के चीरहरण के समय सभा में सभी मौन रहे और उसे न्याय नहीं मिला। इसी प्रकार,अंबा को भी अपने अपमान का बदला लेने के लिए कई जन्मों तक प्रतीक्षा करनी पड़ी।

इससे स्पष्ट होता है कि उस समय न्याय प्रणाली में कमियाँ थीं, और स्त्रियों को न्याय पाने के लिए लंबा संघर्ष करना पड़ता था।

आज भी महिलाओं के प्रति अपराध बढ़ रहे हैं जैसे घरेलू हिंसा, बलात्कार, दहेज उत्पीड़न, कार्यस्थल पर यौन शोषण, ब्रूण हत्या इत्यादि। इनसे निपटने के लिए कठोर कानून आवश्यक हैं जो अपराधियों को दंडित करने के साथ-साथ अन्य लोगों को भी अपराध करने से रोकें।

निष्कर्ष:

कहा जा सकता है कि वैदिक काल में महिलाओं की जो सम्मानजनक स्थिति और जो समाज में पुरुषों के समान अधिकार प्राप्त थे, वे महाभारत काल तक आते-आते वह स्थिति स्पष्ट रूप से बदलती हुई देखी जा सकती है। और जिस नकारात्मक परिवर्तन की झलक मिलती है महाभारत काल में, वह आज अपने चरम विकसित अवस्था में देखी जा सकती है।

परंतु यह ध्यातव्य होना चाहिए कि नारी उत्पीड़न की समस्याएँ अथवा स्थितियां न तो उस समय सार्वत्रिक थीं और न ही वर्तमान काल में सार्वत्रिक हैं। यही कारण है कि मनुस्मृति में जहां स्त्रियों की स्वतन्त्रता एवं अधिकारों पर आघात होते हुए दिखाई देते हैं, वहीं भारतीय संस्कृति की स्त्रियों के प्रति सकारात्मक दृष्टि एवं सम्मान की भावना को अभिव्यक्त करने वाले भारतीय संस्कृति के मूलभूत तत्व भी पूरी तरह से तिरोहित नहीं हुए हैं।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।"
यत्र एतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्र अफलाः क्रियाः॥

(मनुस्मृति ३.५६)

अर्थात जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं। और जहां उनका सम्मान नहीं किया जाता अर्थात अपमान होता है, वहां सभी क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं। इस पूरे विवेचन का उद्देश्य यह है कि हम समय-समय पर आने वाली विकृतियों, स्त्रियों के प्रति नकारात्मक अवधारणाओं एवं नकारात्मक दृष्टि को छोड़कर भारतीय संस्कृति के सकारात्मक मूल तत्वों को पुनः समाज में स्वीकार्य बनाने के लिए प्रयास करें।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

१. व्यास, कृष्ण द्वैपायन (सं.2072), *महाभारत,* गीता प्रेस, गोरखपुर
२. सुरेन्द्रकुमार (1996), *विशुद्ध मनुस्मृति,* आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
३. विद्यालंकार, सुभाष (2015), *महाभारत कथा- ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विवेचन,* प्रतिभा प्रकाशन
४. शास्त्री, महेंद्र कुमार, (1999), *चाणक्य नीति,* आर्य प्रकाशन, दिल्ली
५. शर्मा, मेघा (2021), *महाभारत में उपलक्षित स्त्री-विमर्श: एक समीक्षात्मक अध्ययन,* Digital-thesis

६. Chakravarti, Uma (2003), *Gendering Caste: Through a Feminist Lens*, Calcutta: Stree.

७. Altekar, A.S. (1959), *The Position of Women in Hindu Civilization*, Delhi: Motilal Banarsidass.

८. Government of India (2015), *Beti Bachao Beti Padhao Scheme Guidelines*, Ministry of Women and Child Development.

The Seeresses of Ramayana Period and their Contribution in Development of Indian Knowledge System

Prof. (Dr.) Priyanka Murria
Institute of Innovation in Technology and Management,
Affiliated to G.G.S.I.P. University

Ramayana is the divine song of god and represents a timeless ancient Indian epic that unfurls the complexities associated between good and evil. It delineates the story of Prince Rama, a divine incarnation of Lord Vishnu. The central theme of this epic is the conflict between Rama and Ravana. It imparts valuable lessons for masses at large. Its characters continue to inspire and instill ethical values among the people and audiences around the world. The study of the epic clarifies and highlights the role of female seeresis who have played immense contribution in the expansion of Indian Knowledge system. These vidushis have played the role of knowledgeable women who has displayed wisdom in various situations which confronted them. They were strong courageous and intelligent individuals who exhibited various virtues and values. Their role was so strong that they become role models, and sources of inspiration for masses at large. Their contribution paved a way for consolidation of philosophical treatise for holistic wellbeing of scholars and practitioners globally. Their inspirational contribution is so strong that The Ramayana is more than a narrative and has served as bench mark for moral and ethical guidance.

Some of the seeresis like Mata Sita reflect loyalty, devotion, selflessness, sacrifice and purity. However some seeresis like Urmila embody duty, loyalty, and sacrifice. There were others also like Kaushalya who was mother of Lord Rama who represents maternal love and sacrifice. seeresis like Mandodari who was wife of Ravana, exhibited loyalty and devotion. She tried hard to dissuade Ravana, her husband from his evil ways. Thus, these Vidushis play significant roles in

shaping the narrative of the Ramayana. They have specified a range of ethical considerations and have directed and consolidated the value system of the people who adapted them in their lives.

The aim of this paper is to examine the role played by Seeresses of Ramayana period in elevating the lives of masses at large. The interpretation of the broad narrative would be done in terms of consideration of contribution of the vidudhis in acceleration and elevation of Indian Knowledge System. This study will be done on the basis of secondary data collection.

Key words: Ethical Guidance, Indian Knowledge system, Ramayana, Seereesis

1. Introduction

The Ramayana, one of the two major Sanskrit epics of ancient India, has laid the major foundation stone in the development of Indian Knowledge System. The epic has played a magnificent role in shaping and uplifting the lives of a significant number of people in India (Sharma A., 2022) and worldwide (Senapaty M. 2020). Attributed to the sage Valmiki, the epic narrates the lives of Prince Rama, his wife Sita, and his loyal companion Hanuman, while exploring universal themes of duty, morality, and the eternal conflict between good and evil (Sharma P., 2017, Pillai.S.S., 2024). Its chapters and verses are cherished across different linguistic communities, and appreciated across various regions. More than an ancient text, the Ramayana is indeed more than an ancient spiritual text and has immensely contributed the moral, ethical, cultural (Sharma A., 2022), and spiritual fabric of Indian society (Sharma P., 2017). The epic's characters, events, and moral lessons are celebrated through festivals, music, dance, art, and literature throughout India (Sharma A., 2022) and are well received worldwide (Senapaty M. 2020, Mastanvali S.K.N, 2016).

In the present paper, an attempt is being made to explain the role played by Seeresses of Ramayana period and their contribution on in elevating the cultural heritage. The interpretation of the broad narrative would be done in terms of

consideration of contribution of the vidudhis in acceleration and elevation of Indian Knowledge System.

2. Rationale of the Study

The *Ramayana* has elaborated the prominent male characters like Rama and Ravana. However, the epic's women characters also were equally strong and provide timeless wisdom lessons. Their role defines deep wisdom, mental stability and remarkable moral courage (Sharma P., 2017). The present paper aims to throw light on some strong women characters that have been referred to as Seeresses *or Vidhushis* whose contribution and actions have spillover effect on the masses at large as their conduct signifies the deeper spiritual and ethical dimensions of the epic. Thus, a research on such Seeresses is imperative. The paper seeks to uncover the aspects of not much discussed wisdom which these Seeresses embody and the significant influence they have on the countless masses.

3. Research Objectives

The objectives of the study are as follows:

1) To identify the female characters that have spread the ripples of spirituality and added ethical dimensions to the masses at large.
2) To analyze the contribution of the Seeresses in the development of Indian Knowledge system.

4. Limitations of the Study

The study embodies few limitations which needs to be mentioned before proceeding further with the paper. First, the analysis is purely based on the receipt of the knowledge gained by the researcher after going through the epic.

Secondly, Ramayana embodies more than fifteen female characters, which are influential and need a mention. However, because of time constraints the same cannot be done. Thus, the researcher had to focus on major female characters and define them as Seeresses of Ramayana rather than other female sub characters.

5. Key Female Characters: Seeresses of Ramayana

The present study considers and explains the role of the female characters of Ramayana who have been instrumental in expansion of strengthening the value system. These key female characters have been mentioned in Table 1:

Table 1: Seeresses of Ramayana		
1. Mata Kaushalya	**2. Mata Sunaina**	**3. Mata Sita**
4.Urmila	**5. Mandodari**	**6. Tara**
7. Kaikeyi	**8. Shabri**	**9. Shrutakirti**
Source: Author		

Thus, these Seeresses of Ramayana have contributed a lot in strengthening the value system. These spiritual values have been tabulated in table 2:

6. The Seeresses of Ramayana and their Contribution

Table 2: Contribution of Seeresses of Ramayana in Strengthening the Value System		
Dedication	**Respect**	**Selflessness**
Sacrifice	**Maternal Love**	**Purity**
Loyalty	**Duty Specific**	**Politeness**
Source: Author		

in Development of Indian Knowledge System-

The contribution of **Seeresses of Ramayana** can be studied mainly from the three important aspects of their life viz, character (maidenhood), wifehood and motherhood (Sharma P., 2017). Further the contribution of each of them has been elaborated as under:

1. Mata Kaushalya:

A study by Sharma P. (2017) highlighted that an extensive study is required on female characters of Ramayana, who are ignored but are equally intellectual. This included the name of Mata Kushalya. Rama's mother is a classic example of adherence to dharma. She gracefully accepted the exile of her

son lord Rama for 14 years and supported his journey. This reflects her inner strength and strong belief on dharma. Her strong belief on Dharma was also advocated on the *Ayodhyakanda* chapter of the *Ramayana*.

2. Mata Sunaina:

In the Ramayana, it has been mentioned that Sita was daughter of the Earth. Her father King Janak had found Sita from under the ground (Sharma P., 2017). It is clearly mentioned that Sita was raised by King Janak and Queen Sunaina who was adoptive mother of Mata Sita and the Queen of Mithila. It was due to the good value system that was inculcated by Mata Sunaina that mata Sita was had immense patience, tolerance, stability of mind, and devotion and wisdom. All these qualities make her a great woman. Thus, as a mother her role is significant in inculcating ethical values including forgiveness and devotion towards relationships.

3. Mata Sita

Mata Sita, wife of lord Rama reflected had incredible inner strength and wisdom. This can be ascertained from her early childhood when she lifted lord Shiva's Dhanush (the divine bow of Shiva) effortlessly with one hand however, she had extraordinary emotional strength which can be ascertained from her post marriage journey. As a wife she supported lord Rama in his tough times. This is evident from the fact that during their long exile, she stood by her husband (Sharma A., 2022). Another example of mental tranquility can be ascertained from the fact that even after being abducted by Ravana and held captive in Lanka, Sita remained calm and composed, and keeping her loyalty to lord Rama.

When Rama questioned Sita's chastity following Ravana' s defeat, she faced the Agnipariksha, or trial by fire, to demonstr ate her loyalty and chastity.Sita's decision to enter the flames de monstrated to the world the depth of her character, reflecting her dedication to the truth (Sharma P., 2017). Her strength was put to the test once more later in life.

MataSita brought up her twin sons, Luv and Kush, teaching t hem the greatest ideals of honor and dharma in addition to surviv al skills. Mata Sita's story imparts profound lessons about living ethically even when faced with hostile situations. Her character reflects patience (Sharma A., 2022), strength, loyalty, and self-respect (Sharma P., 2017). In nutshell, she had strong devotion to her husband, Rama, and her in-laws. She was a good daughter, daughter in law, wife, sister in law and a good mother.

4. Urmila

Urmila, Lakshmana's wife, remains in Ayodhya during his 14-year exile. She reflects a character that is silent and exhibits immense patience. Her decision underscores the theme of personal sacrifice for the greater good. She, although, lived in the palace, but preferred to live like an ascetic woman. According to the scripture, Urmila decided to take Laxmana's share of sleep and kept continuously sleeping for fourteen years. This was because she wanted her husband to take care of his brother and sister-in-law. This unparalleled sacrifice, known as Urmila Nidra, reflects her deep devotion and commitment towards relationships (Sharma P., 2017).

5. Mandodari: The Voice of Reason

According to the Ramayana, Mandodari was Ravana's wife. She was very religious, and a faithful woman. She warned Ravana before abducting Sita. She stopped Ravana from hurting Sita and was even successful. Despite of all the negative deeds of Ravana, she always guided him on ethical path and was a faithful wife. She repeatedly counseled her husband against his destructive path (Sharma P., 2017).

6. Tara

Tara was the wife of Bali and reflected loyalty and courage. Her role was of a supportive wife and a guide and mentor to Angada. She exercised her wisdom in guiding Angada in the positive direction.

7. Kaikeyi

Kaikeyi is often portrayed in a negative manner in the Ramayana. This is on account of the fact that she planned the coronation of son Bharat and the exile of Lord Rama. Therefore, she is negatively viewed as she planned the exile of lord Rama

for 14 years. There are positive attributes also associated with her character.
She had been a fighter since childhood and battled like a true que en to save Dasaratha's life in battle.
For this reason, Dasaratha asked her to wish for anything she wa nted and owed her for the rest of her life (Sharma P., 2017).

Kaikeyi, however, turned down the request at the time a nd used it for the coronation of son Bharat and exile of lord Rama for 14 years. Although it was an unacceptable as this demanded the exile for lord Rama for 14 years and was against the Rama (Sharma P., 2017). But considering the positive aspect, she was a loving mother who thought of betterment of her son to become the king of Ayodhya. Moreover, indirectly her decisions of exile of lord Rama lead to victory of good over bad.

8. Shabari

Shabri is an inspiring example that exhibits true devotion and dedication. She was a devotee of lord Rama and would get up early morning every day and go to the forest to collect the berries to serve Lord Rama. She was not even aware whether lord Rama would come or not. Still she collected berries every day. She kept waiting for lord Rama for many years. When she met to Rama, she offered him the berries that were half eaten by Shabri just to confirm that the berried are sweet. In spite of half eaten berries, lord Rama ate them to please her feelings and devotion towards him (Sharma P., 2017). Shabri teaches us the importance of being good. She offered place to sit to lord Rama and Luxmana. She also offered them food despite of the fact that she was also having paucity of adequate means. She also teaches us the source of energy comes from devoted love and how a person can become so great with keeping pure feelings for someone who we adore and respect the most.

9. Shrutakirti

Shatrughna's wife, Shrutakirti, is renowned for her assistance and advice when her husband ruled Madhupura (Mathura). She was a princess. She possessed good qualities and was intelligent. Despite having a little part in the epic, she was a

supportive wife and advisor who supported her husband and in laws and was dedicated towards her dharma.

Conclusion

The Ramayana is not only an epic that was written long back. It is indeed a productive guide that imparts several lessons that are applicable for existing masses and future generations. In this regard, the female characters have also played indispensible role in the development of robust value system. They have inspired through their ethical value system, rendering responsibility and devotion in performing their duty with sincere commitment. This study explores the real way of living in contemporary scenario where people are frustrated with personal and professional relationships. These moral values act as a milestone in making us responsible and dependable. Thus, Ramayana should be implemented in Indian schooling education system to teach moral, ethics and values from the childhood in our future generations. However, the role of the Seeresses of Ramayana with Contribution in Development of Indian Knowledge System must be additionally taught. This will help in creating a spillover impact of the value system and the ethical modes opted during the Ramayana period and will also help in elevating our cultural heritage through the study of contribution of the vidudhis in acceleration and elevation of Indian Knowledge System.

References:

- Agarwal S., (2014), An analytical study of the application of Ramayana in business management. *International Research Journal of Management Science and Technology*, 5(12), 2250-1959.

- H. Pallathadka, L. K. Pallathadka, Pushparaj, and T. K. Devi. 2022Role of Ramayana in Transformation of the Personal and Professional Life of Indians: An Empirical Investigation Based on Age and Regions. *Integrated Journal for Research in Arts and Humanities*, vol. 2, no. 6, pp. 116–122. doi: 10.55544/ijrah.2.6.15.

- Mastanvali S.K.N, (2016). Human values of Ramayana to modern life. *International Journals of Multidisciplinary Research Academy*, 6(4), 48- 59.

- Ministry of Human Resource Development, *National Education Policy 2020*. New Delhi: Ministry of Human Resource Development, 2020. Accessed: May .2, 2025. [Online]. Available: https://www.education.gov.in/sites/upload_files/mhrd/files/NEP_Final_English_0.pdf

- National Council of Educational Research and Training (2021), *Education for Values in Schools: A Framework*. New Delhi: National Council of Educational Research and Training. https://doi.org/10.58421/gehu.v4i2.357 256

- Paleti N.R., (2015), Relevance of Ramayana to modern life, 4(2), 90-246.

- R. Chatterji. 2024. A Ramayana for Our Times: Superheroes, Science Fiction and Myth. *Society and Culture in South Asia*, vol. 10, no. 1, pp. 120–135, doi: 10.1177/23938617231196641.

- S. S. Pillai. 2024.The 'Hindu' Epics? Telling The Ramayana and The Mahabharata in Premodern South Asia. *The Epic World*, pp. 230–244. doi: 10.4324/9780429286698-20.
- Senapaty M. (2020). Sita, the idealistic woman. *International Journal of Sanskrit Research*. 6 (2). Pp. 04-07.
- Sharma A. (2022). Reflections of the Indian Epic The Ramayana and its Impact on Indian English Literature. *International Journal of Advanced Academic Studies.* 4(4), pp. 132-136.
- Sharma J.K., (2017). Relevance of ancient Indian scriptures - business wisdom drawn from Ramayana, Gita and Thirukkural. *International Journal of Indian Culture*
- Sharma P. (2017). Multidimensional Role of Women In Shaping The Great Epic Ramayana. International Journal of Academic Research and Development 2(6). Pp. 1035-1036.

द्रौपदी-एक दैवी शक्ति के रूप में

डॉ. (श्रीमती) भवानी रामचंद्रन
महामना मालवीय महाविद्यालय, खेकड़ा, बागपत

शोध-सार

हमारे भारतीय संस्कृति में नारी वह दैवी शक्ति है जो समय-समय पर विभिन्न रूप में पृथ्वी पर अवतरित होकर दुष्टों व आसुरी शक्ति के संहारयित्री के रूप में निरूपित है। जैसा कि प्रोक्त है- **'विद्या समस्ताः तव देवि भेदाः स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु, विश्वेश्वरी त्वम् परिपासि विश्वम् विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्'** की चरितार्थता देखने को मिलती है। नारी के बिना इस पृथ्वी में स्थिति का होना भी संभव नहीं है यह कहने से अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि वही समस्त सृष्टि का आधार स्तंभ है वही जगत् धात्री, जगत् स्वरूपा, जगत् आधारा है। महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत नामक आर्ष काव्य की नायिका के रूप में द्रौपदी का परिचय प्राप्त होता है जो धर्म स्थापना के लिए संकल्प बद्ध है। जहां तक महाभारत कालीन नारी का प्रश्न है इसमें हमें विभिन्न आदर्श नारियों का उल्लेख मिलता है यथा गान्धारी, कुन्ती, माद्री, द्रौपदी, सत्यवती, सुभद्रा आदि जो अपने चरित्र से तो अत्यंत उत्कृष्ट है,साथ ही साथ वे एक अद्वितीय दैवी शक्ति को भी अपने साथ समझोये हुए हैं। महाभारत के विभिन्न स्त्री पात्रों में से द्रौपदी का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। वह ऐसी महाभारत की नारी शक्ति है जिस पर संपूर्ण कथा केन्द्रित है।प्रस्तुत लेख को निम्न उप-शीर्षकों में विभक्त किया है-

- भूमिका- भारतीय संस्कृति और नारी शक्ति
- महाभारत के विभिन्न नारी पात्र
- द्रौपदी परिचय-द्रौपदी के विभिन्न नाम कृष्णा, याज्ञसेनी, पांचाली, सैरन्ध्री

- द्रौपदी की उत्पत्ति रहस्य
- द्रौपदी का चारित्रिक वैशिष्ट्य- गुणों का अपार समुद्र
- द्रौपदी का दैवी स्वरूप- द्रौपदी एक आराध्या देवी
- निष्कर्ष

संक्षेप में कहा जा सकता है कि द्रौपदी जहां पंच पाण्डवों के पति के रूप में अपना स्त्रीत्व धर्म निभाते हुए उसमें एक अद्भुत देवी के चरित्र का परिलक्षण होता है जो बहुमुखी व्यवहार कुशलता के चातुर्य का परिचायक है। इसमें वैमत्य नहीं है कि एक साधारण महिला में उपरोक्त गुणों के सन्तुलन युक्त व्यवहार असंभव है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि धर्म की रक्षा हेतु जो द्रौपदी ने निभाया है वह स्वयं साक्षात् देवीरूपा है। यही कारण है कि भारत के विभिन्न प्रदेशों में द्रौपदी को एक आराध्या देवी के रूप में पूजित किया जाता है। इन सबसे यही निष्कर्ष निकलता है कि जैसे सीता पृथ्वी से उत्पन्न होकर उसी में विलीन होती है वैसे ही द्रौपदी यज्ञ में उत्पन्न होकर पृथ्वी रूप यज्ञ वेदी में समाहित हुई। अगर महाभारत के संबन्ध में यह सूक्ति कि 'यन्न भारते तन्न भारते' द्रौपदी की इसी विशिष्टता के कारण पंचकन्याओं में एक के रूप में द्रौपदी का स्मरण किया जाता है।

मुख्यशब्द- द्रौपदीमंदिर, कृष्ण, युधिष्ठिर, देवी, पांडव, याज्ञसेनी, अर्जुन

भूमिका-भारतीय संस्कृति और नारी शक्ति

हमारे भारतीय संस्कृति में नारी वह दैवी शक्ति है जो समय-समय पर विभिन्न रूप में पृथ्वी पर अवतरित होकर दुष्टों व आसुरी शक्ति के संहारयित्री के रूप में निरूपित प्राप्त है। जैसा कि प्रोक्त है-'विद्या समस्ता: तव देवि भेदा:स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु विश्वेश्वरि त्वं परिपासि विश्वम्। विश्वात्मिका धारयसीति विश्वम्[1] की चरितार्थता देखने को मिलती है। नारी के बिना इस पृथ्वी में स्थिति का होना भी संभव नहीं है यह कहने से

अतिशयोक्ति नहीं होगी क्योंकि वही समस्त सृष्टि का आधार स्तंभ है वही जगत् धात्री, जगत् स्वरूपा, जगत् आधारा है।

महाभारत के विभिन्न नारी पात्र

महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित महाभारत नामक आर्ष काव्य की नायिका के रूप में द्रौपदी का परिचय प्राप्त होता है जो धर्म स्थापना के लिए संकल्पबद्ध है। जहां तक महाभारत कालीन नारी का प्रश्न है इसमें हमें विभिन्न आदर्श नारियों का उल्लेख मिलता है यथा गान्धारी, कुन्ती, माद्री, द्रौपदी ,सत्यवती, सुभद्रा आदि जो अपने चरित्र से तो अत्यंत उत्कृष्ट है,साथ ही साथ वे एक अद्वितीय दैवी शक्ति को भी अपने साथ समझोये हुए हैं महाभारत के विभिन्न स्त्री पात्रों में से द्रौपदी का स्थान अत्यंत विशिष्ट है। वह ऐसी महाभारत की नारी शक्ति का पात्र है जिस पर संपूर्ण कथा केन्द्रित है।

द्रौपदी परिचय- उत्पत्ति रहस्य द्रौपदी के विभिन्न नाम- द्रौपदी, कृष्णा, याज्ञसेनी, पांचाली, सैरन्ध्री

द्रुपद की पुत्री होने से द्रौपदी,यज्ञ के कुंड से उत्पन्न होने के कारण उसे याज्ञसेनी[2] पांचाल देश से संबंधित होने से पांचाली, कृष्ण की अनन्य भक्ति व सखीरूपा होने के कारण कृष्णा[3]. अज्ञातवास में सैरंध्री आदि विभिन्न नाम से विख्यात थी। द्रौपदी ने अपने पूर्वजन्म में भगवान् रुद्र से जो सर्वगुणसंपन्न पति की याचना पाच बार की थी जिसके कारण उसे पाँच पति मिले।[4]

द्रौपदी का चारित्रिक वैशिष्ट्य- गुणों का अपार समुद्र

द्रौपदी के पिता का नाम द्रुपद और माता का नाम पृशति था। द्रौपदी एक सौन्दर्य संपन्न नारी थी जो अप्रतिम रूप शालिनी थी।[5] द्रौपदी के जुड़वा भाई धृष्टद्युम्न थे। वह भी द्रौपदी के समान ही यज्ञसमुद्भूत था। द्रौपदी की बहन का नाम शिखण्डी था। अपनी मनोवैज्ञानिक सशक्तता के कारण ही वह पांचों पतियों के साथ तेरह वर्ष का वनवास भोगने में समर्थ हुई। विशेष रूप से अज्ञातवास तो एक साधारण महिला को बहुत कठिन

लक्ष्य था जिसे भी उसने निर्वाह किया तो वह निश्चित ही दैवी अंश के कारण ही था। द्रौपदी मूर्तिमती शक्ति है उसमें ओज और विनय का अद्भुत सम्मिश्रण है उसमें आत्मसम्मान एवं सेवा का दुर्लभ संयोग है। प्रेम और व्यवहार कुशलता उसमें एक साथ निवास करती है वह सबको पसंद करना एवं उत्साहित करना जानती है स्वयं अनेक प्रकार के संकट सहकर व दूसरों को सुख देती है वह अपने पतियों पर अनन्य श्रद्धा और प्रेम भाव रखती है।[6] श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अचल श्रद्धा, परम प्रेम एवं परम भक्ति के भाव उसके हृदय में है।[7]

यदि महाभारत के आधार पर द्रौपदी का अवलोकन करें तो यह स्पष्ट होता है कि द्रौपदी ऐसी विशिष्ट शील संपन्न प्रतिभाशाली नारी है जिसमें एक आदर्श नारी के समस्त गुण प्राप्त होते हैं। पांच पतियों की भार्या होने पर भी वह अहल्या, द्रौपदी, कुंती, तारा और मंदोदरी पंचकन्याओं में परिगणित है।[8] अतः वह ऐसी प्रातः स्मरणीया नारी है जिसका चरित्र सब तरह से शुद्ध है। द्रौपदी के पांचो पति आयु, रूप, गुण एवं शक्ति किसी भी दृष्टि से समान नहीं थे। इतने वैषम्य को लेकर कोई स्त्री किस प्रकार जीवन निर्वाह कर सकती है इसका उदाहरण द्रौपदी के चरित्र से ही उपलब्ध होता है पाण्डवों के अज्ञातवास की अवधि में उसने राजा विराट के राज्य में सैरंध्री के वेश में कार्य किया एवं पग पग पर अपमान सहन किया यद्यपि वह कार्य उसे अपने पितृकुल एवं पतिकुल दोनों की ही मर्यादा के प्रतिकूल था तथा स्वयं द्रौपदी इस सेवा कार्य के उपयुक्त नहीं थी तथापि धर्मस्थापनार्थ उसने सब कुछ किया जो उसे इष्ट नहीं था। या द्रौपदी पंचपतित्व स्वीकार नही करती तो उसका यश बढ़ सकता था लेकिन तब पांडवों की माता कुन्ती के वाक्यं का पालन नही हो पाता और धर्मा की रक्षा असंभव हो जाता। पाँच पति में अर्जुन भी एक है यह सुनकर उसने धैर्य धारण किया। वंश रक्षा के लिए धर्मदेव,पवनदेव, देवराज, अश्विनीकुमार के संसर्ग द्वारा प्रजोत्पत्ति रूप स्त्रीधर्म यदि निभाया है तो वह केवल अद्वितीय माया शक्ति द्रौपदी द्वारा ही हो सकता था। द्रौपदी

की कहानी विभिन्न कलाओं, प्रदर्शनों और माध्यमिक साहित्य के लिए प्रेरणा रही है। यह उल्लेखनीय है कि ज्ञानपीठ पुरस्कार से पुरस्कृत डॉ. श्रीमती प्रतिभा राय का संस्कृत रूपांतरण वाला याज्ञसेनी पुस्तक[9] (संस्कृत अनुवादक डॉ.भगीरथि नन्दः) में लेखक ने सुंदर चित्रण किया है-याज्ञसेनी- तात! भवदिच्छापूरणाय स्यान्मे दुहितृधर्मः। आशीर्वदतु भवान्। याज्ञसेनि! त्वं हि पित्रपमानप्रतिशोधाय जाता। एतदर्थं धृष्टद्युम्नोऽपि संपादिता यज्ञक्रिया में सार्थकीभूता अतः कह सकते है कि कर्म, ज्ञान, भक्ति शक्ति की प्रतिमूर्ति देवी ही याज्ञसेनी है।

द्रौपदी के पांच पुत्र थे जिनके नाम ये हैं: प्रतिविन्ध्य- युधिष्ठिर और द्रौपदी का पुत्र, सुतसोम-भीम और द्रौपदी का पुत्र, श्रुतकर्मा- अर्जुन और द्रौपदी का पुत्र, शतानीक-नकुल और द्रौपदी का पुत्र, श्रुतसेन-सहदेव और द्रौपदी का पुत्र इन पांचों पुत्रों को सामूहिक रूप से उपपाण्डव कहा जाता है। द्रौपदी ने एक-एक वर्ष के अंतराल से पांचों पांडवों के एक-एक पुत्र को जन्म दिया था।[10] चीरहरण के समय जो स्थिति द्रौपदी की थी वह मानव सुलभ थी लेकिन उस समय में भी यदि उसने उस विपरीत स्थिति को सामना किया है तो वह निश्चित ही आराध्य देव कृष्ण की शक्ति थी जिसने उसे प्राण धारण करने की और अपने उद्देश्य को पूर्ण करने में समर्थ होती है।[11] द्रौपदी ने सदा अपने पतियों का सहयोग दिया तथा अज्ञातवास में भी वह मत्स्य देश की रानी सुदेशना की दासी के रूप में गुप्त रूप से रहीं। मत्स्य सेनापति कीचक द्वारा परेशान किए जाने पर भी उसने भीम से सुरक्षा मांगी, और उसने एक हिंसक मुठभेड़ में कीचक को भी मार डाला। इससे यही स्पष्ट होता है कि द्रौपदी एक सबला व बुद्धिमती नारी थी जो धर्म की प्रत्यक्ष पक्ष से अवगत थी तथा उसी के अनुसार व्यवहार करती थी। सपत्नी संबन्ध का भी अनुभव करना पड़ा और पुत्र शोक का भी अनुभव करना पड़ा। युधिष्ठिर द्वारा प्रदत्त अक्षय पात्र से वह सबका भरण पोषण करती ती और स्वयं अंत में खाती थी। द्रौपदी दैवी रूप से उत्पन्न होने के बाद भी मानवोचित नियम से अछूती नहीं थी। स्वयं

युधिष्ठिर[12]कहते हैं कि द्रौपदी की पांच पतियों में भी द्रौपदी का मन से अर्जुन के प्रति उसका पक्षपात था जिसे भले ही उसने अभिव्यक्त नहीं किया जिसके कारण ही वह स्वर्ग नहीं जाती है और पृथ्वी में ही विलीन हो जाती है। चूंकि अर्जुन ने द्रौपदी को एक ब्राह्मण के रूप में वेष धारण कर उसे स्वयंवर में जीता था, अतः स्वाभाविक है उसका अर्जुन के प्रति अनुराग। तथापि पातिव्रत्य धर्म में अर्जुन के प्रति मानसिक रूप में पक्षपाती होने के कारण तथा विधि के वशीभूत होने के कारण वह स्वर्ग तक पहुँचने से पहले धरती पर समाहित हो जाती है।

द्रौपदी का दैवीत्व

धर्म की रक्षा हेतु जो द्रौपदी ने निभाया है वह स्वयं साक्षात् देवीरूपा है। यही कारण है कि भारत के विभिन्न प्रदेशों में द्रौपदी को एक आराध्या देवी के रूप में पूजित किया जाता है। अभी भी भारत के विभिन्न दक्षिण प्रदेश जैसे कर्नाटक में ६ मंदिर, आन्ध्र प्रदेश में १९ तथा तमिलनाडु में ३८३ मंदिरों का उल्लेख प्राप्त है।[13] द्रौपदी के अतिरिक्त धर्मराज युधिष्ठिर की भी सन्निधि(पूजागृह) प्राप्त होता है। द्रौपदी अम्मन के नाम से विख्यात है। उसे कहीं कुलदेवी के रूप में मानकर भी पूजित किया जाता है। प्रतिवर्ष द्रौपदी मां या अम्मन के स्मरण में विभिन्न सांस्कृतिक कार्यक्रम जिसमें नाट्याभिमञ्चन,थीमिदि अर्थात् अग्निपादस्पर्श और कलशयात्रा आदि का आयोजन होता है। इस द्रौपदी अम्मन उत्सव को ही भारतविज़ा के नाम से जाना जाता है। पूजा से पूर्व करगम नाम का कलश स्थापित होता है जो हल्दी से लिप्त होता है जिसमें देवी का आविर्भाव होता है। नाट्याभिमंचन में द्रौपदी विवाह, दुर्योधन वध, बकासुर वध आदि प्रमुख क्रियाएं हैं। पूजा के पूर्व दीप जिसे कुत्तुविलक्कु कहा जाता है जिसे प्रज्वलित करने के पश्चात् तेरुकूत्तु नाम से द्रौपदी देवी की उपासना भी प्रचलित है।[14] यह भी उल्लेखनीय है कि द्रौपदी को देवी रूपा ही मानकर उसे रक्षिका देवी या कावल दैवम् के रूप में पूजा जाता है। विभिन्न नाट्याभिमंचन में तेरुकूत्तु, कथकली, यक्षगान, तैय्यम, भूतम, मुडियेट्टु

आदि किया जाता है। उपमहाद्वीप के कुछ हिस्सों में, द्रौपदी का एक संप्रदाय मौजूद है, जहाँ उन्हें देवी के रूप में पूजा जाता है। यहाँ उल्लेखनीय है कि The cult of Draupadi पुस्तक में Alf Hiltebeitel ने विस्तृत रूप में द्रौपदी के दो स्वरूप व धारणा का उल्लेख किया है जो अत्यंत ही रोचक है जिसमे Gingee और महाभारतीय कुरुक्षेत्र का वर्णन प्राप्त होता है। द्रौपदी देवी के ध्यान श्लोक में उसे दो नयन, एक पत्र वाला, हाथ में कमल और अभय हस्त धारण किये हुए,पीले वस्त्र धारण किये हुए, सिर में सुंदर किरीट और मुकुट अलंकृत होकर, समस्त आभरणों व पुष्प माला से सुशोभित है तथा अपने भक्तों को ज्ञान, वैराग्य और मोक्ष को भी प्रदान करने वाली देवी के रूप में वर्णित है।[15] द्रौपदी के लिए ऐसे विशिष्ट नाम का उल्लेख मिलता है जो एक आराध्या देवी में भक्तों द्वारा स्तुति किया जाता है। यथा सौन्दर्यदा, सौख्यप्रदा, सौभाग्या, शान्तस्वरूपिणी, अग्निस्वरूपा, यज्ञजा, रौद्ररूपा, भक्त अभयदा, दीर्घायुप्रदा, पाल(दूध), अभिषेकप्रिया, मरकतवल्ली आदि। द्रौपदी से संबन्धित ध्यान श्लोक में उन्हें हरिद्रा (पीले)वस्त्र से युक्त किरीट और मुकुट धारिणी, चमेली के माला से सुशोभित, विविध आभरणों से सुशोभित, ज्ञान, वैराग्य और मोक्ष को भी प्रदान करने वाली के रूप में संबोधित किया है। द्रौपदी अम्मन के नाम से अतिरिक्त उन्हें पांचाली, मालिनी, महापार्थी आदि नाम से भी संबोधित किया है। द्रौपदी अम्मन की गायत्री भी प्राप्त होता है- यथा ओं महाशक्त्यै च विद्महे वह्निदेहायै च धीमहि तन्नो पांचालीः प्रचोदयात्। इसी प्रकार धर्मराजगायत्री, भीम गायत्री, अर्जुन गायत्री, नकुल गायत्री, सहदेव गायत्री भी उपलब्ध होता है। प्रचलित द्रौपदी अष्टोत्तर स्तोत्र में प्राप्त यज्ञकुंड समुद्भूतायै, वह्निकुण्डसमुद्भवायै आदि नाम उनकी याज्ञसेनी नाम की पुष्टि करता है। अर्जुन विमोहना, धर्मराजप्रिया, साध्व्यै, जगज्जननी[16] आदि नाम द्रौपदी के पातिव्रत्यता की महनीयता को दर्शाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं

कि द्रौपदी अम्मन मंदिर दक्षिण भारत के कुछ विशेष क्षेत्रों में आस्था और भक्ति का महत्वपूर्ण केन्द्र है।

निष्कर्ष

संक्षेप में कहा जा सकता है कि द्रौपदी जहां पंच पाण्डवों के पति के रूप में अपना स्त्रीत्व धर्म निभाते हुए उसमें एक अद्भुत देवी के चरित्र का परिलक्षण होता है जो बहुमुखी व्यवहार कुशलता चातुर्य का परिचायक है। इसमें वैमत्य नहीं है कि एक साधारण महिला में उपरोक्त गुणों के सन्तुलन युक्त व्यवहार असंभव है, जिससे स्पष्ट हो जाता है कि धर्म की रक्षा हेतु जो द्रौपदी ने निभाया है वह स्वयं साक्षात् देवीरूपा है। यही कारण है कि भारत के विभिन्न प्रदेशों में द्रौपदी को एक आराध्या देवी या कुलदेवी के रूप में पूजित किया जाता है। इन सबसे यही निष्कर्ष निकलता है कि जैसे सीता पृथ्वी से उत्पन्न होकर उसी में विलीन होती है वैसे ही द्रौपदी यज्ञ में उत्पन्न होकर पृथ्वी रूप यज्ञ वेदी में समाहित हुई। अतः महाभारत के संबंध में यह सूक्ति कि 'यन्न भारते तन्न भारते' द्रौपदी की इसी विशिष्टता के कारण पंचकन्याओं में एक के रूप में द्रौपदी का स्मरण किया जाता है।

सहायक-सन्दर्भ-सूची:-

1. देवी मार्कण्डेय पुराण,11अध्याय
2. सुता द्रुपदराजस्य वेदिमध्यात् समुत्थिता, उद्योग पर्व, 82-21
3. वसिष्ठ ऋषि ने अपने संकट में द्रौपदी को श्रीकृष्ण का स्मरण करने का बोध कराते हैं –

   ज्ञातं मया वसिष्ठेन पुरा गीतं महात्मना।।

   महत्त्यापदि सम्प्राप्ते स्मर्तव्यो भगवान् हरिः।।

   सभापर्व, 68/41
4. तामथ प्रत्युवाचेदमीशानो वदतां वरः।

   पञ्च ते पतयो भद्रे भविष्यतीति भारत॥

   आदिपर्व,168.10

5. सुकेशी सुस्तनी श्यामापीनश्रोणि पयोधरा।
तेन तेनेव सम्पन्ना काश्मीरीव तुरंगमी।।

विराटपर्व, 9.11

6. पत्याश्रयो हि मे धर्मो गतः स्त्री मां सनातनः।
स देवः सा गतिर्नान्या सत्यं का विप्रियं चरेत्।।

वनपर्व, 233, 37

7. द्वारकानिलयाच्युत रक्षमांशरणागतः, शङ्खचक्रगदापाणे। द्वारकानिलयाच्युत। गोविन्दः पुण्डरीकाक्ष रक्ष मां शरणागताम्॥ हा कृष्णा द्वारकावासिन्।.... आदि द्रौपदी द्वारा कृत कृष्ण स्तुति

8. अहल्या द्रौपदी कुन्ती तारा मंदोदरी तथा। पंचकन्याः स्मरेन्नित्यं महापातकनाशिनी।।

दे. पौराणिक विश्व कोश

9. दे. पृ. 79 राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, दिल्ली २००६.

10. आदिपर्व- 220-79-80

11. उद्योगपर्व- 82.36,39

12. पक्षपातो महानस्या विशेषेण धनंजये।
तस्यैतत् फलमद्यैषा भुङ्क्ते पुरुषोत्तम।।महाप्रस्थानिक पर्व २.६

13. The cult of Draupadi, Alf Hiltebeitel, 1988,पृ०25

14. Therukoothu: Theatre of Mahabharata, Venkat Swaminathan, Sangeet Natak Nos, 102-102 July-December, 1991

15. द्विनेत्रां एकपत्रांच पद्माभयकरभुजाम् ।हरिद्रावस्त्रसंयुक्तां किरीटमकुटोज्ज्वलाम्।
मल्लिकामाल्यसंयुक्तांसर्वाभरणपूजिताम् ।ज्ञानवैराग्यदातृंश्च मोक्षसाम्राज्यकारिणीम्।।

16. दे. www.draupathidasa.in

THE DIVINE FEMININE IN EPICS

Dr. S. Durgaparameswari
Agurchand Nanmull Jain College, Chennai

Indian literature encompasses many forms such as philosophy, drama, poetry,

Epics, essays, prose, etc., In this lot, epics hold a very important and significant position. Amongst the epics, two of the most prominent works- the ***Ramayana*** and the ***Mahabharata***, were written in Sanskrit language. They together partly constitute the Hindu ***Ithihas*** and are part and parcel of the ***Smrithi's.*** The epics can be treated as a perfect blend of History, Mythology, Morality, Philosophy and so on.

Hundreds of years down the line, these two ever green epics, still continue to inspire, set standards and create a national consciousness in our people. They have remained vibrant throughout the years. Even today, ***Ramayana*** and ***Mahabharata***, bear a continued influence and effect on our literature, religious values, art and aid in formulating the culture of our country, as a whole. These works, with their high standards, has left an indelible mark in the minds of the masses, across the country. Their influence on our neighboring countries also, is well known and accepted. Powerful character portrayal in these works like Lord Ram, Sita, Laxman, Bharatha, Ravana, Hanuman, Yudhistir, Bhima, Arjuna, Karna, Kunti, Gandhari, Panchali, Sabari and many more, run afresh in the mind of the people even today, each character standing out, and representing a great moral value, virtue or valor.

Amidst such powerful characterization in ***Ramayana*** and ***Mahabharta*** are found, numerous divine feminine characters such as Sita, Sabari, Anasuya, Mandodari, Trijata, Tara, Kunti, Draupadi, Gandhari, etc., This work endeavors to pick a few divine feminine characters from ***Ramayana*** and ***Mahabharata***, study and analyze their character in brief, bring to the fore the divinity, moral values and expound on the particular trait that the character stood for.

DIVINE FEMINITY

Indian literature, in general and as a whole, treated the women with great respect. The epics too, is not an exclusion to this. Indian culture, through its literatures has always upheld the esteem of womanhood to its highest glory, especially the Mother avatar, even above guru and father. In other words, though a woman plays several important roles in life, Motherhood is venerated by the Indian society for sublime qualities of pure love, care, selfless devotion and endless sacrifice. The epics not only recognizes and respects the divinity and motherhood in women above anything, but also celebrates it. The roles of Sita, Kausalya, Kunti, Gandhari are glaring examples to site. Needless to mention, many more such divine and respectable characters can be traced from the epics, with ease. Such is the noble thought of Indian Society on women, as reflected by its various literatures from time to time. To corroborate this theme of women superiority, ***Varahamihira*** proclaims:

"Tell me truly what faults attributed to women have not been also practiced by men? Men in their audacity treat women with contempt, but they really poses more virtues (than men) ... Men owe their birth to women; O ungrateful wretches how can happiness be your lot when you condemn them? The Shastras(scriptures) declare that both husband and wife are equally sinful if they prove faithless to the marriage vow; men care very little for the *shashtra* (while women do); therefore, women are superior to men".

If we consider the size of the epics- say the Ramayana and the Mahabharatha, ample number of divine feminine has been portrayed by Valmiki, Sabhari being one such kind.

SHABARI (from Ramayana):

Shabari, a unique character in the epic Ramayana, hailed from low-caste family yet achieved the very summum bonum of life - liberation. She did so with selfless service to Sage **Matanga** and other teachers. Her attributes were simplicity, sincerity, Self-mastery, purity and mainly- austerity. Her living life is a glaring example show casing that one can attain ***Moksha*** with purity and austerity, self-meditation alone

and no erudition or great knowledge is required to reach the very summit of life- Liberation.

This contrasting character depicted by Valmiki, show cased austerity by her action of selfless service rendered to her saintly gurus. Also, this exemplary divine women, proved to the entire world that liberation was quite possible to those provided they were sincere in their thoughts and deeds, irrespective of their ancestry. Valmiki provides a magnificent ending to this deserving character, a truly noble and divine personality:

इत्युक्ता जटिला वृद्धा चीरकृष्णाजिनाम्बरा ।
तस्मिन्मुहूर्ते शबरी देहं जीर्णं जिहासती ।।**3.74.32** ।।
अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वात्मानं हुताशने ।
ज्वलत्पावकसङ्काशा स्वर्गमेव जगाम सा ।।**3.74.33** ।।

'With matted locks, tattered bark clothes and deer skin, Sabari consigned her old and emaciated body to the fire at that moment, with the permission of Rama and ascended to heaven, her body glowing like fire.'

What a glorious way to achieve the pinnacle of human life- LIBERATION.

GANDHARI (from Mahabharatha):

One of the most interesting noble women character depicted in the Mahabharatha is Gandhari. A divine queen who kept the flags of moral values high, even during the most difficult and turbulent times. A personality who was always remained calm and composed. A unparalleled character, who blind folded herself to forsake the comforts and pleasures of eyesight, when she came to learn that her husband Dhritarashtra was blind. In spite of being an loving and affectionate mother, she always warned her hundred sons, who took to the path of injustice against the righteous Pandavas. She incessantly and explicitly kept warning Duryodhana and his brothers, at every wrongdoing they indulged in gambling incident in Hasthinapura, rejection of peace proposal and so on. She firmly stood against their sins and maintained the standard of Dharma, at any cost. She sided with an unflinching faith on moral standards, even during the death of her hundred sons, at the war field. At one stage, she accepts the truth and attributes the loss of her

numerous sons to wrong doings of her sons. She always upheld throughout her life that righteousness and truth will prevail at the end.

However, at one instance she losses her nerves and cursed Lord Krishna on the fall of His dynasty, for, she held Him responsible for all the colossal damages due to the Kurukshetra war. One can assume the stature of a divine and powerful person like Gandhari, when Lord Krishna accepts the curse without any complaints, with all humility. A truly mesmerizing character which remains vibrant till date, upholding the value of a true and divine Indian womanhood.

A few years after the war, Gandhari retires to forest with Dhritarastra and Kunti. After some time well spent in austerity, she loses her life to a forest fire and attains her liberation.

CONCLUSION:

Two highly divine characters, one from Ramayana and the other from Mahabharatha has been taken into account. Deep thinking will show two contrasting characters, Sabari – a person with no backdrop while Gandhari – a personality with a princely comfort and backdrop has been brought to the fore. Despite facing several hardships, difficulties and challenges in life, both had attained the highest or the very summum bonum of life – MOKSHA at the end. Learning to a common man from this is that, when a person adheres to moral values enjoined by our culture and religion with unflinching faith, it leads him positively to a life of success and will elevate him towards the ultimate goal of life- LIBERATION.

Such an exploration of divine feminity's in the ***Ramayana*** and the ***Mahabharata,*** will result in highlighting the values contributed by these exemplary divine feminine characters. This will result in a new lease of life into the masses, by shaping up their Spiritual Insights, Character molding into ethical and moral frameworks, fostering national unity among the common man and invigorating Indian Culture.

Om Tat Sat

रामायण: स्त्री विमर्श

डॉ. रीता
असिस्टेंट प्रोफेसर, हिंदी विभाग
माता सुंदरी कॉलेज फॉर वीमेन, दिल्ली विश्वविद्यालय

बाल्मीकि कृत रामायण केवल एक ग्रंथ नहीं है बल्कि यह हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। रामायण केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं अपितु सांस्कृतिक एवं साहित्यिक दृष्टि से भी एक अमूल्य कृति है। रामायण के सांस्कृतिक महत्त्व को भारतीय विद्वानों ने ही नहीं पाश्चात्य विद्वानों ने भी स्वीकार किया है। भारत की तमाम भाषाओं में राम कथा का उपजीव्य ग्रंथ रामायण ही है।

जब हम रामायण कालीन स्त्री पात्रों की बात करते हैं तो हमारे समक्ष जिन स्त्रियों के नाम और चरित्र घूमते हैं हम उन्हें परंपरागत भारतीय स्त्री की एक बनी-बनाई छवि में ही देखने के अभ्यस्त हैं। सीता, उर्मिला, कैकेयी, सुमित्रा, कौशल्या, तारा, मंदोदरी अधिकांश स्त्री पात्रों को हम केवल भारतीय जीवन दृष्टि के अनुरूप शील क्षमा, सन्तोष, संयम, त्याग, तपश्चार्य, लज्जा, श्रद्धा, स्नेह, करुणा आदि गुणों के आधार पर इनका मूल्यांकन करते हैं। मेरा प्रयास है कि रामायण में वर्णित इन विदुषियों को हम इस परंपरागत ढांचे से इतर एक स्त्री के रूप में, एक मनुष्य के रूप में देखने का भी प्रयास करें। इस शोधपत्र में मैंने रामायणकालीन स्त्री पात्रों को उनकी प्रतिभा, योग्यता और उनके ज्ञान के आधार पर एक आधुनिक स्त्री के रूप में देखने का प्रयास किया है। आधुनिक स्त्री अपने ज्ञान, विवेक, वैज्ञानिक दृष्टिकोण और तर्क के आधार पर जीवन को देखती और समझती है और स्वविवेक से अपने जीवन के निर्णय स्वयं लेती है।

वैदिक काल में स्त्रियों की स्थिति जितनी अच्छी थी, उतनी बाद में कभी नहीं रही। “वेदों में कोई भी बात स्त्री अथवा पुरुष को संकेत

करके अथवा स्त्री-पुरुष के भेद को लक्ष्य करके नहीं कही गई है। उनमें जो कुछ कहा गया है, समस्त मानव जाति के लिए समान रूप से कहा गया है।"[1]

"इस युग में स्त्रियाँ भी ज्ञान के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान देती थीं और उच्चस्तरीय शिक्षा प्राप्त करती थीं। जैसे गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा आदि। लोपामुद्रा, विश्ववारा, सिकता, निवावरी, घोषा ये वे विदुषियां हैं जिन्होंने ऋग्वेद के मंत्रों या सूक्तों की रचना की।"[2]

रामायणकालीन समाज भी पितृसत्तात्मक था। "रामायण में परिवार पितृसत्तात्मक था पिता ही परिवार का मुखिया होता था जिसका आदेश सर्वोपरि होता था।"[3] रामायण काल में बाल्मीकि जी ने स्त्रियों की शिक्षा-दीक्षा के बारे में विशेष उल्लेख नहीं किया है। उस समय बालकों की शिक्षा-दीक्षा आश्रम में होती थी परंतु कन्याओं को शिक्षा घर पर ही योग्य व्यक्तियों द्वारा दिलाई जाती थी। "रामायण में स्त्रियों की उन्नत दशा का वर्णन किया गया है।"[4] वाल्मीकि युगीन समाज में स्त्रियों के लिए उच्च नैतिक आदर्शों की स्थापना की गई थी। स्त्री जाति के लिए किसी तरह की उच्छृङ्खलता वर्जित थी। सभी धार्मिक एवं नैतिक आदर्श पातिव्रत्य के इर्द-गिर्द ही घूमते हैं। स्त्री के लिए पति ही एकमात्र गति माना गया है। सती अनसूया ने तो स्पष्ट कहा है- "यदि पति बुरे स्वभाव का, मनमाना वर्ताव करने वाला अथवा निर्धन ही क्यों न हो, सती स्त्रियों के लिए वह देवता के समान पूजनीय है।"[5]

रामायण में स्त्रियों के प्रति कई स्थानों पर पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण देखने को मिलता है, जो तत्कालीन समाज की स्थिति को दर्शाता है। जब अयोध्या में सीता के चरित्र पर प्रश्न उठे, तो श्रीराम ने राजधर्म के नाम पर उन्हें वनवास दे दिया। यह दिखाता है कि पितृसत्तात्मक समाज में स्त्री की गरिमा पर संदेह आसानी से किया जाता था। सीता ने इस अन्याय को सहन किया, परंतु अपने स्वाभिमान की रक्षा करते हुए, अंततः धरती माता

की गोद में समा गईं, जो उनके आत्मसम्मान की प्रतीकात्मक जीत मानी जा सकती है।

रामायण की प्रमुख स्त्री पात्र सीता हैं। जब हम सीता का नाम सुनते हैं तो हमें एक सती के रूप में, एक पतिव्रता पत्नी के रूप में, अपनी सभी भूमिकाओं चाहे पुत्री, पुत्रवधु अथवा पत्नी और माँ के रूप में उनका आदर्श चरित्र ही याद आता है। सीता तो साक्षात् सती है जो पातिव्रत्य की पराकाष्ठा को प्राप्त कर चुकी है। इन सभी दैवीय गुणों से सज्जित आभामंडल के आलोक में सीता की प्रतिभा, ज्ञान, तर्कशीलता पर हमारी दृष्टि ही नही जाती। सीता को वेद, उपनिषद्, धर्मशास्त्र और लोकनीति का गहरा ज्ञान था। सीता ने शस्त्र और शास्त्र दोनों का ज्ञान प्राप्त किया था। वे कुशल नीतिज्ञ थी इसके अनेक उदाहरण रामायण में हैं। वह राम-लक्ष्मण हनुमान रावण को समय-समय पर उचित नीति-रीति का उपदेश देती हैं। उन्होंने अपने पुत्र लव और कुश को न केवल धनुर्विद्या सिखाई, बल्कि नीति और धर्म की शिक्षा भी दी।

जब रावण ने उन्हें अशोक वाटिका में रखा, तब उन्होंने कूटनीति और नैतिकता के माध्यम से अपनी सुरक्षा सुनिश्चित की। उन्होंने स्पष्ट रूप से रावण को असत्य और अधर्म के परिणामों के बारे में बताया, जो उनके नीतिज्ञान को दर्शाता है।

सीता के लिए पति की सहचारिणी, सहधर्मचारिणी शब्दों का प्रयोग हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि सीता श्री राम के समान ही समान अधिकार रखने वाली तथा अपने अधिकारों के प्रति सचेत रहने वाली एक तेजस्विनी पत्नी थी। सीता पति की अनुचित आज्ञा का नि:संकोच विरोध करती थी। अपने तर्कपूर्ण आग्रह से पति से अपनी बात मनवाने की वे क्षमता रखती थी वह अपने अधिकार एवं कर्तव्य दोनों के प्रति जागरूक थीं।

सीता की तर्कशक्ति अत्यंत तीक्ष्ण है। अकाट्य तर्क देकर वह राम को भी निरुत्तर कर देती हैं। वन गमन को उद्यत राम सीता को अयोध्या में

रहकर सास-ससुर की सेवा का आदेश देते हैं। यहां सीता की तर्कशीलता द्रष्टव्य है वह कहती हैं कि "पत्नी पति के भाग्य का अनुसरण करती है अतः वनवास की आज्ञा मुझे स्वतः ही प्राप्त हो गई।"6 सीता में वाग्मिता का गुण भी है। अनसूया राम और रावण के साथ अनेक ऐसे प्रसंग है जहां सीता के वाक चातुर्य का प्रमाण प्राप्त होता है।

सीता का एक विशिष्ट गुण यह है कि वह अत्यंत स्वाभिमानी है उसका स्वाभिमान अनेक प्रसंग में दृष्टिगोचर होता है। सीता के चरित्र में आत्मप्रतिष्ठा की चेतना के दर्शन होते हैं। अत्यधिक आग्रह करने पर भी जब राम उन्हें अपने साथ वन ले जाने के लिए तैयार नहीं होते हैं तब वह अपना स्वाभिमान प्रकट करते हुए कहती हैं कि "किस बात से आप इतना डरे हुए हैं कि मुझे जैसी पति परायण स्त्री को यहां छोड़कर जाना चाहते हैं।"7

आदि कवि सीता के तेज से अत्यधिक प्रभावित हैं। महर्षि ने रामायण में कई पात्रों के मुख से सीता के लिए एक ही वाक्य कहलाया है "रक्षितां स्वेन तेजसा" वह अबला नारी नहीं साहस, तेज व आत्म गरिमा की भावना से युक्त है। वह प्रत्येक अनुचित कृत्य पर प्रश्नचिह्न लगाती हैं "गर्भिणी सीता ने, राम द्वारा निर्वासित किए जाने पर; लक्ष्मण के समक्ष राजा राम को यही संदेश भेजा है कि उन्होंने सीता की अग्नि परीक्षा करने के पश्चात भी लोक अपवाद के कारण त्याग दिया तो क्या उनका यह आचरण उस प्रसिद्ध कुल के योग्य है ?"8 अग्नि परीक्षा प्रसंग में लक्ष्मण को चिता तैयार करने का आदेश देती है। और अंत में अपने सम्मान की रक्षा के लिए वह राम के साथ शेष जीवन बिताने की बजाय धरती के अंक में समाना सम्मानजनक मानती हैं। सीता की अग्नि परीक्षा यह दर्शाता है कि समाज स्त्रियों के चरित्र को लेकर अत्यंत कठोर था, लेकिन उन्होंने आत्मसम्मान के लिए कठिन परिस्थितियों का सामना किया।

सीता विवेकी व बुद्धिमान है। दंडकारण्य में जब राम सभी दानवों के वध की प्रतिज्ञा करते हैं तब सीता विवेकशीलता व बुद्धिमत्ता का

परिचय देती हुई उन्हें ऐसा करने से रोकती है। उन्होंने श्री राम को प्राणियों का वध न करने का विस्तारपूर्वक उपदेश दिया था। सीता हनुमान की भी परीक्षा लेती है कि वह वास्तव में रामदूत हैं अथवा माया रचित वानर।

सीता साहसी तथा निर्भीक है। प्रतिकूल परिवेश में भी वह तनिक भयभीत नहीं होती। उसकी निर्भीकता का स्पष्ट प्रमाण रावण से वार्तालाप के क्रम में मिलता है। जिस अतुल पराक्रमी रावण का नाम सुनकर देवता भी थर्रा जाते थे, उसी रावण को सीता निर्भीकतापूर्ण उत्तर देती है। रावण के वश में पड़ी हुई भी वह अत्यन्त क्रोधपूर्ण शब्दों में उसे तिरस्कृत करती हुई कहती है- "पापी निशाचर! तू सियार है और मैं सिंहिनी हूँ। मैं तेरे लिए सर्वथा दुर्लभ हूँ। जैसे सूर्य की प्रभा को कोई हाथ नहीं लगा सकता, उसी प्रकार तू मुझे छू भी नहीं सकता।"9

इसके अतिरिक्त सीता को विभिन्न औषधीय पौधों और प्राकृतिक चिकित्सा की समझ थी, जो उन्हें वनवास के दौरान काम आई।

2. **कैकयी ने** राजा दशरथ से वरदान माँगकर अयोध्या के राजनीतिक परिदृश्य को बदल दिया, जो यह दर्शाता है कि महिलाएँ भी राजनीति और शक्ति संतुलन का हिस्सा थीं। कैकयी को सैन्य रणनीति, युद्ध कला और प्रशासन का गहन ज्ञान था। उन्होंने राजा दशरथ के साथ युद्ध अभियानों में भाग लिया और उनकी रक्षा भी की। "देवासुर संग्राम के अवसर पर वह राजा दशरथ के साथ युद्ध क्षेत्र में गई थी। वहां उसने शत्रुओं के शस्त्रास्त्रों के प्रहारों से जर्जर हुए अचेत पति के रथ को, स्वयं ही अन्यत्र ले जाकर उनके प्राणों की रक्षा की थी।"10 वे अश्व संचालन में निपुण थीं और अपने समय की एक वीरांगना थीं।

कैकेयी को अपने दो वरदान मांगने की शक्ति थी, जो यह दर्शाता है कि स्त्रियाँ भी निर्णय ले सकती थीं, लेकिन उनके निर्णय के परिणामों को पितृसत्ता के अनुसार सही या गलत ठहराया गया।

वे अयोध्या की सबसे प्रभावशाली रानी थीं, जो राजनीतिक और राजकीय निर्णयों में सक्रिय भागीदारी निभाती थीं। हालांकि उनके एक निर्णय (राम को वनवास भेजने का आग्रह) को नकारात्मक रूप में देखा जाता है, लेकिन इससे उनकी राजनीतिक और कूटनीतिक समझ और प्रभाव का पता चलता है। परन्तु यह भी स्पष्ट होता है कि महिलाओं की राजनीतिक महत्त्वाकांक्षा को समाज द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता।

3. **मंदोदरी** एक नीतिनिपुण, वाकपटु, दूरदर्शी, विदुषी एवं पतिव्रता पत्नी थी मंदोदरी को शस्त्र, नीतिशास्त्र और कूटनीति का गहन ज्ञान था। वे रावण को धर्म और अधर्म के भेद को समझाने का प्रयास करती थीं। मंदोदरी ने अनेक बार रावण को प्रेरणा दी थी कि वह सीता, श्री राम को समर्पित कर दे। मंदोदरी ने कई बार रावण को श्रीराम से शांति वार्ता करने की सलाह दी, जिससे उनकी दूरदृष्टि और राजनीतिक सूझबूझ का परिचय मिलता है। वे रावण के युद्ध और अहंकार के खिलाफ खड़ी हुईं और उन्हें सही निर्णय लेने की प्रेरणा दी। उन्हें खगोलशास्त्र और तंत्र विद्या में भी निपुण माना जाता था।

4. **तारा** बालि की मृत्यु के बाद उन्होंने सुग्रीव को सही निर्णय लेने के लिए मार्गदर्शन दिया, जिससे यह सिद्ध होता है कि महिलाएँ राजनीति और प्रशासन में भागीदार थीं। तारा बाली की पत्नी थी। वह दूरदर्शी, बुद्धिमान, विवेकशील स्त्री थी। तारा को राजनीति, संकट प्रबंधन और कूटनीति का गहरा ज्ञान था। तारा ने बाली को कर्तव्य-अकर्तव्य का संकेत किया किंतु क्रोधांध एवं मदान्ध बाली ने सुविज्ञ, दूरदर्शनी एवं नीतिकुशला पत्नी का परामर्श स्वीकार नहीं किया।

वे बालि और सुग्रीव के बीच के संघर्ष को सुलझाने का प्रयास करती रहीं। मृत्यु से पूर्व बाली ने सुग्रीव से कहा था "सुषेण पुत्री तारा सूक्ष्म विषयों का निर्णय करने तथा विविध प्रकार के उत्पादों के चिह्नों को समझने में सर्वथा निपुण है। जिस कार्य को अच्छा बताएं उसे संदेहरहित होकर करना। तारा की किसी सम्मति का परिणाम विपरीत नहीं होता।"11

सुग्रीव तारा की बुद्धिमत्ता एवं वाकचातुर्य पर पूर्ण विश्वास था इसीलिए वह क्रोधित लक्ष्मण का सामना करने के लिए तथा उनके क्रोध को शांत करने के लिए तारा को ही भेजना उपयुक्त समझा था।

वे एक कुशल वार्ताकार थीं और राज्य की नीति में उनका प्रभाव था। सुग्रीव की असावधानी से रुष्ट हुए लक्ष्मण को तारा अपनी वाकचातुर्य से प्रसन्न कर पति के प्राणों के तथा राज्य दोनों की रक्षा की। सीता भी तारा की गुण गरिमा से प्रभावित थी। बालि की मृत्यु के बाद उन्होंने सुग्रीव को सही मार्ग दिखाया, जिससे किष्किंधा में स्थिरता बनी रही। वे सुग्रीव को धर्म और नैतिकता की ओर प्रेरित करती रहीं। तारा के दोनों पति उसकी कार्यपटुता एवं व्यवहारकुशलता से प्रभावित रहते थे।

5 उर्मिला ने 14 वर्षों तक अकेले जीवन बिताया, लेकिन उनकी इस त्याग की चर्चा बहुत कम होती है।उनका जीवन यह दर्शाता है कि स्त्रियों का संघर्ष केवल बाहरी नहीं, बल्कि आंतरिक भी होता है। उर्मिला साहित्य और कला में निपुण थीं और अपने ज्ञान से समाज को प्रेरित करती थीं।रामायण में उल्लेख है कि उर्मिला चित्रकला, काव्य और संगीत में पारंगत थीं।

वे वेदों और उपनिषदों का भी ज्ञान रखती थीं। उन्होंने अकेले रहकर आत्मसंयम और ध्यान का अभ्यास किया, जो उनकी मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति को दर्शाता है। लक्ष्मण के साथ वन जाने के बजाय उन्होंने अकेले रहकर सहनशीलता और आत्मसंयम का परिचय दिया।

एक स्त्री जो त्याग और धैर्य का परिचय देते हुए भी अपने अस्तित्व को बनाए रखती है। उर्मिला राज प्रासाद में रहकर भी सन्यासिनी का जीवन व्यतीत करती हैं। कौंची की वियोग व्यथा से उद्भूत होने वाली करुणा का धनी आदिकवि भी उर्मिला की व्यथा का सही और पूर्ण अनुभव न कर सका।

6 शबरी उन्होंने समाज की परंपराओं को तोड़कर ऋषि मतंग से ज्ञान अर्जित किया और श्रीराम की प्रतीक्षा में अपना जीवन बिताया। शबरी

निष्कपट प्रेमाभक्ति ,ज्ञान और आत्मनिर्भरता की प्रतीक हैं। शबरी ने ऋषि मतंग के सान्निध्य में वेद, उपनिषद् और भक्ति योग का अध्ययन किया। वे आत्मज्ञान और भक्ति के गहरे रहस्यों को समझती थीं और उन्हें व्यवहार में उतारती थीं। उन्होंने श्रीराम को निष्कपट प्रेम और भक्ति का महत्व बताया, जिससे भक्ति परंपरा को नई दिशा मिली।

शबरी ने अपने जीवन का निर्णय स्वयं लिया और भक्ति और अध्यात्म को जीवन का लक्ष्य बनाया। जातिगत और सामाजिक बंधनों को तोड़कर आत्मनिर्भर जीवन जिया और भक्ति मार्ग अपनाया। शबरी का जीवन यह दिखाता है कि स्त्रियाँ अपनी राह खुद बना सकती थीं। नारी का ज्ञान और भक्ति जाति-धर्म से परे है। शबरी ने अपने तपोबल से जितेन्द्रियता अर्जित की थी, सिद्ध गण भी उनका सम्मान करते थे।

7 अनसूया महाऋषि अत्रि की पत्नी अनसूया विदुषी स्त्री थीं। रामायण में अनसूया के तपस्विनी रूप का अधिक विस्तार से वर्णन है उन्होंने अपनी कठिन तपस्या के बल पर कई दिव्य शक्तियां अर्जित की थी और इन शक्तियों के बल पर असंभव कार्य भी कर सकती थी अपनी तपस्या के प्रभाव से ही इन्होंने अनावृष्टि से व्याकुल जगत को फल फूलों से युक्त किया था।

8 **सोमदा** उर्मिला पुत्री सोमदा चूड़ी ऋषि की सेवा में संलग्न रहने वाली एक गन्धर्वी थी। सोमदा ने महर्षि से कहा महाऋषि मैं आपसे ब्राह्मी शक्ति से संपन्न धर्मात्मा पुत्र प्राप्त करना चाहती हूँ मैं किसी की पत्नी नहीं हूँ, भविष्य में भी किसी की पत्नी नहीं होऊँगी।"12 सोमदा की प्रार्थना पर महाऋषि ने सोमदा को एक परम उत्तम ब्रह्म तेज से संपन्न मानस-पुत्र प्रदान किया जो ब्रह्मदत्त नाम से प्रसिद्ध हुआ। सोमदा अपने निर्णय स्वयं लेने वाली, अपनी शर्तों पर जीवन जीने वाली आधुनिक स्त्री की प्रतीक पात्र है।

9 **वेदवती** भी तपस्विनी के रूप में वर्णित है। पिता के देहावसान के पश्चात् हिमालय की कन्दराओं में स्थित पिता के आश्रम में ही वह

तपोरत जीवन व्यतीत करती है। वह अपनी तपस्या के बल पर त्रिलोकज्ञता, वाणी की अमोघता एवं अपूर्ण तेजस्विता अर्जित करती है।

निष्कर्ष:

रामायण काल की स्त्रियाँ केवल पारंपरिक भूमिकाओं तक सीमित नहीं थीं, बल्कि वे विभिन्न क्षेत्रों में अपनी विद्वता, नीति, भक्ति, कूटनीति, युद्धकला, साहित्य, कला और प्रशासन में योगदान देती थीं। रामायण में स्त्रियों को कोमल, त्यागमयी और सहनशील रूप में ही नहीं दिखाया गया, बल्कि वे शक्तिशाली, बुद्धिमान और आत्मनिर्भर भी थीं। कैकेयी और तारा- ये दोनों स्त्रियाँ यह दर्शाती हैं कि महिलाएँ राजनीति और निर्णय-निर्माण की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। रामायण काल की स्त्रियाँ पितृसत्ता के दायरे में रहते हुए भी अपनी शक्ति, ज्ञान और निर्णय लेने की क्षमता का प्रदर्शन करती हैं। हालाँकि, उन्हें सामाजिक संघर्ष का सामना करना पड़ा। **आत्मबल से दीप्त इन स्त्रियों में आत्म गौरव का भाव परिलक्षित होता है।** रामायण कालीन ये स्त्री पात्र आधुनिक स्त्री विमर्श के लिए प्रेरणा हैं।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-ग्रन्थ:-

1. डॉ. लता सिंहल- भारतीय संस्कृति में नारी, पृष्ठ - 2
2. डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल- भारतीय संस्कृति, पृष्ठ 126-127
3. डॉ. जितेंद्र प्रताप सिंह- दक्षिण पूर्व एशिया में रामायण संस्कृति, पृष्ठ 149
4. वही, पृष्ठ 157
5. डॉ. ममता पाण्डेय- बाल्मीकीय रामायण के नारी पात्र, पृष्ठ 15
6. वही, पृष्ठ 161
7. वही, पृष्ठ 155
8. डॉ. किरण टण्डन- भारतीय संस्कृति, पृष्ठ 343

9. डॉ. ममता पाण्डेय- बाल्मीकीय रामायण के नारी पात्र, पृष्ठ 151
10. डॉ. अर्चना विशनोई- रामायण में नारी, पृष्ठ 63
11. वही, पृष्ठ 72
12. वही, पृष्ठ 44

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:

1. डॉ. अर्चना विशनोई- रामायण में नारी, प्रथम संस्करण 2002, परिमल पब्लिकेशन्स, शक्ति नगर, दिल्ली
2. डॉ. किरण टण्डन- भारतीय संस्कृति, प्रथम संस्करण 2017, ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर, दिल्ली
3. डॉ.जितेंद्र प्रताप सिंह- दक्षिण पूर्व एशिया में रामायण संस्कृति, प्रथम संस्करण 2021, शिवालिक प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली
4. डॉ. प्रीतिप्रभा गोयल- भारतीय संस्कृति, पाँचवां संस्करण 2016 राजस्थानी ग्रन्थागार, जोधपुर (राजस्थान)
5. डॉ. ममता पाण्डेय- बाल्मीकीय रामायण के नारी पात्र, प्रथम संस्करण 2020, आस्था प्रकाशन, दिल्ली
6. डॉ.लता सिंघल- भारतीय संस्कृति में नारी, प्रथम संस्करण 1991,परिमल पब्लिकेशन्स, शक्ति नगर, दिल्ली

प्रागैतिहासिककालीनाः विविधविज्ञानकलासु कुशलाः महिलाः

डॉ. ज्योति बोथरा
CHB प्राध्यापिका- संस्कृत विभागः,
श्रीमतीबिन्झानीमहिलामहाविद्यालयः, महालः, नागपुरम्

विश्वे अत्यल्पानि प्राचीन शास्त्राणि सन्ति येषु शास्त्रीयरीत्या स्त्रीणां सम्मानस्य विषये किमपि लिखितमस्ति। भारतस्य प्राचीनसंस्कृतग्रन्थेषु स्पष्टतयालिखितम् अस्ति यत्- .

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।[1]

भारतस्य प्राचीनसंस्कृत-ग्रन्थेषु एतत् स्पष्टतया लिखितमस्ति यत् यत्र स्त्रियः पूज्यन्ते, तत्र देवाः निवसन्ति यत्र च नारी न पूज्यन्ते, तत्र न आदरः, तत्र कृतानि सर्वाणि सुकृतानि व्यर्थानि भवन्ति।
अपि च उक्तं-

शोचन्ति जामयो यत्र विनश्यत्याशु तत्कुलम्।
न शोचन्ति तु यत्रैता वर्धते तद्धि सर्वदा।।[2]

यस्मिन् कुटुम्बे स्त्रियः दुःखं प्राप्नुवन्ति तत् कुटुम्बं शीघ्रमेव नश्यति, यत्र स्त्रियः सुखिनः तिष्ठन्ति तत् कुटुम्बं सर्वदा समृद्धं, समृद्धं च तिष्ठति। (कुटुम्बस्य निकटबान्धवः यथा कन्या, वधू, नवविवाहिता इत्यादयः 'जामी' इति उच्यन्ते।) स्त्रीणां सम्मानस्य विषये किमधिकं वाच्यम्।

स्त्रीदुर्दशायाः चित्रकाः वदन्ति- प्राचीनभारते एषा स्थितिः आसीत् यत् महिला न पाठितव्या अथवा महिला सशक्ता न भवतु अथवा महिला सम्मानिता न भवेत्। ते जनाः विस्मरन्ति यत् देशेस्मिन् घोषवाक्योस्ति- यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता। स्त्रीणां सम्मानस्य विषये किमधिकं वाच्यम्। वैदिकसाहित्ये विदूषीतत्त्वचिन्तिकानां महिलानां

स्थाने-स्थाने वर्णनं दृष्टिगतो भवति। विद्यायाः साक्षात् दिव्यरूपं सरस्वतीस्वरुपमपि महिलास्वरुपमेव अस्ति।

अस्मिन् भारते स्त्रीजनानां प्रति दुर्व्यवहारः आसीत्, तासां कृते शिक्षायाः प्रदानमपि वर्जितमासित्। वस्तुतः कुत्रापि प्राचीनसाहित्ये एतासां स्थितीनां दर्शनं न जायते। सर्वासां तासां भ्रान्तधारणानां निर्माणं, जनजीवने प्रसारणं च मध्यकाले संजातम्। स्वसंस्कृत्याः प्रस्थापनार्थं भारतीयसंस्कृत्याः उन्मूलनं आवश्यकं, तदर्थे एतादृशानां भ्रान्तधारणां जनेषु प्रसारं कृत्वा स्वस्य हितसाधनं वैदेशिकांक्रान्तैः जनैः कृतवन्तः। यस्मिन् देशे तक्षशिला-नालन्दा सदृशोन्नतविद्यावितरणस्थलानि आसन्, विद्यायाः गुरोः च अपरिमितसम्मानस्य भावः यत्र प्राचीनसाहित्ये विद्यते, तेषां स्थलानां शास्त्राणां च विनाशं आक्रामकजनैः अभवत्, तदा एतत्कथनं यत् वैदेशिकाः अत्र आगम्य शिक्षायाः प्रसारं कृतवन्तः तत्तु मृषा एव, सत्ये तु ते जनाः ज्ञानप्रवाहस्य विनाशकाः एव। यतः वैदेशिकाक्रमणकाले महिला असुरक्षिता संजाता, सुरक्षाकारणेन तस्या विकासः अवरुद्धः, परन्तु एषः अवरोधः पारिस्थितिकः। यत्र जैनपरम्परायाः प्रथमतीर्थङ्करऋषभैः युगारंभे विद्यायाः प्रारंभो एव स्वपुत्रीद्वयं दत्वा कृतवन्तः[3], तत्र स्त्रीशिक्षायाः विचित्रस्थितिवर्णनं तु असङ्गतमेव।

धर्मशास्त्रविदुषी, वेदसाहित्य-रचयिता, उपाध्याया कन्याशिक्षाप्रसारिका च महिला

विद्वांसः मते वैदिककाले स्त्रियः आदरं, प्रतिष्ठां स्वातन्त्र्यं च प्राप्नुवन्ति स्म। भार्या गृहस्य स्वामिनी सहधर्मिणी च आसीत्, सा भर्त्रा सह समानरूपेण सामाजिक-धार्मिक-उत्सवेषु भागं गृह्णाति स्म।

पुत्रवत् पुत्रीशिक्षणे अपि आयोजनं कृतम् आसीत्। तदनन्तरं तेषां शिक्षा अपि आरब्धा भवन्ति स्म। वैदिकसाहित्ये सर्वे सन्दर्भाः दर्शयन्ति यत् तस्मिन् युगे बालकानां इव बालिकानां अपि उपनयनसंस्कारः भवन्ति स्म, तदनन्तरं तेषां शिक्षा अपि आरब्धा भवन्ति स्म।[4] ·

तथा च ताः अपि गुरुणाम् आश्रमेषु स्थित्वा ब्रह्मचर्यम् अनुसृत्य, ज्ञानस्य अध्ययनं कुर्वन्ति स्म। क्षत्रियस्त्रियः अपि धनुर्वेदम् अर्थात् युद्धविज्ञानम् अधीतवन्त्यः। श्रीरामस्य गुरुवशिष्ठस्य गुरुकुले तस्य महाविदुषी पत्नी अरुन्धती सङ्गीतं पर्यावरणसंरक्षणं च पाठयति स्म इति 'शतपथब्राह्मण' इत्यत्र उल्लेखः अस्ति।

बृहद्देवता इत्यत्र अनेकविदुषी-महिलानां उल्लेखः अस्ति, यथा-

"घोषा गोधा विश्ववारा, अपालोपनिषन्निषत।
ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः।।
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती।।
श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक्श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः।।"5

वैदिककाले अनेकानां कविविदुषयः महिलानां वर्णनानि वयं प्राप्नुमः, यथा- अपाला, घोषा, विश्वसारा, सिकता, लोपामुद्रा, निवावसी। अगस्त्यऋषिः, तस्य पत्नी लोपामुद्रा च मिलित्वा ऋग्वेदस्य सूत्राणि अरचयत्।

'अथर्ववेद' इत्यस्मिन् पञ्च महिलानां योगदानं वर्णितम् अस्ति यत्र यमी, अपाला, उर्वशी, इंद्राणी वागाम्भृणी च वैदिकर्षयः मन्त्रव्याख्यातरः आसन् , वैदिकसाहित्यसर्जने च अग्रगण्याः आसन्।

अनेकासां वेदमन्त्रदर्शिमहिलानाम् उल्लेखाः सन्ति, येषां ब्रह्मज्ञानेन सम्पूर्णं ऋषिसमुदायं मोहितवान् आसीत्। ताभिः लिखितानि विविधानि वैदिकस्तोत्राणि तासां गहनबुद्धिं प्रकाशयन्ति।

वेदसाहित्ये रोमाला घोषा, सूर्या, अपाला, विलोमी, सावित्री, यमी, श्रद्धा, कामायनी, विश्वम्भरा, देवयानी इत्यादीनामपि उल्लेखः अस्ति।6

ब्रह्मवादिनी विश्वावरा, आत्रेयी ऋग्वेदस्य पञ्चमस्य मण्डलस्य 28तमं सूक्तं रचितवत्यौ, घोषाकाक्षीवती दशममण्डलस्य 39तमं 40तमं च सूक्तं रचितवती, सूर्यसावित्री दशममण्डलस्य 85तमं सूक्तं रचितवती, अपला आत्रेयी अष्टमण्डलस्य 91तमं सूक्तं, शची पौलोमी दशममण्डलस्य 149तमं सूक्तं लिखितवती, लोपामुद्रा प्रथममण्डलस्य 179तमं सूक्तं च रचितवती।

एताः ब्रह्मवादिनः अपि पूर्णदक्षतया शिक्षिकात्वेन स्वदायित्वं निर्वहन्ति स्म। आश्वलायनस्य गृहसूत्रे गार्गी, मैत्रेयी, वाचक्नवी, सुलभा, वड्वा, प्रातिथेयी इत्यादयः आचार्याणां नाम उपाध्याया इति सम्बोधितानि प्राप्यन्ते। वामपन्थिनः प्राचीनभारते स्त्रियः अशिक्षिताः इति असत्यं प्रसारयन्ति। महाभारते काश्कृत्स्नी नाम्नी विदुषीमहिला मीमांसादर्शनविषये काश्कृत्स्नी इति पुस्तकं लिखितवती इति उल्लेखः अस्ति।

शाकल्या देवी महाराज अश्वपतिः पत्नी आसीत्। एकदा अश्वपतिमहाराजः ऋषिभ्यः अवदत् यत् सः राष्ट्रे अपि बालिकानां निर्वाचनं इच्छति। देशे वेदविद्वान् कोऽस्ति यः देवीवत् वेदशिक्षां प्रदातुं शक्नोति? ऋषयः अवदन् यत् तव भार्यायाः अपेक्षया वेदज्ञः कश्चित् नास्ति।

अतः राजा स्वपत्नी शाकल्यादेवीं निर्वासनं प्रेषितवान्, येन सा वनेषु निवसति, बालिकानां कृते गुरुकुलं स्थापयति, आश्रमं निर्मातुम्, देशस्य बालिकाः तत्र शिक्षां प्राप्नुयुः। सा एवम् अकरोत्। शाकल्यादेवी प्रथमा विद्वान् यया बालिकानां विद्यालयाः स्थापिताः।

विदुषी मैत्रेयी महर्षि याज्ञवल्क्यस्य पत्नी आसीत्। भर्तुः पादयोः उपविष्टा वेदान् गभीरम् अधीते। अस्याः कारणात् पतिपरमेश्वरस्य उपाधिः जगति प्रसिद्धा अभवत्, यतः सा भर्तुः ज्ञानं प्राप्तवती ततः तस्य ज्ञानस्य प्रचारार्थं कन्यागुरुकुलस्य स्थापनां कृतवती।

विदुषी सुलभा महाराजजनकस्य राज्यस्य महान् विद्वान् आसीत्। सा जनकराजं वादविवादे पराजय्य महिलाशिक्षणस्य विद्यालयस्य स्थापनां कृतवती।

सन्ध्या वेदविदुषी आसीत्। सा महर्षि मेधातिथिं वादविवादे पराजितवती । सा प्रथमा महिला पुरोहिता यज्ञं कृतवती। प्रातः- सायं, सायं-सायं च इत्यत्र तस्यानुसारं नामकरणं कृतम् अस्ति।

ब्रह्मर्षि वशिष्ठपत्नी विदुषी अरुन्धती आसीत्। तस्याः ज्ञानस्य आधारेण सा सप्तर्षिमण्डले ऋषिपत्नीत्वेन गौरवं स्थानं प्राप्तवती। सा बाल्यकालात् महर्षिमेधातिथियज्ञे भागं गृह्णाति स्म, यज्ञपश्चात् वेदविषयेषु वादविवादं करोति स्म। संस्कृतसाहित्ये वर्णिताः अनेकब्रह्मवादिनीनार्यः पूर्णदक्षतया शिक्षिकात्वेन स्वदायित्वं निर्वहन्ति स्म।[7] केवलमेतत् अपितु कतिपयविदुषीविशिष्टाभिः बालिकानां कृते विद्यालयाः अपि संस्थापिताः।

कृषिविज्ञानक्षेत्रे महिला-

ब्रह्मवादिनी वाक् अभृण ऋषेः पुत्री आसीत्। सा प्रसिद्धा ब्रह्मज्ञानिनी आसीत्। सा धान्यविषये संशोधनं कृतवान् स्वयुगे च उन्नतकृष्यर्थं वेदानाम् आधारेण कृषकाणां कृते नूतनानि बीजानि उत्पाद्य दत्तवती ।

चिकित्साशास्त्रक्षेत्रे महिला-

ब्रह्मवादिनी अपाला अपाला अत्रिऋषेः पुत्री आसीत्, अत्यन्तं बुद्धिमान् तीक्ष्णबुद्ध्या च सम्पूर्णे राज्ये प्रसिद्धा आसीत्। सा चतुर्णां वेदानां विषये ज्ञाता आसीत्।

अत्रिः शिष्यान् यत् किमपि उपदिशति स्म, तत् एकवारं श्रुत्वा कण्ठस्थं करोति स्म .ऋग्वेदस्य अष्टमप्रकरणेन सह 7 सूक्ताः तया दत्ताः प्रार्थनाः, वार्तालापाः च सन्ति।

अपाला अपि कुष्ठरोगेण पीडिता अभवत्, अतः तस्याः पतिः तां गृहात् बहिः क्षिप्तवान्। सा स्वपितुः गृहं गत्वा आयुर्वेदस्य शोधं प्रारभत। सा एव सोमरसस्य अन्वेषणम् अकरोत्.

इन्द्रदेवः तस्मात् सोमरसं प्राप्य, चिकित्सासाहाय्यं कृतवान्। आयुर्वेदिकचिकित्सायाः माध्यमेन सा विश्वसुन्दरी भूत्वा वेदसंशोधनेषु

प्रवृत्ता। सा ऋग्वेदस्य अष्टममण्डलस्य 91 तमे सूक्तस्य 1 तः7 पर्यन्तं श्लोकान् संकलितवती, तेषु विस्तृतं शोधं च कृतवती।

राजनीतिविज्ञानक्षेत्रे महिला-

किरातार्जुनिये एतद् स्पष्टं यत् धार्तराष्ट्राणां कपटजालेषु आबद्धानां विमोचनार्थे द्रौपदी प्रेरणास्रोता आसीत्.. सा बहुविधैः तर्कैः युधिष्ठिरं प्रतिरोधकर्तुं शक्तिप्रयोगेन स्वाधिकारप्राप्त्यर्थं प्रेरयति स्म।[8] स्वप्नवासवदत्तं नाटके तु योजनाबद्धरुपेण वासवदता लुप्ता भवति स्म। योजनानुसारं सर्वार्थसिद्ध्यनन्तरमेव सा पुनः प्रकटा भवति स्म। साहित्यशास्त्रे भासविरचिते स्वप्नवासवदत्तम् नाटके येन प्रकारेन वासवदत्तायाः वर्णनं अस्ति, तेन एतत् स्पष्टम् भवति यत् तस्मिन् काले महिलायाः शिक्षणं आसीत्, तस्योपरि दृढविश्वासो च आसीत्।[9] तस्याः वासवदत्तायाः निर्णयफलस्वरुपेण एव दु:स्थित्या: निवारणं भवति, सुस्थित्याः आगमनं च भवति। तस्या निर्णयक्षमता, स्वार्थत्यागवृत्तिः च दर्शनीया, तथैव सा कलासु निष्णातापि अस्ति। संगीत-कलायाः वादनकलायाः शिक्षाप्रसङ्गे एव तस्या विवाहः उदयनेन संजातः। यदि सा निश्चयं , निर्णयं न कृतवती तदा स्थितिपरिवर्तनमपि अशक्यमासित्। सा स्वस्य स्वार्थचिन्तनं न कृत्वा दहनप्रसङ्गं उत्पाद्य लुप्ता भवति। यदि सा तत्र एवं न कृतवती तदा पुनः राज्यप्राप्ति तु स्वप्नवत् एव आसीत्। सा संपूर्णतया विश्वासार्हा आसीत्, यतः कदापि नृपः तां प्रति संदेहं न करोति। तस्यार्थे तु मम पद्यबद्धाः कतिपयशब्दाः अग्रलिखिताः सन्ति-

केन्द्रीभूता प्रसङ्गस्य, योजना-संयोजिका
क्रियान्वयनकारिका च, सहाय्यामात्यसर्वतः।।
संचालिका सर्वसूत्राणां, गुप्तरूपेण मुख्यतः
फलाप्त्यानन्तरे एव , बीजस्य उद्घाटिका।।
कथं न मन्ये एषां तां, राजनीति धुरन्धरा
राज्यप्राप्ति पुनः भवति, शत्रुनाशोपि जायते।।
परिजनप्रजासुखस्यार्थे, स्वार्थत्यागं करोति या

सा एव वासवदत्तास्ति, सबला सकला क्षमा।।

विविधकलाकुशला महिला-

उत्तरवैदिके काले स्त्रियः गुरुकुलस्य स्थाने गृहे एव अध्ययनं कुर्वन्ति स्म। स्त्रीणां कृते बहवः प्रतिबन्धाः आसन् तथापि तेषां कलाक्षेत्रे स्वतन्त्रता आसीत्। नृत्यं, गायनं, संगीतं, वाद्ययन्त्राणि च स्त्रियाः प्रियशिक्षणाः आसन्। नृत्यसङ्गीतादिषु स्त्रियः प्रवीणाः आसन्। हर्षवर्धनस्य भगिनी राजश्री नृत्यगायनयोः प्रवीणा आसीत्। अभिज्ञानशाकुन्तलं इत्यत्र अनुसुयायाः चित्रकलेतिहासयोः ज्ञानस्य दर्शनं भवति. रत्नावली नाटके च सागरिका स्वपितुः चित्रनिर्माणं करोति स्म. मालतीमाधवे मालति अपि एवमेव चित्रनिर्माणं करोति स्म तथैव मालविका नियमितरूपेण नृत्य-गायनस्य अभ्यासमपि अकरोत्. हर्षवर्धनस्य प्रियदर्षिका नाटके कथितमस्ति यत् नृत्य-गायन-वादनाः उच्चकलाः सन्ति, युवाजनैः अवश्य पठितव्याः।[10]

अस्मिन् काले विशेषतः धर्मशास्त्राणां, तत्वज्ञानस्य, नृत्य-संगीत-वादनस्य शिक्षणं भवन्ति स्म. एतदेव न, काश्चन महिलाः अध्यापनकार्यमपि कुर्वन्ति स्म। अस्मिन् समये छात्राः द्विविधाः आसन्- ब्रह्मवादिनी, सद्योद्वाहा च।[11]

सद्योवधु (विवाहपूर्वं ज्ञानमाप्नोति) तथा २. ब्रह्मवादिनी (ब्रह्मचर्याम् अनुसृत्य जीवनपर्यन्तं ज्ञानं लभते)। सद्योद्वाधु अथवा सद्योद्वाहा वर्गस्य बालिकाः तासु समग्रज्ञानेषु शिक्षां प्राप्नुवन्ति स्म ये तान् उत्तमगृहिणीं कर्तुं सहायकाः आसन्। वेदस्य अध्ययनं विहाय गीतनृत्यचित्रकला, शिल्पास्त्रादिकं कुलम् चतुःषष्टिः कलाः पाठिताः आसन्।

युद्धकलाकुशलाः

युद्धेषु शुरवीरा युद्धकलाकुशलाः स्त्रीणां उल्लेखः अपि दृष्टिगतो भवति। रामायणानुसारं कैकेयी युद्धकलावित्, शस्त्ररथप्रयोगे निपुणा च आसीत्। सा दशरथस्य राजानं युद्धे साहाय्यार्थं सह गच्छति स्म।

तस्याः युद्धकौशलस्य केचन उदाहरणानि :

देवदानवयोः युद्धे दशरथस्य रथस्य अक्षः भग्नः आसीत्। तदा कैकेयी अक्षे हस्तं स्थापयित्वा रथं भङ्गात्। यदा राजा दशरथस्य रथः कम्पितुं आरब्धवान् तदा कैकेयी नखस्य स्थाने हस्तनखं स्थापयित्वा राजा दशरथस्य प्राणान् रक्षितवती।

वैद्यकीयसुभाषिते उल्लेखिते ऋग्वेदऋचायां खेलनृपस्य पत्नी विश्पलायाः वर्णनम् अस्ति यस्याः युद्धे पक्षीपक्षद्वयवत् उभौ पादौ विच्छिन्नौ तदा अश्विनीकुमारौ लौहपादौ अकुरुताम्।[12]

अन्ततः सर्वतः समीक्षणं कृत्वा एतद् ज्ञायते यत् विश्वे कोऽपि कार्यो नास्ति यत् महिला कर्तुं न शक्नोति। गुणानां क्षेत्रे तु सा अग्रिमा एव परन्तु कार्यक्षेत्रे अपि सा सार्वकालिका पूर्णसमर्था एव अस्ति।

अग्रे महिलायाः माहात्म्यवर्णने लिखितमस्ति-

दशपुत्रसमा कन्या दशपुत्रान्प्रवर्धयन्।
यत्फलं लभते मर्त्यस्तल्लभ्यं कन्ययैकया॥[13]

अर्थात् एका कन्या दशपुत्रसमा अस्ति। दशपुत्रपालनस्य पुण्यं कन्यैकायाः पालनेन लभ्यते। समुचितकथनम् अस्ति यत् –

न स्त्रीरत्नसमं रत्नम्।[14]

"अस्ति वा नारी, अस्ति वा जगत्:" विश्वे यथा पुरुषस्य महत्वम् अस्ति तथैव महिलायाः अपि महत्वपूर्णं स्थानम्। **इत्यलम्।**

सन्दर्भ-

1. मनुस्मृति 3.56
2. मनुस्मृति 3.57
3.महापुराण 16.4-7, 96-108, 24. 175.47 268, पद्मपुराण - 24.177 हरिवंशपुराण - 9.21
4. भारतीय स्त्री चलवली चा इतिहास- डॉ. अनिलकठारे, एजुकेशनल पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स , p. 34

5.. बृहद्देवता 2, 82-84

6. शोध:मध्यकाल में नारी की स्थिति , उमेश चन्द्र (अलीगढ़), अप्रैल 2014

7.https://panchjanya.com/2023/02/22/267911/bharat/women-education-in-vedic-literature/

8. किरातार्जुनियं- प्रथम सर्ग

9. स्वप्नवासवदत्तम्- प्रथम अङ्क

10. भारतीय स्त्री चलवली चा इतिहास- अनिल कठारे- P. 46

11. भारतीय स्त्री चलवली चा इतिहास- अनिल कठारे- P. 34, 122, हारीत संहिता

12. वैद्यकीयसुभाषितम् 2-3

13. स्कन्दपुराण, माहेश्वरखण्ड, कौमारिकाखण्ड, 23-46

14. चाणक्य नीति

Ambādevi Tampurāṭṭi: A Pioneering Female Scholar in Sanskrit Literature

Dr. Lisha C.R
Assistant Professor, Dept. of Sanskrit, General, Sree Sankaracharya University of Sanskrit, Kalady

Abstract-

The study of Sanskrit literature has historically privileged male voices, rendering the contributions of women writers obscure or invisible. However, the 19th and early 20th centuries witnessed a slow but meaningful emergence of learned women who challenged prevailing patriarchal norms to engage in classical literary traditions. One such pioneering figure is Ambādevi Tampurāṭṭi of Cemprol Koṭṭāraṁ (1890–1928), a royal-born scholar-poet from Kerala, whose literary output in Sanskrit and Malayalam exemplifies a unique confluence of philosophical depth, poetic elegance, and resistance to societal constraints.

This article explores Ambādevi's remarkable body of work, focusing particularly on her metrical adaptation of *Daśakumāracarita*, the classical prose romance by Dāṇḍin. Composed in various meters and preserved partially in manuscript form, her version reflects both intellectual mastery and an intentional reclaiming of literary space traditionally reserved for men. In addition, her devotional and philosophical works in Malayalam-including *Śrībhūtanāthodayam* and *Aṣṭamicampūu*-further illuminate her versatility and depth. Drawing on primary manuscripts, family accounts, and recent scholarly research, this study seeks to reinsert Ambādevi Tampurāṭṭi into the literary canon-not only as a poet of merit but as a representative of a broader, often neglected tradition of women's intellectual agency in India's knowledge systems.

Keywords: *Sanskrit literature, Ambādevi Tampurāṭṭi, Kerala women scholars, Daśakumāracarita, Indian Knowledge System, women in Sanskrit, rediscovering female voices*

Introduction

Kerala has long been a vibrant centre for Sanskrit literary and philosophical activity, with contributions across disciplines such as: Vyākaraṇa (grammar), represented by scholars like Melpattūr Nārāyaṇa Bhaṭṭa, Mīmāṃsā and Vedānta, pursued in major *śāla-s* and royal courts, Alaṅkāra-śāstra, adopted in the composition of *campū* and *kāvya*, Classical dramaturgy, with Nambyār *kūṭiyāṭṭam* and *nāṭakas* rooted in Sanskrit aesthetics.

The cultural and intellectual landscape of pre-modern Kerala was uniquely shaped by matrilineal social organization, known locally as *marumakkathāyam*. This system-uncommon in most parts of India-provided women, particularly in royal and aristocratic households, with certain privileges, including access to literacy, leisure, and cultural capital, although still within the constraints of domestic life. In elite lineages such as the Parappur Svampam, from which the Cemprol Koṭṭāram branch emerged, and the Kilimanoor royal family, Sanskrit was not merely a scholarly pursuit but an integral part of household identity. These families supported ritual learning, Vedic study, philosophical discourse, and poetic composition. While male members were publicly recognized as scholars (*śāstrīs*, *vaidikas*, *vyākaraṇikas*), women often received informal yet robust training in Sanskrit, *stotra*-chanting, and classical *kāvya*.

Although this environment facilitated basic Sanskrit education for women, their creative output was rarely documented or published. Female poets and scholars composed verses, translated texts, and even engaged in philosophical debates, but their contributions were typically preserved within oral traditions or family archives, seldom reaching public literary circles. The orthodox norms of caste purity, gender decorum, and ritual seclusion ensured that women's literary agency remained largely invisible.

Ambādevi Tampurāṭṭi:

Svati Tirunal Ambadevi Tampuratti was born on April 6, 1890 (the 25th of Meenam in 1065 in Malabar). She was the offspring of Trikketta Tirunal Kunnikutti and Brahmasri Krsnan Namputiri of Elanjallur Mana in Kottayam District. She married Brahmasri Andaladi Divakaran Namputirippad, an erudite scholar from Andaladi Mana in the neighborhood of Pattambi in South Malabar, Kerala. She had five children: Revati Tirunal C.K. Kerala Varma, Cittira Tirunal C.K. Raja Raja Varma, Asvati Tirunal Srimati Tampuratti, Visakham Tirunal C.K. Ravi Varma, and Utram Tirunal C.K. Rama Varma. She belonged to her family, which was originally Parappur Svampam, a royal family from the original South Malabar.

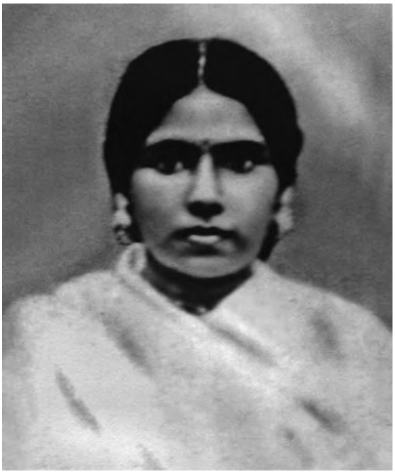

Ambadevi was born into a learned, conservative royal family. She spent her early years being homeschooled, gaining profound knowledge from Sanskrit literature-a reflection of the cultural emphasis placed on learning in such families. She corresponded with the renowned Malayalam poet Vallattol Narayana Menon, showcasing her integration with modern literary trends. She likely established contact with literary magazines through Vallattol and Kurup, both of whom were prolific writers. Her "Sribhutanathodaya" was serially published in "Vanita Kusumam," a women’s journal that contributed significantly to Kerala’s early social reform. Although she remained within orthodox bounds, the body of work created by Ambadevi, along with the medium through which she presented it, reflects her notable contribution to cultural discussions in late 19th and early 20th-century Kerala.

Against the social limitations of being both a conservative upper-caste family girl and a woman, Ambadevi Tampuratti created for herself an independent niche in the

literary world of Kerala. Her capacity for accommodating the social norms of the age to actively play an intellectual role in cultural discussion of the period attested to both will power and intelligence. Working from within the domestic sphere through discipline, self-taught education, and home-market relationships with other distinguished writers, she was able to contribute a body of work that meant something both in terms of an evolving society's values as well as its goals. Her life is an exemplary embodiment of the compatibility of tradition with innovation as well as of how writers like herself prepared the way for future generations of women writers in Kerala. Ambādevi Tampuratti’s life was cut short by a brief illness, and she passed away at the age of 38 on the 26th of Makaram, 1103 M.E. (8 February 1928), marking a quiet end to a luminous, though largely unrecognized, literary journey.

Literary Contributions

Ambadevi Tampuratti’s literary work is especially remarkable in the context of her period, when women rarely enjoyed the opportunity or social liberty of pursuing learned or creative activities. Her capacity for subverting traditional constraints to provide richer, nuanced literature is a testament to the intellectual tenacity of the individual. That she wrote in multiple genres and languages, in both Malayalam and in Sanskrit, bridged medieval and vernacular traditions, such that the cultural as well as moral values she upheld could be accessed by larger segments of society. That she wrote, including the as-yet-unpublished work, comprises richly textured relics of an earlier intellectual and social world, testifying in larger perspective to the usually forgotten role of women in enriching Kerala’s intellectual heritage.

Ambadevi's body of work ranges from devotional, moral, mythological, and ritual themes, demonstrating both the breadth of her work as well as its deep involvement with cultural traditions. Although her prose-verse in Sanskrit, *Daśakumāracarita*, survives in fragments only, some of her Malayalam work found its way to the printed page, such as the devotional poem *Śrībhūtanāthodayam*, as well as *Āṣṭamicampu*, which is about festival rituals. The other writings, such as *Ajāmilamokṣam*, as well as *Kanyakubjatīlaykathā*, are not

available in printed form, but demonstrate that she had an interest in moral-religious and mythological narrative. These diverse contributions demonstrate not only the extent of her literary range but also her commitment to cultural storytelling and preservation.

Poetic Adaptation of Dāṇḍin's Daśakumāracarita

Ambadevi Tampuratti's poetic rendition of Dandin's *Daśakumāracarita* is an astonishing literary achievement worthy of close scrutiny. Based on the original 7th-8th century Sanskrit prose romance about the exploits of ten princes, the work presented difficulties with its damaged, fragmented condition. While previous scholars sought to restore the lost material, Ambadevi resolved matters in another way through recasting the text as metrical poetry-together with an impressive display of not only command of the Sanskrit language, but also of imaginative as well as interpretive skill. Her version contains more than 1400 verses, utilising some of the fifteen or so classic metres available, from *śloka* through *upajāti*, *sragdharā*, and *śikharinī*. Her poetry is composed in an effortless, musical tone, typically clarifying the original as well as rendering its content more accessible for readers. Additionally, deployment of the classic *uttarapīṭhikā* structure implies the former presence of an absent *pūrvapīṭhikā* section, perhaps itself lost, which attests further to the formal as well as ambitious nature of the literary enterprise.

"*Even a small sample of her poetry demonstrates her mastery over both content and form*."- Dr. Lidia Sudyka, Orientalist and Sanskrit scholar,

The *Daśakumāracarita* manuscript was handwritten in Malayalam script on reused notebook pages, typical of a period when access to writing material was limited. The pages, closely written with ostrich-feather pens and homemade ink, contain not just verses but also corrections and marginal notes in Malayalam. Ambādevi's son, Visakham Tirunal C.K. Ravi Varma, recalled how she often composed her poetry during periods when she could not ritually touch ink, writing instead in pencil and relying on memory and care for detail.

***"She used to do all literary work in old notebooks, writing very closely with hardly any space between stanzas."*- C.K. Ravi Varma, son of Ambādevi**

Unlike literal translations or textual reconstructions, Ambādevi's work engages with the original prose aesthetically and philosophically. Her poetic rendering is not a mere versification but a re-telling that retains the spirit of Dāṇḍin while adapting the text for oral performance and classical recitation-hallmarks of Kerala's literary culture. Take the instance of how Dāṇḍin's prose could provide an elaborate, descriptive paragraph, whereas Ambādevi reduces it to evocative description and metrical balance, highlighting major emotional turns or moral hinges in narrative. She uses alliteration, rhyme, as well as sonic layering with selective intent, such that their lyrical texture is usually held in the memory longer than the original prose.

By doing so, she not only maintains the narrative purpose but also adds an extra layer of devotional, cultural, and moral focus, fitting in with the literary ethos of the early 20th-century Kerala infused with the spirit of bhakti.

Thematic Analysis of Works

Ambādevi Tampurāṭṭi's body of work is characterized by an enriching syncretism of classic scholarship, devotional passion, and an implicit yet inescapable presence of the feminine voice in Sanskrit literature. Her topical range, even while being derived from the canons of existing literature and philosophy, frequently goes beyond convention through affective variation, text choice, and tone.

a) Devotional and Bhakti

Ambadevi Tampuratti's works, especially *Śrībhūtanāthodayam* and *Āṣṭamicampu*, beautifully intertwine devotional fervor with scholarly poetics, particularly in the context of bhakti literature and classical aesthetics. Her devotion to Lord Śiva in *Śrībhūtanāthodayam*, through epithets such as *tapahara* and *śaśinetradhārin*, draws on classical conventions of bhakti poetry, while echoing the intensity found in works like the *Tevāram* hymns. The invocation of Lord Śiva in his Kāśī (Manikarnika) aspect adds a layer of esoteric depth, familiar to followers of the Śaiva tradition, elevating the devotional tone.

In *Āṣṭamicampu*, Ambadevi adapts the *astami* festival from Vaikom, aligning it with the celebratory rituals of the

Viṣṇuite tradition. The blending of ritual and lyrical intensity in this work serves as an excellent example of how she uses the rīti-mārga style to craft devotionally charged yet sophisticated poetry. Here, she is not just creating expressions of personal devotion, but also aligning herself with the formalized aesthetic ideals of Sanskrit poetics. Her approach to emotional expressiveness—marked by control and restraint—distinguishes her as a scholar-poet. By avoiding excessive sentimentality, she remains faithful to the principles of *rasānubhava* (aesthetic experience) outlined in *alaṅkāra-śāstra* (the science of ornamentation), offering an intellectual as well as emotional engagement with her readers. This balance between bhakti and classical poetic form sets her apart in the tradition of bhakti kāvya.

b) Moral and Philosophical

Ambādevi Tampuratti's *Ajāmilamokṣam* reveals a profound engagement with both Vedantic philosophy and Bhakti devotionalism, blending moral instruction with spiritual depth. The Ajamila episode, drawn from the *Śrīmad Bhāgavatam*, offers a narrative that is central to many devotional and Vedantic texts, highlighting the power of divine grace and the invocation of the divine name as a means of spiritual redemption. In Ambādevi's poetic retelling, the themes of *anugraha* (divine grace) and the transformative power of *nāmajapa* (chanting the divine name) take center stage. These concepts resonate deeply within both Advaita Vedānta, which emphasizes the non-duality of the self and ultimate reality, and the Bhakti schools like Viśiṣṭādvaita, where devotion to the divine is a means of liberation. Her emphasis on the divine name as the agent of salvation mirrors the central teachings of these philosophical schools, where liberation (mokṣa) is seen not as a result of self-effort alone but as a grace bestowed by the divine.

Moreover, Ambādevi's diction evokes a sense of spiritual surrender, yet there is an instructional aspect that guides the reader towards moral and philosophical insight. This dual nature of her poetry—spiritual and morally instructive—aligns with the ethos of works like *Bhaktamāla* and *Haribhaktisudhodaya*, which serve to elevate the reader's devotion while offering wisdom about the path to liberation. The

interplay of *jñāna* (knowledge) and *bhakti* (devotion) in her work reflects the Vedantic ideal of a synthesis between intellectual realization and devotional practice, a theme that permeates late classical Indian thought. Through *Ajāmilamokṣam*, Ambādevi offers not only a devotional account of Ajamila's redemption but also invites her readers into a deeper philosophical contemplation of the nature of divine grace, liberation, and the transformative power of sincere devotion.

Ambādevi Tampurāṭṭi's thematic range—devotional, philosophical, ethical, and gendered—illustrates her capacity not merely to replicate tradition but to **reshape and refine it** through the prism of her own lived experience, spiritual vision, and poetic insight. Her work invites us to rethink classical literature

Conclusion

The survival and rediscovery of Ambādevi Tampuratti's manuscripts- handwritten in Malayalam script on timeworn notebooks- stand as a testament to the quiet endurance of female intellectual agency in India's classical traditions. These fragile pages preserve more than poetic composition; they carry her voice, rhythm, and scholarly presence, forming a bridge between the cloistered domesticity of the Keralite *kottāram* and the expansive world of Sanskrit literary culture. That these texts withstood the erosions of time, neglect, and material fragility speaks to a dual legacy: the reverence of familial custodians and the insight of scholars who recognized their worth. Ambādevi's reintegration into academic discourse, aided by scholars like Lidia Sudyka and R.P. Raja, marks a corrective turn in historiography. Rather than treating classical Sanskrit culture as exclusively male-driven, Ambādevi's oeuvre redefines it as a more inclusive field. She becomes emblematic of a broader intellectual movement to recover women's contributions that were long obscured by normative gender hierarchies in literary history. In restoring her voice, we are reminded that the classical was never monolithic-that within its textures resided a plurality of voices, some of which, like Ambādevi's, are only now being heard in their full complexity.

References:

1. Antony, Teena. “Women’s Education: A Reading of Early Malayalam Magazines.” *Samyukta: A Journal of Gender and Culture,* Vol.7 No.1 (Jan 2022)

2. Aiya, V. Nagam. *The Travancore State Manual*, Vol. 1, Travancore Government Press, 1906.

3. Kale, M. R., editor and translator, *Daśakumāracarita of Dandin*, Motilal Banarsidass, 1986.

4. Kunjunni Raja, K. *The Contribution of Kerala to Sanskrit Literature*, University of Madras, 1980.

5. Menon, A. Sreedhara. *A Survey of Kerala History*, D C Books, 2006.

6. Raja, R. P., editor. *Chemprol Kottarathil Swathi Thirunal Ambadevi Thampuratti*, Kshatriya Kshemasabha Thiruvananthapuram, 2012.

7. Raja, R. P. *New Light on Swathi Thirunal*, Centre for Interdisciplinary Studies (INDIS), 2006.

8. Sudyka, Lidia, “Kerala Women’s Writing in Sanskrit: Ambādevi Tampurāṭṭi of Cemprol Koṭṭāraṁ- Her Life and Literary Oeuvre.” *Rocznik Orientalistyczny*, vol. 71, no. 2, 2018, pp. 187–197. DOI: 10.24425/ro.2019.127212.

उपनिषद् में वर्णित विदुषियों के संवाद

Bhartibahen Prabhubhai Parmar
Assistant Professor, Sanskrit
Government Arts and Commerce College Muli
Dist. Surendranagar, Gujarat

शोध सारांश:- संस्कृत साहित्य का इतिहास प्राचीन है। जिसमें वैदिक साहित्य एवं लौकिक साहित्य है। वैदिक साहित्य में चार वेद, उपनिषद्, वेदांग, ब्राह्मणग्रन्थों, आरण्यकग्रंथो का समावेश किया जाता है। जैसे पुरुष के ज्ञान से उन्हें विद्वान् कहा जाता है उसी भांति विद्वत नारी को विदुषी से जाना जाता है। वैदिक काल से स्त्रियों की परिस्थिति बहुत सुदृढ़ रही है। वैदिक साहित्य में भी अनेक स्त्रियों का उल्लेख कन्या, माता, देवी, आराध्या, पत्नी, भगिनी आदि के रूप में किया गया है। ऋग्वेद में अदिति, सरस्वती, उषा, मही आदि का नामोल्लेख सहित वर्णन मिलता है। इसी प्रकार उपनिषद् में अपाला, विश्ववारा, सिकता, निबावरी, लोपामुद्रा, मैत्रेयी, गार्गी आदि विदुषी स्त्रीयों का उल्लेख प्राप्त होता है। ऋग्वेद के अनुसार विदुषी स्त्री अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं कर्म से यज्ञ को धारण एवं सञ्चालन करती थी। उपनिषद् काल में भी स्त्रियों की स्थिति विद्वानों के तुल्य थी। इसलिए स्त्रियों को विदुषी कहा जाता है। वैदिक साहित्य में कितने संवाद सूक्त प्राप्त हुआ है जो एक स्त्री एवं पुरुष यानि की विद्वान् एवं विदुषी के बीच का है। कई ग्रंथों में विदुषियों का शास्त्रार्थ मिलता है। उपनिषद् में प्रमुख ११ उपनिषद् है जैसे की ईश, केन, कठ, मुण्डक, माण्डुक, तैत्तीरीय, बृहदारण्यक, प्रश्नोपनिषद् आदि है। उनके साथ में १०८ उपनिषद् भी बताये गए है। इस में से बृहदारण्यक उपनिषद् में मैत्रेयी एवं ब्रह्मवादिनियों में वाचक्नवी गार्गी का नाम विदुषीयों संवाद में लिया जाता है। वृहदारण्यक उपनिषद् में इनका याज्ञवल्क्यजी के साथ बडा ही सुन्दर शास्त्रार्थ आता है। वहा पर सभा में ब्रह्मवादिनी गार्गी भी बुलायी गयी

थी। सबके पश्चात् याज्ञवल्क्य जी से शास्त्रार्थ करने वे उठी। उन्होंने पूछा- भगवन्! ये समस्त पार्थिव पदार्थ जिस प्रकार जल मे ओतप्रोत हैं, उस प्रकार जल किसमें ओतप्रोत है? उन दोनों के बीच लम्बा शास्त्रर्थ चला तब याज्ञवल्क्य ने कहा-गार्गी! अब इससे आगे मत पूछो। इसके बाद महर्षि याज्ञवक्ल्यजी ने यथार्थ सुख वेदान्ततत्त्व समझाया, जिसे सुनकर गार्गी परम सन्तुष्ट हुई और सब ऋषियों से बोली-भगवन्! याज्ञवल्क्य यथार्थ में सच्चे ब्रह्मज्ञानी हैं। गौए ले जाने का जो उन्होंने साहस किया वह उचित ही था। गार्गी परम विदुषी थीं, वे आजन्म ब्रह्मचारिणी रहीं। बृहद आरण्यक उपनिषद्, 2.4 में ऋषि देवरात के पुत्र याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी का संवाद आता है। मैत्रेयी को अपने पति के पास बैठना और उन्हें अपने शिष्यों से बात करते हुए सुनना बहुत पसंद था। वह आध्यात्मिक विषयों में अधिक रुचि रखती थीं- ऐसे प्रवचन सुनना और चर्चाओं में भाग लेना। इसलिए उन्हें ब्रह्मवादिनी के रूप में जाना जाता था, जो ब्रह्म के ज्ञान में अधिक रुचि रखती थीं। याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को न केवल सच्चे प्रेम का स्वरूप, अपितु परम आत्मा की महानता, उसके अस्तित्व का स्वरूप, अनंत ज्ञान और अमरता प्राप्त करने का मार्ग भी समझाना प्रारंभ किया। इस तरह उपनिषद में विदुषियो के संवाद प्राप्त होता है।

कूटशब्द:- ब्रह्मवादिनि, गार्गी , मैत्रेयी, आत्मतत्व, ब्रह्मज्ञान।

बृहदारण्यक उपनिषद् में **मैत्रेयी** एवं ब्रह्मवादिनियों में **वाचक्नवी गार्गी** का नाम विदुषीयों संवाद में लिया जाता है।

गार्गी और याज्ञवल्क्य का संवाद:-

गार्गी प्राचीन भारतीय दार्शनिक थी। वैदिक साहित्य में उन्हें एक महान प्राकृतिक दार्शनिक वेदों के प्रसिद्ध व्याख्याता और ब्रह्म विद्या के ज्ञान के साथ ब्रह्मवादी के नाम से जाना जातीं है। वह त्रेता युग मे राजा जनक की समकालीन थी जो हिन्दू युग कालक्रम में 8 लाख 50 हजार वर्ष ईसा पूर्व BC का समय है। गार्गी का पूरा नाम गार्गी वाचक्नवी बृहदारण्यकोपनिषद् 3.6 और 3.8 श्लोक में वही मिलता है जहां वह

जनक की राजसभा में याज्ञवल्क्य से अध्यात्म संवाद करती है। याज्ञवल्क्य की द्वितीय पत्नी मैत्रेयी भी ब्रह्मज्ञान युक्त विदुषी थी। बृहदारण्यक उपनिषद् के छठी और आठवीं ब्राह्मण में उसका नाम प्रमुख है क्योंकि वह विद्या के राजा जनक द्वारा आयोजित एक दार्शनिक बहस में भाग लेती है और संयम (आत्मा) के मुद्दे पर कठिन प्रश्नों के साथ ऋषि यज्ञवल्क्य को चुनौती देती है। यह भी कहा जाता है कि ऋग्वेद में कई भजन लिखे हैं जिन्हें सभी ब्रह्मचर्य धारण करने वाले और परंपरागत हिंदुओं द्वारा पूजा में उपयोग किया जाता है।

ऋषि गर्ग महाभारत कालीन 3000-3500 ईसा पूर्व के थे उनके पूर्व के वंश में ऋषि वाचक्नु की बेटी गार्गि, का नाम उसके पिता के नाम पर गार्गि वाचक्नवी के रूप में किया गया था एक युवा उम्र से वे वैदिक ग्रंथों में गहरी रूचि प्रकट की और वैदिक अध्यात्म दर्शन के क्षेत्र में बहुत ही कुशल थीं। वह वैदिक काल में वेद और उपनिषद् में अत्यधिक जानकार थी और अन्य दार्शनिकों के साथ बौद्धिक बहस आयोजित करते थे। वाचकन्वी, वचक्नु नाम के महर्षि की पुत्री थी। गर्ग गोत्र में उत्पन्न होने के कारण वाचक्नवी **गार्गी** नाम से प्रसिद्ध हुयी

गार्गी का याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रार्थ :-

बृहदारण्यक उपनिषद् में इनका याज्ञवल्क्यजी के साथ बड़ा ही सुन्दर शास्त्रार्थ आता है।[1] एक बार महाराज जनक ने श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी की परीक्षा के निमित्त एक सभा की और एक सहस्त्र सवत्सा सुवर्ण की गौएँ बनाकर खडी कर दीं। सबसे कह दिया-जो ब्रह्मज्ञानी हों वे इन्हें सजीव बनाकर ले जायँ। सबकी इच्छा हुई, किन्तु आत्मश्लाघा के भय से कोई उठा नहीं। तब याज्ञवल्क्यजी ने अपने एक शिष्य से कहा- बेटा! इन गौओं को अपने यहाँ हाँक ले चलो।[2]

[1] बृहदारण्यक उपनिषद ३.८

[2] गार्गी वाचक्नवी:अपने समय की प्रखर अध्यात्मवेत्ता।

इतना सुनते ही सब ऋषि याज्ञवल्क्यजी से शास्त्रार्थ करने लगे। भगवान याज्ञवल्क्यजी ने सबके प्रश्नों का यथाविधि उत्तर दिया। उस सभा में ब्रह्मवादिनी गार्गी भी बुलायी गयी थी। सबके पश्चात् याज्ञवल्क्यजी से शास्त्रार्थ करने वे उठी। उन्होंने पूछा-भगवन्! ये समस्त पार्थिव पदार्थ जिस प्रकार जल मे ओतप्रोत हैं, उस प्रकार जल किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य- जल वायु में ओतप्रोत है।

गार्गी- वायु किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य- वायु आकाश में ओतप्रोत है।

गार्गी- अन्तरिक्ष किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य- अन्तरिक्ष गन्धर्वलोक में ओतप्रोत है।

गार्गी- गन्धर्वलोक किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य- गन्धर्वलोक आदित्यलोक में ओतप्रोत है।

गार्गी- आदित्यलोक किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य- आदित्यलोक चन्द्रलोक में ओतप्रोत है।

गार्गी- चन्द्रलोक किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य- नक्षत्रलोक में ओतप्रोत है।

गार्गी- नक्षत्रलोक किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य- देवलोक में ओतप्रोत है।

गार्गी- देवलोक किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य- प्रजापतिलोक में ओतप्रोत है।

गार्गी- प्रजापतिलोक किसमें ओतप्रोत है?

याज्ञवल्क्य- ब्रह्मलोक में ओतप्रोत है।

गार्गी- ब्रह्मलोक किसमें ओतप्रोत है?

तब याज्ञवल्क्य ने कहा-गार्गी! अब इससे आगे मत पूछो। इसके बाद महर्षि याज्ञवक्ल्यजी ने यथार्थ सुख वेदान्ततत्त्व समझाया, जिसे सुनकर गार्गी परम सन्तुष्ट हुई और सब ऋषियों से बोली-भगवन्! याज्ञवल्क्य यथार्थ में सच्चे ब्रह्मज्ञानी हैं। गौएँ ले जाने का जो उन्होंने

साहस किया वह उचित ही था। गार्गी परम विदुषी थीं, वे आजन्म ब्रह्मचारिणी रहीं।

❖ बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य और मैत्रेयी संवाद[1]:-

ऋषि देवरात के पुत्र याज्ञवल्क्य अपनी दो पत्नियों मित्र ऋषि की कन्या मैत्रेयी और महर्षि भरद्वाज की पुत्री कात्यायनी के साथ गृहस्थ जीवन जीते थे। दोनों में से कात्यायनी ही गृहस्थी चलाती थीं। वह हमेशा पत्नी के रूप में अपनी स्थिति का सबसे अधिक ध्यान रखती थीं। दूसरी ओर, मैत्रेयी को अपने पति के पास बैठना और उन्हें अपने शिष्यों से बात करते हुए सुनना बहुत पसंद था। वह आध्यात्मिक विषयों में अधिक रुचि रखती थीं- ऐसे प्रवचन सुनना और चर्चाओं में भाग लेना। इसलिए, उन्हें ब्रह्मवादिनी के रूप में जाना जाता था, जो ब्रह्म के ज्ञान में अधिक रुचि रखती थीं।

अपने जीवन के अंतिम चरण में याज्ञवल्क्य ने गृहस्थ जीवन त्यागकर वनवासी जीवन जीने का निर्णय लिया। इसलिए एक दिन उन्होंने मैत्रेयी को बुलाया और कहा, "मैत्रेयी, मैं सब कुछ त्यागकर घर से जा रहा हूँ। अगर तुम चाहो तो मैं कात्यायनी और तुम्हारे लिए अलग-अलग भोजन की व्यवस्था कर सकता हूँ।"

अपने पति के ये शब्द सुनकर मैत्रेयी ने उनसे कहा, "प्रभु, यदि मेरी सारी संपत्ति पूरी पृथ्वी पर फैल जाए, तो क्या वे मुझे अमरता प्रदान कर देंगी?"

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, "नहीं बेटा, ऐसा कभी नहीं हो सकता। तुम भी धनवानों की तरह मौज-मस्ती का जीवन जी सकते हो। लेकिन अमरता की कोई उम्मीद नहीं होगी।"

---

[1] बृहद आरण्यक उपनिषद, 2.4

मैत्रेयी ने कहा, "फिर मैं उससे क्या करूँ जो मुझे अमर नहीं बना सकता?"

मैत्रेयी के ये वचन सुनकर याज्ञवल्क्य ने उससे कहा, "तुम मुझे सदैव से ही प्रिय रही हो, अब तो तुम और भी अधिक प्रिय हो गयी हो।" यह कहकर याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी को न केवल सच्चे प्रेम का स्वरूप, अपितु परम आत्मा की महानता, उसके अस्तित्व का स्वरूप, अनंत ज्ञान और अमरता प्राप्त करने का मार्ग भी समझाना प्रारंभ किया।

"मेरी प्यारी मैत्रेयी, जान लो कि पत्नी अपने पति से उसके लिए नहीं, बल्कि अपने लिए, आत्मा के लिए प्रेम करती है। उससे प्रेम करते हुए वह उससे प्रेम करती है जो उसके भीतर भी है और उसके भीतर भी। यह वास्तव में वह एक है जिससे वह प्रेम करती है। इसी तरह पति के लिए भी यही बात लागू होती है, और वास्तव में, सभी प्रेम संबंधों के लिए- पिता और पुत्र, माता और पुत्र, माता और पुत्री, पिता और पुत्री, मित्र और मित्र, इत्यादि। जो कुछ भी प्रिय माना जाता है, वह उस एक आत्मा के कारण ही है। यह वह आत्मा है जिसे देखा जाना चाहिए, सुना जाना चाहिए, जिसके बारे में सोचा जाना चाहिए, जिसका ध्यान किया जाना चाहिए। इसे जान लेने के बाद बाकी सब कुछ जान लिया जाता है।

"प्रिय मैत्रेयी, जैसे समुद्र के बिना जल नहीं हो सकता, त्वचा के बिना स्पर्श नहीं हो सकता, नाक के बिना गंध नहीं हो सकती, जीभ के बिना स्वाद नहीं हो सकता, आंख के बिना रूप नहीं हो सकता, कान के बिना ध्वनि नहीं हो सकती, मन के बिना विचार नहीं हो सकता, कान के बिना ज्ञान नहीं हो सकता, हाथों के बिना कार्य नहीं हो सकता, पैरों के बिना चलना नहीं हो सकता, शब्दों के बिना शास्त्र नहीं हो सकता, उसी प्रकार आत्मा के बिना कुछ भी नहीं हो सकता।

"जैसे नमक की डली पानी में डाल दी जाती है, वह घुल जाती है और फिर बाहर नहीं निकाली जा सकती। वैसे ही पृथक आत्मा भी शुद्ध चेतना के सागर में विलीन हो जाती है, अनंत और अमर। पृथकता शरीर

के साथ आत्मा की पहचान से उत्पन्न होती है, जो तत्वों से बना है, जब यह भौतिक पहचान विलीन हो जाती है, तो पृथक आत्मा नहीं रह सकती। यही मैं तुम्हें बताना चाहता था मेरे प्रिय!"

इस पर मैत्रेयी ने उत्तर दिया: "हे भगवान, जब आप कहते हैं कि कोई अलग आत्मा नहीं है, तो मैं उलझन में पड़ जाती हूँ। क्या आप कृपया मुझे बता सकते हैं।"

याज्ञवल्क्य ने कहा, "हे प्रिय मैत्रेयी, मैंने जो कहा है, उस पर विचार करो और तुम भ्रमित नहीं होगे। जब तक पृथकता है, तब तक व्यक्ति देखता है, सुनता है, सूँघता है, बोलता है, सोचता है, जानता है, लेकिन जब आत्मा को जीवन की अविभाज्य एकता के रूप में महसूस किया जाता है, तो कौन किसके द्वारा देखा जा सकता है, कौन किसके द्वारा सूँघ सकता है, कौन किसके बारे में सोच सकता है, कौन किसके द्वारा जाना जा सकता है? हे मैत्रेयी, मेरी प्रिय, जानने वाले को कभी कैसे जाना जा सकता है?"

यह सुनकर मैत्रेयी के पास कहने को और कुछ नहीं बचा, सिवाय इसके कि वह उन शिक्षाओं पर विचार करने लगी, जो उसे दी गई थीं, ताकि वह अनंत और अमर में विलीन हो जाए।

निष्कर्ष :- उपनिषदों में से बृहदारण्यक उपनिषद् में दो विदुषियों के संवाद महर्षि याज्ञवल्क्य के साथ हुआ था। गार्गी और मैत्रेयी का संवाद में मैत्रयी का संवाद आत्मतत्व के ज्ञान के संदर्भा में हुआ था। जबकि गार्गी का याज्ञवल्क्य के साथ संवाद वेदांततत्त्व के विषयक था। प्राचीनकाल में भी विदुषियों का महर्षि के साथ शास्त्रार्थ उपनिषद में प्राप्त होते है जिनको यहाँ पर दर्शाया गया है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची-

१. बृहदारण्यक उपनिषद्
२. https://www.vedaboys.com
३. उपनिषदों के संवाद- शोभा निगम, लोकभारती प्रकाशन,
४. उपनिषद् रहस्य

रामायणकालीन विदुषियां एवं ज्ञान संवर्धन में उनका योगदान

सहा. प्रा. डॉ. प्रज्ञा इंगळे
महात्मा ज्योतिबा फुले महाविद्यालय, अमरावती

सारांश:-

लौकिक संस्कृत साहित्य की परंपरा में आदि कवि महर्षि वाल्मीकि विरचित रामायण महाकाव्य न केवल आदि काव्य अपितु आर्ष एवं उपजीव काव्य के रूप में विश्व विख्यात है। इस महाकाव्य में भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का मूल निहित है। तथा जिसमें मानव जीवन का सर्वोच्च आदर्श विहित है। इस महाकाव्य में नारी पात्रों की यह आदर्श चरित्र गाथा वर्णित की है, जिनका समस्त मिलन अन्यत्र दुर्लभ है इस महाकाव्य में राम एवं रावण दोनों पक्षों के प्रमुख स्त्री पात्रों में सीता कैकयी, उर्मिला, कौशल्या, सुमित्रा, शबरी, मंदोदरी, त्रिजटा, तारा, शबरी, सूर्पनखा, मंथरा परीगणित है। रामायण काल में चित्रित स्त्री सुशिक्षित विचार संपन्न एवं कर्तव्य परायण है। इस स्त्रियों में धर्म पातिव्रत्य, धर्मपरायणता, राजनीति ज्ञता त्याग एवं सहिष्णुता, स्वाभिमान जैसे कतिपय गुण है। जो हमारे समाज के नारियों के लिए अत्यंत आवश्यक है।

रामायण संस्कृत साहित्य के इतिहास में उन विशिष्ट कृतियों में से एक है, जिसने परिवार और सामाजिक आदर्श के माध्यम से जीवन में व्यापक दृष्टि को पेश किया है। महाकाव्य का समाज पर शक्तिशाली प्रभाव है क्योंकि इसमें दर्शन एक सतत धारा प्रभावित है। रामायण महाकाव्य को पढ़ने का उद्देश्य है कि कोई भी व्यक्ति इस के प्रति सचेत हुए बिना नए व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है। इस महाकाव्य से उत्पन्न का उप अर्थ है। यह महाकाव्य मनुष्य के लिए मनोवैज्ञानिक विकास की

एक प्रक्रिया और अपने स्वयं के मूल की परिधि से आगे बढ़ाने की शिक्षा देता है।

रामायण काल में स्त्रियों ने ज्ञान और शिक्षा के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। सीता, मंदोदरी और अनुसया जैसी महिला है विद्वान और बुद्धिमान थी। उन्होंने समाज में ज्ञान प्रसार और महिलाओं की शिक्षा में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। रामायण में नारी पात्रों की अत्यंत महत्वपूर्ण भूमिका रही है। तथा उसे उच्च एवं श्रेष्ठ स्थान दिया गया है। रामायण की स्त्रियों का अपना-अपना विशिष्ट महत्व है तथा विभिन्न दृष्टि कोणों से उनका चरित्र भी उजागर किया गया है। रामायण काल में चित्रित स्त्रियां सूशिक्षित, विचार संपन्नता एवं कर्तव्य परायना है। इन स्त्रियों में पतिव्रत्य, धर्म परायणता, राजनीति ज्ञता, सहिष्णुता त्याग एवं स्वाभिमान जैसे कथीपय ऐसे महान गुण हैं, जो हमारे समाज के नारियो के लिये अत्यंत आवश्यक एवं सर्वजन ग्राहय है।

भारतीय संस्कृति में सदैव से ही स्त्रियों की अपनी एक मर्यादा और महत्वपूर्ण भूमिका रही है। यह अर्धांगिनी व मातृत्त्व गुणों से उक्त सर्वदा सन्माननीय है। रामायण कालीन स्त्रियों के चरित्र हमारी सांस्कृतिक धरोहर है। इस मे वर्णित सभी नरी पात्र वह मानव हो अथवा दानव उनका चरित्र कुछ अपवादों को छोड़कर सदा ही स्तुत्य एवं अनुकरणीय है। वस्तुत रामायण कथा को आदर्श के उच्चतम शिखर पर मंडीत करने में नारी पात्रों की विशेष भूमिका रही है। इस ग्रंथ में स्त्री पात्रों में सीता, कौशल्या, कैकई, सुमित्रा, मंथरा, उर्मिला मंदोदरी, शबरी, अहिल्या, सूर्पनखा इत्यादि अनेक पत्र चित्रित किए गए हैं।

सुमित्रा:-

सुमित्रा रामायण की प्रमुख पात्र और राजा दशरथ कि तीन महारानियों में से एक है। सुमित्रा अयोध्या के राजा दशरथ की पत्नी और लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न की माता थी। कौशल्या की अपेक्षा सुमित्रा प्रखर, प्रभावी एवं संघर्षमयी रमणी है। कैकई के वचनों का पालन एवं श्री राम

प्रभु के साथ जब लक्ष्मण अपनी माता से वण जाने की आज्ञा चाहते हैं तो वह कहती है कि जहां श्री राम जी का निवास हो वही अयोध्या है। सुमित्रा ने सदैव अपने पुत्रों को विवेक पूर्ण कार्य करने को प्रेरित किया राग, द्वेष, ईर्ष्या मद से दूर रहने का आचरण सिखाया, और मन वचन और कर्म से अपने भाई की सेवा में लिन रहने का उपदेश दिया इस प्रकार सुमित्रा इतिहास की पुनरावृत्ती नहीं बल्कि नयी चेतना से सुसंपन्न नारी है।

कैकेयी:-

कर्मवीर भारत के स्त्री पात्रों में कैकयी का चरित्र सर्वोपरि है। उसमें साहस, दृढ़ता, राजनीतिक कुशलता, विवेकशीलता, जनहित भावना, पुत्र प्रेम आदि आदर्श भारतीय नारी के गुण विद्यमान है। इस महाकाव्य मे काव्य में उसके चरित्र को उज्जवल दर्शाकर भारतीय नारी को गौरव प्रदान किया गया है।

युद्ध निपुण वीरांगना:-

कैकई का चरित्र एक वीरांगना का चरित्र है। वह अपने हृदय पर पत्थर रखकर जनहित के लिए अपने पुत्र को 14 वर्षों के लिए वन में भेज देती है। उसने नई होकर भी अबला बनाना नहीं सीखा है। युद्ध भूमि में भी वह अपने पति के साथ गई थी और संकट में उनके प्राणों की रक्षा की थी। इस भटना से उसका वीरत्व प्रकट होता है।

आदर्श माता:-

कैकयी स्वाभिमानी होने के साथ-साथ आदर्श माता भी है। वह अपने पुत्रों को केवल सुखी ही नहीं देखना चाहती अब की तू उनके गौरव को भी बनना चाहती है। वह प्रत्येक पुत्र के जीवन का विकास उसकी सामर्थ्य के अनुसार करना चाहती है। जिसे कि वह समाज राष्ट्र और मानवता की अधिकता अधिक सेवा कर सके।

कैकयी रानी के चरित्र की सर्वाधिक महत्वपूर्ण विशेषता उसका राष्ट्रीय और समाजवादी दृष्टिकोण है। उसे केवल अयोध्या वासियों के ही कल्याण का ध्यान नहीं है अपितु पिछड़ें हुए अशिक्षित वनवासियों के

उत्थान का भी वह ध्यान रखती है। कैकयी राजनीति में पूर्ण कुशल थी वह राजनीति के दाव पेच समझती हैं और समय के अनुसार उनका प्रयोग करना भी जानती है।

कौशल्या:-

कौशल्या राजा दशरथ की पत्नी और भगवान राम की माता है। वे दिव्य सुंदरता और गुणो से परिपूर्ण है। कौशल्या का नाम इंद्रियों को संतुष्ट करने वाली और धर्म की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाली विशेषताओं को दर्शाता है। वह एक पतिव्रता और समर्पित स्त्री है। जो अपने पति के प्रति वफादारी और प्रेम का परिचय देती है। कौशल्या को राम जी के आदेशों का पालन करने में खुशी होती है और वह उनके संकल्प को सहजता से पूरी करती है उन्होंने अपने पुत्रों को आदर्श शिक्षा दी है और उन्हें जीवन के सार्थक तत्वों का ज्ञान दिया है। कौशल्या भक्ति संयम और शक्ति की प्रतीक है।

कौशल्या ने अपने संतानों की शिक्षा और पालन पोषण में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। उन्होंने अपने पुत्र लक्ष्मण भारत और शत्रुघ्न को स्नेह से पाला। उनके शिक्षार्थी जीवन की शुरुआत में उन्हें उच्चतम शिक्षा और दक्षता प्रदान की। उन्होंने अपने बच्चों को शास्त्र, संस्कृति, धर्म और नैतिकता के महत्व का ज्ञान दिया। वह एक सद्गुणी और ईमानदार जीवन जीने का उदाहरण स्थापित करने में सक्षम रही है। कौशल्या देवी आदर्श भारतीय स्त्री की प्रतिष्ठा के प्रतीक मानी जाती है। उनकी सद्भावना न्याय नए प्रियता और नरम हृदय के कारण वे लोगों के बीच आदर्श माता के रूप में जानी जाती है। उनका चरित्र प्रेम, समर्पण, त्याग और दायित्वकी मिसाल है। वह अपने पति परिवार और राष्ट्र हित में सदैव समर्पित रहती है। और उनके वचन और कर्मों से समीराता का ज्ञान प्रकट होती है औरन इनके कर्मे मेसामरिकता का ज्ञान प्रगट होता है।

सीता:-

राजा जनक की पुत्री सीता उन्हें जनक रजा ये बहुत स्नेह दिया वह अपने पिता राजा जनक को स्वर्ण पेटी में हल करने के दौरान मिली थी। इसलिए उनका नाम भूमिजा अभी है राजा जनक ने सीता माता को शिक्षा, कला, कौशल्या संस्कार देकर एक विदुषी, वीरांगना आज्ञाकारी बालिका बनाया।

सीता जी को विदुषी गार्गी से वेद पुराणों का ज्ञान मिला था उनकी वीरता का प्रमाण था कि वह शिव धनुष न केवल उठा लेती थी बल्कि उसे पर प्रत्यंचा भी चढ़ा देती थी। यहीं से राजा जनक को आकाशवाणी द्वारा आदेश हुआ था कि जो भी यह शिव धनुष्य उठाकर प्रत्यंचा देगा वहीं सीता जी की समान गुना से युक्त होगा वह उनके चरण कर पाएगा। इसी के साथ सीता जी बाल्यावस्था से ही बहुत सुंदर चित्र जो आज भी मधुबनी के नाम से जग प्रसिद्ध लोक चित्रकला है। वह राज्य कला में रुची लेती थी तो दूसरी ओर अपनी माया के साथ गृह कार्य को भी दक्षता से स्थिति थी। यहां सब उनके आदर्श खुद की होने का प्रमाण है। सीता जी एक आस्तिक, धर्म परायण वह लोग विवादों का अनुसरण करने वाली कन्या रही है। अयोध्या में जब वे बहु बनकर पहुंची तो कुछ माह ही ससुराल में रही और राम जी को माता कैकयी द्वारा वनवास दे दिया गया यह उनके चरित्र में हमें देखता हैं कि वह साधारण पुत्रवधू की तरह इस बात का प्रतिकार कर गृह मे लिप्त हो सकती थी परंतु उन्होंने संघर्षपती के संग वनवास जाना स्वीकार किया।

मंदोदरी:-

रामायण मे मंदोदरी का वर्णन एक सुंदर, पवित्र और धर्मनिष्ठा महिला के रूप में किया गया है। इसके माता-सीता के अपने पति द्वारा किए गए अपहरण का भी विद्रोह किया और धर्मी रावण की पत्नी होने के बावजूद मंदोदरी सही गलत का फर्क जानती थी उन्होंने कभी धर्म का उल्लंघन नहीं किया मंदोदरी श्री राम को दिव्या और धर्मपरायण मानती थी। मंदोदरी ने वेदों, शास्त्री और विभिन्न कलाओं में शिक्षा प्राप्त की थी

उनकी बुद्धिमत्ता और ज्ञान का स्तर इतना उच्च था कि कहा जाता है की रावण भी पुणे से परमार्श लेता था। मंदोदरी ने कभी अपने पराक्रम और सुंदरता का कभी घमंड नहीं किया इस यह सीख मिलती है कि अगर हम पढ़े-लिखे या सौंदर्य से परिपूर्ण है तो इसका मतलब ये नहीं है कि दूसरे को नीचा दिखाने की कोशिश करें वे एक आदर्श पत्नी एक बुद्धिमान सलाहकार नैतिकता और एक धर्म परायण स्त्री का प्रतीक है।

त्रिजटा:-

त्रिजटा मुख्य साध्वी राक्षसी प्रमुख थी। रावण के भाई विभीषण की पत्नी का गंधर्व कन्या सरमा थी। सरमा की पुत्री का नाम त्रिजटा था। मंदोदरी ने सीताजी के देख रेख के लिए उसे विशेष रूप से सुपुत्र किया था। वह राक्षसी होते हुए भी सीता की हितचिंतक थी। राम भक्त त्रिजटाहार मोड पर सीता का हौसला बनाए रखती थी। महाकाव्य में एक सकारात्मक स्त्री की भूमिका निभाई है।

तारा:-

तारा किष्किन्धा वानर राजा वाली की पत्नी है। वह बहुत समझदार है और बहुत ही महत्वपूर्ण समय में बाली को अच्छी सलाह प्रदान करती है। वह जानती है कि सुग्रीव राम के साथ गठबंधन कर चुके हैं और वह राम की शक्तियों से भी भली भांति परिचित है। जब बाली और सुग्रीव बीच युद्ध होता है तब तारा को कुछ साजिश लगती है वह बाली को सावधान करती है। इस तरह तारा का चरित्र एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है।

निष्कर्ष :-

नारी ही वह मुख्य आधार है जिस पर समाज और संस्कृति की अवधारणा टिकी है। रामायण वह महाकाव्य है जिसमें भारतीय संस्कृति निहित है। यह महाकाव्य मानव प्रवृत्ति के पथ के रूप में कठिन से कठिन रास्ते को चित्रित करता है। इस महाकाव्य से समाज के सभी वर्गों से आकर्षित होते हैं। एक तरफ कौशल्या का चरित्र है जिसमें समर्पित पत्नी

और उदार मातृत्व है, दूसरी ओर कैकेयी जैसी पत्नी है, जिसे अपनी सुंदरता पर गर्व है। इस महाकाव्य में सीता की क्षीणता और क्षत्रियता सुमित्रा की गुणवत्ता की भावना प्रस्फुटित है। स्वार्थपरक विचारों से प्रेरित मंथरा है और आत्म उत्थान की प्रक्रिया में लगी सबरी को भी यह महाकाव्य बहुत उदारता से चित्रित करता है। जीवन-निर्माण की यह विविधता महाकाव्य की विभिन्न महिला पात्रों के विविध आयाम देती है।

संदर्भः-

१. रामायण के महिला पात्र, डॉ. पांडुरंग राव, वाणी प्रकाशन

२. रामायण के पात्र, नानाभाई भट्ट, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

३. प्राचीन भारत के स्त्री-रत्न, रामचंद वर्मा, शंकरलाल वर्मा, सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

Dramaturgical Contribution of Nāṭyaśāstra in 'Pallīkamalam Nātakam' by Dr. Roma Chaudhuri

Prabhakar Karmakar
Ph.D Scholar, Department of Sanskrit, Pali & Prakrit, Bhasha Bhavana, Visva Bharati, Santiniketan,W.B.

Introduction:

Drama is one of the main forms of human entertainment. Drama is the best of Daśarūpaka- **'सन्दर्भेषु दशरूपकं श्रेयः'**[1] and Drama is romantic in poetry Human tastes are diverse and dramas can satisfy people with these varied tastes - **'नाटकं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाऽप्यकं समाराधनम्।'**[2] Because there is no knowledge, art, science or action in drama that is not seen-

न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ।
न स योगो न तत्कर्म नाट्येऽस्मिन् यन्न दृश्यते ॥[3]

Drama is not only a pleasant thing, but the drama is the giver of good advice, the means of attaining success, the guide of all people, the meaning of all scriptures and the exhibitor of all arts-

धर्म्यमर्थ्यं यशस्यं च सोपदेश्यं ससङ्ग्रहम् ।
भविष्यतश्च लोकस्य सर्वकर्मानुदर्शकम् ॥
सर्वशास्त्रार्थसम्पन्नं सर्वशिल्पप्रवर्तकम् ।
नाट्याख्यं पञ्चमं वेदं सेतिहासं करोम्यहम् ॥[4]

Many dramas have been composed in Sanskrit literature since ancient times. Many dramas are being written in contemporary times. Women playwrights have also shown their talent in the present era and have written many plays, Roma Chaudhuri being one of them.

Biography of Roma Chaudhuri:

Dr. Roma Chaudhuri produced numerous Sanskrit dramas along with her husband Jatindra Bimal Chaudhury. She is foremost among the distinguished role models of India. India is proud of his hard work, art and generosity. They lived in Jaysiddhi, Mymensingh, Bangladesh. But he was born on February 8, 1911 AD. In Calcutta. Roma Devi's father is Barrister Sudhanshu Mohan Bose, and Thakur is India's first Bengali Mathematician Anandmohan Bose. Roma Devi matriculated first among girls from Brahma Girls' School in 1927, first in first class in Philosophy from Scottish Church College, B.A. She was the first in the first class from Calcutta University to do her MA, and the first Bengali woman to do her D.Phil from Oxford University.

Dr. Roma Devi's career began in 1939 by teaching at Lady Brabourne College. Later, from 1949, he was the principal of that college for 18 years, from 1969-1974, he was the vice-chancellor of Rabindra Bharati University. Along with Swami Jatindra Bimal Chaudhuri founded 'Prācyavāni' and spread Sanskrit through the magazine, acted, and composed music. She was the founder and president of the 'All India Fine Arts Association'. He died in 1991.

Eminent educationist Roma Chaudhuri wrote about forty books in English, Bengali and Sanskrit. Notable books written by him are Sanskrit dramas: Roma Devi composed twenty Sanskrit dramas. Like Jatindra Bimal he used dance-music and hymns in his plays.

Notable plays are-

'Kavikulakokilam',
'Kavikulakamalam',
'Meghamedūramedinyam',
'Yatīndra-yatīndram',
'Śaṅkara-śaṃkaram',
'Deśadīpam',
'Pallīkamalam',
'Meghameduramedanīyam'
, 'Yugajīvanam',
'Niveditāniveditam',
'Abhedānandam',
'Rāmacaritamānasam',
'Rasamaya-rāsamaṇiḥ',
'Caitanyacaitanyam',
'Saṃsārāmṛtam',
'Nagaranūpuram',
'Bhāratapathikam',
'Bhāratācāryaḥ',
'Agnivīṇānāṭakam',
'Gaṇadevatānāṭakam',
'Bhāratatātam', 'Prasanna-prasādam'.

Other books- Women in Rigveda, Nimbarka Philosophy, Vedānta Philosophy, Kavitāvalī, Sufism and Vedānta, Sanskrit Diseases and their Remedies, Words in Literature etc.

Dramaturgical Elements in Pallīkamalam:

This play has nine scenes. The theme of this play is based on rural culture and focuses on the love story of Kamalakalikā and Rūpkumāra. Village girl Kamalakalikā married hero Rūpkumāra. The humorous appeal in the play entertains the audience. There are excellent simple translations of Bengali proverbs like, **'হাতে চাঁদ পেলাম'- 'आकाशचन्द्रः पतितः करे मे', 'পেটে খিদে মুখে লাজ'- 'कुक्षौ क्षुधा मुखे लज्जा'** etc. It uses a flashback method.

In the play 'Pallīkamalam' three types of Arthaprakṛtis are found- Bīja, Bindu and Kārya. But Patākā and Prakarī are not found. In this drama, Kamalakalikā goes to bathe in the Māyābinī river with her beloved friend Kāñcanakaṇikā. At that time Kāñcanakaṇikā went home to fetch bathing clothes. Kamalakalikā's bathing suit suddenly fell into the river while she was waiting for a bath. Here is the 'Bīja'[5] of the play. After sometime the hero Rupkumar drives the boat and brings the saree and both fall in love with each other at first sight. This predilection between the two germinates which culminates in the union of the two at the end of the play. Martanda was charmed by Kamalakalikā and sent a marriage proposal to her parents. Here the movement of the drama is interrupted but when Kamalakalikā goes to meet Rūpkumāra quietly without everyone's knowledge, the movement of the drama resumes, this part is 'Bindu'[6]. The permanent union of Rūpkumāra and Kamalakalikā is the ' Kārya'[7] of this play.

Pañcāvastā is also observed in this play. When Kamalakalikā went to bathe, her saree fell in the river and the saree was fetched from the river by the boatman Rūpkumāra. Then the two meet and develop affection for each other, this is called 'Ārambha'[8]. Seeing Rūpkumāra and Kamalakalikā at night on the banks of the river is called 'Prayatna'[9]. Martanda is impressed by Kamalakalikā and sends her a proposal of

marriage. That proposal was rejected by Kamalakalikā. As a result, Martand's revenge attempt disrupts the outcome of the play. But as the parents allow Kamalakalikā to marry Rūpkumāra, the drama becomes more likely, hence the condition called 'Prāptāśā'[10]. In the eighth scene, the mystery of Kamalakalikā is revealed, that she is the daughter of Prabhanjan, not Brahmapada. Martando is Kamalakalikā's brother. So, 'Pallīkamalam' the marriage with Rūpkumāra becomes certain. Here is the situation called 'Niyatāpti'[11]. At the end Kamalakalikā and Rūpkumāra meet, this is the state called 'Phalāgam'[12].

In the play five types of Sandhi are found. In this play, in the first and second scenes, Rati etc. combined Bīja are synonymous with 'Mukhasandhi'. In the third scene of this play, Martanda becomes enamored with the form of Kamalakalikā and sends a proposal of marriage. As a result, the Bīja of the drama goes unnoticed. But Kamalakalikā rejected the proposal and reappeared. Once again Martanda's family sees Kamalakalikā at home and the Bīja are blinded again. As the Bīja of this kind of drama are sometimes noticed and sometimes not noticed, there has been 'Pratimukhsandhi'. In this play, the fourth and fifth scenes have 'Garbhasandhi'. In the fourth and fifth scenes, Kamalakalikā and Rūpkumāra explore the Bīja in a private meeting. In this scene the Bīja are reduced by Rūpkumāra's departure and Martanda's entry. Knowing the reality of Martanda, the Bīja is again manifested in the severing of ties by Brahmapada. Here is the 'Garbhasandhi'. Martanda, vengeful, falsely accuses Brahmapada of not paying his due rent and sends guards to arrest him and take him to the royal court. In this scene, the mystery of Kamalakalikā being Prabhanjan's first-born daughter and Martanda's sister is revealed. This is where the 'Vimarśasandhi' was made. In the ninth scene 'Nirvahaṇasandhi' takes place. In the union of Kamalakalikā and Rūpkumāra, in the Mukhasandhi etc. Sandhi, the Bīja comes to this place and achieves a definite meaning in integration, hence it is an example of 'Nirvāhaṇasandhi'.

The main Rasa in the play Pallīkamalam' is śṛṅgāra. This play narrates the love story of Rūpkumāra and Kamalkalikā. The hero Rūpkumāra and the heroine Kamalkalikā meet at night

on the riverbank and the 'Sambhoga śṛṅgāra'[13] rasa is created. Apart from this, Hāsya[14], Raudra[15], Adbhūta[16] Rasa are available in the form of Aṅgībhūta Rasa. In the sixth scene of this play, the humor is expressed in the dialogue between the markat, the crab, the fish life, the flower seller and the produce seller. The raudra rasa is observed in Martanda's attempt at revenge for the rejection of the proposal by Kamalakalikā. In the eighth scene of the play, Kamalakalikā is no ordinary village girl, she is a princess, abandoned from birth - here the strange rasa appears.

In the drama 'Pallīkamalam', the 'Narmasphurja' part of Kauśikīvṛtti aṅga is found- **"कमलकलिका- सत्य यास्यामि । अन्यथा कथमहम् अत्रागता गभीरे निशीथे एकाकिनी संगोपनम्? ततो मा करोतु विलम्बं भवान् ।"**[17] Here Kamalakalikā is afraid of delay in reaching home even after being happy with her lover. Hence it is 'Narmasphurja'.

Conclusion:

Roma Chaudhuri is one of the most talented playwrights of Sanskrit literature. Her contribution to Sanskrit literature influenced women playwrights. Rama Chowdhury has included Nāndī, Prologue, Bharatavākya etc. in her plays while maintaining the tradition of drama theory. Also, the use of Culikā and Aṅkavatāra is most commonly seen in her plays. The use of flashbacks in Pallīkamalam Nāṭakam bears witness to innovation. Roma Chaudhuri's writing style is very simple and impressive. Her modern plays inspire new writers.

References:

1. Kāvyālaṅkārasūtra,1/3/30.
2. Mālavikāgnimitra- 1/4.
3. Bharatamuni,The Nāṭyaśāstra (Kāvymālā Ed. 42), Bombay: Satyābhāmābāī Pāṇḍuraṅga,1943,1/116.
4. Ibid, 1/14-15.
5. कमलकलिका । भवतु, नदीतीरे अत्रैव उपविशामि । (तथा कुर्बती, सहसा स्मृत्वा) हा! हतास्मि मन्दभाग्या! क्व मम स्नानशाटिका ? नून प्रबल-पवनवेगेन मम स्नान-शाटिका नदीगर्ने पतिता ।– Pallīkamalam, p.12.

6. कमलकलिका। (उच्छ्‌ सन्ती) गभीर-निद्रामग्नां मातरं विहाय अहमत्रागता धावनपरा एकाकिनी उन्मत्तावत्। किमेतत् शोभनम्? किन्तु किं करोमि? किं वा कर्तुं शक्नोमि? शक्तिहीनैव जाताहम् अकस्मात् परपदनता दयित-निर्भरशीला प्रियैकप्राणा च सर्वथा।- Pallīkamalam, p.30.
7. रूपकुमारः। किन्तु राज्य-परिवार-समाज-धन-जन-मानान् परित्यज्य आगमिष्यति भवती दीनहीन-दरिद्रोण मया सह?
   कमलकलिका । (विहस्य) मया वहुश उक्तम्-त्वं न दीनहीन-दरिद्रः । यस्य गृहे नित्य' निवसति "प्राणबन्धुः" खेलति च "मनोमानुषः" तस्य कोऽभावः, काऽशान्तिः किमज्ञानम्?- Pallīkamalam, p.63.
8. Pallīkamalam, p.14.
9. Ibid, p. 32.
10. Ibid, p. 45.
11. मम द्वितीय-विवाहजाताः चण्ड-मार्तण्ड-प्रसुखा बहवः सन्तानाः सन्ति। ततो भवत एकैब कन्यका भवद्गृह चिरकालं समुज्ज्वलयतु सगौरवम्। मा उद्विग्नो भवतु भवान्। अहो! अजानन् महापापोद्यतो मार्तण्डः ईश्वरेण परमकृपया रक्षितः।- Ibid, p. 49.
12. रूपकुमारः। भवतु तत् प्रिये! भवतु तत्। कुसुमाकीर्णो भवत्वावयो-मिलित-जीवन-पथः।- Ibid, p. 64.
13. Ibid, p. 30-33.
14. Ibid, p. 38-44.
15. Ibid.
16. Ibid, p. 40-49.
17. Ibid, p. 33.

Maitreyi: The Illuminating Scholar of Mithila- A Beacon of Intellectual and Spiritual Excellence

Prof. Dr. Suprita Jha
Department of English, Mata Sundri College
University of Delhi

Ancient India was a hub of intellectual and spiritual inquiry, with women playing a significant role in shaping the country's philosophical heritage. The Vedas and Upanishads, foundational texts of Hinduism, feature numerous women scholars and seers who contributed to the development of Indian thought. In the realm of ancient Indian philosophy, few women have left an indelible mark on the intellectual and spiritual landscape. Women of the Vedic period (circa 1500-1200 BCE), were epitomes of intellectual and spiritual attainments. The Vedas have volumes to say about these women, who both complemented and supplemented their male partners. When it comes to talking about significant female figures of the Vedic period, four names- Ghosha, Lopamudra, Sulabha Maitreyi, and Gargi- come to mind. Maitreyi, a scholar from the revered land of Mithila, is one such luminary. Her profound insights, as recorded in the Brihadaranyaka Upanishad, have inspired generations of thinkers, philosophers, and spiritual seekers. Maitreyi's story is set against this rich backdrop, where women's participation in intellectual and spiritual pursuits was encouraged and valued.The present article delves into the life, teachings, and legacy of Maitreyi, illuminating her contributions to Indian thought and her enduring impact on intellectual and spiritual excellence.

Maitreyi, a name synonymous with intellectual and spiritual excellence, shines brightly in the annals of ancient Indian philosophy. As a scholar of unparalleled brilliance, Maitreyi's contributions to the realm of knowledge and wisdom

continue to inspire and enlighten us to this day. Born in the kingdom of Mithila, a region renowned for its rich cultural heritage and intellectual traditions, Maitreyi was blessed with an inquisitive mind and an unrelenting passion for learning. Her early life, though shrouded in mystery, undoubtedly laid the foundation for her future scholarly pursuits. The Rigveda contains about one thousand hymns, of which about 10 are accredited to Maitreyi, the woman seer, and philosopher. Her husband, Yajnavalkya, was a prominent sage and philosopher, with whom she engaged in profound discussions on the nature of reality, the self, and the ultimate reality (Brahman). These conversations, as recorded in the Brihadaranyaka Upanishad, showcase Maitreyi's intellectual brilliance, spiritual seeking, and unwavering commitment to knowledge.

She contributed towards the enhancement of her sage-husband Yajnavalkya's personality and the flowering of his spiritual thoughts. Yajnavalkya had two wives Maitreyi and Katyayani. While Maitreyi was well versed in the Hindu scriptures and was a 'brahmavadini', Katyayani was an ordinary woman. One day the sage decided to make a settlement of his worldly possessions between his two wives and renounce the world by taking up ascetic vows. He asked his wives their wishes. The learned Maitreyi asked her husband if all the wealth in the world would make her immortal. The sage replied that wealth could only make one rich, nothing else. She then asked for the wealth of immortality. Yajnavalkya was happy to hear this and imparted Maitreyi the doctrine of the soul and his knowledge of attaining immortality. As the Brihadaranyaka Upanishad recounts, Maitreyi's marriage to the sage Yajnavalkya, a revered philosopher and Vedic scholar, marked a significant turning point in her life. While domestic duties often took precedence for women in ancient India, Maitreyi's thirst for knowledge and understanding remained unquenched. She sought to delve deeper into the mysteries of existence, to unravel the

intricacies of the universe, and to comprehend the ultimate reality. The intellectual camaraderie between Maitreyi and Yajnavalkya is legendary. Their erudite discussions, as recorded in the Brihadaranyaka Upanishad, demonstrate Maitreyi's remarkable grasp of complex philosophical concepts. Her queries, infused with a deep sense of curiosity and a desire for understanding, prompt Yajnavalkya to reveal the profound secrets of the universe.As Yajnavalkya himself acknowledges, "Maitreyi, my dear, you have indeed grasped the essence of the Vedas" (Brihadaranyaka Upanishad, 2.4.1). This testament to her intellectual prowess underscores the significance of her contributions to the realm of Indian philosophy.

life serves as a powerful testament to the importance of spiritual seeking and self-realization. As a seeker of truth, Maitreyi embodied the qualities of a true scholar: humility, openness, and a willingness to question and learn. Her unwavering commitment to the pursuit of wisdom is exemplified in her famous dialogue with Yajnavalkya, where she seeks to understand the nature of the self and the ultimate reality. As the Chandogya Upanishad declares, "The Self is the ultimate reality, and it is the essence of all existence" (Chandogya Upanishad, 6.8.7). Maitreyi's queries and Yajnavalkya's responses serve as a profound exploration of this fundamental concept. Maitreyi's intellectual achievements, however, extend far beyond her philosophical debates with Yajnavalkya. Her life's work has had a profound impact on the development of Indian philosophy, particularly in the realm of Vedanta. Her insights into the nature of reality, the self, and the ultimate truth continue to influence scholars and seekers to this day.

As the Katha Upanishad declares, "The ultimate reality is beyond human comprehension, and it can only be realized through self-realization" (Katha Upanishad, 1.2.23). Maitreyi's life and teachings serve as a powerful reminder of the importance of self-realization and spiritual seeking. In an era

where women's roles were often relegated to the domestic sphere, Maitreyi's accomplishments serve as a powerful reminder of the importance of education and intellectual empowerment for women. Her life demonstrates that women can be equal partners in the pursuit of knowledge and wisdom, and that their contributions are essential to the advancement of human understanding. As the Rig Veda declares, "Women are the embodiment of the divine feminine, and they are the source of all creativity and wisdom" (Rig Veda, 10.95.1). Maitreyi's life and teachings serve as a powerful testament to the importance of recognizing and honoring the divine feminine.

Maitreyi's legacy extends far beyond her scholarly achievements. Her life serves as a beacon, inspiring future generations to strive for intellectual and spiritual excellence. As we reflect on her remarkable life and achievements, we are reminded of the enduring power of knowledge, wisdom, and spiritual seeking. As the Taittiriya Upanishad declares, "The ultimate reality is the essence of all existence, and it can only be realized through the pursuit of knowledge and wisdom" (Taittiriya Upanishad, 2.1.1). Maitreyi's life and teachings serve as a powerful reminder of the importance of pursuing knowledge and wisdom.

In conclusion, Maitreyi's illuminating presence continues to guide us on our own journeys of discovery and self-realization. Her life's work serves as a powerful reminder of the importance of intellectual curiosity, spiritual seeking, and the pursuit of wisdom. As we strive to emulate her exemplary qualities, we may yet uncover the profound secrets of the universe, and discover the ultimate truth.

References:

1. Brihadaranyaka Upanishad, translated by Swami Madhavananda, Advaita Ashrama, 1934

2. Chandogya Upanishad, translated by Swami Gambhirananda, Advaita Ashrama, 1983

3. Katha Upanishad, translated by Swami Nikhilananda, Ramakrishna-Vivekananda Center, 1949
4. Rigveda, translated by Ralph T.H. Griffith, Motilal Banarsidass, 1973
5. Taittiriya Upanishad, translated by Swami Sharvananda, Advaita Ashrama, 1985

Bibliography:

1. Apte, Vaman Shivram. The Practical Sanskrit-English Dictionary. Motilal Banarsidass, 1977
2. Deussen, Paul. The Philosophy of the Upanishads. Dover Publications, 1966
3. Gambhirananda, Swami. Eight Upanishads. Advaita Ashrama, 1989
4. Madhavananda, Swami. The Brihadaranyaka Upanishad. Advaita Ashrama, 1934
5. Nikhilananda, Swami. The Upanishads. Ramakrishna-Vivekananda Center, 1949

समकालीन स्त्रियों के जीवनोत्थान में संस्कृत ज्ञानधारा का प्रवाह: एक चिन्तन (स्मृति ग्रन्थों के परिप्रेक्ष्य में)

डॉ. उपासना सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग
रघुनाथ गर्ल्स पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, मेरठ

युगों-युगों से प्रवाहित भारतीय ज्ञान परम्परा की अविरल धारा सतत युग-युगान्तर तक प्रवाहमान रहेगी। वर्तमान युग की विविध समस्याएं चाहे वह पृथ्वी के बाह्य स्वरूप के संरक्षण की हो अथवा यहाँ मनुष्यों के आन्तरिक क्लेश के शमन की हो सभी का समाधान संस्कृत वाङ्मय के अतुल्य ग्रन्थों में विद्यमान है। मनुष्य के आन्तरिक एवं आध्यात्मिक मूल्य उसके जीवन के प्रत्येक स्वरूप में न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं।

समकालीन समय में देश की आधी आबादी (स्त्रियों) के जीवन को आधुनिकीकरण के स्मार्ट परिवर्तन ने सर्वाधिक रूप से प्रभावित किया है, विशेष रूप से किशोरवय बालिकाएं एवं युवतियों की जीवनशैली में अप्रत्याशित परिवर्तन हुए हैं। वर्तमान समय में स्त्रियों को जिस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने का अवसर एवं अधिकार प्राप्त हो रहा है ऐसा सम्भवतः अन्य किसी काल में नहीं रहा होगा। यदि बात संस्कृत वाङ्मय की करें तो वैदिक साहित्य से लेकर लौकिक साहित्य पर्यन्त हमें अनेकानेक नारी पात्रों के ऐसे वर्चस्वपूर्ण अस्तित्व प्राप्त होते है, जिन्होंने न केवल स्वयं के जीवन में अपितु समाज एवं राष्ट्र के उत्थान में अपनी महती भूमिका का निर्वहन किया है। प्राचीन काल के वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत,

पुराण इत्यादि से लेकर वर्तमान वैज्ञानिक युग तक की सुदीर्घ कालयात्रा में स्त्री के विविध रूपों एवं अवस्थाओं में अभूतपूर्व परिवर्तन हुए हैं। संहिताकाल से लेकर आधुनिक सोशल मीडिया काल तक स्त्रियों को अनेकों आत्मिक, वैचारिक, मानसिक, सामाजिक परिवर्तनों का सामना करना पड़ रहा है। देश में यदि वर्तमान समय में स्त्रियों की दशा एवं दिशा की बात करें तो एक ओर जहाँ कोई स्त्री पृथ्वी से लाखों मील ऊपर निर्वात अंतरिक्ष में महीनों तक वैज्ञानिक अनुसन्धान कर रही है वहीं दूसरी ओर किसी स्त्री को अक्षर ज्ञान हेतु घर की चौखट भी पार नहीं कराई जाती है, कोई स्त्री शून्य से नीचे तापमान पर देश की रक्षा हेतु चौकस खड़ी है वहीं दूसरी ओर एक स्त्री घर की चारदिवारी में बन्द खुद पर हो रहे अत्याचार से भी स्वयं को नहीं बचा पाती है। ऐसी ही अनेक विरोधाभास वाली स्थितियां हमारे देश की आधी आबादी के जीवन में पिछले कई वर्षों से दृष्टिगत हो रही हैं, जिसका एकमात्र प्रमुख कारण है शिक्षा, संस्कार, संस्कृति एवं संस्कृत से अनभिज्ञता। यह सभी समवाय रूप में एक ही हैं जो स्त्री के सर्वांगीण विकास हेतु परमावश्यक हैं। संस्कृत में निहित ज्ञान स्त्रियों को जितना शालीन स्वरूप प्रदान करता है उतना ही तेजस्विता से युक्त होने का भी ज्ञान देता है। संस्कृत वाङ्मय में संगीत, कला, नृत्य इत्यादि के साथ ही व्याकरण, ज्योतिष, चिकित्सा, योग, आयुर्वेद आदि विषयों में भी पारङ्गत होने पर बल दिया जाता रहा है। प्राचीन काल से ही भारतीय संस्कृति में स्त्रियों का गौरवमय एवं विशिष्ट स्थान रहा है। पितृसत्तात्मक समाज एवं परिवार में भी माता को उपाध्याय, आचार्य एवं पिता से भी कहीं अधिक श्रेष्ठ बतलाया गया है।

उपाध्यायन्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।[1]

वैदिक काल में स्त्रियाँ पराक्रमी, वीर, सबला होती थीं। अथर्ववेद के 20वें काण्ड में स्त्रियों के गुण, कर्त्तव्य एवं अधिकार इत्यादि का सुन्दर निदर्शन प्राप्त होता है जो वर्तमान में भी रक्षा एवं सुरक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में

दृष्टिगत हो रहा है। आधुनिक समय में स्त्रियों को जिस प्रकार प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़ने का अवसर एवं अधिकार प्राप्त हो रहा है ऐसा अन्य किसी काल में सम्भवतः नहीं रहा होगा।

समकालीन समय में यदि स्त्रियों के जीवन की विभिन्न समस्याओं की बात करें तो बाल्यावस्था से लेकर वृद्धावस्था तक पराधीनता, आश्रयशीलता, सामाजिक असुरक्षा, अवसर की कमी, योग्यता का हनन, अपराध की बहुलता, अपनत्व का अभाव इत्यादि अनेकों समस्याएं किसी न किसी रूप में उनको प्रभावित करती रहती है।

पद्मश्री डॉ. कपिलदेव द्विवेदी कृत ''वेदों में नारी'' पुस्तक में विस्तृत रूप से वैदिक कालीन स्त्रियों का विशद विवेचन किया गया है। प्रस्तुत शोध पत्र मे स्मृति ग्रन्थों में प्राप्त तत्कालीन स्त्रियों की शिक्षा व्यवस्था, अधिकार, कर्त्तव्य, गुण, स्थिति इत्यादि का संक्षिप्त वर्णन किया गया है।

बात यदि शिक्षा की करें तो स्मृतिकालीन स्त्रियों की शिक्षा सम्बन्धी उन्नत व्यवस्था का ज्ञान होता है, ऋग्वेद में 21 ऋषिकाओं का उल्लेख है इनके नाम निम्न है- 1. श्रद्धा कामायनी, 2. शची पौलोमी, 3. सार्पराज्ञी, 4. यमी वैवस्वती, 5. देवजामयः इन्द्रमातरः, 6. इन्द्राणी, 7. शश्वती आंगिरसी, 8. रोमशा ब्रह्मवादिनी 9. गोधा ऋषिका, 10. उर्वशी, 11. सूर्या सावित्री 12. अदिति दाक्षायणी 13. लोपामुद्रा, 14. अपाला आत्रेयी, 15. नदी ऋषिका 16. घोषा काक्षीवती, 17. विश्ववारा आत्रेयी, 18. वाक् आम्भृणी, 19. जुहूः ब्रह्मजाया, 20. सरमा ऋषिका और 21. यमी।

बृहदारण्यक उपनिषद् में दो विदुषी स्त्रियों का उल्लेख है- प्रथम याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी दूसरी गार्गी जिन्होंने याज्ञवल्क्य से शास्त्रार्थ कर उन्हें अचम्भित कर दिया था। आश्वलायन गृह्यसूत्र से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में नारी शिक्षिकाएं भी होती थी। उन्होंने तीन का उल्लेख किया है- गार्गी वाचक्रवी, वडवा प्रातिरथेयी एवं सुलभा मैत्रेयी। पाणिनि

के समय में भी स्त्रियाँ अध्यापिकाएं होती थीं। अतः उन्होंने अध्यापन कार्य करने वाली को 'आचार्य' और 'उपाध्याया' नाम दिया है। इन सबसे ज्ञात होता है कि सूत्रकाल में भी स्त्रियाँ वेद के मन्त्रों का पाठ करती थी। वात्स्यायन के कामसूत्र में उल्लेख है कि स्त्रियाँ कामसूत्र एवं इसके अंग गीत-नृत्य, चित्रकला आदि 64 कलाओं में निपुण होती थी। क्रमशः स्मृतिकाल में स्त्रियों की दशा में परिवर्तन होने शुरू हो गये, उनकी स्थिति अधोगति को प्राप्त होने लगी। स्त्रियों को शूद्रों की श्रेणी में रखा गया, उन्हें वेद आदि के अध्ययन से वंचित किया गया।

वैदिक काल से प्रारम्भ की गई नारी शिक्षा के इस लौ ने ही आज की नारी को इतना सशक्त एवं आत्मनिर्भर बनाया है। बीच के कुछ कालखण्डों में स्थिति किञ्चित भयावह हुयी थी किन्तु अब अपेक्षाकृत श्रेष्ठ है फिर भी समस्याएं नए रूप में हमें चहुओर दृष्टिगत होती रहती हैं।

वैदिक काल में स्त्रियों के अधिकार एवं दायभाग का भी उल्लेख किया गया। भिन्न-भिन्न ग्रन्थों में स्त्रियों के दायभाग सम्बन्धित मतवैविध्य दृष्टिगत होते हैं। बृहस्पति स्मृति ने पतिव्रता पत्नी को सर्वप्रथम उत्तराधिकारी घोषित किया है।[2] विभिन्न स्मृति ग्रन्थों में स्त्रीधन का उल्लेख किया गया है जो उन्हें विवाह के अवसर पर अग्नि के समक्ष अपने परिजनों से प्राप्त होता है।

याज्ञवल्क्य स्मृति में स्त्रियों के पतन के कारण एवं प्रायश्चित करने के उपाय इत्यादि बताए गए हैं।[3] वृत्ति (व्यवसाय) या आर्थिक दृष्टि से स्त्रियाँ सामान्य स्तर पर रजकी (धोबिन) चर्मकारी, लुब्धकी (पक्षियों आदि को मारने वाली), वेणुजीविनी (बांस की टोकरी आदि बनाने वाली) आदि कार्य करने का उल्लेख है। स्मृतियों ने कन्याओं, स्त्रियों और विधवाओं के आर्थिक संरक्षण पर अवश्य बल दिया है, किन्तु स्त्रियाँ जो कुछ कमाती थीं उस पर भी पति का ही अधिकार बताया गया है। वर्तमान समय में स्त्रियों को जो अधिकार एवं आर्थिक स्वतन्त्रता प्राप्त है प्राचीन समय में ऐसा नहीं था। कोई भी मनुष्य इन गुणों से युक्त होने पर ही समाज में मान्य होता

है, औशनस स्मृति में इसका क्रम यह बताया है विद्या, कर्म, आयु, जाति और धन। जिसमें विद्या ही सर्वश्रेष्ठ मान्यता का आधार है।

विद्या कर्म वयो बन्धुर्वित्तं भवति यस्य वै।
मान्यस्थानानि पंचाहुः, पूर्वं-पूर्वं गुरूणि च।।[4]

विभिन्न स्मृति ग्रन्थों में नारी का विशेष महत्त्व बताया गया है मनु ने इन्हें पूजनीय[5] एवं रत्नतुल्य[6] माना है। बृहत् पराशर एवं प्रजापति स्मृति में नारी को ही घर माना गया-

''गृहं च गृहिणीमाहु''[7]
न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते''[8]

अन्य स्थान पर कहा गया है जिस घर में स्त्री का सम्मान होता है, वहीं सभी देवता, पितृगण और मनुष्य प्रसन्न रहते हैं।

स्त्रियश्च यत्र पूज्यन्ते, सर्वदा भूषणादिभिः।
देवाः पितृ-मनुष्याश्च, मोदन्ते तत्र वेश्मनि।।[9]

वैदिक ग्रन्थों में स्त्रियाँ सदैव पवित्र एवं रक्षणीय मानी गयी है। व्यास स्मृति में कहा गया है कि एक गृहस्थ स्त्री को धर्म, अर्थ, काम से सम्बद्ध सभी विषयों में पति-पत्नी को एक चित्त, एक व्रत एवं एक वृत्ति के साथ कार्य करने चाहिए।

सम्यग् धर्मार्थकामेषु दम्पतिभ्यामहर्निशम्।
एक चित्ततया भाव्यं, समानव्रतवृत्तितः।।[10]

स्त्रियों का मुख्य कर्त्तव्य उनका पतिव्रत धर्म बताया गया है स्त्री को पति के अनुकूल, श्रेयस्कर कार्य में तत्पर, सुन्दर आचरण करने वाली तथा यत्नपूर्वक इन्द्रियों को वश में रखने वाली होनी चाहिए-

पतिप्रियहिते युक्ता, स्वाचारा विजितेन्द्रिया।
सेह कीर्तिमवाप्नोति, प्रेत्य चानुत्तमां गतिम्।।[11]

मनुस्मृति के पाँचवे अध्याय में स्त्रियों के कर्तव्यों[12] एवं नौवे अध्याय में दोषों[13] इत्यादि का वर्णन किया है। स्त्रियों के पत्नी रूप के गुण के संदर्भ में कहा गया है कि -

सा भार्या या गृहं रक्षेत् सा भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिप्राणा, सा भार्या या प्रजावती।[14]

स्मृति ग्रन्थों में स्त्री को अस्वतन्त्र माना गया है वह पुरूष के आश्रित है अस्वतन्त्रा स्त्री पुरूषप्रधाना।[15]

''स्त्री विनश्यति गर्वेण''[16] गर्विता स्त्री स्वयं तथा कुल के नाश का कारण होती है।

वर्तमान में हमें अपने आस-पास ऐसे अनेकों साक्षात उदाहरण मिल जायेंगे जो उपरोक्त वर्णित स्त्री के गुणों एवं कर्त्तव्यों के अनुकूल आचरण कर समाज में प्रतिष्ठा को प्राप्त किये हुए है तथा वहीं दूसरी ओर दर्प से युक्त तथा विपरीत आचरण वाली स्त्रियाँ जो समाज को कलंकित करती है। मनुस्मृति के अनुसार स्त्री सदा रक्षणीय है चारों वर्णों का कर्त्तव्य है कि वे स्त्रियों की रक्षा करें -

''चतुर्णामपि वर्णानां, दारा रक्ष्यतमाः सदा।''[17]

जिस कुल में स्त्रियों की पूजा नहीं होती है उस कुल के सब कर्म निष्फल होते हैं। अतएव स्त्रियों का कभी अनादर नहीं करना चाहिए।

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्ततत्राफलाः क्रियाः।।''[18]

समकालीन समय में प्रतिदिन अखबार, मीडिया, एवं सोशल मीडिया स्त्रियों पर होने वाले तथा स्त्रियों द्वारा किये जाने वाले अपराधों से सना रहता है जिसका प्रमुख कारण अपनी संस्कृति एवं साहित्य से अनभिज्ञता अथवा उसकी अग्राह्यता है। साहित्य एवं संस्कार मनुष्य तथा समाज के उत्थान का कारणभूत तत्त्व है विशेषरूप से संस्कृत वाङ्मय जो जीवनोत्थान का ज्ञानकोष है। शंख स्मृति में स्त्रियों के गुण के प्रसंग में कहा गया है कि वही पत्नी श्रेष्ठ है, जो घर की रक्षा करें, पतिव्रता हो, पति को प्राणवत् मानती हो -

सा भार्या या गृहं रक्षेत् सा भार्या या पतिव्रता।
सा भार्या या पतिप्राणा, सा भार्या या प्रजावती।।[19]

इसी प्रकार दक्ष स्मृति, कात्यायन स्मृति, विष्णु स्मृति आदि ग्रन्थों में भी स्त्रियों के सद्गुणों का वर्णन किया गया है।

वर्तमान में विवाहविच्छेद की बढ़ती घटनाओं में युवतियों हेतु इन्हें जीवन में आत्मसात करने की आवश्यकता है।

स्मृतिकालीन संस्कृति में स्त्रियाँ को शासन प्रबन्ध, राजनीति में विशेष अधिकार प्राप्त नहीं थे। वर्तमान में शासन एवं प्रशासन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों की गरिमामयी सहभागिता नई सदी की उपलब्धि मानी जाती है।

स्मृति ग्रन्थों में वर्णित है कि स्त्री की रक्षा से ही मानव अपनी सन्तति, आचरण, कुल, धर्म एवं समाज की रक्षा करने में सक्षम हो सकता है। मनुष्य के कुल एवं राष्ट्र की श्रीवृद्धि उत्तम सन्तान पर निर्भर करती है तथा श्रेष्ठ सन्तति स्त्री के आचरण एवं व्यवहार पर आश्रित होता है।

तत्कालीन समय से लेकर समकालीन समय पर्यन्त स्त्रियों की शिक्षा, अधिकार एवं उनके सर्वांगिण उन्नयन में कई वर्षों का समय तथा एक लम्बा संघर्ष सम्मिलित रहा है।

स्मृति ग्रन्थों के अतिरिक्त पुराण, महाभारत, रामायण, महाकाव्यों, कथाओं एवं नाटकों इत्यादि में वर्णित स्त्री पात्रों के चरित्र के सकारात्मक गुणों को आधुनिक स्त्रियाँ ग्रहण कर अपने जीवन तथा स्वराष्ट्र को उन्नत स्वरूप प्रदान कर सकती हैं। बात यदि महाभारत के नारी पात्रों की करें तो द्रौपदी, कुन्ती, गान्धारी, सत्यवती, सुभद्रा, हिडिम्बा, भानुमति इत्यादि अनेकों स्त्री पात्र हैं जिनमें सभी की महत्वपूर्ण भूमिका रही है कालजयी महाभारत के युद्ध एवं साहित्य में। रामायण के स्त्री पात्रों में सीता, कैकेयी, कौशल्या, सुमित्रा, उर्मिला, मन्थरा, मन्दोदरी, सबरी आदि सभी पात्रों की अपनी-अपनी विशिष्टताऐं हैं जो ग्रहण करने योग्य है। इसी प्रकार कालिदास की कृतियों में पार्वती, सुदक्षिणा, शकुन्तला, आदि तथा भवभूति की कृति में सीता का अनुपम चरित्र, वही भारवि के

किरातार्जुनीयम् में द्रोपदी का चरित्र, नैषध में दमयन्ती आदि अनेकों नारी पात्र के उदाहरण हैं।

इस प्रकार संस्कृत वाङ्मय के ग्रन्थों में लिपिबद्ध स्त्री पात्रों के पावन एवं आदर्श चारित्रिक गुण समकालीन नारी समाज हेतु अत्यन्त ही व्यवहारिक, उपादेय एवं सर्वहितकारी है, जो न केवल वर्तमान स्त्रियों के लिए अपितु भविष्य की नई पीढ़ी हेतु भी अनुकरणीय है जो राष्ट्र की संस्कृति एवं उत्थान में परमावश्यक है।

भारत के विश्वगुरू बनने की कल्पना तभी सत्य सिद्ध होगी जब देश की मेरूदण्ड यहाँ की स्त्रियाँ शिक्षित एवं सुसंस्कृत होंगी।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. मनुस्मृति- 2.145
2. बृहस्पति स्मृति- 26.92-95
3. याज्ञवल्क्य स्मृति- 3.227, 296, 2.140
4. औशनस स्मृति- 1.49
5. मनुस्मृति- 3.56
6. वही- 2.340
7. बृहत् पराशर- 5.195, 6.71
8. प्रजापति स्मृति- 55
9. बृहत् पराशर- 6.44, 45
10. व्यास स्मृति- 2.18-19
11. याज्ञवल्क्य स्मृति- 1.86
12. मनुस्मृति 5.150, 151, 154
13. वही- 9.11,13
14. शंख स्मृति- 4.14
15. वशिष्ठ स्मृति- 5.1
16. बृहत् यमस्मृति- 4.60
17. मनुस्मृति- 8.359
18. वही- 3.56, 57
19. शंख स्मृति- 4.14

आधुनिक संस्कृत कथा साहित्य आचार्याश्री योगिनी व्यासमहोदयायाः विशिष्टं योगदानम्

व्यासः पारुल जयन्तिलालः

शोधच्छात्राः, श्री सोमनाथ संस्कृत विश्वविद्यालयः

“संस्कृत भाषावाङ्मयस्य पुनर्जीवनम्।

आधुनिक कथासाहित्येन सम्पाद्यते।।”

आधुनिक संस्कृसाहित्यस्य एका महत्त्वपूर्णा विधा अस्ति कथासाहित्यं वा आख्यायनसाहित्यम्। जनानां कृते धर्मनीत्यादि विषयाणां ज्ञानाय अस्याः विद्यायाः विकासः जातः। कथायाः द्वे भागे स्तः। नीतिकथा एवं लोककथा। नीतिकथाः उपदेशात्मिकी भवन्ति। लोककथाः केवलं मनोरञ्जनाय भवन्ति।

नीतिकथाविषये कविना स्वयम् एव उक्तम्,

“अधीते च इदं नित्यं नीतिशास्त्रं श्रृणोति च न पराभवमाप्नोति शक्रादपि कदाचन्।।”

चरित्रनिर्माणे शैक्षणिकद्रष्ट्या सृष्टिकालतः एव कथाद्रष्टान्तानां प्रमुखं स्थानं वर्तते। संस्कृतसाहित्यम् एभिः कथाद्रष्टान्तैः परिपूर्णं वर्तते। जगतः अपरासु अपि भाषासु इमे कथाद्रष्टान्ताः प्रचूरमात्रायां मिलन्ति। विद्वांसः स्वीयं मतं द्रढयितुं प्रमाणयितुं च स्थाने-स्थाने कथायाः उपयोगं कुर्वन्ति। कथाद्रष्टान्तानाम् आबालवृद्धेषु, स्त्रीपुरुषेषु, विशेषतः बालक-बालिकासु सद्यः वाच्छितः प्रभावः निपतति। सहृदयानाम् अनिर्वचनीयानाम् एषां कथानाम् अभावे जीवनं सर्वथा नीरसम् एव भवेयुः।

आधुनिक कथासाहित्ये सन्माननीया डॉ . योगिनी व्यासमहोदयायाः विशिष्टं योगदानं प्रदत्तम् अस्ति। संस्कृतभाषायां कविता, समस्यापूर्ति, लघुकथा, लघुनाटिका इत्यादीनां साहित्यस्वरुपाणाम् एवं च संशोधनात्मकग्रन्थाणां लेखानां च सर्जनं कृत्वा २१तमे शताब्द्यां संस्कृतसर्जकप्रतिभासु स्वनामधन्यं प्रस्थापिता। एताभिः संस्कृतसाहित्ये पञ्चग्रन्थाः दत्ताः। तेषु ग्रन्थेषु "वैभाकरी वाक् ग्रन्थः" लघुकथा ग्रन्थः विद्यते। एतस्मिन् ग्रन्थे १८ लघुकथाः सन्ति।

लघुकथायाः मुख्यउद्देश्यम् अस्ति नीतिबोधः, चरित्रनिर्माणम् एवं मनोविनोदः। कथायाः विषयवस्तुः समाजे प्रचलिताः कुरुतिः एवं समस्याः अस्ति । यस्याः मनुष्याणां सम्वेदनया सह निरूपितम् अस्ति। ग्रन्थस्य लघुकथा "शुभाशीः" अखिल भारतीय मौलिक लघुकथाप्रतियोगितायां प्रथमं स्थानं प्राप्तम्।

एतस्मिन् लघुकथाग्रन्थे विविधान् विषयान् अधिकृत्य डॉ. योगिनी महोदया सामाजीकदूषणान् प्रकटीकृत्य जनान् विशिष्टरीत्या बोधयति। यथा "भवितव्यता खलु बलवती","क्षमा हि परं बलं","सर्वं बलवतालोके," "धनसञ्चयस्य अन्वेषणम्". इत्यादयः कथायाः माध्यमेन जनानां मनसि जागरुकता आलस्यं च वर्तते तेषां दूरीकरणाय प्रेरयति।

लघुकथायाः माध्यमेन एव च संस्कृतभाषायाः प्रयोगेण द्विविधा सेवायज्ञं भवति। भाषायाः प्रचारः कार्येण समाजसेवा एवं समाजसेवया भाषायाः सेवा।

"एकेन शरेण द्वौ ध्येयौ"!!

बीजशब्दाः आधुनिकसंस्कृसाहित्य, लघुकथा, सामाजिकसेवा, नीतिकथा, चरित्रनिर्माणम्।

निष्कर्षः - एतत् शोधपत्रस्य निष्कर्षः अयमेव यत् भाषायाः प्रचारः, संवर्धनम् एवं च लोके जागरुकता।

प्रस्तावना:

कथाः साहित्यविश्वस्य निरूपमम् आभूषणं अस्ति। सामान्यतः कथा प्रियाः बालाः, तथापि कथाः सर्वप्रियाः भवन्ति। न केवलं बालकाः कथां स्निहयन्ते किन्तु सर्वेषां मानसम् अपि प्रियकराः सन्ति। मनोरञ्जनम् एवं परिहासः च कथायाः प्रयोजनम् अस्ति। ज्ञानदात्र्यः इमाः कथाः वाचकं मन्दं मन्दं भिन्नः प्रकृत्याः समाजस्य अपि परिचयं कारयन्ति। कथायाः नीतिबोधः मनुष्यस्य मस्तिष्कपटले आजीवनपर्यन्तं भवति। लघुकथा - Short Story अयं कथाविधाः आधुनिकाः। चरित्र-निर्माणे शैक्षणिक द्रष्ट्या आदि कालतः एवं कथासाहित्यस्य महत्त्वपूर्णं स्थानम् अस्ति। स्वातंत्र्योत्तर काळिकः संस्कृत गद्य-विधां पश्येम् चेत् ज्ञातम् अस्ति यत् कथाः अपेक्षया अधिका मात्रायां लिखिताः जाता एवं च सम्प्रति अपि लिखन् अस्ति। कथांनां विविधाः भेदाः-प्रभेदाः विभिन्न रीत्या भवितुम् अर्हति। सम्प्रति संस्कृतकथायाः रूपात्मकं एवम् अवधारणात्मकं भेदाः एवमेव भविष्यति-

- दीर्घकथाः।
- लघुकथाः।
- अतिलघुकथाः।
- स्पशकथाः।
- कान्तार कथाः।

कथा कलानां तत्वाधारेण अपि कथायाः भेदः एवं कलात्मकं भेदः भवितुम् अर्हति।

घटना-प्रधाना कथाः।

कार्यकलापाः कथाः।

वार्तालापः प्रधानकथाः।

- चरित्र-चित्रण प्रधानकथाः।
- वातावरण परिपार्श्वकथाः।
- प्रभावप्रधानकथाः।

विषयात्मक कथाभेदाः अपि भवति। यथा-

- सामाजिकी कथाः।
- मनोवैज्ञानिकी कथाः।
- राजनीतिक कथा ।
- सांस्कृतिक कथाः।
- हास्य-व्यङ्गात्मकं कथाः।
- बिम्बः प्रतीकात्मकं कथाः।
- साङ्केतिक कथाः।

शैली द्रष्ट्या अपि कथानां भेदाः भवन्ति- संरचनात्मक कथाभेदाः अपि वक्तुं शक्नुमः। यथा-

- दृश्यात्मक/चित्रात्मक कथाः।
- परिदृश्यात्मकः कथाः।
- चित्र-यञ्जनात्मक कथाः।
- मनोविश्लेषणात्मकः कथाः।
- आत्मकथात्मकः कथाः।
- प्रत्यक्षदर्शनात्मकः कथाः च।

संस्कृत कथा साहित्यस्य विकासं दृष्ट्वा वक्तुं शक्यते यत् कथायाः प्रारम्भः पत्र-पत्रिका माध्यमेन अभवत्। अनन्तरं कथासङ्ग्रही पुस्तिकानां प्रकाशनम् अभवत्। एतत् उपक्रमं कथासाहित्यस्य समृद्धिः एवं लोकप्रियतायाः द्योतकः अस्ति। भारतस्य स्वातन्त्र्यं पूर्वात् अपि कथासङ्ग्रहानां प्रकाशनम् अपि जातम्। स्वातन्त्र्योत्तरकाले पण्डिता क्षमारावमहोदयायाः कथासङ्ग्रहः कथामुक्तावली(१९५४) गद्यविधायाः प्रथमः प्रकाशितः कथासङ्ग्रहः मन्यते। एवमेव १९तमे शताब्द्यायाः अन्तिमे दशके प. क्षमाराव, भट्ट मथुरानाथ शास्त्रीआदि वरेण्यानां गद्यकाराणां लेखन्या विकसिता। संस्कृत कथाविधा अतीव प्रगतिशीला भूता। एतस्मिन् विधायां बहवः लेखकाः स्वयोगदानं प्रदत्तम् सन्ति। यथा डॉ. राधावल्लभः त्रिपाठीः,

अभिराजराजेन्द्रः मिश्रः, देवर्षिः कलानां शास्त्री, मिथिलेशकुमारी मिश्राः, केशव चन्द्रः दासः, नलिनीशुक्लः, गौरी धर्मपालः, वीणापाणि पाटनी, एच.आर. विश्वासः, जनार्दनः हेगडेमहोदयः, गोपबन्धुमिश्रः श्री हर्षदेव माधवः, आदि कथाकारेभ्यः लिखिताः तथाविधाः नूतनम् उच्चस्थानं प्राप्नुवन्ति।

समग्रे भारते बहुविधाः महिला साहित्यकाराः विविधाः रचनाः कुर्वन्ति। काव्यं, महाकाव्यं, गीतिकाव्यं, स्तोत्रकाव्यं, कथाः, लघुकथा, उपन्यासः, नाटकं आदि। सर्वेषु क्षेत्रेषु सर्जनरताः आधुनिक महिला लेखकानां भूमिकाः सन्तोषप्रदाः सन्ति। आधुनिक महिला साहित्यकाराः समग्रे भारते विविधेभ्यः साहित्येभ्यः नूतनस्य अभिनवयुगस्य रचनां कुर्वन्ति। न केवलं काव्यसाहित्यं किन्तु संस्कृत कथा, नाटक, उपन्यासादि लेखने संस्कृत महिला लेखिकाः अप्रतिमं कार्यं कुर्वन्ति। काव्यकथा नाटकप्रणयने पटवी प. क्षमाराव, नलिनी शुक्ला, (जानपुर) वेद कुमारी दई, (जम्मू) पुष्पा दीक्षितः (बिलासपुरः) रमा चौधरी (य.बङ्गः) पराम्बा श्री योगमाया, (नयागढ ओडीशा) डॉ. योगिनी व्यासः (गुजरातम्) शोभना, अर्चनातिवारी, डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्रा, डॉ. वीणापाणिनी पाटनी, दीपाः अग्रवाल, श्वेता प्रजापतिः, शैलजा पाण्डेयः, मञ्जूलता शर्मा, पुष्पा गुप्तः, मीरा मिश्रः, हेमलता इत्यादयः महिला कथाकारया आधुनिक कथा साहित्यं समृद्धं कृतं अस्ति। तासु कथाकारासु डॉ. योगिनी हिमान्शु व्यासः एका उत्तमा कथाकारा वर्तते। तासां आधुनिक संस्कृत कथा साहित्ये महत् योगदानम् अस्ति। तासां संक्षिप्तंपरिचयं प्राप्य वयं कथायाः आस्वादं करिष्यामः।

“साहित्यगौरवपुरष्कारेण अलङ्कृता डॉ. योगिनी व्यासः गुजरातराज्यस्य प्रकाण्ड वैयाकरणी ‘गुजरातस्य पाणिनिः ‘इति सम्मानेन विभूषितः एवं नवोन्मेषशालिनी प्रज्ञासम्पन्नः सरस्वतीवरप्रसादः प्रो. डॉ. भगवतीप्रसादः पण्ड्या(१९२६-२०१८) महोदयस्य विदूषी पुत्री अस्ति। गुजरातराज्यस्य प्रबुद्धः विदुष्यः प्रो. डॉ. एस्तेर सोलोमन, प्रो. डॉ. हन्सा

हिन्डोचा, डॉ. नीलाञ्जना शाह, प्रो. डॉ. भारती शेलत, प्रो. डॉ. उमा देशपाण्डे, प्रो. डॉ. जसवन्ति दवे, प्रभृतयः परम्परायाः प्रवर्तमानेषु समयेषु स्वस्थानं शोभायमानाः वर्तन्ते। डॉ. योगिनी व्यासः महोदया विद्यावारीधिपितुः संस्कारदायं प्रज्वालयितुं महाकविः आचार्यः दण्डीकृतं 'काव्यादर्शस्य मन्त्रम्

"श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवम्
करोत्येव कमप्यनुग्रहम्" ।(१-१०४)

आत्मसातं कृत्वा वाग्देव्याः ध्येयनिष्ठया उपासना अधुना पर्यन्तं प्रवहति। अलङ्कारशास्त्र, वेदविद्या, पुराणं, साहित्यः इत्यादयः विषयेषु संशोधकीय निष्ठायां एवं गुजराती भाषायां स्वविद्वत् पुस्तकानि स्वाध्यायपूताः लेखैः सह संस्कृतभाषायां काव्यं, नासिका, लघुकथाः, बालकथाः अलङ्कारशास्त्रम् इत्यादिनां सर्जनं भवति। तासां विद्यासुरभितं वक्तृत्वं, विशुद्धम् उच्चारणं, विद्यातपोनिधि पितृभ्यः प्रभाविता सा बाल्यकालादेव वैदिकमन्त्राः श्रीमद्भगवद्गीता, सुभाषितानि, स्तोत्राणि, श्रीमद् भागवतपुराण, पाणिनीय व्याकरणस्य सूत्राणि इत्यादीनां चयनीकृताः अंशाः कण्ठस्थीकरणं कृत्वा न केवलं गुजरातराज्ये अपि तु समग्रे भारतवर्षे स्वनाम धन्या कृताऽस्ति।

<u>जन्मः एवं च परिवार- शिक्षणं-</u>

माता श्रीमती मधुकान्ताभगिनी एवं ऋषितुल्य पिता श्री प्रो. डॉ. भगवतीप्रसादः पण्ड्या महोदयानां परिवारे अहमदाबाद- गुजरातमध्ये २०दिसम्बर १९५७तमे वर्षे जन्मः अभवत्।

योगिनी व्यासमहोदयायाः प्राथमिकः- माध्यमिकः शिक्षणं मणिनगर-अहमदाबादस्य प्रतिष्ठिताः शालायाः जातः। उच्चशिक्षणः गुजरातराज्यस्य सुप्रसिद्धः श्री एच.के. आर्ट्स महाविद्यालय अहमदाबादतः संस्कृत स्नातकः जाता। गुजरात विश्वविद्यालय भाषाभवनतः एम.ए. इति उपाधिः १९८०तम वर्षे एकाधिकाः सुवर्णपदकैः प्राप्ता। अनन्तरं प्रबुद्धः

वैयाकरणी एवं हस्तप्रतविद्याविद प्रो. डॉ. वसन्तकुमारः भट्टमहोदयस्य मार्गदर्शनेन

"भामहकृत काव्यालङ्कारः एकः विवेचनात्मकः इति विषयं चयनीकृता सा १९९१तमे वर्षे शोधोपाधि-विद्यावारिधिः प्राप्ता। एतत् संशोधनं कार्यार्थं U.G.C. शिष्यवृत्तिः सा अलभत्।

श्रीमती योगिनी व्यासमहोदयायाः पतिः श्री हिमान्शु व्यासः एवं च पुत्रः देवर्षः पुत्री निरालीः परिवारेण शोभायमानाः वर्तन्ते।

<u>व्यवसायिकः कार्यकालः-</u>

सर्वकारी विनयन् कालेज गान्धीनगरे २६ सितम्बर १९८८तमे वर्षतः १जुलाई १९९१ पर्यन्तं संस्कृत व्याख्याता रूपेण सा कार्यान्विता जाता। अनन्तरं सा २ जुलाई १९९१ तः १४ जून २०२० पर्यन्तं उमा आर्ट्स एन्ड नाथीबा कालेन गान्धीनगरे संस्कृत विभागाध्यक्षारूपेण कार्यरताः आसीत्।१८ वर्षाः पर्यन्तं सेवा रताः आसीत्।

विद्यातुराणां न सुखं न निद्रा।

सूक्तिं हृदि धृत्वा महोदया अलङ्कारशास्त्रस्य पुनः संशोधनं दण्डीतः जगन्नाथपर्यन्तः परवर्ती आचार्याणाम् उपरी मानवस्य प्रभावः सन्दर्भे अध्ययनं कृता अस्ति। वेदाभ्यासेऽपि महाभागा विशेषरीत्या कार्यं कृतवती।

२०१८ तमे वर्षे २६९ वैदिक आख्यानानि सन्दर्भेण सह प्रस्तुतं कृताः। "આખ્યાનોની ગંગોત્રી" पुस्तिका वेदानां सघन अभ्यासाय परिचायकः भवति। Ph.D. विद्यावारिधेः मार्गदर्शनम् अपि महोदया बहु सम्यक् तया कृता। १२ छात्राः विविधेषु विषयेषु शोधप्रबन्धः लिखिताः सन्ति। तेषु १०छात्राः तु संस्कृतमाध्यमेन एव शोधप्रबन्धः लिखिताः सन्ति। विविधेषु अधिवेशनेषु, परिसम्वादेषु एवं कवि सम्मेलनेषु अपि महोदयानां विशेष रूपेण सहभागिता भवति। विदेशेषु अपि शोधपत्राणां प्रस्तुतिकरणं कृत्वा पारितोषिकेण सम्मानिता जाता।

शुक्ल यजुर्वेदस्य अनुवादः हेतवे विद्वत्परिषद् सभ्यरूपेण कार्यम् अपि महोदया कृता।

इतोऽपि अधिकरूपेण वयनिवृतिः अनन्तरं सा अध्ययनशीला भूत्वा २५ मौलिकः सम्पादनं पुस्तकानि २५० संशोधनलेखाः प्रकाशिताः जाताः। "स्वाध्यायो वे यज्ञः" पङ्क्तिम् आत्मसातं कृत्वा डॉ. व्यास महोदयायै गुर्जरराज्यस्य एवं देशस्य विद्वत्संस्थया ३५तः अधिकाः पुरस्कारतः सम्मानिता कृता अस्ति।

"<u>वैभाकरी वाक्</u>"- <u>एकः उत्तमः कथासङ्ग्रहः</u>

आधुनिक संस्कृतकथासाहित्ये डॉ. व्यास महोदया उत्तमान् विचारान् प्रकटीकृत्य अस्मान् संस्कृतभाषां प्रति एवं कथायाः माध्यमेन गुणानां जीवने कीयत् मूल्यम् अस्ति? तत् विविधैः उदाहरणैः बोधयति।

प्रथमा कथा "लोभः पापस्य कारणम्" सामान्य जनस्य मानसचित्रणम् अस्ति। ईश्वरस्य भक्तिः, शिवस्य विविधानां स्तोत्रैः करोति तथा मनसि लोभस्य वृत्तिः न समाप्ता भवति। कथायां लेखिकायाः स्पष्टभावाः वयं द्रष्टुं शक्नुमः। समाजस्य तादृशं चित्रणम् अत्र अस्ति। इतोऽपि अधिकं वयं लेखिकायाः प्रसङ्गोचित् श्लोकगानं, वैदिकमन्त्राः एवं लौकिकगानस्य विवरणेन ज्ञानोदधेः गभीरता वयं प्राप्तुं शक्नुमः। सामान्यति सामान्यं विषयं स्वीकृत्य तस्य गभीरः अर्थः अस्माकं समक्षं प्रस्तौति महोदया।

श्रीमद्भगवद्गीतायाम् उचितं कथितम् अस्ति- "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः"

प्रति कथायां वयं महोदयायाः उच्च विचारान् अनुभवामः। भगवद्गीतायाः श्लोकेन गीताभ्यासः अपि भवति।

द्वितियाकथा अस्ति "स्वस्ति पन्थामनुचरेम्"

अप्रतिमं शीर्षकत्वेन सामान्यं बिन्दुम् उत्तम रीत्या दर्शयति। वृद्धजनानां सेवया हि अस्माकं जीवनस्य साफल्यम् अस्ति। तस्य बोधः एतया कथया भवति। जीवनरूपीयात्रायाम् अपि जनानां कल्याणं भवेत्

तस्य बोधः वयं नेतुं शक्नुमः। न केवलं शारीरिकेन स्थानान्तरेण किन्तु मानसिकरीत्या अपि सुन्दरीं यात्रां कर्तुं वाचकानां मनसि प्रभावः भवति। परिवारस्य संस्काराः अपि महेशस्य पात्रेण वयं पश्यामः। यत् बहुषः असरकारकं भवति।

"सोद्योगं नरमायान्ति विवशाः सर्व सम्पदः" इति तृतियाकथया वयं वृक्षस्य महत्त्वं प्राप्नुमः। एवं च कोऽपि कार्यं यदि योग्य समये सम्पन्नं भवेत् चेत् तस्य परिणामः उत्तमः आगच्छति, तत् प्रणवस्य पात्रेण वयं जानीमः। कथायाः मध्ये रुद्र सूक्तस्य मन्त्रान् स्थापयित्वा लेखिका महोदया अस्मान् सूचयति यत् वैदिककालादेव अस्माकं संस्कृत्यां वृक्षाणां बहुमूल्यं भवति।

"नमो वृक्षेभ्यो हरिकेषेभ्यो क्षेत्राणां पतये नमः"

"भवितव्यता खलु बलवती" कथायाः माध्यमेन वयं पठामः यत् 'आलस्य हि मनुष्याणां शरीरस्थः रिपुः' अस्ति। जीवने उद्यमस्य महत्त्वं मित्रतायाः गहनता एवं स्वदोष दूरिकरणाय अस्माकं साहित्येषु यत् सुभाषितानि सन्ति तेषाम् योग्यस्थाने उपयोगं कृत्वा बहुसरल रीत्या महोदया सूचयति। उद्यमस्य मित्रस्य गोपनीयता एवं च परिवारस्य लालने कथं प्रयत्नं करणीयं तस्य ज्ञानं जायते।

"क्षमा हि परमं बलम् अस्ति "मनुष्यस्य जीवने तस्य प्रतिपादनं वयं मन्दिरस्य पुरोहितस्य पात्रेण वयं जानीमः।

"पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्धति "एतत् पङ्क्त्याः वयं सम्यक् रीत्या अवगच्छन्ति किशनस्य एवं पुरोहितस्य पात्रेण। नीतिज्ञः चाणक्यस्य बोधम् अत्र सम्यक् तया निरूपितं।

"यस्य चित्तं द्रवीभूतं कृपया सर्वजन्तुषु।
तस्य ज्ञानेन मोक्षेण किं जटा-भस्मलेपनैः॥
शान्तितुल्यं तपो नास्ति न सन्तोषात् परं सुखम्।
न तृष्णाया परो व्याधिर्न धर्मो दयापरः।।"

"सर्वं बलवतां लोके" कथायां जीवनस्य प्रति अस्माकं कथं दृष्टिकोणं भवेत्। तत् विविधानि सुभाषितानि पठित्वा वयं जानीमः। कथायाः मध्ये एतानि सुभाषितानि स्थापयित्वा लेखिकायाः बृहद् ज्ञानकोषस्य विषये वयं जानीमः विद्यायाः महत्त्वम्।

"विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम् विद्या भोगकरी
यशः सुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परं दैवतं विद्या राजसु पूज्यते न तु धनं
विद्याविहीनः पशुः ॥"

एवं च

"आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथाऽत्यागित्वमेव च।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः॥
सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिनः सुखम्।
सुखार्थी वा त्यजेद्विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम्।"

एतानि सुभाषितानि सम्यक् स्थाने उपयुज्य कथायाः अधिकं महत्त्वं वर्धते। तेन डॉ. व्यासः महोदया उत्तमं लेखनं कृता। कथायाः सौन्दर्यम् अपूर्वं भवति।

"धनसञ्चयस्य अन्वेषणम्" कथया कीदृशी सन्ततिः भवेत् समाजे तस्य प्रतिपादनं भवति।

श्यामलालस्य पात्रेण पितास्वरुपस्य ज्ञानं प्राप्तुं समर्थाः भवामः वयम्। कीदृशेण पुत्रेण जीवनस्य सार्थकता जायते तस्य विवरणम् अस्ति।

"को धन्यो बहुभिः पुत्रैः कुशूलापूरणाढकैः।
वरमेकः कुलाम्बी पुत्रो यत्र विश्रयते पिता॥
"पात्रं न तापयति नैव मलं प्रसूते स्नेहं न संहरति नैव गुणान्क्षिणोति।
द्रव्यावसानसमये चलतां न धत्ते सत्पुत्र एव कुलसद्मनि कोऽपि दीपः॥"

अपि च,

"एकेनापि सुपुत्रेण सिंही स्वपिति निर्भयम्।
सहैव दशभिः पुत्रैर्भारं वहति गर्दभी॥
"एकेनापि सुपुत्रेण जायमानेन सत्कुलम्।
जशशिना चैव गगनं सर्वदैवोज्ज्वलीकृतम्॥"
"किं जातैर्बहुभिः पुत्रैः शोकसन्तापकारकैः।
वरमेकः कुलालम्बी यत्र विश्राम्यते कुलम्।।"

एवं चिन्ताविषये अपि उत्तमं बोधं कारयति महोदया।

चिन्तायाश्च चितायाश्च बिन्दुमात्रं विशिष्यते।
चिता दहति निर्जीवं चिन्ता दहति जीवनम्।।

अन्ते विविधैः श्लोकैः, मन्त्रैः च क्षेत्रपतिसूक्तेन जीवने एका उत्तमाऊर्जा प्राप्नुमः वयं।

"क्षेत्रस्य पतिना वयं हितेनेव जयामसि।
ग्रामश्च पोषयित्वा स नो मृळातीदृशे॥
क्षेत्रस्य पते मधुमन्तमूर्मि धेनुरिव पयो अस्मासु धुक्ष्व।
मधुश्श्रुतं घृतमिव सुपूतमृतस्य नः पतयो मृळयन्तु॥
मधुमतीरोषधीद्याव आपो मधुमन्नो भवत्यन्तरिक्षम्।
क्षेत्रस्य पतिर्मधुमान्नो अस्त्वरिष्यन्तो अन्वेनं चरेम॥
अन्वेषणम शुनं वाहाः शुनं नरः शुनं कृषतु लाङ्गलम्।
शुनं वरत्रा बध्यन्तां शुनमष्ट्रामुदिङ्गय।।
शुनासीराविमां वाचं जुषेथां यद्दिवि चक्रथुः पयः।
तेनेमामुप सिञ्चतम्।
अर्वाची सुभगे भव सीते वन्दामहे त्वा।
यथा नः सुभगाससि यथा नः
सुफलाससि॥
शुनं नः फाला वि कृषन्तु भूमिं शुनं कीनाशा अभि यन्तु वाहैः।
धशुनं पर्जन्यो मधुना पयोभिः शुनासीरा शुनमस्मासु धत्तम्॥

निष्कर्षरुपेण वयं वक्तुं शक्नुमः यत् लेखिकायाः बृहत् ज्ञानेन न केवलं संस्कृत भाषायाः अपितु अस्माकं जीवने सर्वाङ्गिण व्यवहारे सकारात्मक रीत्या परिवर्तनम् अवश्यमेव भविष्यति। अतः जीवने “वैभाकरी वाक्” कथासङ्ग्रहः अवश्यं पठनीयम्। डॉ. योगिनी व्यासमहोदया इव संस्कृतरत्नं प्राप्य वयं वस्तुतः धन्याः सन्ति। संस्कृतजगत् सदा सर्वदा तासां ऋणिः भवति।।

।। इति शम्।।

<u>सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-</u>

1. वैभाकरी वाक्, डॉ. योगिनी हिमान्शुः व्यासः
2. स्वातन्त्र्योत्तरकालिक संस्कृत कथा साहित्य को महिला संस्कृत कथा कारो का योगदान, वनमाली विश्वासः।
3. Contribution of women to Sanskrit, Pali and Prakruthi Literature
4. संस्कृत कथा साहित्य, wikipedia.org.
5. आधुनिक संस्कृत साहित्य के नये भावबोध, डॉ० मञ्जुलता शर्मा
6. संस्कृत- हिन्दी शब्दकोश आप्टे।
7. संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पद्मश्री डॉ. कपिल देव द्विवेदी आचार्यः।
8. आधुनिक संस्कृत साहित्य के नये भावः बोध। डॉ. मञ्जूलता शर्मा।
9. वनमाली विश्वास की लघुकथाऐं।
10. अर्वाचीन संस्कृत साहित्य- दशा एवं दिशा 1. डॉ. मञ्जूलता शर्मा 2. डॉ. प्रमोद भारतीय

संस्कृतसाहित्येषु मेघदूते स्त्रीचर्यावर्णनम्

बिप्लबसरकारः
न्यायविभागः (शोधच्छात्रः)
श्रीलालबहादुरशास्त्रीराष्ट्रियसंस्कृतविश्वविद्यालयस्य
(केन्द्रीयविश्वविद्यालयस्य)

मेघदूतं कालिदासप्रणीतं सर्वोत्कृष्टं शृङ्गाररसात्मकं खण्डकाव्यम्। अत्र स्त्रीणां व्यवहारः, तासां वसनभूषणादिप्रसाधनव्यवहारः, रमणीनां कटाक्षविक्षेपादयः, रमणीनामभिसारिकावृत्तिः, यक्षपत्न्याः विरहव्रतपालनम् इत्यादिकं स्त्रीचर्या भूयोरूपेण दृश्यते मेघदूते। क्रमेण उदाहरणं प्रदीयते यथा - पुर्वमेघे अभिशापग्रस्तः रामगिरौ निर्वासितः विरहीयक्षः अलकापुरीति अधिष्ठाने तस्य कुशलवार्ता प्रेषणाय प्रियतमाभार्या निकषा आषाढस्य नवोदितमेघं दूतरूपेण नियुक्तवान्। पुर्वमेधे रामगिरितः अलकापुरीपर्यन्तं यात्रापथस्य वर्णना विद्यते। पुनश्च उत्तरमेघे कुवेराधिष्ठानस्य वर्णनया साकं यक्षपत्न्याः रूपलावणस्य, तस्याः विरहव्रतपालनस्य चित्रमप्युपस्थापितम्। तत्र मेघस्य यात्रापथस्य आगतजनपदानां रमणीगणस्य आचाराचरणस्य वर्णना चित्रकल्पेन उपस्थापिता कविना। तत्र विरहातुरः यक्षः मेघमुद्दिश्य उवाच -

"मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
सन्देशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम्।
अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किं स्विदित्युन्मुखीभि-
दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः।
त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः"[1] ।।

---

[1] मेघदूतम्, पूर्वमेघः - १३ (श्लोकार्थः), १४ (श्लोकार्थः), १६ (श्लोकार्घः)

घनमेघः यदा गगनमार्गेण गच्छति तदा मुग्धाः सिद्धाङ्गनाः पर्वतभ्रमेण तासां चकितदृष्ट्या मेघं दृष्टवत्यः। तासां दृष्टिमाध्यमेन कौतुहलमिश्रितोत्साहः प्रकाशितो भवति। पुनश्च निदाघावसाने नभसि नवोदितकृष्णमेघं पश्यन्ती सरला जनवधूगणः तासां सरलदर्शनभङ्गीमाध्यमेन मेघं प्रति दृष्टिपातं करोति ।
विरहीयक्षपन्याः विरहदशावर्णनायां तस्याः विरहव्रतचारिण्याः स्वरूपमुद्धाटितमस्मिन् श्लोके -

"आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्व
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।
नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्वा
तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम्"[1] ।।

कविः कालिदासः मेघसमीपे पुर्वमेघे उज्जयिनीनगर्याः रमणीनां प्रसाधनं, तासां दैहिकलावण्यञ्च वर्णितवान्। तदनन्तरं उत्तरमेघे अलकापुरीनगरवासिनीनां अलौकिकसौन्दर्येण सह यक्षपन्याः रमणीयसौन्दर्यस्य वर्णनां कृतवान् कविः। यत्तु यक्षवचनमुखेन सर्वमुपस्थापितम्।

नारीणां सौन्दर्यवर्णने मेघदूतान्तर्गतः श्लोकः एकोऽतीव प्रसिद्धः। तद् दृश्यते काव्यस्य उत्तरांशे। अस्मिन् श्लोके यद्यपि विहातुरः पत्नीनिष्ठः यक्षः तस्य भार्यायाः रूपं वर्णितवान, तथापि कालेन श्लोकोऽयं रमणीनां सौन्दर्यवर्णनाय उपमामुखेन भूयो व्यवहृतोऽस्ति। तथा उपमाप्रियकविना वर्णितम् -

"तन्वी श्यामा शिखरदशना पक्कविम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणीप्रेक्षणा निम्ननाभिः ।
श्रोणीभारादलसगमना स्तोकनम्रा स्तनाभ्यां
या तत्र स्याद्युवतिविषये सृष्टिराद्येव धातुः"[1] ।।

---

[1] मेघदूतम्, उत्तरमेघः २८

नारीसौन्दर्यस्य एतादृशी अपरूपवर्णना संस्कृतसाहित्यस्य सर्वत्रैव उद्धृतिरूपेण दृश्यते। वस्तुतस्तु अनया वर्णनया कविः पद्मिनीनारीलक्षणयुक्तायाः यक्षभार्यायाः रूपं चित्रितवान्। अत्र 'श्यामा' शब्दप्रयोगेण तप्तकाञ्चनवर्णा बोध्यते। तथोच्यते भट्टिकाव्यस्य ५/१८ इति श्लोकस्य भरतमल्लिकमहोदयकृतटीकायाम्-

"शीते सुखोष्णसर्वाङ्गी ग्रीष्मे च सुखशीतला।
तप्तकाञ्चनवर्णाभा सा श्यामेति कथ्यते"[2]।।

पुनश्च उज्जयिन्याः रमणीगणस्य रूपसंस्कारः तथा केशसंस्कारः कथं भवतीति वर्णनोऽपि तत्र विद्यते। तत्र प्रासादस्थाः योषितः अलक्तरागैः तासां पदयुगलं रञ्जयन्ति, सुगन्धिधूपैः केशसंस्कारं कुर्वन्ति च। पुनश्च गन्धवतीनद्यां स्नानसमये नार्यः सुगन्धिद्रव्यैः गात्रसंस्कारमपि कुर्वन्ति। गगने विचरणरतः मेघः उज्जयिनीनगर्योः उपरितः सर्वं पश्यति। योषितां सोन्दर्यदर्शनेन तस्य क्लान्तिमपि दूरीभवतीति यक्षस्य चिन्तनम्। अनया वर्णनया रमणीनां सौन्दर्यवर्धकप्रसाधनव्यवहारस्य ज्ञानं लभते। तत्र कविना भणितम् -

"जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः।
हर्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदं नयेथाः
लक्ष्मीं पश्यन् ललितवनितापादरागाङ्कितेषु।।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिरगन्धवत्या-
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः"[3]।।

---

[1] मेघदूतम्, उत्तरमेघः, श्लोकः २१

[2] द्रष्टव्यम, मेघदूतम, उत्तरमेघः, सत्यनारायणचक्रवर्तिना सम्पादितम्, पृष्टाङ्कः - २८८

[3] मेघदूतम्, पूर्वमेघः - ३३, ३४ (श्लोकार्थः)

तत्र अभिसारिकाणां रमणीनां गमनागमनादिनां वर्णनमपि अत्र काव्ये परिलक्ष्यते। तथा ध्वनितं मेघदूते-

"गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः।
सौदामन्या कलकनिकषपस्निग्धया दर्शयोर्वी
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मास्म भुर्विक्लावास्ताः"[1]।।

पुनश्च अलकायाः कामिनीनां रात्रीकालिनाभिसारस्य सज्जानां वर्णनमप्यत्राऽस्ति। प्रातः तासां अवशिष्टप्रसाधनस्य चिह्नानि राजममार्गे दृश्यते। तथा अभिव्यञ्जितम्-

"गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च।
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम्"[2]।

पतिविरहेण मनोकष्टात् यक्षस्य पत्नी क्षीणा जातेति मेघं प्रति यक्षस्य वार्तया तस्य पल्ल्याः शारीरिकी अवस्था कीदृशी भविष्यति, चित्तस्य अवस्था वा कीदृशी भविष्यतीति विषये स्त्रीणां शरीरं मनश्च कीदृशं भवेदिति विषये अवधारणा प्राप्यते।

पुनश्च स्त्रीणां सौन्दर्यचर्चाविषयेऽपि अत्र विविधाः श्लोकाः दृश्यन्ते। तेषु श्लोकेषु अन्यतमः श्लोकः-

"हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः।
चूडापाशे नवकुरुबकं चारुकर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम्"[3]।।

---

[1] मेघदूतम्, पूर्वमेघः ३८

[2] मेघदूतम्, उत्तरमेघः - ११

[3] मेघदूतम्, उत्तरमेघः - २

पुनश्च सकलसौन्दर्यानामधिष्ठानमलकापुरी। तत्र नारीकुलः कल्पवृक्षात् इच्छानुसारेण पर्याप्तरूपेण वसन-भूषण-अलक्तक-नवपल्लवेन सह पुष्पादीनि सर्वमेव प्राप्तवती। तस्य वर्णना क्रियते कविना-

"वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्ष
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान्।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्याञ्च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः"।।

विरहिनी यक्षपत्न्याः विरहव्रतपालनस्य चित्रमप्यत्र विद्यते। पतिविरहेन सा महता दुःखेन दिनातिपातं कृतवती। विरहशोकेन मुह्यमाना सा शिशिरमथितपद्मिनीवदु दृश्यते। निरन्तराश्रुपातेन तस्याः उच्छूननयनयुगलं भवति, तस्याः अधरोष्ठं विवर्ण्य जातम्। सा दीर्घकालं यावत् केशसंस्कारविहीना तिष्ठति। विरहेण सा अतिकष्टेन दिनं यापयतीति वर्ण्यते। तत्र कविना चित्रितम् -

"तां जानीथाः परिमितकथां जीवितं मे द्वितीयं
दूरीभूते मयि सहचरे चक्रवाकीमिवैकाम्।
गाढोत्कण्ठां गुरुषु दिवसेष्वेषु गच्छत्सु बालां
जातां मन्ये शिशिरमथितां पद्मिनीं वान्यरूपाम्।।
नूनं तस्याः प्रवलरुदितोच्छूननेत्रं प्रियायाः
निःश्वासानामशिशिरतया भिन्नवर्णाधरोष्ठम्।
हस्तन्यस्तं मुखमसकलव्यक्ति लम्बालकत्वा-
दिन्दोर्दैन्यं त्वदनुसरणक्लिष्टकान्तेर्विभर्त्ति।।
आलोके ते निपतति पुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती।
पृच्छन्ती वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वां हि तस्य प्रियेति।।
शेषान् मासान् विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः।

आधिक्षामां विरहशयने सन्निषण्णैकपार्श्वाँ
प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः"[1]।

यक्षः मेघमाध्यमेन तस्य आश्वासवार्ता प्रेषितुमिच्छन् कथितवान् यत् एकवेणीधारिण्या केशसंस्कारविहीनया विरहव्रतचारिणीयक्षपत्न्या सह पुनर्मिलनसमये तस्याः केशसंस्कारं स यक्षः करिष्यतीति। अनेन वर्णनेन पतिविरहिनीनारीणामेकवेणीधारणस्य धारणा लभ्यते। अभिज्ञानशकुन्तलेऽपि कविः पतिपरित्यक्तशकुन्तलायाः एकवेणीधारणस्य वर्णना उपस्थापितवान्। तथोच्यते मेघदूते-

"आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम्।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत् सारयन्तीं
गण्डाभोगात् कठिनविषमामेकवेणीं करेण"।।

वस्तुतस्तु उत्तरमेघस्याधिकांशश्लोकेषु यक्षपत्न्या विरहावस्था चित्रिता। अतएव मेघदूतस्य उत्तरमेघान्तर्गतेषु लोकेषु स्त्रीचर्या वर्णिता। अर्थसादृश्यवशात् कतिपयानामुल्लेखोऽत्र क्रियते।

।।इति शम्।।

परिशीलितग्रन्थसूची-

- शास्त्री, दयाशंकरः, **मेघदूतम्**, चौखम्वा सुरभारती प्रकाशन, २०२१ : वाराणसी
- बलवानसिंहयादवः, **मेघदूतम्** , चौखम्वा संस्कृत भवन,२०२० : वाराणसी
- दयालः, लोकमणिः, **संस्कृतसाहित्येतिहासः**, चोखम्वा कृष्णदास अकादेमी, २०१९ : वाराणसी

---

[1] मेघदूतम्, उत्तरमेघः २२-२४, २६ (श्लोकार्थः), २८ (श्लोकार्थः)

- मिश्र, रामचन्द्रः, **संस्कृतसाहित्येतिहासः,** चौखम्वा विद्याभवन २०१० : वाराणसी
- दास, देवकुमार, **संस्कृत साहित्येर संक्षिप्त इतिहास**, संस्कृत पुस्तक भाण्डार, १४०४ : कलिकाता, (बङ्गीयपुस्तक)
- तक्रवर्ती, सत्यनारायण, **मेघदूत ओ सौदानणी** , संस्कृत पुस्तक भाण्डार, २००४ : कलिकाता, (बङ्गीयपुस्तक)
- भट्टाचार्य, पार्वती चरण, मेघदूत परिचय, संस्कृत पुस्तक भाण्डार, १३८९ : कलिकाता, (बङ्गीयपुस्तक)
- वन्दोपाध्याय, धीरेन्द्रनाथ, **संस्कृत साहित्येर इतिहास,** पश्चिमबङ्ग राज्य पुस्तप पर्षद्, १९८८ : कलिकाता, (बङ्गीयपुस्तक)

* * * * *

आधुनिकसंस्कृतसाहित्येषु प्रमु खसंस्कृतकवयित्रीणाम् अवदानम्

दिपाली बाहादुर
शोध छात्रा - संस्कृत विभाग
डॉ. हरीसिंहगौर विश्वविद्यालय सागर (म.प्र.)

शोधसारांशः -

अस्माकं भारतवर्षस्य प्राचीनतमा भाषा संस्कृतभाषा। अधुना इयं भाषा खलु देवभाषारूपेण पूज्यते। परन्तु एकदा भारतबर्षे प्रचलितासु कथ्यभाषासु इयं भाषा अग्रगण्या आसीत्। अनया भाषया विरचितं साहित्यं संस्कृतसाहित्यमिति कथ्यते। इयं भाषावत् इदं संस्कृतसाहित्यमपि भारतवर्षस्य प्राचीनतमं साहित्यम्। अनया भाषया हि पृथिव्याः प्राचीनतमः साहित्यग्रन्थः तया ऋग्वेदो रचितः वर्तते। अस्य संस्कृतसाहित्यं लौकिकसंस्कृतसाहित्यम् आधुनिकसंस्कृतसाहित्यं चेति।

अधुना भव आधुनिक- इति विग्रहे अधुना- शब्दस्योत्तरं ठञ् प्रत्ययेन आधुनिक शब्दः निष्पन्नः भवति। अधुना शव्दस्य अर्थः साम्प्रतिम्,इदानीम्। आधुनिकस्य कृते आङ्गलभाषायां "Modern" इति शब्दः प्रयुज्यते। "Modern" इत्यस्माच्छब्दात् "Modernity, Modernism, Modernization" चेत्यादिकाः शब्दाः जाताः। पुनश्च अधुनेति शब्दात् आधुनिकः इत्यनेनाधुना यद्भवति तदेव बोध्यते। इदानीं काले रचितं संस्कृतसाहित्यमाधुनिक-संस्कृतसाहित्यमिति नाम्ना परिचियते। इयम् आधुनिकता तु कालसापेक्ष्यैक। मनुष्याणां समीपे यदभिनवः तत्तु आधुनिकः। काले काले अस्य अभिनवत्त्वस्य विवर्त्तनं दृश्यते।

अद्यतनीनः समाजः आधुनिक्यम् एव भजमानः दृश्यते। एषा एव वर्तमानसमाजस्य स्थितिः यत्र वालिकाः वालकैः सह शिक्षां प्राप्नुवन्ति। ताः अपि तैः सह सस्कन्धं भूत्वा समानानि कार्याणि कुर्वन्ति आत्मनिर्भराश्च

भवन्ति । वेदाध्ययनादिकं कार्यते स्म अपि च तत्र पौराहितकर्मणा सह वस्त्रवयनं, रथचालनम्, युद्धे, शस्त्रप्रयोगादिकम् इत्यादि कर्मसु अपि प्रवीणाः भवन्ति स्म ।

आधुनिक संस्कृतसाहित्यसस चर्चायां पण्डिताक्षमाराव को न जानीते सा भारत कोकिला सरोजिनी नायडु इव भारतीय स्वतन्त्रान्दोलने अपि च साहित्यसर्जने समान रूपेण योगदान कृतवती वक्तु शक्यते यत् सा प्राच्यपाश्चात्य संस्कृते साहित्यस्य च समन्वितस्वरूपा एवास्ति । पण्डिता क्षमाराव महाराष्ट्रस्य सामन्नबाड़ी जिलाया अन्तर्गते बांवोली इति नामक ग्रामे 1890 तमे वर्ष जुलाई मासस्य चतुर्थतमदिवसे अजायत । पण्डिता क्षमारावस्य निमूलिखिता काव्यरचना सन्ति यथा -

सत्याग्रहगीता , **कथापंचकम** , **मीरालहरी** , **तुकारामचरितम्** , **शंकरजीवनाख्यानम्** इत्यादय। श्रीमती कमलारत्नम्, डॉ. कमला पाण्डेय , डॉ. नलिनी शुक्ला, डॉ. मनोरमा तिवारी, डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी ,डॉ. वनमाला भवालकर, डॉ. शशि तिवारी इत्यादीन् अनेकान् विचारान् वयं आधुनिकेषु संस्कृतविदुषीणां कृतिषु अवलोकयामः। एते विचाराः प्राचीनेषु संस्कृतवाङ्मयेषु एव पुनरपि वर्तमाने काले वार्तमानिकैः चिन्तकैः त एव विचाराः यदा नवीनेषु भावेषु आयान्ति तर्हि ते प्रभावुकाः भवन्ति। ते विचाराः यदि, स्त्रीमुखात्रिःसृतास्युस्तर्हि अमृतरसास्वाद इव आकर्षका भवन्ति।

श्रीमति कमलारत्नम्-

स्वर्गीया श्रीमति-कमलारत्नम्-महोदया द्वारा रामायणमधिकृत्य अनेके लेखाः पत्रिकासु प्रकाशिताः अतः वक्तुं शक्यते यत् तया रामायणस्य प्रभावविस्तारः कृतः। अपि च तया कालिदासस्य लोकप्रियता विदेशेषु प्रसृता तत्रापि तस्याः प्रमुखा भूमिका आसीत्। तस्याः जन्म उत्तरप्रदेशस्य प्रयागराजनगरे 1914 तमे वर्षे अभवत्। सा 1937 तमे वर्षे लक्ष्मणपुरविश्वविद्यालयतः सानोकोत्तर-परीक्षाम् उत्तीर्णवती। अनेकानि पदकानि च प्राप्तवती। सा न केवल अस्याम् परीक्षायां प्रथमस्थानं प्राप्तवती

अपि तु पूर्वभूतानि परीक्षा प्रतिमानानि अपि भग्नापि। सा आङ्ल जर्मन, फ्रेंच, रूसी , स्पैनिश जापानी इत्यादिभिः भारतीयभाषाभिः सह हिन्दी, मराठी, गुजराती, तेलेगु, उर्दू, इत्यादिषु विदेशीयभाषासु वार्तालापं लेखनं च कर्तुं समर्था आसीत। तस्याः विरचिताः संस्कृत-रूपकाः यथा-

1. गणयंछागम्
2 .नचिकेत-यमसम्वादम्
3 .विवेकानन्दविजयम
4 .विवेकानन्दस्मृति
5 . विक्रमवेताल नाटिका

"संस्कृत-प्रतिभा "पत्रिकायां 1976 तमे वर्षे, "अहम्" कविता प्रकाशिता। एषा कविता विशालतमा आसीत्। अस्याम् कवितायाम् अज्ञानशक्तिं प्रति जिज्ञासाभावः प्रकटनम् अस्ति। अलौकिकभावयुता गूढानुभावोदभाविका उद्घाटने एषा कविता अद्वितीया अस्ति। मानवस्य परमं च लक्ष्यं ईश्वरं प्राप्य शाश्वतनानन्दं प्रतिरेव विद्यत इति कवितायां सारः।

❖ डॉ. कमला-पाण्डेयः

डॉ कमला-पाण्डेयः उत्तराखण्डस्य अन्तर्गते कुर्माञ्चलस्थित नैनीतालजनपदे अजायत्। तस्याः पूर्वजनानां मूलनिवासः अल्मोडा जनपदस्य पाटियाग्रामे आसीत्। वर्तमाने सा नैनीताल जनपदान्तर्गते भवालीग्रामे अस्ति। तस्याः पितुः नाम स्वर्गीय-नीलाम्बर-दत्त- पाण्डेयः विदयते। सः वनसंरक्षपदप्रतिष्ठितः आसीत्। मातुः नाम श्रीमती पंचाननी देवी आसीत सा कर्मठा, साहसिनी महिला आसीत्। डॉ. कमलापाण्डेयस्य संस्कृतकाव्यरचनाः निम्नलिखितरूपेण विद्यन्ते।

गंगा-दण्डकम्- अस्मिन् काव्ये दण्डकवृत्ते गङ्गायाः प्रशंसाम् अस्ति। स्वोपज्ञसंस्कृतटिप्पण्या साहित्यनुवादेन च सह गंगादण्डकं वाराणसीतः एव प्रकाशितं विद्यत।

रक्षतगङ्गम् - रक्षतगङ्गम् इति महाकाव्ये एकादशाः सर्गाः सन्ति वस्तुविन्यास अनुसारेण इदं काव्यं चतुर्षु खण्डेषु विभक्तमस्ति। प्रथमः उत्पत्तिखण्डः प्रथमखण्डस्य प्रथमसर्गे पौराणिकमतम्। द्वितीयसर्गे आधुनिकमतानां काव्यात्मिकनिरुपणं वर्तते। अस्मिन् क्रमे हिमालय-देवप्रयागवर्णनम्, ऋषीकेश-कर्णपूर-वर्णनम्, तीर्थराज प्रयाग-विन्ध्वर्णनम्, वाराणसी वर्णनम् विहारप्रदेश वर्णनम्, वंगभूजंगासागर वर्णनम् इत्यादिकं वर्तते। तृतीयः आध्यात्मिकखण्डः। अस्मिन् खण्डे आध्यात्मिकं वर्णनं प्राप्यते। अस्मिन् खण्डे नवसर्गाः सन्ति। चतुर्थखण्डे दशमसर्गाः सन्ति। अस्मिन् खण्डे गंगाया प्रदूषणं वर्णयति। पञ्चमखण्डे एकादशाः सर्गाः सन्ति। अस्मिन् खण्डे प्रदूषणनिवारणवर्णनं वर्तते। अन्ते च महत्वपूर्ण परिशिष्टम् अस्ति। यत्र मानचित्राणि सन्ति अनेकानां महत्वपूर्णानां विषयानाम् आङजलभाषायां संस्कृतभाषायां च वर्णनं विदयत। एकं मानचित्रं तथापि यत्र हिमालयप्रदेशे नदीनां स्थितिः प्रदर्शिता अस्ति। अस्य महाकाव्यस्य हिन्दी अनुवादः आङ्लभाषायाम् अनुवादेन सह डॉ. अनुराधा वैनर्जी द्वारा अस्ति। अयं ग्रन्थ 1999 तमे वर्षे प्रकाशितः अस्ति। अस्य ग्रन्थस्य प्रकाशक श्रीमता पब्लिकेशनस् हनुमानघाटः वाराणसी विदयत। डॉ. कमलापाण्डेय महोदयाया संस्कृतभाषायां स्फुटकाव्यरचनाः अपि यत्र- तत्र प्रकाशिताः सन्ति। या संस्कृतहिन्दी-उभयोः भाषयोः सन्ति।" विश्वभाषा" वास्तुशास्त्रविशेषाकः इत्यादिषु पत्रिकासु तासां रचनाः वयं द्रष्टुं शक्नुमः तत्र गंगाशतकम् विश्वभाषा पत्रिकायां प्रकाशितमासीत् अपि च नारीत्रिस्कन्ध-इति वास्तुशास्त्रविशेषांके दृश्यते। एवमन्यास्वपि पत्रिकासु तासां प्रकाशितरचना विदयन्ते प्रकाशिताः सन्ति, भवन्ति च।

उत्तरप्रदेशस्य इटावामण्डलस्य केंघेसीग्रामे 1940 तमे वर्ष जुनमासस्य अष्टमदिनाङ्के डॉ. नलिनी शुक्लायाः जन्म अभूयत्। तस्याः पिता इन्द्रदत्तः तथा माता पद्मावती आसीत्। तस्याः पिता धार्मिकः दयालुः विद्वान् च आसीत्। शैशवकाले तस्याः पिता दिवं गतः। पितृहीनायाः तस्या

मातुः संरक्षणे विकास अभवत्। डॉ. नलिनीशुक्ला-महोदया द्वारा हिन्दी-भाषायां लिखितानि काव्यानि यथा-

1 .नीरवगान (गीतिकाव्यम्)
2. कल्लोलिनी (गीतिकाव्यम्)
3. भारतरत्न जवाहर (खण्डकाव्यम्)

अंग्रेजीभाषायां विरचितानि काव्यानि यथा-

1.Contribution of Writers to India Freedom Movement
2.Sanskrit,as a cohesive forces of National Integration and its International Value

संस्कृत -नाट्यकृतयः

1 राधानुनयः
2 पार्वतीतपश्चर्या
3 मुक्तिमहोत्सवः
4 कथासप्तकम्- इति संस्कृत कथा संग्रहः अस्ति। यस्मिन् आधुनिक- जीवनसम्बद्धाः सप्तकथाः दृश्यते। संस्कृत- काव्यरचनानि यथा-

1 **भावाञ्जलिः** अयं ग्रन्थः 1977 तमे वर्षे प्रकाशितम्। शक्तियोगाश्रम-नानारावघाट छावनी कर्णपुरनगरात् प्रकाशितोऽभवत् ग्रन्थोऽयम्। एतत् स्तोत्रकाव्यं यस्मिन् एकविंशति स्तोत्रेषु नानादेवताः स्तुयन्ते।

2 **वाणीशतकम्**- अस्मिन् ग्रन्थे अष्टोत्तरशतश्लोके वाग्देव्याः स्तुतिः क्रियते। 1981 तमे वर्षे शक्तियोगाश्रम-नानाराव-घाट-छावनी-कर्णपुरनगरात् प्रकाशितोऽयं ग्रन्थः। स्व खलु भवत्याः रचनासु विविधता अस्ति। भावजगत सरसता भव विदयते। विचार जगतः सूक्ष्मतायाः वर्णनमस्ति। कार्यक्षेत्रीय-विविधता, कर्मठता च दृश्यते।

❖ **डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी**

डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी उत्तरप्रदेशस्य इटावामण्डले अजायत्। तस्याः पितुः नाम आसीत् आचार्यः रमेश-वाचस्पति शास्त्री। एवं मातुः नाम डॉ. शारदा पाठकः आसीत्। डॉ. महाश्वेता चतुर्वेद्याः पतिः डॉ. उमाकान्त चतुर्वेदी बरेली महाविद्यालये संस्कृत विभागाध्यक्षः बभूव।

चतुर्वेदी-महोदया अंग्रेजी-संस्कृत-हिन्दी इति तिस्रभाषायां स्नातकोत्ररं कृतवती। साहित्याचार्यः संगीत-प्रभाकरः डिप्लोमा- एल. एल. बी.- पी. एच. डी- डी. लिट इति उपाधिश्च प्राप्तवती। सा "मन्दाकिनी" पत्रिकायाः संस्थापिका सम्पादिका च अभवत्। ज्ञान- ज्योति, उभरते स्वर, स्मृति, मनीषा-आदीनां पत्रिकाणां भवती सम्पादिका अभवत्। भवत्याः लेखाश्च "अमर उजाला"," हिन्दुस्तान टाईम्स"," हिन्नुस्तान"," दैनिक जागरण" ,"आज"," वेद- प्रदीप" इत्यादिषु समाचार -यज्ञेषु सर्वदाः यथासमये प्रकाशिताः भवन्ति स्म । भवत्याः हिन्दी भाषायां प्रकाशितानि पुस्तकानि यथा-

1 विवेक- विजयम् (महाकाव्यम्)
2 उपमन्यु परीक्षा (काव्यम्)
3अग्नि-सिन्धु गुरुदक्षिणा
4 टूटते स्वप्न
5 मृगतृष्णा
6 सर्पदंश
7 यजुर्वेद-रहस्य
8 यजुर्वेदस्य काव्यानुवादः
9 वेदायन
10 मेरे गीत तुम्हारे गीत
11 ज्योति- कलश
12 जियो देश के हित
13 सुनहरे क्षितिज्ञ के पंछी (कहानी- संग्रह)
14 उल्टा रास्ता
15 तीसरी सुहागरात (कहानी संग्रह)

तस्याः प्रकाशितानि उपन्यासानि यथा-

1 बन्दे आँखें
2 टुटा पुल
3 वीरांगना
4 पायलट शेफाली
5 गजल-संग्रह-भीगती पलकें बुलाती

6 पत्थरों की कोख 7 छायावाद

डॉ. महाश्वेता चर्तुवेद्याः प्रकाशितानि आङ्गलभाषायां विरचितानि काव्यानि यथा-

1.Voice of Agony throbbing-Lyre
2.Roaming Arma
3.IY of Melody
4.Eternal-pilgrim
5.ives of joy
6.Immortal Wings
7.Stone-god
8.back to the vedas
9.The streams of supraconsciousness (prose)

संस्कृत-निबन्ध-संग्रह मंथाचलः किमर्थ कोSस्ति? अपि भवती प्रकाशितवती अस्ति। अस्य निबन्धाः प्रायशः पत्र पत्रिकायां प्रकाशिताः अभवत्। संस्कृत काव्यरचना काव्याSमृतमपि मन्ये प्रकाशिता अस्ति। अस्मिन् काव्यं संस्कृत-पद्यात्मकाणां संग्रहः विद्यते। अस्मिन् काव्ये प्रायः सप्तति पद्य रचनानां संकलनम् अस्ति। नानाविषयान्नाधृत्य अत्र कविताः दृश्यन्ते। यथा- ऋतवः, वेदाः, महापुरुषाः, भारतीय संस्कृतिः, ईशावन्दना, नारी, गुरुमहिमा, हिन्दीभाषाः, विज्ञानःप्रगतिः, विंशतिः, अनुशासनम्, अहिंसा इत्यादीनां विषयाणामुपरि इदं पद्य संकलनं विद्यते। एताः कविताः अनेन संस्कृत पत्र-पत्रिकासु अपि प्रकाशिताः कदाचित् अभवन्मेव। यथा-भारतोदयः, गाण्डीवम् , विश्वसंस्कृतम्, संगमनी, पारिजातम् इत्यादिषु। काव्यामृतामित्यत्र संकलितानि पद्यानि निम्नांकितासु संस्कृत-पत्रिकासु प्रकाशिताः यथा-

1. राष्ट्रमाता इन्दिरा गांधी संगमनी नवंबर 1987

2. भारतीयाः वयं भारतीयाः वयम् (पारिजातम्) अगस्त सितेम्बर-1992 पृ.78

3. व्यस्तता पारिजातम अगस्त-सितम्बर 1986 पृ.30

4. राष्ट्रनेता मण्डूकसदृशै भवेत्- गाण्डीवम्- 12 जुलाई 1983 पृ. 4

❖ डॉ. मिथिलेश कुमारी

डॉ. मिथिलेशकुमारी मिश्रायाः जन्म सन्नानकामनया कतिधा देवार्चनानन्तरं उत्तरप्रदेशस्य हरदोई मण्डलस्य गढिया खड्डीपुरे 1935 तमे वर्षे दिसेम्बरमासस्य एक दिनाङ्के अभवत्। तस्याः पिर्तुनाम
पण्डित रामगोपालमिश्रास्तथा मातुः नाम श्रीमती भगवती देवी मिश्रा। तस्याः पिता पंडित रामगोपाल मिश्र एक जौहरी आपणे कार्यं करोति स्म। तस्याः उपन्यासं यथा-1. वैरागिनम् सुजानम् उपरि घासीराम विश्वविद्यालये महाकाव्यानि -1. देवयानी 2. दाक्षायणी तथा खण्डकाव्य-1. श्रद्धांजलि 2. साकेत सेविकाम् उपरि उस्मानिया विश्वविद्यालये शोधार्थिणा शोध- प्रबन्ध लिखित्वा "पी. एच. डी उपाधिं प्राप्तवती। एताभ्यः कृतिभ्यः अतिरिक्तं-

1.कीचकवध (नाटकम्)

2.धनंजय(नाटकम्)

3.अस्थिदान(उपन्यासः)

4.शिलाभट्टरिका (उपन्यासः)

तथा नाटककार रामकुमार वर्मा तथा "प्रसाद एण्ड टैगोर" सौन्दर्यशास्त्र इति पुस्तकानि हिन्दी भाषायां लिखितवती । योगी एवं इण्डिया इति इयम् आङ्गलकाव्यं तेन लिखितम्। "योगी" इति काव्यं भर्तृहरिम् आधारिकृत्य वर्त्तते। अपि च एवं "इण्डिया" इति काव्यं लघु -लघु कवितानां संग्रहः विद्यते। तस्याः ग्रन्थेषु हिन्दी संस्कृतभाषायोः अपि विविधता वर्तते। तस्याः वैदुष्यमूलक-संस्कृतकृतिषु "आम्रापाली" एका सरस नाटिका या वनस्थली विद्यापीठे स्नातकपाठ्यक्रमे निर्धारिता अस्ति। "दशमस्त्वमसि" दशैकाङ्कनाटकसंग्रहश्च तस्याः अस्ति। अस्मिन् एव क्रमे-

1. तुलसीदासः (नाटकम्)

2. जिगीषा (उपन्यास)

3.लघ्वी (लघुकथांना संग्रहः)

4.आधुनिका (कथासंग्रह) आदि परिगणनीया सन्ति। डॉ. मिथिलेशकुमारी मिश्रायाः विरचितानि संस्कृत काव्यानि यथा-

1. सुभाषितसुमनोऽञ्जलि-

नीतिपरक सुभाषित श्लोकेन रचिता (अयं एवे मुक्तक काव्यम)। पटना नगरस्य सैदपुरस्थाने "वाणीवाटिका" प्रकाशने प्रकाशिता।

2. व्यासशतकम्-

अस्मिन् ग्रन्थे अष्टादशपुराणानां महर्षि व्यासस्य जीवनचरितस्य वर्णनं परिलक्ष्यते। अयं एक-स्तुति-परक काब्यम् अस्ति। उत्तरप्रदेशस्य" संस्कृत अकादमी "द्वारा अयं ग्रन्थ पुरस्कृतः। पटनानगरस्य सैदपुरस्थाने 1982 तमे वर्षे वानीवाटिका- प्रकाशने विभागे प्रकाशितः अयं ग्रन्थः।

3 .चन्द्रचरितम्-

चन्द्रचरितम एकं बृहत् महाकाव्यमस्ति। अस्मिन् महाकाव्ये दशसर्गाः 1100श्लोकाश्च सन्ति। सुभाषचन्द्रवोसस्य जीवनमाश्रित्य विरचितं काव्यम् इदम्। 1982 तमे वर्ष वानीवाटिका- प्रकाशनविभागतः पटनानगरस्य सैदपुरस्थाने प्रकाशितः अयं ग्रन्थः। वर्तमाने सा "परिषद्-पत्रिका "संस्कृत संजीवनम् " सारस्वतम्"-संस्कृत पत्रिकायाः सम्पादिका अस्ति। सा अद्यापि अनवरत साहित्य साधना पथि अग्रसरा वरीवर्त्ति।

वनमाला भवालकार-

डॉ. वनमाला भवालकरः 1914 तमे वर्षे कर्णाटकनगरस्य बेलगाँव ग्रामे अजायत्। तस्याः मातृभाषा कन्नड असीत्। परन्तु शिक्षा दीक्षा तस्या मराठी भाषायाम् अभवत्। वाल्यावस्थातः सा प्रतिभाशलिनी आसीत्। माध्यमिकातः स्नातकोत्तर-पर्यन्तम् सर्वस्यां परीक्षायां सा प्रथम श्रेण्याम् उत्तीर्णा। तस्याः विरचिताः पञ्चसंस्कृतनाट्यरचनाः उपलभ्यन्ते-

1. रामवनगमनम्
2. पार्वतीपरमेश्वरीयम्
3. पाददण्डः
4. सीताहरणम्

5. अन्नदेवता

नवशोधच्छात्रा भवत्याः निर्देशने पीएच्.डी. उपाधि प्राप्तवन्तः। भवत्याः अन्यत्रापि रुचिः दृश्यते यथा- योगासने ज्योतिषविषये उद्यान इत्यादिषु रुचिः अस्ति। हिन्दी-संस्कृत-आङ्गल-कन्नड-मराठी इत्यतिरिक्तं भवती जर्मनभाषायाम् अपि निपुणा असीत्। डॉ. वनमाला भवालकरस्य द्वौ पुत्रौ तिस्र कन्याः सन्ति। अग्रजः पुत्रः वैज्ञानिकः अस्ति, तिस्र अपि कन्याः साहित्यलेखने रुचिं लभन्ते। छात्रावासस्य बालिकाः भवतीं पितृत्या इति सम्बोधनेन सम्बोधयन्ति स्म येन बालिकानां प्रति तस्याः स्नेहः स्वत एव दृश्यते। तस्याः संस्कृतकाव्यरचना यथा-

1.श्रीसत्यसाई आचारसंहिता

उपसंहाररूपेण वक्तुं शक्यते यत् आधुनिककविभिः न केवलं संस्कृतस्य लोकप्रियश्लोकानां प्रयोगः कृतः अपितु हिन्दीभाषायाः मात्रिकछन्दः, उर्दूभाषायाः गजलः इत्यादयः अन्यभाषाः स्वीक्रिय, कजरी, लावणी इत्यादीनां लोकगीतानां अनुकरणं कृत्वा संस्कृतकाव्यं लोकप्रियं सर्वस्वीकृतं सर्वग्राह्य च कृता। आधुनिककविनां काव्यग्रन्थेषु भाषा व्यावहारिका, समासरहिता, ह्रस्वसमासयुक्ता वा इति वक्तुं शक्यते। आवश्यकतानुसारं सुभाषितानां,सुक्तियाणां मुहावराणां च प्रयोगेन अभिव्यक्तिः प्रभावी अभवत् तथा च स्वाभाविकः, प्रवाहितः, भावात्मकः, उपदेशात्मकः, नीतिपूर्ण,औजःपूर्णः हास्यप्रधानः, व्यंग्यात्मकः च इति कारणेन पाठकानां संस्कृतकाव्यस्य अध्ययनं प्रति आकर्षणं वर्धितम् अस्ति। एवं प्रकारेण आधुनिकमहिलाकविनां काव्यकृतीनां विश्लेषणं मूल्याङ्कनं च प्रस्तुतं कृत्वा नैरन्तरेन आधुनिकसंस्कृतसाहित्यस्य माह्मात्वं वा गुरुत्वं वर्धितवती।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. आधुनिक संस्कृत कवयित्रियॉ (डॉ . अर्चना कुमारी दुबे)

2. आधुनिक संस्कृत साहित्य की महिला रचनाधर्मिता (डॉ. अरूण कुमार निषाद)

3. संस्कृत कवयित्रियों का व्यक्तित्व एवं कृतित्व (डॉ. कैलाशनाथ द्विवेदी

4. भारतवर्ष आधुनिकसंस्कृतसाहित्यम् विहङ्गदृष्ट्या परिशीलनम् (शुभ्रजित् सेन)

5. आधुनिक संस्कृत साहित्य (ऋता चट्टोपाध्याय)

6. आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास (डॉ. मिथिलेश पाण्डेय)

7. आधुनिक संस्कृत साहित्य(मैत्रेयी कुमारी)

8. आधुनिक संस्कृत साहित्य-सङ्ग्रह (डॉ.राजमंगल यादव)

महाभारतकालीन विदुषियाँ एवं धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र के संवर्धन में उनका योगदान

सौ. मृणालिनी वाघमारे शोधछात्रा
वसंतराव नाईक शासकीय कला व समाजविज्ञान संस्था, नागपुर
डॉ. पल्लवी कर्वे, सहायक प्राध्यापक
वसंतराव नाईक शासकीय कला व समाजविज्ञान संस्था, नागपुर

सारांश

राष्ट्रस्य सुदृढा शक्तिः समाजस्य च धारिणी,
भारते संस्कृते नारी, माता नारायणी सदा।।

"नारी" भारत की शक्ति का स्त्रोत हैं। राष्ट्र को सुदृढ़ कर समाज की धारणा बनाने वाली ये नारी नारायणी समान हैं। राष्ट्र संवर्धन में अपना योगदान विश्व की निर्मिति से ले आज तक देती आई हैं। चार युगों में शक्तीरुपिणी बनके गृह, समाज और राष्ट्र को सवांरने में जुड़ी रही। सतयुग और त्रेतायुग में सर्वत्र आदर्शवाद तो द्वापरयुग के अंत में महाभारत काल में व्यवहारवाद था। रामायण काल में धर्मदंडाधारित राज्यव्यवस्था थी, तो महाभारत काल में ऋषि-मुनि राजाश्रित थे। महाभारत काल में स्वकेंद्रित वृत्ति एवं स्वार्थलोलुपता के समय कई व्यक्तित्व ऐसे हैं जिन्होने राष्ट्रहित, समाजहित और गृहहित को प्राधान्य देते हुए अपना जीवन व्यतीत किया। यहां कित्येक महिलाओं के चरित्र आते हैं जिन्होने धर्म को संभालते हुए अपने वर्तन एवं व्यवहार से सुंदर नीति के आदर्श उदाहरण प्रस्तुत किए एवं तत्कालीन राष्ट्र की वे सुदृढा शक्ती बनीं ।

शास्त्र अर्थात् शास्त्रम् {नपुं} शिष्यतेऽनेन {शास्+ष्ट्रन्}[1] ‘आज्ञा, समादेश, नियम, विधि’[आपटे कोश} यदि यह शास्त्र शब्द धर्म के साथ जुडें तो धर्मशास्त्र नीति से जुडें तो नीतिशास्त्र कहलाता हैं। धर्मशास्त्र परमार्थ परम कल्याण की, नीतिशास्त्र हमें उद्धार करने वाले आचरण की शिक्षा देता हैं। इनका अवलंब कर महाभारतकालीन विदुषीयों ने समस्त विश्व के समक्ष अनेकानेक आदर्श प्रस्तुत किये। गृहहित, समाजहित और राष्ट्रहित में निर्णय लेते हुए अपने वैयक्तिकसुख त्याग आदर्श रखा।

कूटशब्दः- विदुषी, धर्मशास्त्र , नीतिशास्त्र

प्रस्तुत शोध के उद्देश्यः-

इस शोधपत्रद्वारा महर्षि व्यासविरचित महाभारत ग्रंथ में वर्णित नारी चरित्र का अभ्यास करने के प्रमुख उद्देश्य यह हैं-

१] वर्तमान में नारी अपनी कर्तव्य के विषय में विचलित दिखाई देती हैं। वह धन को प्राधान्य देनेवाली, प्रायः राष्ट्र और समाज के प्रति उदासीन, विभक्त परिवार आदि में उलझी हुई हैं। इन सब में से अपनी भूमिका को समर्थतासे समझ सके और निभा सके।

२] सर्वसामान्य महिला अपनी भूमिका को सुदृढ एवं सक्षम करते हुए “विश्वगुरु भारत” संवर्धन में अपना योगदान दे सके।

३] महाभारत में वर्णित अपरिचित चरित्र को सर्वसम्मुख लाना इत्यादि। विदुषी[2] शब्द यह विद्वान् शब्द का स्त्रीलिंगी रूप हैं। अपने ज्ञान का उपयोग व्यवहारिक समस्या निवारण करने के लिये करना। अपने अध्ययन अभ्यास से अर्जित ज्ञान-तेज द्वारा दुःस्थिति को सुस्थिति कि ओर

१.शास्त्रम् {नपुं.} शिष्यतेऽनेन {शास् + ष्ट्रन्} 'आज्ञा, समादेश, नियम, विधि'[आपटे कोश}-पृष्ठ संख्या-१०४४

[2] विद्वस्[वि.][विद्+ क्वसु] [कर्तृ.ए,व.पु. विद्वान; स्त्री.विदुषी, न.पु. विद्वत्}-[आपटे कोश]-पृष्ठ संख्या-९६१

ले जाना। धर्माचरण से सुंदर नीति का अवलंबन कर परिवार का आधार बनना, यह भारतीय नारी की विशेषता हैं। ऐसे विशेषों से भरें विभिन्न नारीचरित्र महाभारत में आते हैं। इनका इस शोधपत्र में विचार किया गया हैं।

शास्त्र शब्द धर्म के साथ जुड जाए तो वो 'धर्मशास्त्र' और नीति के साथ जुड जाए तो 'नीतिशास्त्र' कहलाता हैं।

'यतो अभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः' ।[1]

(कणाद, वैशेषिकसूत्र, १ ।१ ।२]

अर्थात् धर्म वह हैं जिससे परमार्थ और परम कल्याण की सिद्धि होती हैं। तारन्ते नित्याचरणे इति नीतिः" ।[2] नीति का अर्थ होता हैं वह आचरण जो हमारा उद्धार करता हैं। संक्षिप्त रूप में धर्मशास्त्र हमें परमार्थ-परम कल्याण की ओर ले जाता हैं; तो नीतिशास्त्र हमें उद्धार करने वाले आचरण की शिक्षा देता हैं।

महर्षि व्यासजी विरचित महाभारत इस आर्षमहाकाव्य में १८ पर्व हैं। उसमें अनेकानेक महिलाओं के चरित्र आते हैं। जिनका अभ्यास कर एवं उस दृष्टि का स्वीकार कर आज की नारी भी अपनी भूमिकाएँ निभाने में अधिक सक्षम हो सकती हैं। वर्तमान समाज में एक ओर महिला अर्थव्यवस्था की प्रमुख धारा में दिखायी देती हैं । हर दिन वे नये नये क्षेत्र भी पादाक्रांत कर रही हैं। तो वही दूसरी ओर साधनों कि अत्यधिक उपलब्धता एवं भौतिक सुखों में उलझ कर उसका लक्ष्य मानो गुणधनांकित पिढी का निर्माण ही हो गया हो। क्या त्याज्य है और क्या ग्राह्य, किससे दूरी बनायी रखनी हैं, किसे समीप रखना हैं, अपत्य संगोपन

---

[1] https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/vaisheshika-sutra-commentary/d/doc427555.html (28/4/2025)

धर्म (पु. ध्रियते लोकोऽनेन, धरति लोकं वा धृ+मन्)- कर्तव्य जाती संप्रदाय आदिके प्रचलित आचार का पालन-संस्कृत हिंदी शब्दकोश

[2] https://www.wisdomlib.org/definition/niti (28/4/2025)

हो या परिवार संवर्धन, समाज धारणा बनानी हो या राष्ट्र उभारना हो, इन सभी कार्यों के सम्बन्ध में अपनी भूमिका से विमन्मुख हो चली हैं।

भारत कि उज्ज्वल परम्परा को देख अगर उसे पुनः राष्ट्रसंवर्धन का हिस्सा बनना हैं तो धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र का दृष्टिकोन इन विदुषियों के चरित्र से प्राप्त कर विश्वगुरू भारत को नए सिरे से सवांरने में वह प्रमुख भूमिका निभा सकेगी।

कन्या, पत्नी तथा माता इनके स्वरूप भारतीय नारी के दर्शन हमें नित्य एक प्रेरणा देते हैं। महाभारत में भी कई उदाहरण हैं, जिनमें हमें नारी का त्याग, समर्पण उत्तेजित करता हैं एवं अपनी भूमिका निभाने में मार्गदर्शन करता हैं। उनमें से एक हैं <u>तपती</u>।

तपती[1]

महाभारत में वैशंपायन जनमेजय को तपती कि विशेषता का वर्णन करते हुए कहते हैं की,

तपती नाम का चैषा तापत्या यत्कृते वयम्।
कौन्तेया हि वयम साधो तत्तवमिच्छामि वेदितुम्॥

साधुस्वभाव गंधर्वराज! यह तपती कौन हैं, जिसके कारण हम लोग तापत्य कहलाते हैं? हम तो अपने को कुंती का पुत्र समझते हैं। अतः तापत्य का यथार्थ रहस्य क्या हैं इसे समझने कि मुझे बडी इच्छा हो रही हैं। अर्जुन के पूछने पर गंधर्वने तपती की कथा सुनाई।

एतस्य तपती नाम बभूव सदृशी सुता।[2]
विश्रुता त्रिषु लोकेषु तपती तपसा यूता॥[3]

यह तिनों लोकों में प्र सिद्ध तप करने वाली व तपश्चर्यासे संपन्न सूर्य विवस्वान की कन्या, राजा संवरण की पत्नी, कुरू की मां।

---

[1] महा. आ. पर्व. चैत्ररथ पर्व १६९-१७२

[2] महा. आ. पर्व चैत्ररथ पर्व.१७० श्लोक ६

[3] महा. आ. पर्व. चैत्ररथ पर्व १७० श्लोक७

अप्रतिम सौंदर्य, प्रासादिक वेशभूषा एवं विनम्र आचरण-दर्शन परिवेश इन तीनों दृष्टि से 'तपती' अद्वितीय थी। सूर्य को इनके योग्य कोई वर नही मिल रहा था। समकाल में हि ऋक्ष के पुत्र संवरण जो सूर्योपासक थे। वह प्रतिदिन पुष्प, नैवेद्य, गंध, नियम, उपवास आदि से उदीयमान सूर्य की भक्ती एवं उपासना करते थे। एक दिन वे मृगया को निकल पडे। मृगया करते करते वह अकेले हो गए। भूख, प्यास के कारण उनका घोडा भी मर गया। पैदल घुमते समय राजाने एक सुंदर कन्या देखी। वह थी तपती। वह मन में सोचने लगा

प्रसन्नत्वेन कान्त्या च चन्द्ररेखामिवाऽमलाम् ॥[1]

रवी के नीचे गिरी हुई प्रभा उसकी आकृति और तेज मानो अग्नि की ज्वाला, प्रसन्न मुद्रा और रमणीयता से मानो चंद्र की निर्मल कोर। राजा का मन उसकी और आकृष्ट हो गया और उसने तपती के सामने विवाह का प्रस्ताव रखा किन्तु तपती ने विनम्रतापूर्वक उसे अपने पिता से वार्ता करने के विषय में कहा। वह बोली-

का हि सर्वेषु लोकेषु विश्रुताभिजनं नृपम्।
कन्या नाभिलषेन्नाथं भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥[2]

स्त्रियाँ स्वतंत्र नहीं होती। आप प्रणाम, तपश्चर्या और व्रताचरण कर मेरे पिता से मेरे लिए याचना कीजिए, यदि मेरे पिता ने कहा तो मैं आप की वशवर्तिनी होकर रहूंगी। सूर्य तथा कुल पुरोहित वसिष्ठ के अनुमति के अनुसार संवरण ने तपती का विधिपूर्वक पाणिग्रहण किया और पत्नी के साथ वही वन में रहने लगा। इसका परिणाम यह हुआ उनके नगर में इंद्र ने वर्षा नहीं की और भयंकर अकाल पड़ा। नगर लोग भूक से मरने लगे। वसिष्ठ ऋषि ने स्वयं के तपस्या से वर्षा की और राजा को पुनः नगर में आमंत्रित किया। राजा ने तपती के साथ अनेक यज्ञ किये। यथा समय

---

[1] महा. आ. पर्व. चैत्ररथ पर्व अ.१७० श्लोक २६

[2] महा. आ. पर्व. चैत्ररथ पर्व अ. १७१ श्लोक २३

तपती ने कुरू को जन्म दिया वह धर्मज्ञ हैं यह अनुभव कर प्रजा ने उसे राजपद दिया। वहीं से कुरूवंश का प्रारंभ हो गया। इस वंश में कई पराक्रमी राजा हुए और ये वंश महा तपस्विनी तपती के नाम से अर्थात् 'तापत्य' नाम से प्रसिद्ध हुआ।

नारी अपने वंश का उद्धार करने वाली समाज को दिशा देने वाली हो सकती हैं, ये अपने आचरण से तपती ने सिद्ध किया। धीर गंभीर कन्या, धीरोदात्त पत्नी तथा वीरप्रसवा माता इस रूप में हम तपती को पाते हैं। उनके नाम से प्रसिद्ध 'तापत्य' वंश कहलाना यह भारत के लिये गरिमामय बात हैं। अपने कन्या, पत्नी एवं मातृ धर्म को निभाकर तपती भारत के इतिहास में अमर हो गयी।

तिलोत्तमा[1]-

आदिपर्व के सुन्दोपसुन्दोपाख्यान में तिलोत्तमा की कथा आती हैं। यह कथा महर्षि नारद युधिष्ठिर से कथन करते हैं। दैत्य हिरण्य कश्यप के वंश में निकुंभ नामक एक पराक्रमी दैत्य हुआ। उसके दो पुत्र थे सुंद और उपसुंद। दोनों में आपस में बहुत प्रेम था। दोनों के शरीर अलग थे किन्तु विचार-सोच-रुची एक थी। त्रिलोक पर विजय प्राप्त करने हेतु उन्होंने अपने गुरु की आज्ञा से विन्ध्य पर्वतपर तपस्या आरंभ की। देवताओं ने भयभीत होकर अनेक विघ्न उत्पन्न किए। किन्तु दैत्यों ने अपने तप को भंग नहीं किया। वे निरंतर आराधना में लगे रहे, ब्रह्मदेव के प्रसन्न होने पर उन्होंने त्रैलोक्य विजय एवं अमरत्व का वरदान मांगा। किन्तु, ब्रह्मदेव ने अमरत्व को नकारा। तब, हमें परस्पर एक-दूसरे के अतिरिक्त किसी से भी मृत्यु का भय न हो, यह वर उन्होंने प्राप्त किया। वर पाते ही दोनों उन्मत्त हुए और विश्व को त्रस्त करने लगे। तब, सभी देवों ने मिलकर ब्रह्म देव जी के समीप जा संकट मुक्ति के लिए प्रार्थना की। ब्रह्मदेव ने विश्वकर्मा को सुंद

---

[1] म. भा. आ.प. विदुरागमनराज्यलंभपर्व अ.२०८ से २११.

और उपसुंद के विनाश हेतु एक सुंदर कन्या निर्माण करने की आज्ञा दी, वही तिलोत्तमा थी।

तिलं तिलं समानीय रत्नानां यद्विनिर्मिता।
तिलोत्तमेत्यतस्यतस्या नाम चक्रे पितामह॥[1]

सभी सुंदर और उत्कृष्ट वस्तुओं से सौंदर्य का तिल-तिल लेकर निर्माण करने के कारण पितामह ने दिया हुआ तिलोत्तमा नाम सार्थक हुआ। यह ऋषि कश्यप एवं अरिष्टा की कन्या कहलाई। यथा समय तिलोत्तमा ने ब्रह्मदेव से अपनी कार्य विषय पूछा। कभी सुंद और उपसुंद को अपने सौंदर्य से मोहित कर उनमें शत्रुत्व निर्माण करना तथा उनका परस्पर द्वारा वध करवाना, यह कार्य तिलोत्तमा को सोपा गया। सुंद और उपसुंद को अपनी ओर आकर्षित करके तिलोत्तमा ने अपना दायित्त्व उत्तमतया निभाया। कुछ समय पश्चात दोनो में गदा युद्ध होकर परस्पर से लड़ते हुए वे धराशायी हो गये। इस प्रकार ब्रह्मदेव का वरदान भी अबाधित रहा तथा उन दोनों का विनाश भी हो गया। इसमें सबसे महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली तिलोत्तमा अपने तेजस्विता के कारण नयन उठा कर देखने का दुःसाहस कोई ना कर पायेगा तथा जहां जहां सूर्य किरणों का संचार होंगा वहां वहां आपका भी संचार होगा इस वरसे सुचारू हुयी। अपनी तेज से अपना रक्षण तिलोत्तमा की विशेषता हे, असुरों को मोहित कर उनके मृत्यू से पृथ्वी पर आनंद निर्माण करने की एवं भोगवादी संस्कृति समाप्त कर धर्मकार्य योग्य संस्कृति फिर से स्थापित करने का महत्त्वपूर्ण कार्य तिलोत्तामाने किया तथा किसको कहा ले जाना हैं यह कन्या की परिभाषा को निभाया।

---

1 म. भा. आ.प. विदुरागमनराज्यलंभपर्व अ.२१० श्लोक१८

ब्राह्मणकन्या[1]

महाभारत के आदिपर्व में बकासुरवध की कथा वर्णित हैं। इस कथा से हम सारे चिरपरिचित हैं, किंतु बकासुरवध होने के लिए एक कन्या निमित्त हुई तथा उसकी तेजस्वी वाणी को सुनकर ही कुंती ने भीम को बकासुर वध की आज्ञा दी, इससे हम अनभिज्ञ है1। उस कन्या का नाम तो कथा में नहीं लिखा हैं लेकिन उसकी विचक्षणता तथा समर्पण, अपने कुल के प्रति अपना दायित्व निभाने की सिद्धता आदि गुण इस कथा में प्रतिबिंबित होते हैं।

धर्मतोऽहं परित्याज्या युवयोर्नात्र संशयः।
त्यक्तव्यां मां परित्यज्य त्राहि सर्वं मयैकया॥[2]

धर्म के अनुसार आप को कभी न कभी मेरा त्याग करना हैं तो आज ही मुझ अकेली का त्याग कर परिवार की रक्षा कीजिए। आज जो परिस्थिति सामने उपस्थित हुई हैं उसमें नाव जैसी मेरी सहायता से आप लोग अपनी रक्षा कीजिए। यह वक्तव्य उस ब्राह्मण कन्या का हैं जिसके घर की बारी बकासुर के लिए अन्न एवं मनुष्य प्रदान करने की थी। उस घर के पिता अतीव चिंता में थे कि किस तरह से अन्न जुटाएंगे, घर का कौन सदस्य बकासुर के लिए अर्पण करेंगे। उसमें ब्राह्मण पुत्री ने अपने पिता को अस्वस्थ देख आश्वस्त करते हुए यह कहा की पुत्र पिता का आत्मा; तो कन्या आपत्ती हैं। इस कन्या रुपी आपत्ति से अपने को मुक्त करके और परिवार रक्षा के पुण्य कर्म पर मेरी योजना कीजिए। यदि आप राक्षस के पास जाओगे तो आपकी मृत्यु अटल है। फिर मेरा ये छोटा अल्पवयी भाई भी थोड़े ही समय मृत्युमुख में जायेगा। आप दोनों की मृत्यु से पिंडदान बंद होगा और वंश विस्तार भी नहीं होगा। अतः उचित है कि आप मेरी ही योजना बकासुर के लिए कीजिए।

---

[1] म.हा.आ.प.बकवधपर्व अ.१५८

[2] म.हा.आ.प.बकवधपर्व अ.१५८ श्लोक ३

अथवाऽम् करिष्यामि कुलस्याऽस्य विमोचनम्।
फलसंस्था भविष्यामि कृत्वा कर्म सुदुष्करम्॥[1]

मुझे भेजने से इस कुल को दुःख मुक्त करूंगी। स्वयं मृत्यु स्वीकार कर मेरी मृत्यु सार्थक करूंगी। यदि आप जाओगे तो आप के न रहने से परकीय से अन्न मांगते हुए हम कुत्ते जैसे भटकेंगे। इससे परम दुःख कौन सा हैं? इसी लिए मेरे त्याग से अपने बांधवों के साथ मुक्त होने से मैं इहलोक में कीर्तिरूप से जीवित रह कर सुख प्राप्त करूंगी। इसीलिए आप मुझे ही उस राक्षस के पास भेजिए तथा कुल की रक्षा कीजिए।

अल्पायु में ही उस कन्या के तेजस्वी वाणी एवं विचारों को सुनकर माता कुंती प्रभावित हो गई और उसने बकासुर राक्षस के पास भीम को भेजकर उसको उस राक्षस का वध करने की आज्ञा दी। कुलहित के बारे में सर्वप्रथम विचार करने वाली कन्या के कारण वह नगर एवं परिवार दुःखमुक्त तथा बकासुर कि पीड़ा से भी मुक्त हो गया। ऐसी कन्या ही भारत की सही अर्थ में वैभव है। यह 'कन्याधन' हर घर को भूषित करता हैं। आज भी ऐसी तेजस्वी कन्याओं की गृहहित, समाजहित और राष्ट्रहित तथा रक्षा के लिए आवश्यकता हैं।

इस कथा से प्रेरित हो हम आज की कन्यायों में तेजस्विनी ज्योति जगा सकते हैं। जिससे वह सभी ब्राह्मणकन्या की तरह धीर गंभीर विचार, समर्पित से भारत के सांप्रत स्थिति को संवारने में अपना योगदान दे सके।

भद्रा[2]

शक्तो जनयितुं पुत्रांस्तपोयोगबलान्वयात्।[3]

आप भी तप और योग के बल से मानस के द्वारा मुझे संतान युक्त बना सकते हैं। यह वाणी थी माता कुंती की।

---

[1] म.हा.आ.प.बकवधपर्व अ.१५८ श्लोक् १३

[2] .म.हा. आ. पर्व सम्भवपर्व अ.१२०

[3] .म.हा. आ. पर्व सम्भवपर्व अ.१२०-श्लोक-२७

आदिपर्व में भद्रा का कथानक आता हैं। विशेष बात यह हैं कि, भद्रा का उदाहरण महारानी कुंती महाराज पांडू के सामने प्रस्तुत कर रही हैं। शापग्रस्त महाराज पांडू महारानी कुंती एवं माद्रीके साथ वन में निवास कर रहे थे। तभी वे नियोग पद्धति से संतान उत्पत्ति करने के लिए कुंती से आग्रह करते हैं। तभी कुंती उन्हे भद्रा की कथा बताती हैं।

भद्रा राजा काशिवान की बेटी व्युषिताश्व की पत्नी थी। कुरुवंश के एक महान पराक्रमी राजा व्युषिताश्व ने अश्वमेध तथा ज्योतिष्टोम आदि अनेक यज्ञ किए। महारानी भद्रा के साथ वे आनंद से जीवन व्यतीत कर रहें थे। किन्तु, अधिक कामासक्तता के कारण उन्हे क्षयरोग हुआ। उसी से उनकी मृत्यु भी हो गई। तब दुःख विलाप करती हुई भद्रा को आकाशवाणी सुनाई दी-

उत्तिष्ठ भद्रे गच्छ तत्वं ददानीह वरं तव।
जनयिष्याम्यपत्यानि त्वय्यहं चारूहासिनि॥[1]
आत्मीये च वरारोहे शयनीये चतुर्दशीम्।
अष्टमीं वा ऋतूस्नाता संविशेथा मया सह॥[2]

हे भद्रे मैं तुम्हें वर देता हूँ कि, मैं तुम्हे संतान दूंगा। {तुमसे निर्माण करुंगा।} इस दृष्टि से ऋतु स्नान के बाद की अष्टमी वा चतुर्दशी तिथि भी बताई। कुछ महीनों के बाद भद्रा ने पति के वीर्य से तीन शाल्व और चार मद्र इस प्रकार सात संता ने प्राप्त की। यह कथा बताकर कुंती ने भी पांडू से कहा आप भी मेरे गर्भ से मानसिक संकल्प द्वारा अनेक पुत्र उत्पन्न कर सकते हैं क्योंकि आप तपस्या और योग बल से संपन्न हैं।

अपने तप, पातिव्रत्य ज्ञान के कारण भद्रा को पति की मृत्यु के पश्चात् भी संताने प्राप्त हुयी।

---

[1] म.हा. आ. पर्व सम्भवपर्व अ.१२० श्लोक३३

[2] .म.हा. आ. पर्व सम्भवपर्व अ.१२० श्लोक ३४

उपसंहारः

इस शोधपत्र में वर्णित तपती, तिलोत्तमा एवं भद्रा यह महाभारत के पूर्वकाल हुयी हैं। ब्राह्मण कन्या तो स्वयं बकासुर वध के प्रसङ्ग की पात्र हैं। सर्वसामान्य होते हुए भी यह विदुषियों जैसी ज्ञानी हैं। त्याग, समर्पण, कुल की रक्षा, जीवनावश्यक दृष्टि तथा योग्य समय पर योग्य निर्णय लेने की क्षमता यह उन की विशेषताएँ हैं। इन्हीं विशेषताओं के कारण यह कन्यायें आज भी मार्गदर्शिका तथा आदर्श प्रेरणा हैं।

पांडव की पांचाल यात्रा दरम्यान उनका सामना चित्ररथ गंधर्व से होता है। अर्जुन के द्वारा गंधर्व की पराजय होती है। तत्पश्चात् वह अर्जुन को चाक्षुषी विद्या प्रदान करते हुए उन्हे वे तापत्य विशेषण से संबोधित करते हैं। तब अर्जुन द्वारा संदर्भ तथा अर्थ पूछने पर गंधर्व तपती की कथा का कथन करते हैं। आप उनके वंश में उत्पन्न हुए, इसी कारण आप सभी 'तापत्य' कहलाते हो। एक नारी के नाम से कुल ज्ञात होना, यह भारत के लिए गौरवशाली बात हैं ।

तिलोत्तमा ने अपना जीवन दाव पर लगाकर राक्षस संस्कृति से पूरे भारत वर्ष को मुक्त किया। एक सुंदर नारी के कारण भाईयों में परस्पर कलह उत्पन्न हो वंश नष्ट हो सकता हैं, इसका उदाहरण महर्षि नारद ने द्रौपदी के स्वयंवर के पश्चात् युधिष्ठिर को दिया और पाचों भाईयों ने द्रोपदी को पत्नी रूप में स्वीकार करते समय किन नियमों का पालन करना चाहिए, इसका मार्गदर्शन किया। तिलोत्तमा के चरित्र से उत्कृष्ट नीति का अवलंब कर समस्या का निवारण किया गया। वैचारिक प्रगल्भता एवं अपने वंश-कुल की मर्यादा का पालन तथा संवर्धन करना यह शिक्षा ब्राह्मणकन्या के चरित्र से वर्तमान की कन्याए ले सकती हैं। धर्मसंमत सुंदर नीति ब्राह्मण कन्या ने विश्व के सामने रची है। यदि हर कन्या ऐसी कुलाङ्गना हो जाये तो पुण्यभूमि भारत की गरिमा अबाधित रहेगी।

भद्राः

स्वयं कुंती भद्रा को आर्दश मान महाराज पांडू को कथा कह रही हैं। पति के निधन के पश्चात संताने उत्पन्न कर उनका सांगोपन करना तथा राज्यहित के लिये उन्हे सिद्ध करना, इस आव्हान को भद्रा की तरह कुंती ने भी सर्वतोपरी निभाया। अपत्य सांगोपन विषयक यह दृष्टिकोण वर्तमान में भी आदर्श सिद्ध होगा।

तपती, तिलोत्तमा, भद्रा, ब्राह्मणकन्या सर्व सामान्य होते हुए भी विदुषीयों के जैसी ज्ञानी सिद्ध हुयी हैं। उत्कृष्ट नीति का अवलंब कर, धर्ममार्ग अपना कर उन्होंने समस्या का समाधान निकाला। अपने अध्ययन-अभ्यास से तेजो ज्ञान निखार, अपने आंतरिक ऊर्जा से वे गृह-समाज-राष्ट्र की धारिणी बनी। ऐसे अनेक नारी चरित्र महाभारत में वर्णित हैं । उनसे प्रेरणा लेकर वर्तमान में नारी अपने गुणों का वर्धन कर, तथा अपने विचलित व्यक्तित्व को तेजोमय बना आंतरिक उर्जा को जागृत कर अधिक सक्षम हो अपनी भूमिका निभा सकती हैं तथा धर्म और नीति के आचरण से समाज संवर्धन में योगदान दे सकती हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

१]अखिल भारतीय महिला चरित्र कोश, खंड-१ संघमित्रा सेवा प्रतिष्ठान सेविका प्रकाशन, नागपुर- २०२२

२]महाभारत प्रथम खंड, गीता प्रेस गोरखपुर, संवत् २०८०

३]संस्कृत हिंदी शब्दकोश, वामन शिवराव आपटे, संपादक उमा प्रसाद पांडे, नूतन संस्करण, कमल प्रकाशन नई दिल्ली

४] कणाद, वैशेषिक सूत्र

५]**https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/vaisheshika-sutra-commentary/d/doc427555.html (28/4/2025)**

५] योगवशिष्ठ

६] **https://www.wisdomlib.org/definition/niti (28/4/2025)**

वैदिक साहित्य मे चर्चित विदुषियाँ

प्रा. मेघा विश्वनाथ कुलकर्णी
सहाय्यक प्राध्यापिका, वसंतराव नाईक शासकीय कला व समाज विज्ञान संस्था, नागपुर

सारांश:

**"वैदिके सति नारीणां, समृद्धिर्ज्ञानसंयुता।
स्वाधिकारः प्रतिष्ठाश्च, धर्मे कर्मणि च स्थितिः ॥"**

वैदिक काल में स्त्रियाँ ज्ञान से समृद्ध थीं। उन्हें स्वाधिकार और प्रतिष्ठा प्राप्त थी, और वे धर्म व कर्म में स्थित थीं। वैदिक संहिता काल को नारी स्थिति का स्वर्णिम काल कहा जाता है। नारी की शक्तियों को पूर्ण रूपेण विकसित करने हेतु जितनी सुविधाएँ, सुअवसर, सुसाधन वैदिक युग में प्रदात्त थे उतना आज के युग में मानव कल्पना से परे हैं। तत्कालीन नारी अपने ज्ञानदायिनी, ऐश्वर्य प्रदायिनी एवं शक्ति स्वरूपिणी सभी रूपों में दृष्टिगोचर होती है। उपनिषद् कालीन विदुषियाँ आज भी हिन्दू समाज के विद्वत वर्ग में प्रकाश स्तंभ के समान भक्तिभाव से पूजी जाती है। ऋग्वेद में गार्गी, मैत्रेयी, घोषा, विश्ववारा, अपाला, अदिति, इन्द्राणी, लोपामुद्रा, सार्पराज्ञी, वाक्, मेधा, सूर्या व सावित्री जैसी अनेक वेद मंत्रद्रष्टा विदुषियों का उल्लेख मिलता है। आश्वलायन गृह्यसूत्र में गार्गी, मैत्रेयी, वाचक्नवी, प्रातिथेयी आदि विदुषियों के नाम मिलते है जिन्हें उपाध्याया से सम्बोधित करते थे। महाभारत में काशकृत्स्नी नामक विदुषी का उल्लेख प्राप्त होता है जिन्होंने मीमांसा दर्शन पर काशकृत्सनी नाम के ग्रंथ की रचना की थी। नाग शासकों के एक अभिलेख मे मासक देवी नामक एक विदुषी का उल्लेख है जो किसानों के हित के लिए राज्यनियम परिवर्तित करवाती है।

पृथ्वीराज रासोमहाकाव्य बताता है कि राजकुमारी संयोगिता ने मदना नामक शिक्षिका द्वारा संचालित कन्या गुरुकुल में शिक्षा प्राप्त की थी

जिसमें मदना नामक विदुषी द्वारा विभिन्न राज्यों की लगभग पाच सौ राज कुमारियों ने भी शिक्षा प्राप्त की।

मुख्य शब्दः साम्राज्ञी, विदुषी, सहऋषि, ब्रह्मवादिनी

परिचय-

वैदिक काल में नारी को समाज में अत्यन्त सम्माननीय स्थान प्राप्त था उसे देवी, माता, साम्राज्ञी, महिषी आदि सम्मान पूर्वक पदों से संबोधित किया जाता था।

"साम्राज्ञी श्वसुरे भव साम्राज्ञी श्वश्रां भव।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधिदेवृषु" ॥[1]

वह शरीर मे नाडी की भाँति समाज में महत्वपूर्ण स्थान रखती थी।[2] ऋग्वेद के अनुसार विदुषी स्त्री अपने श्रेष्ठ ज्ञान एवं कर्म से यज्ञ को धारण एवं सञ्चालित करती है। एक ऋचा के अनुसार वर्णन प्राप्त होता है कि इडा, सरस्वती एवं मही देवियाँ यज्ञ में स्थान ग्रहण करते थे। ये तीनो देवियाँ दिव्य है। अर्थात् योग्यतानुसार स्त्रियों को भी राजा पद के लिए चुना जा सकता था।[3]

सृष्टि के विकास में स्त्री का हमेशा महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। बृहदारण्यक उपनिषद् में स्त्री को सृष्टि की रिक्तता पूर्ण करने वाली कहा गया है- "**अयमाकाशः स्त्रिया पूर्यते**" ।[4]

वैदिक साहित्य में वर्णित स्त्री एवं पुरुष उत्पत्ति की कथा और उनके समत्व भाव दर्शाती है।[5]

उद्देश्य:

- वैदिक साहित्य मे स्त्रियों की बौद्धिक भूमिका को रेखांकित करना।
- वैदिक युग मे की स्त्रियों की शिक्षा, स्वास्थ्य मे योगदान स्पष्ट करना।
- वैदिक कालीन स्त्रियाँ धार्मिक और दार्शनिक विमर्श मे भाग लेती थी यह सिद्ध करना।

- आधुनिक युग के स्त्री विमर्श को वैदिक काल से परीक्षित करना।
- वैदिक काल के श्लोको के माध्यम से युग की स्त्री बौद्धिकता का प्रमाण प्रत्युत करना।

वैदिक काल में स्त्री-शिक्षा

वैदिक काल में स्त्री-शिक्षा का प्रचार तथा प्रसार था। पुत्री को पुत्र के समान शिक्षा दीक्षा प्राप्त करने का अधिकार प्राप्त था।

"अथ यः इच्छेद् दुहिता में पण्डिता जायेत।
तिलौदनो पाचयित्वा आश्रीयातामिति।"[6]

वैदिक काल मे पुत्री को भी उपनयन संस्कार से संस्कारित कर अध्ययन करने का अधिकारी बनाया जाता था। वे गुरुकुल में रहकर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती हुए यज्ञोपवीत, मौञ्जी, मेखला धारण करती हुई शिक्षा प्राप्त करती थी। यमस्मृति में इसका स्पष्ट उल्लेख प्राप्त होता है।

"पुराकल्पे कुमारीणां मौञ्जीबन्धमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्रीवचनं तथा॥"[7]

वैदिक युग में स्त्रियाँ केवल गृह कार्य में ही नहीं, बल्कि बौद्धिक, धार्मिक और सामाजिक सभी क्षेत्रों में पुरुषो मे समकक्ष थी।

उत्तो अध्या गातुं वाग्विवाचि, मन्ये त्वा नारीः।[8]

(हे स्त्री! तू वाणी मे दक्ष है, विदुषी है, मैं तुझे जानती हूँ कि तू ज्ञानी है।)

ब्राह्मण ग्रंथो में विदुषी शब्द का उपयोग उन महिलाओं को पहचानने के लिए किया जाता है जो शान और बुद्धि मे पुरुषों के समान है यह दर्शाता है कि प्राचीन भारत में महिलाओं को ज्ञान प्राप्त करने और शिक्षा में भाग लेने की अनुमति थी.

शतपथ ब्राहमण में 'सत्यवती' नामक ऋषिपत्नी का उल्लेख प्राप्त होता है जो ज्ञान और तप की सहचरी थी वह धर्म के प्रति समर्पित थी। [9]

गोपथ ब्राह्मण में 'रोहिणी' नामक विदुषी का उल्लेख प्राप्त होता है, जो धार्मिक परंपराओ और यशो मे विशेष भूमिका निभाती थी।

ब्राहमण ग्रंथों में स्त्रियाँ ऋत्विज, यजमान, ब्रह्मवादिनी और गृहिणी रुपो में वर्णित है। उस काल में स्त्रियों को विद्या और आध्यात्मिक अधिकार प्राप्त थे।

उपनिषदेको श्रुत्ति का उच्चतम ज्ञान माना गया है। इनका मुख्य उद्देश्य ब्रह्मविद्या की प्राप्ति है। उपनिषदों में स्त्रियों केवल गृहिणी या उपासिका नहीं है, वह दार्शनिक जिज्ञासा और आत्मज्ञान की साधक भी है। वैदिक युग में नारी को पत्नी को विदुषी के रूप मे आदर प्राप्त था। आर्य पत्नी को घर मानते थे-

"गृहिणी गृहमित्याहुः न गृह गृहिणी विना।"[10]

वैदिक काल में स्त्रियां पुरुष के साथ समत्व भाव से जीवन यापन करते हुए अपने परिवार के लिए सदैव से प्रेरणा एवं शक्ति की स्त्रोत थी।[11]

विदुषी माता के रूप में अपने बच्चों में उत्तम शिक्षा द्वारा संस्कार का आधान करते हुए उनके भविष्य की निर्मात्री है-

"माता निर्माता भवति।" [12]

माता-पिता और गुरु(आचार्य) का सम्मान करना व्यक्ति को वेद-ज्ञान प्राप्त करने में मदद करता है।

"मातृमान् पितृमान् आचार्यवान् पुरूषो वेदः।"[13]

पर इन सभी मे माता सर्वश्रेष्ठ है। वैदिक मंत्रों में नारी के सहनशीलता, सौम्यता, सौष्ठवता, ममता आदि गुणों की प्रशंसा की गई है। विदुषियों को। 'अदिति', 'सरस्वती', 'चंद्रा', 'ज्योति' अनेक महिमा पूर्ण विशेषणों से विभूषित किया गया है।[14]

वैदिक काल में अनेक विदुषियां, ऋषिकाएँ और ब्रह्मवादिनियाँ हुई जिन्होंने न केवल वेदों की ऋचाएँ रची बल्कि ब्रह्मचर्चा और दर्शनशास्त्र में भी उल्लेखनीय भूमिका निभाई-इन्हीं में से एक विदुषी हैं- अरून्धती।

अरुन्धती-

अरुन्धती का उल्लेख वेद, पुराण और महाकाव्यों में एक विशिष्ट नारी के रूप में किया गया है। महर्षि वशिष्ठ की पत्नी थी, जो स्वयं

सप्तर्षियो में एक थे। अरुन्धती को वैदिक साहित्य मे नारी धर्म, पतिव्रता धर्म, ज्ञान और तपस्या को आदर्श मूर्ति माना गया है। अरुन्धती ने वन में रहकर 12 वर्ष तक भगवान शिव की तपस्या की। अरुन्धती ने 12 वर्ष धर्म की शिक्षा दी। वह महर्षि वशिष्ठ के साथ अनेक दर्शन चर्चाओं में उपस्थित रहती थी।

आज भी हिंदू विवाह संस्कार में सप्तपदी के बाद वर-वधू को आकाश में 'अरुन्धतीतारा' दिखाया जाता है। यह परंपरा इस तथ्य को स्थापित करती है कि अरुन्धती वैवाहिक निष्ठा समर्पण और स्थायित्व की प्रतीक थीं। अरुन्धती का जीवन इस बात का उदाहरण है कि स्त्री केवल पतिव्रता नहीं अपितु ब्रह्मविद्या, धर्म, तप और संयम में पुरुषों के समान स्थान पा सकती हैं। महाभारत के वन पर्व में ये युधिष्ठिर मार्कण्डेय से पूछते हैं कि क्या ऐसी कोई स्त्री है, जिसने कठिन परिस्थितियों ने भी धर्म नहीं छोड़ा? तब ऋषि मार्कण्डेय अरुन्धती का उदाहरण देते है-

"या धर्मे स्थितिमन्विता वशिष्ठं पतिं अन्वगात्।
या देवी अरुन्धती च धर्मपत्नी मता सदा।।"

जो धर्म में स्थित होकर वशिष्ठ के साथ चली, वह देवी अरुन्धती सदा धर्मपत्नी मानी जाती है।

अरुन्धती का तारा सप्तर्षि मंडल में वशिष्ठ तारे के समीप है। इसे 'अरुन्धती-नक्षत्र' कहते है। यह खगोलीय रूप से भी यह प्रतीक बन गया है कि सद्गृहस्थ जीवन मे दोनों पति-पत्नी साथ-साथ रहते हुए भी एक-दूसरे की स्वतंत्र सत्ता को सम्मान देते हैं। विदुषी अरुन्धती वैदिक काल की वह महान स्त्री है, जिन्होंने अपने आचरण, ज्ञान और धर्मपालन से भारतीय संस्कृति को वह आदर्श प्रदान किया, जिसकी छाया आज भी विवाह, परिवार और नारी दृष्टिकोण मे विद्यमान है। वे संयम, तप, विद्या और निष्ठा प्रेरणा है। अरुन्धती का जीवन इस तथ्य का जीवंत उदाहरण है कि प्राचीन भारतीय समाज में स्त्री को केवल सहधर्मिणी नहीं, बल्कि सह-ऋषि और सह-विचारक के रूप में प्रतिष्ठित थी।

निष्कर्ष-

वैदिक साहित्य मे स्त्रियाँ केवल परिवार की संरक्षक नहीं बल्कि ज्ञान की धारक, सृजन की प्रणेता और संस्कृति की वाहक थी। लोपामुद्रा, मैत्रेयी, गार्गी, अपाला, घोषा आदि ऋषिकाओं ने भारतीय ज्ञान परंपरा को समृद्ध किया। उनका योगदान न केवल वैदिक साहित्य, बल्कि भारतीय संस्कृति की आत्मा है। प्राचीन काल में पुरुषों की तरह स्त्रिया भी ज्ञान प्राप्त करती थी। वे ज्ञान प्राप्त करके वेद-जप, तप और अध्ययन में भाग लेती थी। शिक्षा के अधिकार के कारण स्वयं को ब्रह्मपद अर्थात् विदुषी पद तक ले जाने का अधिकार रखने वाली स्त्रियों के सामाजिक पतन की शुरुआत आगे उत्तर वैदिक काल में हुई। इसके परिणामस्वरूप, स्त्रियों, विशेषकर कन्याओं की सुरक्षा का प्रश्न उत्पन्न हुआ और उन पर कई प्रकार के प्रतिबंध लगाए गए जिससे वे ज्ञान और शिक्षा से दूर हो गई। वर्तमान में नारी अपनी भूमिका निभाकर कैसे विदुषी पद प्राप्त कर पाएगी इस उद्देश्य से और बाल मन में स्त्री के प्रति सम्मानजनक विचारों का रोपण हो इसके लिए हमें वेदों की ओर रुख करना चाहिए।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूचीः-

1- ऋग्वेद 10.85.46
2- शर्मा डॉ. मालती, वैदिक संहिताओं में नारी पृष्ठ-1
3- वेदों के राजनैतिक सिद्धान्त, पृष्ठ- 205
4- बृहदारण्यकोपनिषद्- 1.4.3
5- शतपथ ब्राह्मण- 14,4,2,1,15
6- बृहदारण्यकोपनिषद्- 4.4.18
7- यम-वीरमित्रोदय, संस्कारप्रकाश, भाग 1-2, पृष्ठ- 402
8- ऋग्वेद, 5.28.6
9- शतपथ ब्राह्मण, 11.6.3.10

10- सोती, वरिंद्र चन्द्र- "भारतीय संस्कृति के मूलतत्त्व, पृष्ठ-88

11- ऋग्वेद-1.3.11

12- यास्क, निरुक्त

13- सरस्वती, महर्षि दयानंद 'सत्यार्थप्रकाश' से उद्धृत

14- यजुर्वेद 8.43

15- ज्योतिष साहित्य- सप्तर्षि मण्डल का विवरण

रामायण कालीन विदुषियाँ एवं ज्ञान संवर्धन में उनका योगदान

कुमारी जया
शोधच्छात्रा, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, रांची विश्वविद्यालय

रामायण में नारी-पात्रों का विशेष महत्त्व है जिनमें सीता, कौशल्या, कैकयी, सुमित्रा, शबरी, अरुन्धती, त्रिजटा, मंदोदरी आदि प्रमुख पात्र है। ये नारी-पात्र रामायण काल में सुकृत्यों का आचरण करती हुई पुरुष वर्ग को उन्नत दिशा की ओर प्रेरित करती है। रामायण कालीन स्त्रियों को वेद आदि शास्त्रों का संपूर्ण ज्ञान रहता था जिसके कारण वे धर्म-अधर्म तथा कर्तव्य-अकर्तव्य को समझ पाती थी। ये नारियाँ अपनी विद्यानुसार नित्य कर्मों को भी संपादित करती थी रामायण एक ऐसा ग्रंथ है जिनमें अधिकांश रूप से नारी-पात्रों का उल्लेख किया गया है। यद्यपि पुरुष-पात्र भी परिलक्षित होते हैं रामायण काल को एक आदर्श काल के रूप में भी माना जाता है। यही कारण है कि इनकी प्रशंसा के लिए उक्ति प्रसिद्ध है:-

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद् रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।[1]

अर्थात् जब तक संसार में सभी पर्वत और नदियां विद्यमान रहेगी तब तक रामायण कथा का प्रचार होता रहेगा।

रामायण के अध्ययन से अवलोकन होता है कि सीता, शबरी आदि स्त्री-पात्र ज्ञान से भी प्रौढ़ थी। ये स्त्रियां भारतीय ज्ञान परंपरा को बढ़ाने में अपनी महत्त्व पूर्ण भूमिका निभाती थी। ये विदुषियाँ अपने समय में ज्ञान संवर्धन करती थी अर्थात् वेद आदि शास्त्रों का प्रचार-प्रसार करती थी मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि रामायण कालीन विदुषियाँ अपने तर्क-वितर्क से पुरुषों को दिग भ्रमित मार्ग से उत्तम मार्ग की ओर प्रेरित करती थी। ये स्वविवेकी भी होती थी। इसका उदाहरण में मंदोदरी के

वचनों से ज्ञात होता है जब वह रावण को अनैतिक कर्मों के लिए भर्त्सना करती हुई उत्तम मार्ग में प्रवृत्त करती है:-

उक्तश्च मधुरां वाणीं तया स मदनादितः।
सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम।।
देवगन्धर्वकन्याभिर्यक्षकन्याभिरेव च।
सार्धं प्रभो रमस्व सीतया किं करिष्यसि।।[2]

अर्थात् मंदोदरी ने रावण को रोककर मधुर वाणी में कहा:– हे इंद्र के समान पराक्रमी वीर! आप सीता को लेकर क्या करेंगे? हे स्वामी! देवताओं, यक्षों और गंधर्वों की कन्याये आपके निवास में है आप उनके साथ आनंद करिए। इतना ही नहीं रामायण में स्त्रियां शास्त्रार्थ करती हुई भी प्रतीत होती है ये आत्म स्वाभिमानी भी होती थी अब मैं रामायणकालीन कुछ प्रमुख विदुषियों का वर्णन प्रस्तुत करती हूँ तथा उनके द्वारा भारतीय ज्ञान संवर्धन में योगदान को भी उद्बोधित करती हूँ -

1.सीता-

सीता रामायण महाकाव्य की नायिका है यह संपूर्ण रामायण में एक आदर्श नारी के रूप में प्रतीत होती है। इनका हृदय पूर्णतः शुद्ध है। इसीलिए वह शुद्ध अंतःकरण से एक पतिव्रता नारी होने की प्रामाणिकता सिद्ध करती है। महाकवि वाल्मीकि ने सीता का चरित्र-चित्रण विशेष रूप से विवेचित किया है। सीता की जननी पृथ्वी है तथा उसके पिता का नाम राजा जनक है। सीता सूर्यवंश की बहु है। सीता राम को ही अपना सब कुछ मानती है।

(1)आदर्श पत्नी-

रामायण में सीता एक आदर्श पत्नी के रूप में वर्णित की गई है भवभूति ने भी इस तथ्य को पुष्ट किया है जब सीता की सखी वासंती सीता के निर्वासन के लिए श्रीराम को दोषी ठहराती हैं तब सीता श्रीराम की निंदा को सहन नहीं कर पाती है और कहती है-

सखि वासन्ति! त्वमेव दारुणा कठोरा च। येवं प्रलपन्तं प्रलापयसि।।[3]

अर्थात् हे सखी वासंती तुम्ही निष्ठुर और कठोर हो जो इस प्रकार विलाप करते हुए आर्य पुत्र को और रुला रही हो।

सीता का अपने पति राम के प्रति उत्कट प्रेम है। राम से वियोग होने पर सीता का राम के प्रति प्रेम दिखलाई पड़ता है-

हा दैव! एषः मया विना अहमप्येतेन विनेति केन सम्भावितमासीत्।[4]

अर्थात् हा देव! यह मेरे बिना और मैं इसके बिना रह सकूंगी ऐसी संभावना किसने की थी1

(2)आदर्श माता-

रामायण में सीता एक आदर्श माँ के रूप में परिलक्षित होती है वह केवल अपने पुत्रों की ही नहीं अपितु संपूर्ण संसार की माता है उन्हें जगत जननी कहा गया है संपूर्ण माताएं अपने पुत्र से प्रेम करते ही है किंतु सीता माता संपूर्ण संसार से यहां तक की प्रकृति तत्त्वों से भी पुत्र तुल्य प्रेम करती हैं इनसे ही संपूर्ण लोक सनाथ है ऐसा कहा गया है-

नाथवन्तस्त्वया लोकाः[5]

महाकवि भवभूति ने अपने काव्य में दर्शाया है कि सीता अपने द्वारा पालित हस्ती शावक के ऊपर आक्रमण हो जाने पर विचलित होकर श्री राम से कहती हैं-

परित्रायस्व परित्रायस्व मम पुत्रकम् ।[6]

अर्थात् बचाइए बचाइए मेरे बेचारे पुत्र को। उनका लव और कुश के प्रति भी प्रगाढ़ प्रेम है। प्रत्येक मां का कर्तव्य होता है कि वह अपने बच्चों के समुचित शिक्षा की व्यवस्था कराएं। सीता अपने बच्चों को वाल्मीकि आश्रम में शिक्षा ग्रहण कराकर अपने कर्तव्य को पूरा करती है।

(3.) पवित्रता की मूर्ति-

रामायण की नायिका सीता पवित्रता की साक्षात मूर्ति हैं रामायण में सीता अपनी पवित्रता के विषय में स्वयं कहती हैं

यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।।

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।।
यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेदिम रामात् परं न च।।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हति।।[7]

अर्थात् मैं रघुनाथ जी के सिवा दूसरे किसी पुरुष का मन से चिंतन भी नहीं करती यदि यह सत्य है तो भगवती पृथ्वी देवी मुझे अपनी गोद में स्थान दे। यदि मैं मन, वाणी और क्रिया के द्वारा केवल श्रीराम की ही आराधना करती हूँ तो भगवती पृथ्वी देवी मुझे अपनी गोद में स्थान दे। भगवान श्री राम को छोड़कर मैं किसी दूसरे पुरुष को नहीं जानती, मेरी कही हुई बात यदि सत्य हो तो भगवती पृथ्वी देवी मुझे अपनी गोद में स्थान दे। महाकवि भवभूति कृत उत्तररामचरित में श्रीराम सीता की पवित्रता को पुष्ट करते हुए कहते हैं-

उत्पत्तिपरिपूतायाः किमस्याः पावनान्तरैः।
तीर्थोदकं च वह्निश्च नान्यतः शुध्दिमर्हतः।।[8]

अर्थात् जन्म से ही पावन इस सीता का पवित्र करने वाले दूसरे पदार्थों से क्या प्रयोजन? तीर्थ का जल और अग्नि दूसरे पदार्थ से शुद्धि के योग्य नहीं है। अतः उनकी शुद्धता के बारे में स्वल्प मात्र भी संकोच नहीं किया जा सकता क्योंकि देवगण, ऋषिगण, गान्धर्वगण तथा समस्त लोक उनका पूर्ण रूप से पवित्रता के रूप में उद्धरण प्रस्तुत करते हैं।

(4.) धैर्य की प्रतिमूर्ति-

सीता का जीवन कष्टों से भरा पड़ा है परंतु उसे उन्होंने धैर्य से सहा है। विवाह के पश्चात वनवास, सीताहरण, रावण गृह निवास, अग्नि परीक्षा, सीता परित्याग इन सभी घटनाओं से प्रभावित हुई। इस प्रकार सीता का जीवन तपोमय रहा।

(5) सुंदरता के रूप में-

सीता अत्यंत रूपवती थी। उनके रूप रंग की प्रशंसा करते हुए शूर्पणखा ने रावण को अपनी भार्या बनाने के लिए इस प्रकार कहा-

रामस्य तु विशालाक्षी पूर्णेन्दु सदशानना।
धर्मपत्नी प्रिया भर्तुर्नित्यं प्रियहिते रताः।।१५॥
सा सुकेशी सुनासोरूः सुरूपा च यशस्विनी।
देवतेव वनस्यास्य राजते श्रीरिवापरा॥१६॥
तप्तकाञ्चनवर्णाभा रक्ततुङ्गनखा शुभा।
सीता नाम वरारोहा वैदेही तनुमध्यमा॥१७॥
नैव देवी न गन्धर्वी न यक्षी न च किंनरी।
तथारूपा मया नारी दृष्टपूर्वा महीतले॥१८॥
यस्य सीता भवेद् भार्या यं च हृष्टा परिष्वजेत्।
अभिजीवेत् स सर्वेषु लोकेष्वपि पुरंदरात्॥१९॥
सा सुशीला वपुःश्लाघ्या रूपेणाप्रतिमा भुवि।
तवानुरूपा भार्या सा त्वं च तस्याः पतिर्वरः॥२०॥[9]

अर्थात् श्री राम की धर्मपत्नी भी उनके साथ है वह पति को बहुत प्यार करती है और सदा अपने स्वामी का प्रिय तथा हित करने में ही लगी रहती है उसकी आंखें विशाल और मुख पूर्ण चंद्र के समान मनोहर है। उसके केश, नासिक, उर और रूप बड़े ही सुंदर तथा मनोहर है। वह यशस्विनी राजकुमारी इस दंडकवन की देवी सी जान पड़ती है और दूसरी लक्ष्मी के समान शोभा पाती है उसका सुंदर शरीर तपाऐ हुए सुवर्ण की कांति धारण करता है, नख ऊंचे तथा लाल है वह शुभ लक्षणों से संपन्न है। उसके सभी अंग सुडौल है और कटी भाग सुंदर तथा पतला है वह विदेह राज जनक की कन्या है और सीता उसका नाम है। देवताओं, गंधर्वों, यक्षों और किन्नरों की स्त्रियों में भी कोई उसके समान सुंदर नहीं है इस भूतल पर वैसी रूपवती नारी मैं पहले कभी नहीं देखी थी सीता जिसकी भार्या हो और वह हर्ष में भरकर जिसका आलिंगन करें, समस्त लोकों में उसी का जीवन इंद्र से भी अधिक भाग्यशाली है। उसका शील स्वभाव बड़ा ही उत्तम है। उसका एक-एक अंग स्तुत्य एवं स्पृहणीय है। उसके रूप की सामानता करने वाले भूमंडल में दूसरी कोई स्त्री नहीं है।

सीता की सुंदरता के कारण ही रावण ने इनका अपहरण किया। इसकी पुष्टि निम्नलिखित श्लोक से होता है-

अतिरूपेण वै सीता चातिगर्वेण रावणः।

अतिदानाद् बलिर्बद्धों ह्यति अति सर्वत्र वर्जयेत्।।[10]

अर्थात् अत्यधिक सुंदरता के कारण ही सीता का हरण हुआ था अति घमंड हो जाने पर रावण मारा गया तथा अत्यंत दानी होने के कारण राजा बलि को छला गया इसलिए अति सभी जगह वर्जित है।

(6) एकपतिव्रता के रूप में-

रामायण में सीता एक पतिव्रता नारी के रूप में दृष्टिगोचर होती हैं इन दोनों के अनन्य प्रेम को दर्शाते हुए महर्षि वाल्मीकि रामायण में कहते हैं-

अन्तर्गतमभिव्यक्तमाख्याति हृदयं हृदा।

तस्य भूयो विशेषेण मैथिली जनकात्मजा।

देवताभिः समा रूपे सीता श्रीरिव रूपिणी।

समा स राजर्षिसुतोऽभिरामया समेयिवानुत्तमराजकन्यया

अतीव रामः शुशुभेऽतिकामया विभुः श्रिया विष्णुरिवामरेश्वरः।।[11]

अर्थात् जिस तरह राम सीता के मन की बात जान लेते थे उसी तरह देवताओं तथा साक्षात लक्ष्मी के सदृश रूपवती मैथिली जनकतनया सीता राम के भी अंतः स्थल की सब बातें समझ लेती थी। राजर्षि दशरथ के पुत्र रामचंद्र उस सुंदरी और उत्तम राज कन्या को पाकर उसी तरह प्रसन्न होकर सुंदर दिखते थे। जैसे सर्वव्यापी तथा देवताओं के भी देवता विष्णु भगवान लक्ष्मी को पाकर देदीप्यमान हुए थे। सीता प्रतिकूल परिस्थितियों के बावजूद भी अपनी एक पतिव्रता धर्म को नहीं छोड़ती है। जब रावण उन्हे बार-बार कटु वचन तथा भय प्रदर्शन करते हुए अपनी पत्नी बनाने की चेष्टा करता है तभी सीता के व्यवहार तथा आचरण में किंचित भी परिवर्तन नहीं होता है।

(7) विदुषी के रुप में-

रामायण में सीता की विद्वता का साक्ष्य स्वल्प-मात्रा में ही उपलब्ध होता है। यद्यपि सीता उचित समय में अपनी विद्वता का परिचय देती हुई दृष्टिगोचर होती है। जहाँ कहीं भी सीता को अनुचित लगता है वह शास्त्र पूर्वक समस्या का निदान करती हैं रामायण में ऐसे अनेक उदाहरण है, जहाँ सीता उपदेष्ट्री के रुप में भी प्रतीत हुई है। सीता अपनी विद्वता के कारण ही अयोध्या के निर्वासन के पश्चात भी अपने जीवन को सुगम बनाया तथा अपने दोनों पुत्रों को अपनी विद्या से पूर्ण किया। उन्हें ज्ञान के महत्त्व का भाण भी रहता है, इसलिए वह लव तथा कुश को वाल्मीकि के आश्रम में विद्यार्जन के लिए भेज देती है तथा स्वयं भी महर्षि वाल्मीकि के सानिध्य में रहकर अपना जीवन निर्वाह करती है।

2- कैकेयी-

कैकेयी को रामायण में हमेशा एक विद्वेष का पात्र माना जाता है। यह महाराज दशरथ की तृतीय पत्नी थी। कैकेयी की सुन्दरता के कारण ही महाराज दशरथ इनसे बहुत प्रेम करते थे। वास्तव में प्राचीन काल से लेकर आधुनिक युग पर्यन्त के सभी लोग कैकेयी को दुष्टचरित्र सम्पन्ना मानते रहे हैं परन्तु यह पूर्ण सत्य नहीं है। रामायण के अध्ययन से हमें अवलोकन होता है कि प्रारंभ में महारानी कैकेयी राम को बहुत ही स्नेह करती थी। समय के बीतने पर कुब्ज मन्थरा कैकेयी का कान भरना प्रारंभ किया। जब वह मन्थरा राम के राज्याभिषेक की सूचना देने के लिए कैकेयी के पास आती है तब कैकेयी यह शुभ समाचार सुनकर अत्यंत प्रसन्न होती है तथा खुशी से मन्थरा को एक सुन्दर दिव्य आभूषण प्रदान कर देती है।

मन्थराया वचः श्रुत्वा शयनात् सा शुभानना।
उत्तस्थौ हर्षसम्पूर्णा चन्द्रलेखेव शारदी।।
अतीव सा तु संतुष्टा कैकेयी विस्मयान्विता।
दिव्यमाभरणं तस्यै कुब्जायै प्रददौ शुभम्।।[12]

आभूषण देने के पश्चात वह राम के विषय में प्रसन्नता पूर्वक कहती है-

रामे वा भरते वाहं विशेषं नोपलक्षये।
तस्मात् तुष्टास्मि यद् राजा रामं राज्ये अभिषेक्ष्यति।।[13]

अर्थात् मैं राम और भरत में कोई भेद नहीं समझती। अतः यह जानकर कि राजा श्री राम का राज्य अभिषेक करने वाले हैं, मुझे बड़ी खुशी हुई है। यद्यपि मन्थरा रानी कैकेयी को राम के राज्याभिषेक के विषय में द्वेष उत्पन्न करने की चेष्टा करती है तथापि महारानी कैकेयी उक्त बातों से तनिक भी विचलित नहीं होती है तथा राम के गुणों को बताती हुई कहती हैं-

धर्मज्ञो गुणवान्दान्तः कृतज्ञः सत्यवाक्शुचिः।
रामो राज्ञः सुतो ज्येष्ठो यौवराज्यमतोऽर्हति।।[14]

अर्थात् श्रीराम धर्म के ज्ञाता, गुणवान, जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, सत्यवादी और पवित्र होने के साथ ही महाराज के ज्येष्ठ पुत्र है, अतः युवराज होने के योग्य वे ही हैं। मन्थरा के बार-बार उकसाने पर तथा रणभूमि में दशरथ द्वारा दिए गए वर का स्मरण कराने पर कैकेयी का मन दिग्भ्रमित हो जाता है। कैकेयी मन्थरा के बातों से प्रभावित होकर अपने आचरण के बिल्कुल विपरीत चेष्टा करने लगती हैं और कहती है-

न सुवर्णेन मे ह्यर्थो न रत्नैर्न च भौजनैः।
एषः मे जीवितस्यान्तो रामो यद्यभिषिच्यते।।
इह वा मां मृतां कुब्जे नृपाया वेदयिष्यसि।
वनं तु राघवे प्राप्ते भरतः प्राप्स्यति क्षितिम्।।[15]

अर्थात् मुझे न तो सुवर्ण से, न रत्नों से और न भांति-भांति के भोजनों से ही कोई प्रयोजन है। यदि श्री राम का राज्याभिषेक हुआ तो यह मेरे जीवन का अंत होगा। कुब्ज! अब या तो श्री राम के वन में चले जाने पर भरत को इस भूतल का राज्य प्राप्त होगा अथवा तू यहां महाराज को

मेरी मृत्यु का समाचार सुनाएगी। वह अपने पुत्र भरत का राजसिंहासन पर आरुढ तथा दिग्भ्रमित मन से राम का वनवास चाहती है-

यमस्य वा मां विषयं गतामितो निशाम्य कुब्जे प्रतिवेदयिष्यसि।
वनं गते वा सुचिराय राघवे समृद्धकामो भरतो भविष्यति।।
अहं हि नैवास्तरणानि न स्रजो न चन्दनं नाञ्जनपानभोजनम्।
न किंचिदिच्छामि न चेह जीवितं न चेदितो गच्छति राघवो वनम्।।[16]

अर्थात् यदि राम वन को नहीं गए, तो मैं न तो भांति-भांति के बिछौने, न फूलों के घर, न चंदन, न अंजन, न पान, न भोजन और न कभी दूसरी ही कोई वस्तु लेना चाहूंगी। उस दशा में तो मैं यहाँ इस जीवन को भी नहीं रखना चाहूंगी। ऐसे अत्यंत कठोर वचन कहकर कैकेयी ने सारे आभूषण उतार दिये और बिना बिस्तर के ही वह खाली जमीन पर लेट गयी। उस समय वह स्वर्ग से भूतल पर गिरी हुई किसी किन्नरी के समान जान पड़ती थी।

कैकेयी का चरित्र मन्थरा के कारण कलुषित हो जाने पर वह दशरथ के पास जाकर अपना वर मांग लेती है दशरथ को प्रतिज्ञावश वर प्रदान करना पड़ता है। उक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि कैकेयी वास्तव में उतनी दुष्ट नहीं थीं जितना उनको लोगों ने मान लिया। मेरी दृष्टि में महारानी कैकेयी का मन विचलित होना मन्थरा के उकसाने का ही परिणाम है अन्यथा वह अपने विचारों से दिग्भ्रमित नहीं होती। रामायण के उत्तरकाण्ड में भी हमें अवलोकन होता है कि जब राम लंका से रावण का वध कर सीता सहित अयोध्या पहुंचते है तब कैकेयी श्रीराम को देखकर अपने किये हुए कर्म पर पश्चाताप करती है तथा अपने गलतियों को अनुभव करती है। इससे पता चलता है कि महारानी कैकेयी मन्थरा के बातों से प्रभावित होकर कुछ गलती कर बैठी अन्यथा रामायण में वह एक शुद्ध अन्तःकरण वाली रमणीय शिरोमणि थी।

कैकेयी एक विदुषी के रुप में- कैकेयी शस्त्र-शास्त्र आदि विद्या में निपुण थी। इन्होंने भारतीय ज्ञान शास्त्र का पूर्णतः अध्ययन किया था।

शस्त्र चलाने में कुशलता के कारण ही इन्होंने राजा दशरथ की विकट स्थिति में रक्षा की थी। इससे ज्ञात होता है कि कैकेयी विदुषी भी थी तथा सामाजिक कल्याण में इनका योगदान था

3.सुमित्रा-

यह महाराज दशरथ की द्वितीय पत्नी थी तथा लक्ष्मण और शत्रुघ्न की जननी थी। चारित्रिक दृष्टिकोण से सुमित्रा महती थी। रामायण के अवलोकन से हमें ज्ञात होता है कि सुमित्रा उत्तम विवेक, धैर्यसंपन्ना तथा उदारचरित्र वाली थी। इसका उदाहरण हमें रामायण में प्राप्त होता है जब राम को वनवास दिया जाता है तो लक्ष्मण स्वेच्छा से अपने बड़े भाई राम की सेवा के लिए जाना चाहते हैं। यहाँ यह भी द्रष्टव्य है कि महारानी सुमित्रा ने पुत्र प्रेम होने पर भी लक्ष्मण को वन जाने से नहीं रोका। वह उदार हृदय से लक्ष्मण को कहती है-

सृष्टस्त्वं वनवासाय स्वनुरक्तः सुहृज्जने।
रामे प्रमादं मा कार्षीः पुत्र भ्रातरि गच्छति।।
व्यसनी वा समृद्धो वा गतिरेष तवानघ।
एष लोके सतां धर्मो यज्जेष्ठवशगो भवेत्।।[17]

अर्थात् पुत्र! तुम्हारे प्यारे राम वन जा रहे हैं। तुम्हारा उन पर अत्यधिक प्रेम है। इसी कारण तुम्हें उनके साथ भेज रही हूँ। देखो बेटा! तुम कभी राम की ओर से असावधान न होना और कोई भूल न करना। यह दुखी रहे या सुखी हर हाल में तुम्हारे आश्रयदाता रहेंगे। भले लोगों का सदा से यही धर्म माना गया है कि बड़े लोगों के अधीन रहा जाय।

सुमित्रा महारानी कौसल्या से उत्कट स्नेह रखती थी, उन्हें पूर्ण सम्मान देती थी। राम के वन चले जाने पर जब कौशल्या अत्यधिक विलाप करने लगती है तभी सुमित्रा उन्हें आश्वासन देते हुए कहती है-

तवार्ये सद्गुणैर्युक्तः पुत्रः स पुरुषोत्तमः।
किं ते विलपितेनैवं कृपणं रुदितेन वा।।
यस्तवार्थे गतः पुत्रस्त्यक्त्वा राज्यं महाबलः।

साधु कुर्वन् महात्मानं पितरं सत्यवादिनम्।।
दिष्टैराचरिते सम्यकशश्वत्प्रेत्यफलोदये।
रामो धर्मे स्थितः श्रेष्ठो न स शोच्यः कदाचन।।[18]

अर्थात् आर्ये! तुम्हारे पुत्र श्री राम उत्तम गुणों से युक्त और पुरुषों में श्रेष्ठ हैं। उनके लिए इस प्रकार विलाप करना और दीनतापूर्वक रोना व्यर्थ है इस तरह रोने-धोने से क्या लाभ? बहिन! जो राज्य छोड़कर अपने महात्मा पिता को भली भांति सत्यवादी बनाने के लिए वन में चले गए हैं, वे तुम्हारे महाबली ज्येष्ठ पुत्र श्री राम उस उत्तम धर्म में स्थित है, जिसका सत्पुरुषों ने सर्वदा और सम्यक् प्रकार से पालन किया है तथा जो परलोक में भी सुख प्रदान करने वाला है ऐसे धर्मात्मा के लिए कदापि शोक नहीं करना चाहिये। सुमित्रा का विशेष रूप से परिचय भरत ने भारद्वाज मुनि को इस प्रकार दिया है-

अस्या वामुभुजं श्लिष्टा या सा तिष्ठति दुर्मनाः।
इयं सुमित्रा दुःखार्ता देवी राज्ञश्च मध्यमा।
कर्णिकारस्य शाखेव शीर्णपुष्पा वनान्तरे।।
एतस्यास्तौ सुतौ देव्याः कुमारौ देववर्णिनौ।
उभौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ वीरौ सत्यपराक्रमौ।।[19]

अर्थात् इन कौसल्या की बायीं बांह से सटकर जो उदासमन से खड़ी हैं तथा दुःख से आतुर हो रही हैं और आभूषण शून्य होने से वन के भीतर झड़े हुए पुष्प वाली कनेर की डाल के समान दिखाई देती है, ये महाराज की मंझली रानी, देवी सुमित्रा है। सत्य पराक्रमी वीर तथा देवताओं के तुल्य कान्तिमान ये दोनों भाई-राजकुमार लक्ष्मण और शत्रुघ्न इन्हीं देवी के पुत्र हैं।

विदुषी के रूप में- संपूर्ण रामायण में जहां कहीं भी सुमित्रा का वर्णन प्राप्त होता है वह एक विवेक की स्त्री के रूप में दृष्टिगोचर होती है। उन्हें शस्त्र-शास्त्र आदि विद्या का पूर्ण ज्ञान है, यही कारण है कि समाज में

यथोचित न्याय करने की क्षमता रखती है तथा अपनी योग्यतानुसार सबको सांत्वना आदि वचनों से शांत करती है।

4.कौसल्या-

महारानी कौसल्या अयोध्या के राजा दशरथ की ज्येष्ठ पत्नी थी। यद्यपि यह महाराज की प्रमुख रानी थी परंतु फिर भी राजा दशरथ ने हमेशा इनकी अवहेलना की। कौसल्या का जीवन बहुत ही अशांति के साथ गुजरा। इन्होंने अपना प्यार अपने पुत्र राम पर न्योछावर कर दिया। महारानी को यह आशा थी कि ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण एक दिन श्री राम का राज्याभिषेक होगा, उसके बाद समस्त दु:ख सुख में बदल जाएंगे। राज्याभिषेक की सूचना प्राप्त होने पर वह देव मंदिर में जाकर अपने पुत्र के लिए राज लक्ष्मी की याचना करती है-

तत्र तां प्रवणामेव मातरं क्षौमवासिनीम्।
वाग्यतां देवतागारे ददर्शायाचतीं श्रियम्।।[20]

श्री राम के प्रति कौसल्या अपने वात्सल्य प्रेम को शाश्वत रूप से प्रकट करती है। वह श्री राम के मंगल कामना के लिए भगवान विष्णु आदि की पूजा तथा मंत्रोच्चारण के साथ अग्नि में आहुति डालती हैं।

कौसल्यापि तदा देवी रात्रिं स्थित्वा समाहिता।
प्रभाते चाकरोत् पूजां विष्णोः पुत्रहितैषिणी।।
सा क्षौमवासनां हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा।
अग्निं जुहोति स्म तदा मन्त्रवत् कृतमंगला।।[21]

इससे उनकी पुत्र के प्रति प्रेम तथा धर्म परायणता दृष्टिगोचर होती है। महारानी कौसल्या संपूर्ण रामायण में एक आदर्श नारी के रूप में परिलक्षित होती है। इन्हें जब राम के वनवास की सूचना मिलती है , तो मानो सहसा वज्रपात के समान पृथ्वी पर गिर पड़ती है और विलाप करती हुई कहती है-

अपश्यन्ती तव मुखं परिपूर्णशशिप्रभम्।
कृपणा वर्तयिष्यामि कथं कृपणजीविकाम्।।

कथं धेनुः स्वकं वत्सं गच्छन्तं नानुगच्छति।
अहं त्वानुगमिष्यामि पुत्र यत्र गमिष्यसि।।[22]

अर्थात् पूर्ण चंद्र के समान सुंदर तुम्हारा मुख देखे बिना यहां व्यर्थ कुत्सित जीवन क्या बिताऊं? हे पुत्र जैसे भागते हुए बछड़े के पीछे-पीछे गाय जाती है, उसी तरह मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगी।

कौसल्या को मंत्रों का भी ज्ञान था क्योंकि अपने पुत्र के कल्याण के लिए स्वयं स्वस्ति वाचन करती थी। जब श्री राम स्त्री धर्म की चर्चा करते थे तो कौसल्या को अपने स्वामी दशरथ की याद आ जाती थी।

एवमुक्ता तु रामेण कौसल्या शुभदर्शना।
तथेत्युवाच सुप्रीता राममक्लिष्टकारिणम्।।[23]

कौसल्या एक पतिव्रता नारी के रूप में आदर्श नारी है। अपने पुत्रों के प्रति उनका प्रेम निश्चल तथा वात्सल्य से युक्त है। शास्त्रों का भी भरपूर ज्ञान है तथा धर्म परायणता की दृष्टिकोण से भी यह श्रेष्ठ नारी है।

5. शबरी-

रामायण के अरण्यकाण्ड में शबरी नामक एक वृद्धा का वर्णन प्राप्त होता है। यह मतंग ऋषि के आश्रम में रहकर तपस्या करती थी। एक सन्यासिनी की तरह अपना जीवन व्यतीत करती थी। संपूर्ण जीवन काल में इन्होंने केवल तपस्या ही की। जंगल के फल कंदमूल आदि इनके भक्ष्य पदार्थ थे। जब श्री राम का वन में आगमन हुआ तभी माता शबरी ने राम सीता तथा लक्ष्मण का आथित्य सत्कार किया था। यद्यपि वृद्धा शबरी सत्य ज्ञान की प्राप्ति हेतु तपस्या करती थी फिर भी मानव रूप में आविर्भुत राम, लक्ष्मण तथा सीता को पहचान नहीं पाई। जान प्राप्ति के संदर्भ में श्री राम के द्वारा प्रश्न पूछने का वर्णन करते हुए महर्षि वाल्मीकि लिखते हैं-

कच्चित्ते निर्जिता विघ्नाः कच्चित्ते वर्धते तपः।
कच्चित्ते नियतः क्रोधः आहारश्च तपोधने।।
कच्चित्ते नियमाः प्राप्ताः कच्चित्ते मनसः सुखम्।
कच्चित्ते गुरुशुश्रूषा सफला चारुभाषिणी।। [24]

अर्थात् देवी शबरी! तुमने विघ्नों पर तो विजय प्राप्त कर ली ना? तपस्या में सतत वृद्धि हो रही है? तुमने क्रोध को वश में कर लिया और आहार नियमित है ना? तुम सफलतापूर्वक नियमों का पालन करती हो? तुम्हारा मन तो सदा प्रसन्न रहता है? हे सुभाषिनी! तुम्हारी गुरु सेवा सफल रही है ना?

इससे ज्ञात होता है कि शबरी रामायण में एक विदुषी के रूप में प्रतीत हुई है। रामायण में शबरी की कथा प्रकरी के रूप में है। वह क्षण भर के लिए आती है तथा ज्ञान प्राप्ति के पश्चात श्री राम के आज्ञोपरान्त देह त्याग भी कर देती है। देहत्याग के संबंध में महर्षि वाल्मीकि कहते हैं-

इत्येवमुक्ता जटिला चीरकृष्णाजिनम्बरा।
अनुज्ञाता तु रामेण हुत्वाऽत्मानं हुताशने।।
ज्वलत्पावकसंकाशा स्वर्गमेव जगाम ह।
दिव्याभरणसंयुक्ता दिव्यामाल्यानुलेपना।।
दिव्याम्बरधरा तत्र बभूव प्रियदर्शना।
विराजयन्ती तं देशं विद्युत्सौदामनी यथा।।[25]

अर्थात् श्री राम के ऐसा कहने पर जटा मुनि वस्त्र तथा मृगचर्म धारण करने वाली शबरी ने अग्निकुंड में अपने आप को होम दिया। प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्विनी शबरी दिव्य आभूषण, दिव्या मलायें तथा दिव्य चंदन आदि अंगराग लगाकर स्वर्ग को चली गई। दिव्य वस्त्र धारण करके देखने में स्वभावतः सुंदरी शबरी उस प्रदेश को प्रकाशित करती हुई बिजली जैसी प्रतीत होती थी।

विदुषी के रूप में- रामायण में वृद्धा तपस्विनी शबरी निःस्वार्थ भाव से महर्षि मतंग के आज्ञानुसार कार्य करती है। वह राम, लक्ष्मण तथा सीता की प्रतीक्षा में संपूर्ण जीवन व्यतीत करती है। इससे पता चलता है कि उन्होंने शास्त्रों का संपूर्ण अध्ययन कर रखा है तथा सामाजिक कल्याण हेतु आध्यात्मिक उन्नति के साथ तपस्या करती है। ज्ञान संवर्धन हेतु आत्म मनन-चिंतन भी करती है।

6. त्रिजटा-

त्रिजटा अशोक वाटिका में सीता को पहरा देने वाली एक वृद्धा राक्षसी थी। यद्यपि वह रावण के आज्ञानुसार अशोक वाटिका का देखरेख करती थी फिर भी सीता के विषय में हमेशा हित ही चाहती थी। जब रावण से विवाह करने हेतु अन्य राक्षसनियां सीता को डरा रही थी तभी त्रिजटा ने सीता की रक्षा की। मेरी दृष्टि से त्रिजटा एक विवेकी, श्री राम के विषय में शुभ चिंतन करने वाली प्रतीत होती है। जब भी राक्षसियां सीता को प्रताड़ित करती है तब त्रिजटा एक ढाल के रूप में दृष्टिगोचर होती है। सीता को प्रताड़ित करने वाली रक्षसनियों को वह कहती है-

आत्मानं खादतानार्या न सीतां भक्षयिष्यथ।
जनकस्य सुतामिष्टां स्नुषां दशरथस्य च।।
स्वप्नो ह्यद्य मया दृष्टो दारुणो रोमहर्षणः।
राक्षसानामभवाय भर्तुरस्या जयाय च।।[26]

अर्थात् अरी ओ राक्षसियों! तुम सब जनक की पुत्री और दशरथ की पतोहू सीता को नहीं खा सकती तुम्हें अपना ही मांस खाना पड़ेगा। हे पापिनियों! आज मैंने एक बुरा स्वप्न देखा है जिससे मालूम पड़ता है कि श्री रामचंद्र का कल्याण और राक्षसों का विनाश होगा।

त्रिजटा को स्वप्न में बहुत सारे घटनाओं का उद्बोधन होता है और उसे ही वह दूसरों के सामने प्रकट करती है। वह सीता के विषय में कहती है-

राघवाद्धि भयं घोरं राक्षसानामुपस्थितम्।
प्रणिपातप्रसन्ना हि मैथिली जनकात्मजा।।
अलमेषा परित्रातुं राक्षसीर्महतो भयात्।
अपि चास्या विशालाक्ष्या न किंचिदुपलक्षये।।
विरूपमपि चाङ्गेषु सुसूक्ष्ममपि लक्षणम्।
छायावैगुण्यमात्रं तु शङ्के दुःखमुपस्थितम्।।[27]

अर्थात् राक्षसों के लिए रामचंद्र से बड़ा भय उत्पन्न हो गया है। धर्म मार्ग को जानने वाली सीता यदि प्रार्थना करने से प्रसन्न हो जाए तो निश्चय ही वे बड़े संकट से तुम्हारी रक्षा करेंगी। सीता में ऐसा कोई भी लक्षण दिखाई नहीं पड़ता, जिससे उनका अमंगल हो। सीता का दु:ख स्वप्न के समान और थोड़ी दूर के लिए चंद्रमा पर पड़ी हुई राहु की छाया के समान है।

त्रिजटा यद्यपि राक्षस कुल की है फिर भी उनमें आदर्श मनुष्य कोटि का व्यवहार परिलक्षित होता है। वह सीता को बार-बार सान्त्वना देती रहती है। मेरी दृष्टि में सीता का लंका में स्थिर रह पाना त्रिजटा के कारण ही संभव हो पाया। हर विकट स्थिति में त्रिजटा ने सीता का साथ दिया। इससे उनका मानवों के प्रति दया का भाव परिलक्षित होता है।

7. मन्दोदरी-

मंदोदरी मय दानव तथा हेमा अप्सरा से उत्पन्न रावण की पत्नी थी। उत्तरकांड में इनके विवाह का प्रसंग मिलता है। मय दानव वन में अपनी पुत्री के साथ हेमा से वियुक्त भाव होकर जीवन व्यतीत करता था। उसी समय रावण वन में आया। रावण के व्यक्तित्व को जानकर मय दानव ने रावण से अपनी पुत्री की विवाह की याचना की।

इयं ममात्मजा राजन् हेमयाप्सरसा धृता।
कन्या मन्दोदरी नाम पत्न्यर्थं प्रतिगृह्यताम्।।[28]

अर्थात् हे राजन्! यह हेमा अप्सरा से उत्पन्न मेरी कन्या है। तुम इसको अपनी भार्या बनाने के लिए ग्रहण करो। इस प्रकार मंदोदरी का रावण से उसी क्षण विवाह हो गया। मंदोदरी शुभ लक्षणा तथा विवेक थी। वह रावण को हमेशा अनैतिक विचारों की ओर जाने से रोकती थी। इसी क्रम में अशोक वाटिका में जब रावण सीता को मारने के लिए उद्यत हो जाते हैं तब मंदोदरी उसे रोकते हुए कहती है-

सीतया तव किं कार्यं महेन्द्रसमविक्रम
देवगन्धर्वकन्याभिर्यक्षकन्याभिरेव च।

सार्धं प्रभो रमस्व सीतया किं करिष्यसि।।[29]

अर्थात् हे इंद्र के समान पराक्रमी वीर! आप सीता को लेकर क्या करेंगे? हे स्वामी! देवताओं, यक्षों और गंधर्व की कन्याएं आपके रनिवास में है। आप उनके साथ आनंद करिए।

इससे पता चलता है की मंदोदरी आत्म विचार से संपन्न, नैतिक शिक्षा संपन्ना, शुभ गुणयुता, राक्षसकूल की देवी थी।

विदुषी के रूप में- इनका कोई विशेष योगदान प्राप्त नहीं होता है परंतु सामाजिक कल्याण में किंचित विचार परिलक्षित होते हैं।

निष्कर्ष-

रामायण में अनेक स्त्री पात्र है तथापि सभी स्त्रियां विदुषी के रूप में दृष्टिगोचर नहीं हुई है और ना ही ज्ञान संवर्धन में इनका योगदान प्रतीत होता है। रामायण के अध्ययन से यह पता चलता है कि विधाता के दृष्टिकोण से पुरुष पात्र अधिक संपन्न हैं पुरुषों में समाज कल्याण तथा ज्ञान संवर्धन प्रतीत होता है। उदाहरण स्वरूप महर्षि अगस्त्य ,विश्वामित्र, वशिष्ठ आदि ऋषियां ज्ञान संवर्धन में अपना योगदान देते थे। इन पुरुष पात्रों में ज्ञान संवर्धन अत्यधिक मात्रा में परिलक्षित होता है परंतु स्त्री पात्रों का विदुषी के रूप में अत्यधिक वर्णन प्राप्त नहीं होता है। मेरा विचार है की रामायण में स्त्रियां विदुषी तो होती थी परंतु ज्ञान संवर्धन का कार्य स्त्री पात्रों की अपेक्षाकृत पुरुष वर्ग में प्राय दिखता है। रामायण की विदुषियां शास्त्र आदि विचारों से संपन्न रहती थी परंतु गुरुकुल आश्रम परंपरा ऋषिगण द्वारा ही संचालित किए जाते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि रामायण कालीन विदुषियों के अपेक्षाकृत पुरुष पात्र का ज्ञान संवर्धन में योगदान अत्यधिक है।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. रामायण, बालकाण्ड, 2 सर्ग, श्लोक सं. -37

2. रामायण, सुन्दरकाण्ड, 58वाँ सर्ग श्लोक सं. - 77& 78
3. उत्तररामचरित. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, तृतीय अंक पृ. सं. 244, चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी, 2018
4. उत्तररामचरित, तृतीय अङ्क, पृ. सं. -268, आनन्दस्वरूप मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली, 1997
5. उत्तररामचरित प्रथम अङ्क, श्लोक सं. -43
6. उत्तररामचरित, तृतीय अंक, पृ. सं.- 196 डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, चौखम्मा कृष्णदास अकादमी वाराणसी, 2018
7. वाल्मीकीय, रामायण उत्तरकाण्ड 67वां सर्ग श्लोक सं. 14, 15&16
8. उत्तररामचरितम्, डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी प्रथम अङ्क श्लोक सं. 13 , चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी 2007
9. रामायण, अरण्यकाण्ड, 34वां सर्ग श्लोक सं. -15-20
10. चाणक्यनीति, तृतीय अध्याय, श्लोक सं. -12
11. रामायण, बालकाण्ड, 77वां सर्ग, श्लोक सं. - 29 और 30
12. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 7 वाँ सर्ग, श्लोक सं.-31&32
13. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 7वां सर्ग, श्लोक सं.- 35
14. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 8वां सर्ग, श्लोक संख्या- 14
15. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 9वां सर्ग श्लोक सं.- 58&59
16. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 9वां सर्ग, श्लोक नं.- 63&64
17. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 40वां सर्ग श्लोक- 5&6
18. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 44वां सर्ग, श्लोक सं- 2,3&4
19. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 92 सर्ग, श्लोक सं.- 22, 23&24
20. रामायण, अयोध्याकाण्ड 4 सर्ग, श्लोक सं.- 30
21. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 20 वां सर्ग, श्लोक सं.- 14, 15
22. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 20 वां सर्ग, श्लोक सं.- 47,9
23. रामायण, अयोध्याकाण्ड, 24वाँ सर्ग श्लोक सं. - 14

24. रामायण, अरण्यकाण्ड, 74 वां सर्ग, श्लोक सं.- 8&9
25. रामायण, अरण्यकाण्ड, 74वां सर्ग श्लोक स.- 32-34
26. रामायण, सुन्दरकाण्ड, 27वां सर्ग, श्लोक सं.- 5&6
27. रामायण, सुन्दरकाण्ड, 27वां सर्ग, श्लोक, सं. 45,46&47
28. रामायण, उत्तरकाण्ड, 12वां सर्ग श्लोक सं.- 18&19
29. रामायण, सुन्दरकाण्ड, 58वाँ सर्ग श्लोक सं.- 77&78

वेदकालीन विदुषियाँ एवं उनका योगदान

डॉ. विमला एस. चौधरी
संस्कृत विभाग, भक्तराज खाचार विनयन और वाणिज्य महाविद्यालय, गुजरात

आर्यों की सभ्यता और संस्कृति का आरम्भ वेदों के आविर्भाव से हुआ है। भारतीय धर्म, साहित्य, भाषा, सभ्यता, संस्कृति और कला इन सभी के विकास और उन्नति में वेदों का सबसे महत्त्वपूर्ण स्थान है। भारतीय साहित्य में वेदों के गुणों के गौरव का गान सदा से किया जाता है। वेद शब्द विद् 'सत्तायाम्', विद् 'ज्ञाने', विद् 'विचारणे' और विद् 'लाभे' इन चार धातुओं सें निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है- जिसकी सदैव सत्ता हो, जो अपूर्व ज्ञानप्रद हो, जो एहिकायुष्मिक उभयविध विचारों का कोश हो और जो लौकिक और लोकोत्तर लाभप्रद हो, ऐसे ग्रन्थ को 'वेद' कहते है। वेदों में 'सत्ता, ज्ञान, विचार और लाभ'- यें चारों गुण विद्यमान है। वेद भगवान् का ही वैभव है, लौकिक और पारलौकिक ज्ञान का कोश है, विचारों का ख़जाना है, ऐहिक और आमुष्मिक उभयविध लाभों का सर्वोपरि जनक है, इसलिए भगवान्, ज्ञान, विचार और लाभ केवल पुरुषों के ही नहीं हो सकते, यें चारों तो पृथ्वी कें प्रत्येक जीव के लिए समान है। नर और नारी दोनों ही ज्ञानवान, विचारवान और लाभ प्राप्त कर सकते है। वेदों में नारी की महत्ता और विशेषाधिकार सम्बन्धी मन्त्र   मिलते है, इसलिए 'वेद ही विश्व की जागृति का प्रथम प्रमाण माना जाता है'। द स्टेटस ऑफ़ वुमन इन ऐंशियन्ट इन्डिया में प्रो. इन्द्रजी ने लिखा है- "प्राचीन काल में अभ्यास की द्दष्टि सें स्त्री-पुरुष में समानता थी। स्त्रियाँ वेद-वेदांग का अध्ययन तथा शास्त्र चर्चा भी कर सकती थी।[१] ऋग्वेद में कहा है कि-, "जो पुरुष और स्त्रियाँ धर्म के अनुष्ठान पूर्वक बुद्धिमान लोगों

के लक्षणों को धारण कर प्रश्नोत्तर और अन्त:करण को शुद्ध करके समर्थ होती हैं, वैसे पुरुष और वैसी स्त्रियाँ सब प्रकार वृद्धि को प्राप्त होती हैं।"[२]

वेदकाल में अनेकों विदुषियों के दर्शन होते है। वेदों में देवतओं के साथ ऋषिका स्वरूप में विदुषियों का योगदान भी प्राप्त होता है। वेदों में रोमशा, लोपामुद्रा, घोषा, गोधा, विश्ववारा, रोमाशा, लोपामुद्रा, यमी, शश्वती, श्री, अपाला, सरमा, दक्षिणा, रात्री, सुर्या, सावित्री, वाक्, लाक्षा, सार्पराज्ञी मन्त्रो की द्रष्टा है। ऋग्वेद में प्रथम मण्डल में १२६ सूक्त के मन्त्र नं. ७ में रोमशा नें कहा है कि-

"उपोप मे परा मृश मा मे दभ्राणि मन्यथाः।
सर्वाहस्मि रोमशा गन्धारीणामिवाविका॥"

अर्थात् "रानी राजा के प्रति कहे कि, मैं न्यून नहीं हूँ, जैसे आप पुरुषों के न्यायाधीश हों वैसे मैं स्त्रियों का न्याय करने वाली होती हूँ और जैसे पहले राजा-महाराजाओं की स्त्रियाँ प्रजास्थ स्त्रियों की न्याय करने वाली हुई, वैसी मैं भी होऊँ।"[३] 'लोपामुद्रा' विदर्भ राज की कन्या और महर्षि अगस्त्य की पत्नी थी, लोपामुद्रा ने अपने पति के साथ ऋग्वेद के प्रथम मण्डल में १७९ सूक्त में मन्त्रों की रचना की है, मन्त्रो में सुसंतान उत्पन्न करने का उल्लेख किया है। "जैसे मैं पहले हुई वर्षा तथा रात्रि-दिन सब की अवस्था को जीर्ण करती हुई, प्रभात वेलाओं पर श्रम करती हुई और जैसे शरीरों की अतीव अवस्था को नष्ट करने वाला काल लक्ष्मी को विनाश करता है, वैसे वीर्य सेचने वाले अपनी-अपनी स्त्रियों को शीघ्र प्राप्त होवें। जो सत्य व्यवहार में व्याप्त करने वाले पूर्व विद्वानों के साथ सत्य व्यवहार कहते हुए वें भी सुखी हो और जो शीघ्र स्त्रीजन वीर्यवान् पतियों के साथ निरन्तर जावें उनके समान दोषों को दूर करें वे अन्त को नहीं प्राप्त होते है।"[४] लोपमुद्रा का तात्पर्य यही है की, ब्रह्मचर्यस्थ विद्यार्थियों सें विद्या और अच्छी शिक्षा लेनी चाहिए कि- जो पहले विद्या पढ़े हुए सत्यचारी जितेन्द्रिय हों और उन ब्रह्मचारिणियों के साथ विवाह करें जो अपने तुल्य गुण, कर्म, स्वभाववाली विदुषी हों। यजुर्वेद में भी १७.११ और ३६.२०

सूक्तो में लोपामुद्रा की विदूषिता दिखई देती है। लोपामुद्रा इस सूक्तो के मन्त्रो में भी राजा-प्रजा, विद्वान कें दायित्वों को जाग्रत किया है। जो अन्तःकरण कें शुद्ध मनुष्य है, वो न्यायाधीश दुष्टों की निवृत्ति करके सत्य न्याय का प्रकाश करें। राजा वही है जो न्याय को बढ़ाने वाला हो और वही विद्वान् है जो विद्या से न्याय को जनाने वाला हो और वह राजा नहीं जो कि प्रजा को पीड़ा दे और वह विद्वान् भी नहीं जो दूसरों को विद्वान् न कहे और वे प्रजाजन भी नहीं जो नीतियुक्त राजा की सेवा न करें। लोपमुद्रा ने यजुर्वेद के ३६.२० सूक्त में कहा है, परमेश्वर हम लोग आप के शुभ गुण, कर्म, स्वभावों के तुल्य अपने गुण कर्म स्वभाव करने के लिये आप को नमस्कार करते हैं और यह निश्चित जानते है कि अधर्मियों को आप की शिक्षा पीड़ा और धर्मात्माओं को आनन्दित करती है। इस प्रकार लोपामुद्रा मन्त्रद्दष्टि विदुषी कें रूप में नारियों के गौरव में अभिवृद्धि की है। ऋग्वेद के चतुर्थं मण्डल के 18वें सुक्त में देवमाता अदिति की विदुषिता प्रगट होती है। देवमाता अदिति इन्द्रादि देवताओं की माता और महर्षि कश्यप की पत्नी थी। “देवमाता अदिति ने मंत्र में सूर्य, मेघ के अलङ्कार से सेना, सभाध्यक्ष और राजा के कृत्य का वर्णन है। जैसे अन्तरिक्ष पुत्र के समान वर्त्तमान सूर्य मेघ का नाश करके नदियों को बहाता है वैसे ही विद्वान् का उत्तम प्रकार शिक्षित पुत्र सेना का अध्यक्ष शत्रुओं का नाश करके सेनाओं को ऐश्वर्य प्राप्त कराता है।” इस मन्त्रो में देवमाता अदिति की ममता और अपने पुत्र के लिए प्रेम दिखाई देता है।

ऋग्वेद के पांचवे मण्डल के २८वें सूक्त में अत्रि कुल की विश्ववारा आत्रेयी की विदूषिता दिखाई देती है, वो विद्याव्यसनी थी। “हे मनुष्यो! जो प्रज्ज्वलित किया गया अग्नि प्रकाश का आश्रय करता है और उनके रुपवाले प्रकाश से प्रभातकाल के प्रति चलने वाला विशेष करके शोभित होता है और संसार को प्रकट करने वाली श्रेष्ठ गुणों को प्रशंसित करती हुई रात्रि और पूर्व दिशा दान और अन्नादि पदार्थो के साथ प्राप्त होती है उस अग्नि को और उस विश्ववारा को आप लोग विशेष करके जानो।”[५] विश्ववारा

मन्त्रो में बताती है कि, विद्वान् जन, आप लोग विद्या और विनय से प्रकाशमान अतिथियों की दशा को धारण किये हुए सब स्थानों में भ्रमण करके सम्पूर्ण जनों के लिये सत्य का उपदेश देते हुए यश को निरन्तर प्रसारना चाहिए। स्त्री और पुरुष को जितेन्द्रिय धर्मात्मा बलवान् और पुरुषार्थी होकर सम्पूर्ण दुष्टों की सेना को जीतिये। अग्नि आदि गुणों से युक्त राजा न्याय को यथावत् करता है वो राजा जैसे यज्ञों में अग्नि के सदृश सर्वत्र प्रकट यशवाला होता है। वेदकाल में अग्नि का महत्त्व ज्यादा था इसलिए विश्ववारा की मन्त्रो में अग्नि की उपासना दिखाई देती है।

ऋग्वेद के आठवें मण्डल के प्रथम सूक्त में ३४वें मन्त्र में अङ्गिरस की पुत्री और आसङ्ग योगि की पत्नी शाश्वती की विदूषिता दिखाई देती है। वो कहेती है की, "इस परमात्मा का कार्यभूत स्थूल नश्वर अति विस्तीर्ण अवलम्बमान यह ब्रह्माण्ड आगे दृष्टिगोचर हो रहा है उसे देखकर नित्या प्रकृतिरुप स्त्री कहती है कि, हे दिव्यगुणसम्पन्न प्रभो! आप सुन्दर कल्याणमय भोग योग्य पदार्थो के समूह को धारण करते है।"[६] अष्टम् मण्डल के ९१वें सूक्त की रचना विदूषित 'अपालात्रेयी' ने की है। अपाला महर्षि अत्रि की पुत्री थी। अपाला को कुष्ठ रोग हुआ था इसलिए अपाला के पति नाराज थे अपाला ने पितृगृह आकर सूर्योपसना की थी। समाज में 'सोम' कों मदिरा जैसा द्रव्य मानकर इन्द्र को सोम के नशे में बताया जाता है पर यह असत्य ही है, क्योंकि 'सोम' तो 'औषधि' ही है, अष्टम् मण्डल के ९१वें सूक्त में सप्त मन्त्रो में अपाला ने वर्णन किया है, "पति द्वारा वरण को स्वीकार करती कन्या जो शारीरिक दृष्टि से शुष्क हो गई हो वह 'सोमलता' आदि औषधियों के रोगनाशक रस को निश्चय ही प्राप्त करे और प्राप्त कर घर आती हुई उस रस को अपाला रोगादि दु:ख निवारणार्थ निष्पादित करती है। सोमलता जैसी औषधियां प्राणशक्ति का दाता है निर्बल कन्या पतिवरण से पूर्व ऐसे सोम का सेवन करना चाहिए। मनुष्य जो शक्ति तथा ऐश्वर्य के इच्छुक है वो अपने में व्याप्त तीन क्षेत्रों या गुहा अर्थात् शिरोगुहा(मस्तिष्क तथा ज्ञानेन्द्रियों, उरोगुहा(हृदय, फेफड़े) एवं

उदरगुहा(आँते, गुर्दे) को स्वस्थ और बुद्धिशील करके उन्नति कर सकता है। पोषण के अभाव में रिक्त एवं खोखला हुआ शरीर भी सोमलता इत्यादि औषधियों के विधिवत् उपयोग सें पुनः कान्तिमान् हो जाता है। ऋग्वेद के ९वें मण्डल के १०४ सूक्त की विदुषिका कश्यप ऋषि की पुत्री शिखण्डी नाम की दो अप्सराएं है। उन्होंने 'पवनमान सोम' की स्तुति की है। जैसे ग्रह उपग्रहों का केन्द्र सूर्य है इसी प्रकार सब 'ज्ञानों' का आधार 'परमात्मा' है। 'परमात्मा' 'अनन्तगुणसम्पन्न' है, उसके गुणों के वर्णन को श्रवण मनन और निदिध्यासन द्वारा चित्त में बसाते है, वो पुरुष ज्ञानी योगी बनते है । परमात्मा ही सबको मार्ग दिखाता है और मित्र की तरह हित चिन्तन करनेवाले है और पापी पुरुषों का हनन करके निष्कपता का ही प्रचार करता है । ऋग्वेद के १० मण्डल के सूक्त १० में 'यमी वैवस्वती' का प्रदान है, उसमें सात मन्त्रो की रचना की है और १५४ सूक्त में ५ मन्त्रों की ऋषिका रही है। ऋग्वेद में मण्डल १० के २८ सूक्त में 'इन्द्रास्नुषा' की विदुषिता मिलती है। इन्द्रस्नुषा इन्द्र के पुत्र वसुक्र कि पत्नि है वो इन्द्र की स्तुति करती है। ऋग्वेद के मण्डल १० के ३९ और ४० सूक्त की विदुषिका 'घोषा काक्षीवती' अश्विनीकुमारो का वैद्य या वैज्ञानिक रुप में आह्वान करती है। अश्विनीकुमारो सें उत्तम वाणी,बुद्धि, और प्रज्ञा, स्वास्थ्य के शिक्षा की कामना करती है। 'अदिति दक्षायणी' की विदूषिता ऋग्वेद के मण्डल १० के ७२ सूक्त में मिलता है। देवमाता अदिति ने नव मन्त्रो में 'देवो की और सृष्टि की उत्पत्ति' का वर्णन किया है। ऋग्वेद में यदि कोई विदूषिया नें अधिक मन्त्रो की रचना की है तो वो मण्डल १० कें ८५ वें सूक्त की ऋषिका 'सूर्यासावित्री' है। 'सूर्यासावित्री' ने कुल ४७ मन्त्रो की रचना की है, इस को 'सूर्यासूक्त' या 'विवाहसूक्त' भी कहते है, जिस में देवीशक्तिको ध्यान में रखते हुऐ और सूर्याने अधिक मन्त्र कन्या, विवाह और दाम्पत्य दियें है। जैसे कन्या की प्रथमावस्था 'शान्त सोम' है, दूसरी गृहस्थ की भावना का जिस अवस्था में उन्मेष होता है वो 'गन्धर्व' है। उस के बाद यौवन की उष्मा बढ़ती है वो 'अग्नि' है और चौथी अवस्था में पति

के योग्य हो जाती है। वधू को कहती है कि, "हे वधू! तू सौम्यदृष्टि और पति की रक्षा करने वाली हो, पशु के लिए कल्याणकारी, उत्तम मनवाली, उत्तम बल और ज्ञानवाली, उत्तम सन्तानों को उत्पन्न करने वाली और आपत्काल में आवश्यकता पड़ने पर देवर की कामना वाली और सुख कारिणी हो, मनुष्यों के लिए कल्याण कारिणी हो और चौपायों के लिए सुख्कारिणी हो।[७] पुरुष को भी सौभाग्य शालिनी को उत्तम पुत्रों वाली करने को कहती है। वधू को अपने श्वसुर, सासु, ननदों और देवरों के बीच साम्राज्ञी बनने को कहती है तथा पति और पत्नि को मिले हुए जल के समान एक होने की कामना की है अर्थात् अपनें गुणों और कर्म से अपने परिवार के मन में स्थान पाने की बात की है। ऋग्वेद के मण्डल १० में ८६ सूक्त में ११ मन्त्रों की रचना 'इन्द्राणी' ने की है, उसमें इन्द्र अर्थात् परमात्मा को हर मन्त्रों में सब पदार्थों से सूक्ष्म और उत्कृष्ट बताया है। ऋग्वेद के १०.९५ सूक्त की विदूषि 'उर्वशी' है, इस सूक्त में उर्वशी का अपने पति पुरुरवा के साथ संवाद मिलता है। ऋग्वेद के १०.१०७ सूक्त में 'दिव्यो दक्षिणा वा प्राजापत्या' की विदूषिता देखने को मिलती है, इस में यज्ञ (याग)के लिए सूर्य सम्बन्धी महत् तेज प्रकट होता है और हमारे दान परम्परा की बात की है, "दाता लोग यश से कभी मरतें नहीं, न तो उत्पात को प्राप्त होते हैं, निश्चय ही दाता लोग न बाधित होते है और न तो व्यथा को प्राप्त होते हैं। यह जो समस्त लोक है और स्वर्ग यह सब कुछ लोगों को दिया गया दान इन दाताओं को देता है ।[८] दान दाता सुगन्धपूर्ण गृह, उत्तम पत्नि, अगाध यश और विपत्तियों पर विजय प्राप्त करता है। ब्रह्मवादिनी 'जुहू ब्रह्मजाया' ने ऋग्वेद के १०.१०९ में सात मन्त्रोकी रचना की है, इस में 'यज्ञ विज्ञान' का वर्णन किया है। ऋग्वेद के १०.१२५ में विदुषी 'वागम्भृणी' है और देवता भी वही 'अम्भृण' शब्द का एक अर्थ 'वाणी' भी है। वाग्देवी रुद्रगण, वसुगण के साथ भ्रमण करती है। आदित्यगण (विद्वान), विश्वदेवगण(विद्याविदों) के साथ रहती है। वायु, जल, विधुत्, अग्नि, भूमि, आकाश सबको धारण करती है। आठ मन्त्रो में

आत्मस्तुति की है। ऋग्वेद में १०.१३४ में मन्त्र सात की विदुषी 'गोधा' है, गोधा कहेती है की, "हे विद्वान् जन! न कुछ हम हानि पहूँचाते है, न कुछ अमर्यादित कर्म करते है, मन्त्र से जो भी प्रतिपादित कर्म है, उसको आचरण में लाते है। अपनों और सहयोगियों सहित इस लोक में यत्न करते है।"[९] ऋग्वेद में १०.१५१ सूक्त की विदुषी 'श्रद्धा कामायनी' है। देवता भी 'श्रद्धा' है। श्रद्धा का मनुष्य जीवन में महत्त्व दर्शाते हुए श्रद्धायुक्त करने की कामना की है। ऋग्वेद में १०.१५३ सूक्त की विदुषी 'इन्द्रमातरो' है जो इन्द्र की मातायें है, जिन्होंने पांच मन्त्रो में इन्द्र की स्तुति की है। ऋग्वेद के १०.१५९ सूक्त की विदुषी 'शची पौलोमी' है। शची पौलोमी देवता भी है अतः आत्मस्तुति की है। ऋग्वेद कें १०.१८९ की विदुषी 'सार्पराज्ञी' है, जिस नें ३ मन्त्रो में आत्मस्तुति की है। ऋग्वेद में अनेक विदूषीयाँ के नाम आते है। जिस में सामान्य स्त्री तथा अदिति, इन्द्राणी, वाक्, इन्द्रमाता जैसी देवीयाँ भी है और उर्वशी जैसी अप्सरा भी है परन्तु यें सब विदूषीयाँ 'नारी' है वो ही गौरवपूर्ण है। यजुर्वेद भी ऋग्वेद की विदूषीयाँ में से 'सर्पराज्ञी कद्रू' की यजुर्वेद के अध्याय ३ में मन्त्र ६ सें ८ तक पृथ्वी के भ्रमण और अग्नि, सूर्य के विषय में बात की है। यजुर्वेद में लोपामुद्रा अध्याय १७ में ११ सें १५ मन्त्र की विदुषी रही है। न्यायधीश, संन्यासी के कार्य, विद्वान राजा आदि के विषय में मन्त्रों की रचना लोपामुद्रा ने की है और यजुर्वेद के ३६ में अध्याय में २० मन्त्र की विदुषी है, जिस में ईश्वर की उपासना के विषय में कहा है। अत्रिदुहिता 'विश्ववारा' की यजुर्वेद अध्याय ३३ में विदुषिता देखने को मिलती है, विश्ववारा ने कहा की, "हे विद्वन् वा राजन्! आप बडे सौभाग्य के अर्थ दुष्ट गुणों और शत्रुओं के नाशक बल को अच्छे प्रकार उन्नत कीजिये जिससे आपके धन और यश श्रेष्ठ हों, आप स्त्री-पुरुष के भाव को सुन्दर नियमयुक्त अच्छे प्रकार कीजिये और आप शत्रु बनने की इच्छा करते हुए मनुष्यों के तेजों को तिरस्कृत कीजियें।"[१०] इस के सिवाय यजुर्वेद के अध्याय १९, २८ इन तीनों अध्याय की विदुषी 'सरस्वती' की विदुषिता देखने को मिलती है।

सामवेद में भी ऋग्वेद और यजुर्वेद के जैसे ही सामवेद में 'सार्पराज्ञी' की विदूषिता पूर्वार्चिक आरण्यं काण्ड में पंचम दशति में ४ से ६ मन्त्र मिलते है तथा उत्तरार्चिक ११.११ अध्याय में चन्द्रमा और सूर्य का सम्बन्ध वर्णन करते है । पूर्वार्चिक एन्द्रं काण्ड में २.७ में 'गोधा' नें हिंसा, छल-कपट इत्यादि न करके वेदमन्त्रों में निर्दिष्ट कर्तव्य का पालन करने को कहा है। सामवेद के उतरार्चिक ७.१६ में विदुषी गोधा ने मनुष्य को अपनी अद्वितीय शक्ति को पहेचान कर मित्रों के साथ सौहार्द और शत्रुओं के साथ संघर्ष करके समरांगण में विजय पाने को कहा है। सामवेद के उतरार्चिक में ८.९ में शिखण्डिनी की विदूषिता दिखाई पडती है, उस में कहा है की, जीवात्मा के भीतर महान् शक्ति निहित है। उद्बोधन-गीतों आदि के द्वारा उस शक्ति को जाग्रत करनी चाहिए, अन्तरात्मा को देवपूजा, संगतिकरण, दान आदि द्वारा शिशु की भांति अलंकृत करना चाहिए। सामवेद में उत्तरार्चिक के ८.७ अध्याय में 'सिकतानिवावरी' का प्रदान मिलता है। अथर्ववेद के चतुर्दश काण्ड प्रथम और द्वितीय सूक्त की विदुषी 'सावित्री सूर्या' है दोनों में १३९ मन्त्रों दियें है, उस में प्रकाश करने योग्य 'प्रकाशक' के विषय और 'गृह आश्रम' के विषय में उपदेश दिया है। अथर्ववेद में काण्ड २० में ४८ वा सूक्त में 'सार्पराज्ञी' का प्रदान मिलता है। अथर्ववेद का काण्ड २०.९३ में 'देवजामय' ने ९३ वें सूक्त में इन्द्र की स्तुति की है।

प्राचीन समय में नारीओं को लौकिक और अध्यात्मिक दोनों प्रकार की शिक्षा दी जाती थी। ज्ञान प्रप्ति के द्वारा कुछ नारीयाँ विदुषियाँ बन कर प्रसिद्धि प्राप्त करती थी, इतना ही नहीं वो ऋषिका वेदमन्त्रों की द्रष्टा भी बनती थी। वेदकाल में शिक्षा अनिवार्य ही थी, शिक्षा प्राप्त की हुई कन्या सुयोग्य पति को प्राप्त कर सकती थी। कन्या के लिए शिक्षा विवाह के लियें आवश्यक थी। बालिका का विवाह नहीं होता था, ऋग्वेद में भी माता-पिता को शिक्षित कन्या को उसकें जैसे ही शिक्षित युवान सें विवाह करनें की सलाह दी गई है। यजुर्वेद में भी इस बात को कहा है की अभ्यास पूर्ण किया हो ऐसी युवती का विवाह उसकें जैसे ही शिक्षित युवान के साथ

करना चाहिए। अथर्ववेद में भी नारी की शिक्षा को महत्त्व अधिक दिया है। अथर्ववेद में कहा है की, “मनुष्य सब व्यवहारकुशल, सत्यशील, धर्म्मात्मा स्त्री-पुरुषों से शिक्षा प्राप्त करके आनन्दित रहे”[११] ने को कहा है। प्राचीन काल में ‘ब्रह्मचर्याश्रम’ को ‘वेदवेदांग’ के अभ्यास का आरंभ का समय कहा जाता था। नारीयों का भी ‘उपनयन’ संस्कार करकें ब्रह्मचारी की जाती थी अर्थात् जनेऊ धारण करने कें बाद प्रतिदिन वेदाभ्यास, धार्मिकशास्त्रो और पवित्र ग्रन्थो का अभ्यास कर सकती थी। वेदारंभ पूर्व ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक था। गोभिल गृहसूत्रमें नारीयों के लिए ‘पुरोहिता’ शब्द का उल्लेख मिलता है। आपस्तम्ब सूत्र में नारीयों के लिए आचार्या (जो स्त्री वेदमन्त्रों की शिक्षा देती थी वो आचार्या) शब्द भी मिलता है । उपाध्याया (जो स्त्री ज्ञान प्राप्त करती है वो उपाध्याया है) शब्द भी मिलता है। पराशर संहिता में भी उपनयन संस्कार और वेदाभ्यास करती स्त्रीओं का उल्लेख मिलता है। हरित नाम के प्राचीन न्यायविद् स्त्री-शिक्षण के लिऐ लिखते है की, प्राचीन काल में स्त्री दो प्रकार की थी- पहली वो जो वेदाभ्यास में समर्पित थी, यें स्त्रीयां उपनयन संस्कार भी करती थी, जनेऊ धारण करती थी। दुसरें प्रकार की स्त्री विवाह करकें गृहस्थी संभालती थी।[१२]

प्राचीनकाल में वेदों में अनेकों विदुषियाँ प्रदान रहा देखकर यें अवश्य स्पष्ट होता है के प्राचीन भारत में स्त्री-पुरुष जैसे भेद-भाव सें उपर उठकर ‘ज्ञान’ को ही महत्त्व दीया जाता था। माता-पिता के लिए पुत्र और पुत्री सन्तान थी, एक समान थी इस लिए ऋग्वेद में कहा, माता सन्तानों को उत्पन्न कर उनकी वृद्धि कराती है, ब्रह्मचर्य आदि संस्कारों के ही द्वारा सन्तानों को श्रेष्ठ बनाना चाहिए। “जो स्त्री बिजुली के सदृश विद्याओं में व्याप्त संस्कार और उपस्कार अर्थात् उद्योग आदि कर्मों में चतुर उत्तम रीति से बोलने तथा नम्र स्वभाव रखनेवाली होवे वह वृष्टि के सदृश सुख देनेवाली होती है”[१३] “जो स्त्री और पुरुष दु:ख के बन्धनों को काट

और दुष्ट आचरण को त्याग के विद्या की उन्नति करें, तो वो निरन्तर सुख को प्राप्त होवें।"[१४]

***

संदर्भ:-

१.પ્રાચીન કાળમાં સ્ત્રી પૃ. 84

२. ऋग्वेदः 3/38/02

३.ऋग्वेद १/१२६/७

४. ऋग्वेद १/१७९/१,२

५. ऋग्वेद ५/२८/१

६. ऋग्वेद ८/१/३४

७. ऋग्वेद १०/८५/४४

८. ऋग्वेद १०/१०७/८

९. ऋग्वेद १०.१३४.७

१०. यजुर्वेद ३३.१२

११. अथर्ववेद 11/6/20

१२. પ્રાચીન કાળમાં સ્ત્રી પૃ. 110

१३. ऋग्वेद : 3/31/06

१४. ऋग्वेद : 3/34/13-14

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची :-

१. ऋग्वेद:- भाष्यकार:- महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती, प्रकाशक:- विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, संस्करण: २०२४

२. यजुर्वेद:- भाष्यकार:- महर्षि श्रीमद्दयानन्द सरस्वती, प्रकाशक:- विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, संस्करण: २०२४

३. सामवेद:- भाष्यकार:- आचार्य (डॉ.) रामनाथ वेदालंकार, प्रकाशक:- विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, संस्करण: २०२२

४. अथर्ववेद: भाष्यकार:- पं. क्षेमकरणदास त्रिवेदी, प्रकाशक:- विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द, संस्करण : २०२२
૫. પ્રાચીન કાળમાં સ્ત્રી :- લેખિકા : ટીના દોશી, યુનિવર્સિટી ગ્રંથનિર્માણ બૉર્ડ, ગુજરાત રાજ્ય, અમદાવાદ, પ્રથમ આવૃત્તિ : 2002

ब्रह्मज्ञान प्राप्ति की अभिलाषा करने वाली मैत्रेयी तथा गार्गी

प्राक्कथन

डॉ. दर्शना सायम

प्रोफेसर-संस्कृत, लोकनायक बापुजी अणे महिला महाविद्यालय यवतमाळ, महाराष्ट्र

उपनिषद् काल में ब्रह्मतत्त्व, निराकार परब्रह्म, परमात्मा का विषय, गुरू-शिष्य संवाद द्वारा समझाया गया है। यह ब्रह्माण्ड की निर्मिति तथा मृत्यु पश्चात मनुष्य की अवस्था और मोक्ष विषय पर विस्तृत चर्चा उपनिषद् ग्रन्थो में कि गई है।

यह उपनिषद् का ब्रह्मतत्त्व विषय साधारण मनुष्य के परे है। गृहस्थ व्यक्ति के लिए इस प्रकार के विषय समझ के परे है। तथा स्त्रीया जादातर गृहस्थ जीवन में व्यस्त रहती थी। उनके लिए उनका घर और परिवार ही सब कुछ था। इसी दौरान कुछ विदूषी स्त्रियाँ भी थी जिन्होंने ब्रह्मतत्त्व के बारे में गुरू से चर्चा की और उस तत्त्व को समझाने के लिए उनसे आग्रह किया जिससे अमृत प्राप्त होता है। उन्हे इस संसार की वस्तुओं से मोह नहीं था। वह वन में अपने ऋषि पत्नी के साथ संन्यास जीवन यापित करती थी। जो पुरूष ब्रह्मतत्त्व का अधिकारी कहा जाता था, उन्हें ही ब्रह्मतत्त्व गुरू से प्राप्त होता था। इन विभुतियों में मैत्रेयी और गार्गी जैसी विदूषी है, जिन्हें ब्रह्मतत्त्व जानने की जिज्ञासा है। 'बृहदकारण्यकोपनिषद्' में मैत्रेयी तथा गार्गी दोनों याज्ञवल्क जी से अमृतत्त्व प्राप्ति के साधन के विषय में जानना चाहती है। इसका अर्थ सर्व शास्त्रों का अध्ययन उन्होंने किया हैं। तथा याज्ञवल्क जब अपने शिष्यों को इस सृष्टि उत्पत्ति के विषय में बता रहे है, उस समय यह दो विदुषियाँ भी इस चर्चा में सम्मिलित है तथा अवसर प्राप्त होते ही उन्होंने अपनी

जिज्ञासा से याज्ञवल्क जी से प्रश्न पुछा गार्गी वाचक्नवी की पुत्री है और मैत्रेयी याज्ञवल्क जी की पत्नी है।

उद्दिष्टः

1) भारतीय विदुषियों का परिचय कराना।

2) उपनिषद् तत्त्वज्ञान को प्रस्तुत करना।

3) ब्रह्मज्ञान कि प्राप्ति करने वाली गार्गी और मैत्रेयी का विवेचन करना।

4) प्राचीन भारतीय महिलाओं का जीवन दर्शन कराना।

'बृहदारण्योपनिशद्' के तीसरे अध्याय और पाचवे ब्राह्मण में कौशीतकीय ने प्रश्न पूछा और याज्ञवल्क जी से कहा, "आप मुझे साक्षात ब्रह्म और सर्वान्तर आत्मा इनकी व्याख्या बताओ।" इस पर याज्ञवल्क जी ने कहा, "आत्मा सर्वांतर है, केवल एक आत्मा नित्य मुक्त है।" इस आत्मतत्त्व की चर्चा मे गार्गी भी सामील है। 6वें ब्राह्मण मे गार्गी याज्ञवल्क जी से प्रश्न पूछती है और याज्ञवलकजी क्रम से उसे उत्तर देते है। गार्गी ने कहा, "ये जो कुछ है वह सब जल मे ओतप्रोत है, किंतु जल किसमे ओत-प्रोत है? वायु में वायु किसमे ओतप्रोत है ? अंतरिक्ष में अंतरिक्ष किसमें ओत-प्रोत है? गंधर्व लोक में गंधर्व लोक किसमें ओत-प्रोत है? आदित्य लोक में आदित्यलोक किसमे .... चंद्र लोक में चंद्रलोक .... नक्षत्र लोक में। नक्षत्र लोक .... इंद्रलोक में इंद्रलोक .... प्रजापति लोक में और प्रजापति लोक .... ब्रम्हलोक में ब्रह्मलोक किसमें? याज्ञवल्क के निषेध करने पर मस्तक गिर जाने के भय से वह मौन हो गयी थी।

तीसरे अध्याय के आठवे ब्राह्मण में गार्गी फिर याज्ञवल्क जी से दो प्रश्न पुछने की अनुमती माँगती है।

गार्गी पहला प्रश्न याज्ञवल्कजी से पूछती है, "हे याज्ञवल्क जी! जो द्युलोक से उपर है, जो पृथ्वी से नीचे है और जो द्युलोक और पृथ्वी के

मध्य में है और स्वयं भी जो द्युलोक और पृथ्वी है तथा जिन्हे भूत, वर्तमान और भविष्य इस प्रकार कहते है, वे किसमें ओतप्रोत है ।।3।।
याज्ञवल्क जी उत्तर देते है, "यह सब आकाश में ओतप्रोत है।"

"आकाशे तेदातं च प्रोतं चेति।।4।"[3]

गार्गी अपना दुसरा प्रश्न पुछती है।

"कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति।।7।।"[4]

याज्ञवल्क जी कहते है, "हे गार्गी, इस तत्त्व को ब्रह्मवेत्ता 'अक्षर' कहते है।" याज्ञवल्क जी अक्षर का निरूपण करते हुये कहते है, "इस 'अक्षर' को जानकर जिसकी मृत्यु होती है, वह 'ब्राह्मण' है, और सब आकाश इस 'अक्षर' में ही ओतप्रोत है, जो साक्षात् ब्रह्म है। इस प्रकार समाधान पाकर गार्गी शांत हो जाती है।

याज्ञवल्क ने कहा यह अतिप्रश्न है। गार्गी उपरत हो गयी। इसी प्रकार 4 थे अध्याय के पाचवे ब्राह्मण में याज्ञवल्क-मैत्रेयी संवाद है। याज्ञवल्क मैत्रेयी से कहते है, "मैं संन्यास लेने वाला हूँ, इसलिए कात्यायनी के साथ मेरी संपत्ती में बँटवारा कर दूँ।" तब मैत्रेयी कहती हैं, "हे भगवन्! इस धन से संपन्न सारी पृथ्वी मेरी हो जाये तो क्या मैं उससे (अमृत) अमर हो जाऊँगी?" तब याज्ञवल्क कहते है, "नहीं, संपत्ति से केवल संपन्न जीवन होता है, धन से अमृतत्त्व को नहीं प्राप्त किया जाता।" तब मैत्रेयी कहती है, "जिससे अमृततत्त्व नहीं मिलता उससे मुझे कोई प्रयोजन नही है। आप अमृतत्त्व का साधन जानते हो, वही मुझे बतलावे।" मैत्रेयी के इस प्रश्न से याज्ञवल्क अत्यन्त प्रसन्न हो गये-

"सा होवाच मैत्रेयी येणाहं नामृता स्यां किमहं
तेन कुर्यांयदेवभगवान्वेद तदेव बुहिति।।3।।"[5]

उन्होंने मैत्रियी को व्याख्यान किया की "आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, माननीय और ध्यान किये जाने योग्य है। हे मैत्रेयी! इस आत्मा के ही दर्शन, श्रवण, मनन एवं विज्ञानसे इस सबका ज्ञान हो जाता है।" याज्ञवल्क कहते है, "वेद, पुराण, इतिहास, सूत्र, मन्त्र और अर्थवाद वे इस

महद्भूत के ही निश्वास है। प्रज्ञानधन एकरस ब्रह्म है।” याज्ञवल्क मैत्रेयी से दृष्टान्त देकर समझाते है की, “जिस प्रकार जल में डाला हुआ नमक जल में लिन हो जाता है, उसी प्रकार यह महत् भूत अनन्त अपार है और विज्ञान घन ही है। भूतों से प्रकट होकर उन्ही के साथ नाश को प्राप्त हो जाता है। देह इन्द्रिय से मुक्त होकर इसकी विशेष संज्ञा नहीं रहती।” ऐसा याज्ञवल्क के कहने पर मैत्रेयी के मन में शंका उत्पन्न होती है। मैत्रेयी कहती है, “मुझे आपने मोह में डाल दिया है।” तब याज्ञवल्क कहते है, “मै तुम्हें मोह का उपदेश नहीं कर रहा अपितु विज्ञान का उपदेश कर रहा हूँ।

निष्कर्ष:

गार्गी और मैत्रेयी दोनों विद्वान है। इस उपनिषद् के चौथे अध्याय के 5वें ब्राह्मण में मैत्रेयी को ‘ब्रह्मवादिनी’ कहा है। अन्य ब्राह्मण गणों के साथ गार्गी का होना तथा याज्ञवल्क जी से ब्रह्मतत्व विषयी प्रश्न करना यह एक विदूषी ही कर सकती है। गार्गी को प्रथम याज्ञवल्क अति प्रश्न कहकर रोक देते है। तब वह मौन हो जाती है। परंतु अवसर मिलने पर फिर प्रश्न पूछकर अपनी जिज्ञासा को शांत करती है। इसीप्रकार मैत्रेयी याज्ञवल्क की पत्नी है। याज्ञवल्क जी कात्यायनी और मैत्रेयी में संपत्ती का बँटवारा करना चाहते है। पर मैत्रेयी को संपत्ती का मोह नहीं हैं, इसलिए वह संपत्ती न लेकर ‘अमर’ होने का ज्ञान माँगती है। इस पर याज्ञवल्क जी मैत्रेयी से कहते है, “इसलिए तुम मुझे प्रिय हो।” जिस जमाने में स्त्रियों की सीमाएँ बंद हुई थी, ऐसे वक्त याज्ञवल्क जी जैसे ब्रह्मज्ञानी के सानिध्य प्राप्त इन दोनों विदूषियों ने अपना जीवन सफल बनाने के लिए संसार की सभी मोह का त्याग किया और निराकार, अक्षर, परब्रह्म जानना चाहा। ऐसे विदुषियों को शत: शत: नमन।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:

ग्रन्थ का नाम लेखक/व्याख्याकार प्रकाशक पृष्ठ क्र.

1)'बृहदारण्यकोपनिषद्' आनुवाद, घनश्याम जालान, 736, शाङ्करभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर

2)'बृहदारण्यकोपनिषद्' आनुवाद घनश्याम जालान, 761, शाङ्करभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर

3)'बृहदारण्यकोपनिषद्' आनुवाद घनश्याम जालान, 762, शाङ्करभाष्य सहित गीता प्रेस, गोरखपुर

4)'बृहदारण्यकोपनिषद्' आनुवाद घनश्याम जालान, 764 शाङ्करभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर

5) 'बृहदारण्यकोपनिषद्' आनुवाद, घनश्याम जालान, 546 शाङ्करभाष्य सहित, गीता प्रेस, गोरखपुर

श्रुति से स्मृति पर्यन्त नारी- शक्तिस्वरूपा या शोषिता

डॉ. निशीथ गौड़
अ‍सि. प्रोफेसर, संस्कृत, डी.ई.आई(डीम्ड यूनिवर्सिटी), आगरा

संस्कृति की पोषिका, ममत्व की प्रतिमूर्ति, कोमलता, मधुरता एवं शक्ति की अद्भुत निधि नारी को भारतीय संस्कृति में देवी के रूप में निरूपित करके उसके सम्मान, श्रेष्ठता एवं महत्व को प्रतिपादित किया गया है। ऋग्वेद में ऐसी अनेक ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं का उल्लेख है जो पुरुषों के समकक्ष दार्शनिक एवं सर्वथा योग्य थीं- अपाला, घोषा, गार्गी, शची, विश्ववारा, वाक्, सूर्या सावित्री, लोपामुद्रा, पौलोमी आदि।

जैमिनी ब्राह्मण में उल्लेख है- **स्त्रियो मंत्रकृतः**[1] अर्थात् स्त्रियाँ मंत्रों की कर्ता हैं। तैतिरीय ब्राह्मण में कहा गया है- **यामृषयो मन्त्रकृतो मनीषिणः अन्वच्छन् देवास्तपसा श्रमेण। तां देवीं वाचं हविषा यजामहे॥**2 अर्थात् ऋषियों ने अपनी तपस्या और परिश्रम से देवी वाणी का अन्वेषण किया था और हम उन्हीं की आराधना करते हैं । ऋग्वेद में उल्लेख है **-स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।**3 अर्थात् स्त्री ही साक्षात ब्रह्मा है। **स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे।**4

ऋग्वेद में वर्णन है कि असुरों ने शत्रुओं से युद्ध करते समय स्त्री सेना को आगे कर दिया था। ऋग्वेद के प्रथम मंडल के 116वें सूक्त के 15वें मंत्र में वर्णन मिलता है कि शत्रु से युद्ध करते समय विश्पला का पैर कट गया था, अश्विनी कुमारो ने उसे एक नकली लोहे की टांग लगा दी तत्पश्चात् विश्पला ने पुनः युद्ध किया।

चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्।।5।।

जिस प्रकार पक्षी का पंख गिर जाता है वैसे ही खेल राजा से संबंधित विश्पला स्त्री का पैर युद्ध में कट गया था। ऐसे रात्रिकाल में ही उस विश्पला को युद्ध प्रारंभ होने के पश्चात् आक्रमण करने के लिए लोहे की जांघ आप दोनों ने लगाकर तैयार किया।

ऋग्वेद में 40 ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है। अत्रि महर्षि के वंश में उत्पन्न विदुषी विश्ववारा ऋग्वेद के पांचवें मण्डल के अट्ठाईसवें सूक्त की दृष्टा ऋषिका हैं। अपनी तपस्या से उन्होंने इस ऋषिपद को प्राप्त किया था। इन मंत्रों में बताया गया है कि स्त्रियों को सावधानी पूर्वक अतिथि सत्कार करना चाहिए। यज्ञ के लिए हविष्य तथा सामग्रियों को प्रस्तुत करके अपने अग्निहोत्री पति के समीप पहुँचाना चाहिए। अग्निदेव की वंदना करनी चाहिए। उनकी स्तुति करनी चाहिए और पति के प्राजापत्य अग्नि की सावधानी पूर्वक रक्षा भी पत्नी को ही करनी चाहिए ।

अग्ने शर्ध महते सौभगाय तव द्युम्नान्युत्तमानि सन्तु।

सं जास्पत्यं सुयममा कृणुष्व शत्रूयतामभि तिष्ठा महांसि ॥6।।

हे अग्नि देव! आप हम लोगों के उत्तम सौभाग्य के लिए शत्रुओं को पराभूत करें। आपका तेज श्रेष्ठतम हो। आप दांपत्य संबंध को सुखी और सुनियमित करें और शत्रुओं के तेज को दबा दें।

ऋग्वेद के अष्टम मंडल के 91वें सूक्त की 1 से 7 तक की ऋचाएँ ब्रह्म वादिनी अपाला के द्वारा संकलित हैं। ब्रह्मवादिनी अपाला अत्रि मुनि के वंश में उत्पन्न हुई थीं। कहते हैं कि अपाला को कुष्ठ रोग हो गया था, इससे उनके पति ने उन्हें घर से निकाल दिया था। वह अपने पीहर में बहुत दुखी रहती थीं। उन्होंने कुष्ठ रोग से मुक्त होने के लिए इंद्र की आराधना की। एक बार इंद्र को अपने घर बुलाकर सोमपान कराया तथा उन्हें प्रसन्न किया। इंद्रदेव ने प्रसन्न होकर उन्हें वरदान दिया। उनके वरदान से अपाला के पिता के सिर के उड़े हुए केश फिर आ गए उनके खेत हरे भरे हो गए और अपाला का कुष्ठ रोग मिट गया।

ऋग्वेद के दशम मंडल के 39 से 41 वें सूक्त में ब्रह्मवादिनी घोषा का उल्लेख मिलता है। घोषा काक्षीवान् ऋषि की कन्या थीं। बचपन में इन्हें कुष्ठ रोग हो गया था इसी से योग्य वय में इनका विवाह नहीं हो पाया। अश्विनी कुमारों की कृपा से जब इनका रोग नष्ट हुआ तब इनका विवाह हुआ ये परम विदुषी और ब्रह्मवादिनी थीं। इन्होंने स्वयं ब्रह्मचारिणी के रूप में ही ब्रह्मचारिणी कन्या के समस्त कर्तव्यों का उल्लेख किया है। इन्होंने कहा है-

चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरन्धी रीरयतं तदुश्मसि ।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥7।।

हे अश्विनीकुमारो! आप हमें श्रेष्ठ संभाषण की ओर प्रेरित करें, हमारे श्रेष्ठ कर्मों को सफल बनाएँ। आप दोनों नानाविध प्रेरणाओं को प्रकट करें, हम यही आकांक्षा करते हैं। हमें कीर्तियुक्त उपयोगी ऐश्वर्य प्रदान करें। जिस प्रकार सोमरस कल्याणकारी है, वैसे ही ऐश्वर्य सम्पन्नों में हमें सर्वश्रेष्ठ बनाएँ।

आ वामगन्त्सुमतिर्वाजिनी वसून्यश्विना हृत्सु कामा अयंसत।
अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया अर्यम्णो दुर्यां अशीमहि ॥8।।

हे अन्न और ऐश्वर्ययुक्त अश्विनीकुमारो! आप हमारे प्रति कृपा दृष्टि करें, हमारी मानसिक इच्छाओं की पूर्ति में सहायक हों, आप हमारे लिए कल्याणकारी हों। हम अपने पति की प्रेमपात्र बनाकर पतिगृह को सुशोभित करें।

ऋग्वेद के दशम मंडल के 85वें सूक्त की 47 ऋचाएँ ब्रह्मवादिनी सूर्या-सावित्री की हैं। सूर्या, सूर्य पुत्री हैं, सविता से उत्पन्न होने से सावित्री कहलाती हैं। यह सूक्त विवाह संबंधी है। सूर्या को लौकिक वधू का उपलक्षण भी माना गया है, कुछ मंत्र उस आशय में सटीक भी बैठते हैं कि अधिकांश मन्त्रों में वर्णित सूर्य पुत्री सूर्या कोई सूक्ष्म दिव्य-प्रवाह प्रतीत होती हैं। सूर्या प्रकाश युक्त तथा सावित्री सु-प्रसव श्रेष्ठ प्रसव या सूजन करने वाली हैं। यह सावित्री से उत्पन्न चेतना एवं प्रकाशयुक्त कोई उत्पादक

प्रवाह हैं, जिसका रथ मन है तथा चेतना या विचार चादर है, द्यावा-पृथिवी कोष है। लौकिक वधू के उपलक्षण में वह प्रकाश-ज्ञानयुक्त तथा श्रेष्ठ सन्तान, वातावरण, सम्पदा उत्पन्न करने में सक्षम सुलक्षणी कन्या है किन्तु, तत्त्वदृष्टि से उसमें सूर्या शक्ति है, उसी कारण वह सुप्रसविनी बन पाती है।

हिंदू वेद शास्त्रों में जितने आख्यान हैं, उन सब के आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तीनों अर्थ होते हैं। वेद की रचनाओं के भी तीन अर्थ हैं, परंतु वे केवल आध्यात्मिक अर्थ रूप ही हैं, इतिहास नहीं हैं, ऐसी बात नहीं है। चंद्रमा के साथ सूर्य के विवाह का आध्यात्मिक अर्थ भी है और उसका ऐतिहासिक तथ्य भी है। जहाँ चंद्र एवं सूर्य को नक्षत्र रूप में ग्रहण किया गया है वहाँ आलंकारिक भाषा में आध्यात्मिक वर्णन है। नक्षत्रों की संगतियों से होने वाली प्रक्रियाएँ शोध का विषय हैं।

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम्।।9।।

जिस समय सूर्यपुत्री ने पतिगृह के लिए प्रस्थान किया उस समय श्रेष्ठ विचार उसके आच्छादन (वस्त्र) थे। वही नेत्रों के लिए श्रेष्ठ अंजन थे। द्युलोक और पृथ्वी ही उसके कोषागार थे। सूर्या प्रकाश युक्त प्रवाह चेतना, जब किसी के साथ संयुक्त होती है तो सद्विचार ही उसके आवरण-पहचान बनते हैं। द्यावा-पृथिवी को उनका भाण्डागार कहना युक्तिसंगत है।

सूर्या जब विदा होकर पति के साथ चली, तब उसके बैठने का रथ मन के वेग के समान था। रथ पर सुंदर चँदोवा तना था और दो सफेद बैल जुते थे। सूर्या को दहेज में पिता ने गौ, स्वर्ण, वस्त्र आदि पदार्थ दिए थे। सूर्या के बड़े ही सुंदर उपदेश हैं-

हे बहू! इस पति गृह में ऐसी वस्तुओं की वृद्धि हो, जो प्रजा को और साथ ही तुम्हें भी प्रिय हो। इस घर में गृह स्वामिनी बनने के लिए तु जाग्रत हो। इस पति के साथ अपने शरीर का संसर्ग कर और जानने पहचानने योग्य परमात्मा को ध्यान में रखते हुए दोनों स्त्री पुरुष वृद्धावस्था तक मिलते तथा बातचीत करते रहो।

सम्राज्ञी श्वसुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु॥10।।

हे वधू! तू अपने अच्छे व्यवहार से ससुर सास की, ननद और देवरों की सम्राज्ञी हो अर्थात् अपने सुंदर बर्ताव से सबको अपने वश में कर ले।

ऋग्वेद संहिता के दशम मंडल का 125वाँ सूक्त वाक् सूक्त वैदिक ऋषिका ब्रह्मवादिनी वा गाम्भृणी द्वारा रचित है। वाक् अम्भृण ऋषि की कन्या थीं। ये प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानिनी थीं और इन्होंने भगवती देवी के साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थीं।

अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।
तां मा देवा व्यदधुः पुरुत्रा भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम्।।11।।

मैं वाग्देवी जगदीश्वरी और धन प्रदात्री हूँ। मैं ज्ञानवती एवं यज्ञोपयोगी देवों में सर्वोत्तम हूँ। मेरा स्वरूप विभिन्न रूपों में विद्यमान है तथा मेरा आश्रय स्थान विस्तृत है। सभी देव विभिन्न प्रकार से मेरा ही प्रतिपादन करते हैं। इन मंत्रों में स्पष्टतया अद्वैतवाद का सिद्धांत प्रतिपादित है।

वेद के मंत्र कितने आदर्शपूर्ण हैं कि पुत्र पिता के अनुकूल व्रती होकर माता के साथ एक मन वाला होवे। पत्नी पति से मधु से युक्त और शांति से भरी वाणी बोले। भ्राता भ्राता से द्वेष न करें और बहिन अपनी बहिन से विद्वेष न करें। सभी एक मत वाले और एक व्रती होकर परस्पर कल्याणकारी वार्तालाप करें-

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।
जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्॥
मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।
सम्यञ्चः सव्रता भूत्वा वाचं वदत भद्रया॥12।।

ऐसे आदर्श परिवार से ही श्रेष्ठ संतति, श्रेष्ठ समाज एवं श्रेष्ठ राष्ट्र का निर्माण होता है।

अथर्ववेद के भूमि सूक्त में भूमि को माता बताया गया है- **माताभूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः** ।13 तैतिरीयोपनिषद् में माता-पिता को देवतुल्य बताया गया है-

मातृदेवो भव पितृदेवो भव ।14 बृहदारण्यकोपनिषद् के याज्ञवल्क्य- **मैत्रेयी संवाद से मैत्रेयी की विद्वता का भी ज्ञान होता है। सा होवाच मैत्रेयी। यन्नु म इयं भगो सर्वाः पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात्कथं तेनामृता स्यामिति नेति** ।15।।

उसे मैत्रेयी ने कहा "भगवन! यदि यह धन से संपन्न सारी पृथ्वी मेरी हो जाए तो क्या मैं उसे अमर हो सकती हूँ, अथवा नहीं? इस पर याज्ञवल्क्य बोले कि अमर तो नहीं हो सकोगी परंतु सर्वसाधन संपन्नों के समान ही अपना जीवन व्यतीत करोगी। धन से अमृतत्त्व की आशा नहीं हो सकती।

नारी शिक्षिकाओं की भी परंपरा अवश्य रही होगी क्योंकि पाणिनि की काशिकावृत्ति ने आचार्या एवं उपाध्याया नामक शब्दों के साधनार्थ व्युत्पत्ति की है।

स्मृतिग्रंथों में माता की प्रशंसा एवं सम्मान में बहुत कुछ कहा गया है। गौतम का कहना है-

आचार्यः श्रेष्ठो गुरुणां मातेत्येके

आचार्य गुरुओं में श्रेष्ठ हैं किन्तु कुछ लोगों के मत में माता ही श्रेष्ठ है। आपस्तंबधर्मसूत्र का कहना है-

पुत्र को चाहिए कि वह अपनी माता की सदा सेवा करे, भले ही वह जातिच्युत हो चुकी हो, क्योंकि वह उसके लिए महान कष्टों को सहन करती है।16

वसिष्ठ धर्मसूत्र का मत है-

पतितः पिता परित्याज्यो माता तु पुत्रे न पतति ।17।।

पतित पिता का त्याग हो सकता है किन्तु पतित माता का नहीं क्योंकि पुत्र के लिए वह कभी भी पतित नहीं है।

मनुस्मृति में उपाध्याय, आचार्य, पिता की तुलना में माता का महत्त्व सर्वाधिक बताया है-

उपाध्यायान्दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितृन्माता गौरवेणातिरिच्यते।।18।।

दश उपाध्यायों की अपेक्षा आचार्य, सौ आचार्यों की अपेक्षा पिता, हज़ार पिताओं की अपेक्षा माता महत्त्व में, अधिक है।

मनु प्रत्येक धर्म कार्य में स्त्री पुरुष का समान अधिकार समझते हैं। जातकर्म के अवसर पर बालक के लिए चाहे वह कन्या हो अथवा पुत्र दोनों के लिए ही मंत्रोच्चारण पूर्वक शहद चटाने का विधान है मंत्रवत् प्राशनं चास्य। इससे सिद्ध होता है कि मनु मंत्रोच्चारण या श्रवण आदि कार्यों में स्त्री पुरुष का भेद नहीं करते। उसी प्रकार नामकरण आदि भी यज्ञ और मंत्रपूर्वक करने हैं। उसी प्रकार अग्निहोत्रपूर्वक स्त्रियों का दैवविवाह करने का विधान किया गया है।

यज्ञे तु वितते सम्यगृत्विजे कर्म कुर्वते।
अलंकृत्य सुतादानं दैवं धर्म प्रचक्षते।।19।।

अग्निहोत्र में मंत्रोच्चारण हुआ ही करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि मनु स्त्रियों की क्रियाएँ मंत्र रहित नहीं मानते। स्त्रियों की अंत्येष्टि भी अग्निहोत्र से विहित हैं। विवाह भी स्वस्ति मन्त्रपूर्वक यज्ञ से विहित हैं।

मनु ने घर में अग्निहोत्र आदि धर्मकार्यों के आयोजन की मुख्य जिम्मेदारी स्त्री को ही सौंपी है और यह आदेश दिया कि पुरुष को प्रत्येक धर्मकार्य स्त्री को साथ लेकर करना चाहिए।

घर की शुद्धि, धर्मकार्यों का आयोजन और भोजन बनाना आदि जिम्मेदारी स्त्री को ही सौंपे। संतानोत्पत्ति और उनका पालन, अग्निहोत्र आदि धर्मकार्य स्त्री के अधीन हैं। 'तस्मात् साधारणो धर्मः श्रुतौ पत्न्या सहोदित' (साधारण से साधारण धर्मकार्य में भी पत्नी को सम्मिलित करना चाहिए)। उसी प्रकार मनु ने संस्कारों को सभी के लिए समानरूप से आवश्यक मानते हुए शारीरिक एवं संस्कार सम्बन्धी दोषों को हटाने वाला

कहा है। वहाँ स्त्री-पुरुष का कोई भेद नहीं माना। उससे दो बातें स्पष्ट होती हैं एक तो यह कि सभी संस्कार मंत्रपूर्वक होते हैं अतः चाहे वह संस्कार स्त्री का हो अथवा पुरुष का मंत्रपूर्वक ही करना चाहिए दूसरी यह कि संस्कार द्विजाति वर्ग के सभी व्यक्तियों के लिए आवश्यक है, चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष। मनु स्त्री और पुरुष में न तो कोई पक्षपात पूर्ण अंतर करते हैं न स्त्री को पुरुष की दासी या अधीनता में बंधी रहने वाला मानते हैं। वह दोनों को ही एक दूसरे की भावनाओं का समान रूप से आदर करने वाली बातें कहते हैं अपितु स्त्रियों को अधिक आदरपूर्वक रखने की बातें कहते हैं।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥20।।

जिस कुल में स्त्रियों का आदर सत्कार होता है, निश्चय ही उस कुल में दिव्य संतान, दिव्य गुण, दिव्य भोग प्राप्त होते हैं, जहां इनका आदर सत्कार नहीं होता। उस कुल में गृहस्थ संबंधी सब क्रियाएँ निष्फल रहती हैं अर्थात् स्त्रियों की प्रसन्नता और सम्मान के बिना गृहस्थ में गुणी संतान, सुख शांति, सफलता, उन्नति नहीं हो पाती ।

मनु द्वारा अत्यंत स्पष्ट शब्दों में स्त्रियों पर बन्धन डालकर रखने की प्रवृत्ति को व्यर्थता का कथन और स्त्रियों द्वारा स्वयं अपने विवेक से ही अपने आचरण को बनाने का समर्थन किया है।

'न कश्चिद्योषितः शक्तः प्रसह्य परिरक्षितुम्'21

स्त्री स्वयं ही अपनी रक्षा करने से सुरक्षित हो सकती है

'अरक्षिता गृहे रुद्धाः पुरुषैराप्तकारिभिः
आत्मानमात्मना यास्तु रक्षेयुस्ताः सुरक्षिताः।।22।।

अपने बड़े लोगों से घर में बंद किये जाने पर भी स्त्री असुरक्षित हो होती है। जो स्त्रियां अपनी रक्षा अपने आप ही करती है वह ही सुरक्षित रहती हैं। बिना किसी पक्षपात के स्त्री पुरुष दोनों को समान स्तर का मानते

हुए मनु ने स्त्री पुरुषों को ऐसे सुझाव दिए हैं जिनसे स्त्री की पुरुष के पूर्ण अधीन रहने की मान्यता स्वतः खंडित हो जाती है।

मनुस्मृति में नारी जीवन के सभी पक्षों का सुंदर समावेश है। मनु ने स्त्रियों को हीन भावना से नहीं देखा है अपितु कहीं-कहीं तो पुरुषों से बढ़कर उन्हें सम्मान दिया है। स्त्री के लिए मार्ग छोड़ देना चाहिए। पत्नी से लड़ाई झगड़ा नही करना चाहिए-

भार्यया विवादं न समाचरेत्।23

याज्ञवल्क्य के अनुसार अपने गुरु आचार्य एवं उपाध्याय से माता बढ़कर है, माता से बढ़कर कोई गुरु नहीं है।

व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र के सर्वांगीण विकास की संकल्पना नारी के अनुदान के बिना संभव नहीं है। जब तक नारी की प्रगति नहीं होगी समाज एवं राष्ट्र के विकास की संकल्पना एक कल्पना ही सिद्ध होगी अतः उसके विकास एवं उत्थान में सबका उन्नयन संभव है।

जब-जब समाज में नारी सम्मान को चुनौती मिली तो साध्वी पत्नी को अग्नि परीक्षा देनी पड़ी, सभी भाइयों की भोग्या बनना पड़ा, द्यूतक्रीड़ा में धन संपत्ति के समान दाँव पर लगना पड़ा। संदेह मात्र से वह अग्नि-ज्वाला में झुलसी, देवताओं के मनोरंजन के लिए देवदासी बनी और पुरुषों के मनोरंजन के लिए गणिका।

श्रुति काल की ब्रह्मवादिनी ऋषिकाओं की स्थिति में उत्तर वैदिक काल एवं स्मृतिकाल तक आते-आते गिरावट आई और धीरे-धीरे वह शक्ति स्वरूपा शोषिता बनकर रह गई। आज राष्ट्र को नारी के उसी स्वरूप को स्वीकार ने की आवश्यकता है और नारी को स्वयं भी सद्गुणों को अपनाने की, आत्मविकास की ज़रूरत है।

सन्दर्भः-

1. जैमिनी ब्राह्मण- 2/220
2. तैत्तिरीय ब्राह्मण- 2/7/7

3. ऋग्वेद- 8/33/19
4. ऋग्वेद- 1/116/15
5. ऋग्वेद- 1/116/5
6. ऋग्वेद- 5/28/3
7. ऋग्वेद- 10/39/2
8. ऋग्वेद- 10/40/12
9. ऋग्वेद- 10/85/7
10. ऋग्वेद- 10/85/46
11. ऋग्वेद- 10/125/3
12. अथर्ववेद- 3/30/2-3
13. अथर्ववेद- 12/1/12
14. तैतिरीयोपनिषद्- 1/11
15. बृहदारण्यकोपनिषद्- 2/1-14
16. आपस्तंब धर्मसूत्र- 1/10/18/9
17. वसिष्ठ धर्मसूत्र- 13/47
18. मनुस्मृति- 2/120
19. मनुस्मृति- 2/4
20. मनुस्मृति- 3/56
21. मनुस्मृति- 9/10
22. मनुस्मृति- 9/12
23. मनुस्मृति- 4/180

राष्ट्र एवं समाज क्षेत्रे विदुषियाः योगदानं

G PAVAN KUMAR

PhD. Student, Osmania University

<u>उपोद्घातः</u>

साधारणतया भारतीय महिलाः ज्ञानवन्ताः, प्रज्ञावन्ताः, तावद् सहनशीलाः अपि च। ताः एकं परिवार विषये वा, एकं व्यवस्तीकृतं संस्था विषये वा, एकं सुस्थिरं समाजं निर्माणं विषये वा महत्वपूर्णं कार्यं कर्तुं शक्नुवत्याः। अनेन अस्माकं भारतीय संस्कृतौ महिलायाः कृते प्रथम स्थानं अददत्। सर्वासु पूजासु प्रथमं नारीनां नामं स्वीकुर्वन्ति। साक्षात् परमेश्वरः अस्य शरीरे अर्धभागं दत्वा स्त्री-पुरूषाः समभावनं प्रदर्षितः। अयं सर्वं सृष्टिः अपि परमात्म संकल्पेन एवं आदि पराशक्ति मायेन एव निर्मितः। अनेन अस्माकं उपनिषद् ग्रन्थे अपि **प्रथमं मातृदेवो भव** इत्यवोचत्। तदनन्तरमेव पितृदेवो भव, आचार्य-अतिथि देवोभव इत्यवोचः।

महीलाः ज्ञान विषये, परिपालना विषये, एवं शक्ति प्रदर्शन विषये अपि अग्रगन्याः सन्ति। केचनाः अभिप्रायः महिलाः कानिचन कार्यानि कर्तुं न शक्नुवन्ति, वेदाद्यायनं न कुर्यादिति। किन्तु वेदे एवं यत्र-कुत्रापि नास्ति। तदपि वेद मन्त्राणां सक्षात्कारं (द्रष्टाराः) अपि महिलाः अकुर्वन्। ललितासहस्रनाम स्तोत्रे **श्रीमाता श्रीमहाराज्ञी श्रीमत्सिंहासनेश्वरी** इति अस्ति। अनया महीलाः सृष्टि (अविर्भावं)- स्थिति (पालना पोषणा च)- लयं (दुष्ट शिक्षणा, शिष्ट रक्षणा) विषये निश्नाताः इति।

<u>प्रस्तावना:</u>

विदुषयाः तसां विदुषिं सर्वासु विषये प्रदर्शिताः। वेदाद्यायने, गणित, ज्योतीष, वास्तु, खगोल, दार्शनिक, भौतिक, रसायण, राजनीति, समाज परिवर्तन विषये, अत्यन्त परिश्रमं समर्रिताः। ऋग्वेदे मैत्रेयि, गार्गी,

दक्षप्रजापत्या, लोपामुद्रा, अपाला, रोमासा, विश्ववरू, कद्द, जुहु, गोषा, वागम्भ्रीणी, पौलमी, इन्द्रानी, यामी, सावित्री, देवजामिनीं च, एवं सामवेदे नोधा, अक्रीष्टभाषा, सिकतनिववारी, गौपायना ऋषयाः प्रस्तुति अस्ति।

न केवलं रचना, काव्य-ग्रन्थ लेखनेन, अपितु समाज परिरक्षणार्थं आचरण रूपेन तसां जीवितं अपि समर्पिताः। सत्य सन्दता, निग्रहणं, पातिव्रत्यं, राज्यरक्षणं, योद्धा विषयानि निर्वर्त्या समाजे मार्ग निर्देशकाः असीत्। तादृशीं विदूषीं कानिचन प्रस्तुती करिष्यामि।

वेदकालीन विदुषयः

लोपामुद्रा

एषा अगस्त्यमुनिना संवाद सुक्तः इव ऋग्वेदे(1-179) सम्भाषिता। एषा अगस्त्य मुनेः तपःशक्त्या विनिर्माय विदर्भ राजां प्रदत्ता। यव्वनावस्तायां अगस्त्यमुनिं परिणीता। प्रेमानुबन्धाय एकं श्लोके पादद्वयं विनिर्माय अत्यन्त आदरं अप्राप्नोत्। अगस्त्य मुनेः तपस्सादने आजन्मान्तं साहायं अकरोत्। वेदविद्यायां निपूणा च। स्वीयं ज्ञानं, तथा साधना द्वरेण लोके आदर्शं स्थपयामास। ऋग्वेदे कतिपय सूक्तानि तस्याः आध्यात्मिकज्ञानं प्रतिफलति।

महर्षिं गृहस्थधर्मस्य महत्वं प्रतिपाद्य गृहस्थजीवनाय प्रेरितवति।

इमे नु कामा विश्वाहा सन्तु मा ते
स्वर्यो२हं शरदः शता जीवानीति

(ऋग्वेद सूक्तः 1.179 1-2)

हे प्राननाथा! मम सर्वकामाः सन्तु। अहमपि जीवेयं शरदः शतानि वर्षानि।

हेमलेखा

हेमलेखा महता ज्ञानवन्ता असीत्। वेदाद्ययनं कृत्वा आध्यात्मिक विषये निश्नाता अभवत्। एषा त्रिपुर रहस्या इत्यपि कथयन्ति। एषा द्वापरयुगे जीवित कृष्णभक्ता असीत्। हेमचूडः इति राज्ञ विवाहितवति।

हेमचूडः शक्तिसम्पन्नः, धैर्यसाहसवान् राजः च। तैः गुणैः अनेक विजयान्, संपदान् प्रप्तवान्। सर्वैश्वर्यवन्तः अपितु अनिर्वचनीय मनोवेदन आसीत्। तादृश मनस्थितिं हेमलोखा ग्रहीत्वा तस्य मनोवेदनस्य कारणं

अवोचत्। सर्वं भौतिक विषयवाञ्चां त्यक्वा संतृप्ति प्राप्तव्यमिति, तदेव सर्वदा आनन्ददयकः इति बोधितवति। तानि अस्माकं राज्ये लुप्तः अस्ति इति सूचितवति। तत् ज्ञात्वा हेमचूडः आध्यात्मिक विषये मनः संलग्नः अकरोत्। तत्परिणामेन जीवने आनन्दं प्राप्तवान्। एवं हेमलेखा हेमचूडं आध्यात्मिक गुरुः अभवत्। एषा अस्याः पतिं, मातामहीं अन्य बहूनां अपि गुरुः अभवत्। सर्वे आनन्दमय जीवितं यापिताः। तदनन्तरं सर्वान् नगर प्रजान् ज्ञानं प्रदाय सर्वं नगर जनान् ब्रह्मज्ञानवन्ताः अकरोत्।

एषा कृष्णभक्ता कारनेन कृष्णभक्तिं, कृष्णनामस्पमरणं प्रचारितवति। अन्तिमे श्रीकृष्णपरमात्मे विलीनं अभवत्।

<u>उभय भारति</u>

उभयभरति पण्डित शिरोमणि। मन्डन मिश्रस्य धर्मपत्नी। मन्डनमिश्रः मद्यकालीन पण्डित श्रेष्टः। मन्न मिश्र इव उभयभरति सर्वशास्त्रे प्रावीन्या अपि। पतिव्रता च।

आदिशंकराचार्यः शास्त्रचर्चायां सर्वत्र विजयं प्रप्तवान्। अद्वैत सिद्धान्तं बोधयित्वा सामाजो तारतम्यरहित समाजनिर्माणार्थं प्रयत्नं अकरोत्। मन्डनमिश्रः ज्ञानमधेन आदिशंकराचार्यं शास्त्रचर्चायां निहतु प्रतिघटितः। तयौ शास्त्रचर्चायां न्ययनिर्णेत रूपेन सर्वशास्त्रकोविदा, न्यायशास्त्र प्रावीण्या, समदृष्टी उभयभारतिं मन्डनमीश्रस्य धर्मपत्नीं स्थापितः।

मन्डनमिश्रः आदिशङ्कराचार्येन शास्त्र चर्चायां निहतः। एषा उत्तम विदुषी। सर्वान शास्त्रे अपि निश्नाता। शास्त्र चर्चायां अन्तिम समये पतिं रक्षितुं पत्यः अर्धभगं पत्नि इत्युक्तवा सा अपि आदिशङ्कराचार्यं प्रश्नां अपृच्छत्। किन्तु सर्वान् प्रश्नान् आदिशङ्कराचार्यः समादानं अददत्। अन्तिमं मन्डन मिश्रः अपजयं अङ्गीकृत्वा नियमानुसारं सन्यासं स्वीकृतवान्। उभयभारति अवसान दिने नदीतीरे अश्रमं विनिर्माया सन्यासजीवनं यापितवति।

सा एवं अवोचत् **आत्मस्य तेजोशक्तिं द्रष्टुं मनः उपरी आच्छादित अहङ्कारं त्यक्तव्यं** इति।

समाज चिन्तकविदुषयाः

शारदा माता

एषा श्री रामकृष्णपरमहंसस्य धर्म पत्नी। आध्यात्मिक गुरू। श्री रामकृष्ण इव सन्यास जीवनं यापितवति। आश्रमं विनिर्माय शिश्यान् सामाजिक, आध्यात्मिक चैतन्यं पूरितवति। समाजे सेवायाः महत्वां वर्णयित्वा परोपकारस्य अवशकता बोधितवति। मानवसेवे माधवसेवा इति मत्वा सर्वे सेवातत्पराः अकरोत्।

निवेदिता

सोदरी निवेदिता अस्याः पूर्वनामं मार्गरेट् एलिजबेत नोबेल्। सा ऐरिश् देश युवति। सा स्वामी विवेकानन्दस्य प्रवचनैः प्रभावितोभूत्वा सामाजिककार्ये परिश्रमं अकरोत्। भारत स्वातन्त्र्य संग्रामे ग्रामस्तरे प्राजान् प्रेरेपितुं प्रवचनान् अददत्। एषा महिलोद्धरणाय कलकत्तायां बालिका विद्यालयं स्थापितवति। एवं महिलायाः शारीरिक क्षमतां वर्दयितुं **अखारा** नाम्ना मार्शल् आर्ट्स शिक्षणालयं 1903 तम वर्षे प्रारंभं अकरोत्। भारतीयान् अनागरीकाः, सर्व विषयान् आङ्ग्लेयात् अभ्यसिताः इति आंग्लेयाः दुष्प्रचारान् असत्यं इति निरूपितवति। आङ्ग्लेयानां व्यतिरेकेन भारतीय सांस्कृतिक विषयान् प्रचलिता च। भारतीय पारम्परिक अद्भुतविषायान् आचरितुं युवजनान् प्रेरेपिता।

जीजामाता

जीजामाता छत्रपति शिवाजीमहाराज्ञः जननी। सा अस्याः बाल्या कालात् यानि सङ्क्लिष्ट विधर्मीय परिपालनं ददर्शः तान् सर्वान् कुशलतया परिश्कर्तुं उत्तम राजं विनिर्मिता। सा राजपालन विषये, प्रजा सङ्क्षेम विषये, शत्रु संहारे च राजनीतिज्ञा आसीत्। सा रचनां वा ग्रन्थ नीर्माणं वा न कृतवति किन्तु आचरणेन विदुषीं अधिगमिता।

जीजामाता एका मूर्तीभवित्व आदर्श मातृमूर्ती। एका पुत्र्यैव, पत्न्यैव, मात्र्यैव एकस्याः स्त्रियः आलोचनादोरनी कथं भवेयं, उत्तम समाज

निर्माणे महिलानां कर्तव्यं किमस्ति इत्यादि सर्वं जीजामातायाः जीविते द्रष्टुं शक्नुमः। आध्यात्मिक चिन्तन, समाज परिरक्षण इत्यादि विषये दूरालोचनायुक्त व्यक्तित्वं, कठिन समस्यान् अपि न त्यक्तवा तान् विविधरीत्या परिष्कर्तुं उद्युक्त स्वभावि असीत्। समस्यान् अधिगमितुं स्वतः स्वयं समर्पित अनन्त त्यागगुणं, प्रजासङ्क्षेणमेव परमार्थः इति भावित, सम्पूर्ण भारतजाति तां ऋनयुक्तः राजनीतिज्ञ विदुषीमणी।

जीजाबाइ इ.1598 तम वर्षे विदर्भाप्रान्ते लाकोजीराज जादवं अजायता। सा सहजतया सद्गुणवती, शिवभक्ता, त्यागी, समर्पनाभावि, सामाजीक चिन्तका असीत्। बाल्यकालात् एव विधर्मीयानां दुरागतान् वीक्ष्या विचलीता अभवत्। अस्याः त्रयाः सोदराः सुल्तान् दर्भारे कार्यं कुरुत्वा सुल्तानां दुष्कार्यान् निरोदितु न शक्नुवन्ताः। तान् सर्वान् जीजाबाइ दृष्ट्वा आवेशेन अस्याः पितरं अपृच्छत् **वयं एतान् दुरागतान् न निर्मूलिष्यामः वा** इति। तदा लाकोजी **अस्माकं राज्यं सुल्तानां हस्ते अस्ति, वयं किमपि न कर्तुं शक्नुमाः** इति। तत् समयादेव विधर्मीयान् निर्मूलितु चिन्तनं प्रारम्भं अकरोत्। युक्त वयसे षहीजी बोंस्ले महोदयेन विवाहेन आनन्दोभूत्वा तत् प्रश्नं (विधर्मीय दुरागतान् निर्मूलनं) पतिं पुनं अपृच्छत्। षहाजी धैर्यवान्, उत्तम नायकः च, कीन्तु सः अपि एवं अवदत् **सुल्तान् प्रतिघटितुं अस्माकं शक्तिसामर्थ्याः न पर्याप्तः** इति। तदा तान् परिष्कार्तुं स्वयं सङ्कल्पितवति। नित्यं भक्तिश्रद्धया शिवाराधनं कृत्वा परिष्कारार्थं शोधनं अकरोत्।

जीजाबाइं कालान्तरे द्वौ पुत्रौ प्राप्तवति। तौ पुत्रद्वयौ विविध युद्धविद्यान्, अश्व चालनं, शत्रुनां उपरी आक्रमनं इत्यादि शिक्षयित्वा युक्तवयसागमनेन दुष्ट संहारार्थं युद्धं प्रेशितवति। तौ चमतकारेन विधर्मीयान् बहून् पराजितौ। किन्तु दुरदृष्टवशात् किन्चित् कालान्तरे वीरस्वर्गं प्रप्तवन्तौ। तत्समयेअपि जीजाबाइ मनसी प्रजासङ्क्षणं, हैन्दवी स्वराज्यस्थापनं एव स्फुरणं आगतः। कठिन नियमैः शिवाराधनं अकरोत्। तत् प्रभावेन पुनः एकः पुत्रः अजायतः। तं शिवः इति नामकरणं कृत्वा बाल्यकालादेव रामायण, महाभारत इतिहासान् बोधयित्वा धर्मरक्षणं एव सर्वश्रेष्टकार्यं, धैर्यसाहसाः

एव आयुधाः, हैन्दवीस्वराज्य निर्माणमेव लक्ष्यः इत्यनुगुणैः पालनं कृतवति। विविध युद्धरीतीनां निश्नातान् आहूय शिक्षणं अददत्। शिवाज्यः ब्रातरौ समाजरक्षणार्थं कृतौ त्यागं अवर्णयत्। विधर्मीयैः कृत दुष्कर्मैः स्त्रीणां मान-प्रान अपहरणं, आबाल-वृद्धानां उपरि अमानुश क्रियान् अदर्शयत्। शिवाजिं विविध युद्धरीतीं, दृढसङ्कल्पित सैनिकान् समुपार्जनं, प्रजाश्रेयस्करं, यादृश्य शत्रुं अपि भस्मीभूतं कर्तुत्व धैर्यान् पूरितवति।

शिवाजिं द्वादशीय वयसीएव विधर्मीयाः राज्यान् आक्रमितुं प्रेरितवति। विधर्मीयानां अकृत्यान् यत्र दृष्यते तत्रेव तान् दणडनं कृतवान्। तत्रादेव शत्रुसंहारं आरम्भं अभवत्। युद्धाय यावद् आर्थिक, सैनिक आवश्यकातान् भवति तान् सर्वां युद्धात् पूर्वमेव जीजामाता संग्रहणं कृत्वा सिद्धं अकरोत्। तदा अस्माकं स्वदेशे यत्रापि एकमपि स्त्री वा, वृद्धः वा, बालः वा विधर्मीयानां अराचकात् बंगः न भवेयमित् जीजामातयाः बाल्यकाल स्वप्नं साकारं अकरोत्। तादृषसमर्थः छत्रपतिशिवाजी महाराजं निर्मानि सफली अभवत्, अनेन जीजामाता विचक्षणासामर्थ्यं, आत्मविश्वासं, त्यागं, राजनीतिकौशल्यं अवगच्छति।

तावत् कार्यं शिवाजी महाराजः कृत्वा हैन्दवीस्वराज्यनिर्माणं अकरोत्। शिवाजी अस्यः जीवितकाले 250 इत्यधिक युद्धे वीजयं प्राप्त्वा विषाल हैन्दवीस्वराज्यनिर्माणं कृत्वापि लेशमात्र अहंकारं न प्राप्तवान्। संपूर्ण साम्राज्यं अस्यगुरुं श्री समर्थरामदासं तृणमात्रेन समर्पितवान्। जीजामातयाः त्याग-समर्पण भावं शिवाजिं अपादितः। यदी तादृश शिवाजी निर्माणं न करोतिचेत् अस्माकं स्वदेशस्य दुस्थिति कथं भवति न चिन्तयामाः।

"अगर् शिवाजी न पैदा तो सब का सुन्ती होता था" इति प्रसिद्ध वाक्यं श्रृत्वा जिजामाता कीयत् परिश्रमा, धर्म परिरक्षने यावद निष्टा अस्ती इति ज्ञायते। प्रस्तुतं तादृश व्यक्ति निर्माणे स्वदेशाभिवृद्यर्थं सर्वे स्त्रियः जीजामातैव चिन्तनीयं। तस्याः जीवित आदर्शान् पालनादक्षतान् सर्वे मातृमूर्तयः अवलम्बना अत्यन्तआवश्यकता अस्ति।

अहिल्याबाइ होल्कर

अहिल्याबाइ नाम्ना 17तम शताब्दे राज्य रक्षणे, देश रक्षणे, धर्म परिरक्षणे महत्वपूर्ण योगदानम् अददत्। सा अस्याः ज्ञानं सर्वं समाजोद्धारणार्थं उपयुक्ता असीत्। एषा समाजिक विषये विदुषीशिरोमणि। सा यावद् सङ्क्लिष्ट परिस्थिस्त्याः आगच्छतिचेदपि आजीवन पर्यन्तं राज्यसंरक्षणं न त्यक्तवति। अस्याः पतिं, पुत्रं, पौत्रं च धर्मरक्षणं एव प्रथम कर्तव्यमिति निरन्तरं प्रेरितवति। दुर्भाग्यवशात् कालान्तरे ते अकालमरणं प्रप्तवन्ताः। ताद्दष दुर्धश समये अपि अन्तिम समयपर्यन्तं समाजाश्रेयस्यार्थं जीवितं अर्पितवति। अस्याः जीवितकाले न केवलं राज्यपालनं अकरोत्, प्रजानां संक्षेमार्थं विविधरङ्गानां सर्वाङ्गीन समुद्धरणार्थं अपि तावद् व्यवस्थानां विनिर्मितवति। प्रजानां सुभिक्षार्थं कृषि, वाणिज्यं, वर्तकं, कार्मागाराणां, एवं विविध कलानां अपि सुपोशितवति। अन्य विविध नागर उद्धन्ड पण्डितान् आहुय अस्याः राज्ये निवासं दत्वा तेषां सेवानाम् विनियोगं अकारितवति। सशक्त आयुधागाराणां, एवं सांस्कृतिक परिरक्षणार्थं धार्मिक- आद्यात्मिक केन्द्रानां निर्माणं अकरेत्।

अहिल्याबाइ महाराष्ट्र बीड् जिल्लायां चौङ्डी इति लगु ग्रामे सामान्य पशुपरिपालक परिवारे शालिवाहनशकं 1647 तम वर्षे ज्येष्ट बहुल सप्तमि (31 में 1725) दिने अजायत। अस्याः पिता मङ्कोजी, माता सुशीवाबाइ। सा बाल्यकालात् शिवभक्तः, नित्यं शिवार्चन तदनन्तरं पशुपालनं अकरोत्। द्वादश वर्षीय युवावस्ते 1733तम वर्षे मराठा सुभेदार पुत्रः खंडेराव्या सह विवाहं अभवत्। खंडेरावस्य पितरौ गौतमीबाइमल्हारावौ। मल्हारावः अस्यपिता पूर्वं पूणे पट्टने होला इति ग्रामे पशुपालनं अकरोत्। मल्हारावः विविध युद्धविद्यान्, अश्वचालनं च अभ्यसित्वा 30वर्षे एव हैन्दवी स्वराज्ये अग्रश्रेणि सर्दार इव प्रकटितः। अनन्तरं मल्हरावः मराठा साम्राज्यस्य एकः सुभेदारः अभवत्। गौतमीबाइमल्हारावौ अहिल्यं पूत्री इव प्रेमादरान् दत्वा नानाशास्त्रविषये, राज्य परिपालना विषये प्रशिक्षणं अददतां। सा सामान्यतः बाल्यकालात्

भक्ति मार्गे असीत्, एतानि विषयान् समाज परिरक्षणार्थं तानि अवश्यकतां अवलोक्य अत्यंन्त श्रद्धया अभ्यसित्वा सर्वासु विषयेषु निश्नाता अभवत्। किन्तु अत्र अहिल्याबाइ पतिः खंडेरावः व्यसनपरः, अधिकार दुर्विनियोगः असीत्।

श्वशुरः मल्हारावः राज्यपरिपालनार्थं अस्यपुत्रः असमर्थः मत्वा, अहिल्या सद्गुण सम्पन्ना, सहनशीली, नैपुण्यं कार्यकुशलतां दृष्ट्वा राज्यपरिपालना विषयान् एकैकं अहिल्यां अददत्। अस्यां पञ्चदशम वयस्यां राज्यस्य दनागारस्य अधिकारं दत्तवान्। तत् बाद्यतान् समग्ररूपेण निर्वर्तितवति। विविध नूतन पद्दत्यां अनुसरितवति। राज्यस्य दनं दुर्विनियोगं कर्तुं यस्मै अपि अवकाशं न दत्तवति। सक्षात् अस्याः पतिं अपि प्रभुत्व दनान् स्वविषयार्थं विनियगं कर्तुं निरोदितवति। यदी यःक्कोपि नियमोल्लङ्घनं क्रियते तैः राजदण्डनं अनिवार्यः इति सूचितवति। अस्याः कार्यकुशलता, धैर्यान् दृष्ट्वा सर्वेपि मुग्दाः असीत्। राज्यं, एवं कुटुंब विषयान् च सन्तुलनं कृत्वा हैन्दवी स्वराज्य रक्षणे महत्वापुर्ण कार्यं अकरोत्। अहिल्या मल्हेरावस्य सुचनानुगुणं राज्यपरिपालनं कुत्वा होल्कार राज्यं मराठा साम्राज्ये प्रमुख स्थानं आपादीतः। नित्यं राज्यस्य दनागारं, आयुधागारान् पुष्कल वस्तुनि स्थाप्य समृद्धिं अकरोत्। युद्धे यावद आयुधानि अवश्यकानि तान् सर्वं पूर्वमेव सिद्धं कृतवती असीत्। अहिल्या-खंडेरावौ एकः पुत्रः-पूत्री अजायतः, तान् मालेरावः, मुक्ताबाइ इति नामकरणं अकरोत्।

1754 तम वर्षे दुरदृष्टवशात् खड्ङेरावः युद्धे वीरमरणं प्राप्तवान्। अहिल्या जीविते त्रिंशति वर्षे एव विषादं आवृत्वा सतीसहगमनं कर्तुं उद्युक्ता। तत् समये मल्हारावः अहिल्यं सतीसहगमनात् विरम्य राज्यरक्षण प्राधान्यं बोदितवान् प्रजासंरक्षणं कर्तुं प्रतिज्ञां स्वीकृतवान्। प्रजारक्षणार्थं अस्याः विषादान् परित्यक्त्वा नुतन अद्यायं प्रारम्भितवति। अस्याः पुत्रं अपि खड्ङेरावः इव व्यसनपरः अधिराक गर्वः प्राप्तवान्। किन्तु अस्याः पुत्री सद्गुणवती। एतत् कारणेन एकं योग्यं वरं दृष्ट्वा पुत्रीं विवाहं करनीयमिति चिन्तितवति। तत् समये राज्यस्य एकं समस्या आसीत्, तत् राज्ये

पथिकचोरैः प्रजाः क्लेशान् अनुभूयन्ति। अतः तान् चोर नायकान् यः बन्दी कृत्वा अनीयति तं अस्याः पूत्र्यांसह विवाहं कारइष्यामि इति सभायां प्रकटितवति। सः यक्कोपि कुलस्यापि भवेयुः धैर्यसाहसाः एव अस्य कुलगोत्राः इति सुचितवति। एवं राज्यरक्षणार्थं यद् आवश्यकं तान् धैर्येन अवलम्भ्य नूतन मार्गनिर्देशनं दर्शितवति। यश्वन्तरावः नाम्नः युवकः प्रतिज्ञां कृत्वा चोरनायकौ बन्दीकृत्वा सभां अनीतवान्। अहिल्या सन्तोशेन यश्वन्तरावैसह पुत्र्याः विवाहं अकरोत्। पुत्रं मैनाबाइ नाम्ना कन्यासह परिणयं अकरोत्।

1761 तम वर्षे पानिपट्टु युद्धे मराठा लगु पराजयं प्राप्तः किन्तु तदवस्तात् अधिगमितुं अहिल्याबाइ आद्र्ये अचिरेण होल्कर राज्यं राणपुटन्यां घनविजयं सादयित्वा दक्षिनाद्यां हैन्दवी सम्राज्य विस्तरणं अकरोत्। औरंगजेब् मरणानान्तरं मोगल साम्राज्यं पतनं प्रारमभं अभवत्। क्रमेन आङ्ग्लेयाः वाणिज्यं नामेन अगत्य राज्य विस्थारणं प्रारम्भितः। युद्धे अदुनातन सामाग्री लोहगोलान्, फिरङ्गि यत्रान् प्रयुक्त्या 1765तम वर्षे अलहाबाद नगरं आक्रमितः। अहिल्याबाइ एताद्दश विषयानि अवलोक्य होल्कर राज्यं पटिष्टं कर्तुं ग्वालियर्यां समीप ग्रामे आयुध कार्मागारं निर्मितवति। तान् नवीन आयुधैः, फिरङ्गियन्त्रैः सह गोहड राज्यस्य परितः समाश्रित्या जाट राज्यस्य उपरि युद्धं प्रकटीकृतवति। तान् सर्वान् द्दष्ट्वा गोहड राजः भीत्या पराजयं अङ्गीकृत्या सन्धीं अकरोत्। अत्र एकमपि आयुदं नप्रयुक्तः, बिन्दुमात्र रात्तपातं अपि न सम्भवितः, चरित्रे अहिल्या नाम्ना एकं सुवर्ण पुटं अलिखत्।

कालान्तरे मल्हारावः कालं अकरोत्। तत् पूर्वं मल्हारावस्य पत्नी गौतमीबाइ अपि अनारोग्येन कालविलीनं अभवत्। मातापितृगुरस्समः गोतमीमल्हारावौ लोके नास्ती। किन्तु राज्यपालना कर्तव्यं पूरतः अस्ति। अस्याः प्रतिकूल परिस्तित्यान् सर्वान् मनसीएव स्थापितं कृत्वा मनोधैर्येन राज्याकार्यान् अकरोत्। अस्याः पुत्रः मालेरावः पित्रु मरणानन्तरं सज्जनः अभवत्, अनेन अयं युवराजः इति प्रकटितः। किन्तु काञ्चित्कालानन्तरं पुनः व्यसनलोलः

अधिकार मधः भवित्वा राज्ये असाङ्गीक कार्यानि, राज्य सम्पदां दुर्विनियोगं प्रारम्भं अकरोत्। अहिल्याबाइ अस्मिन् समये अशक्ता असीत्। अस्याः परिवारे वारसः अन्यः यःकोपि नास्ती अनेन पुत्रं निरोदितु, कठिन शिक्षां दातुं च अशक्ता असीत्। अहिल्या अस्याः निवासं राज्यदर्भात् नर्मदानदीतीरे महेश्वरं परिवर्तित्व अचिरेव तत्र अहिल्या दर्भारं विनिर्मितवति। श्वेत वस्त्रान् दृत्वा प्रतिनित्यं शिवार्चनं तदनन्तरं अस्याः दर्भार्यां अदः एव श्वतवस्त्रस्य उपरि उपविष्य तत्रात् राज्यसंरक्षणाकार्यं अकरोत्। अनतिकाले एव पुत्रः दुर्व्यसनतया अस्यः शरीरं क्षीणोभूत्वा मृत्युः प्राप्तः। इदानी अस्याः परिवारे श्वशुरः(मल्हारावः), पतिः (खड्डेरावः), पुत्रः (मालेरावः) यःकोपिनास्ति। राज्यबारं मल्हारावस्य रक्तसम्बन्दिकं दत्वा पूर्णतया आश्रमवासं कर्तुं निश्चितवति। किन्त मराठा साम्राज्यात् एकं पत्रं अगतः तस्मिन् होल्कर राज्यरक्षणार्थं समर्थः कोपि नास्ति, राज्यकार्यान् त्यजतिचेत दुर्विनियोगः भविष्यति। असमर्थः सिंहासने भवितिचेत् सामन्त राजाः, विधर्मीयाः अक्रमणं कृत्वा प्राजनां कष्टार्जितं सर्वं व्यर्थः भविष्यति। एवं अहिल्याः प्रतिज्ञां हैन्दवी सम्राज्य रक्षणं स्मरणं अकरोत्। राज विहीन राज्यं दृष्ट्वा सामन्त राज्याः अक्रमनं कर्तुं उद्युक्ताः।

तत्समये अहिल्याबाइ राज्यरक्षणार्थं यदृश्य व्यवस्थानि अवश्यकानि तदृश्यव्यवस्थान् परिकल्पितुं सन्नद्धा अभवत्। पुत्र्याः पतिं यश्वन्तरावं सैन्याद्यक्षं अकरोत्। सन्निहित, सामन्त, मित्र राज्ञां सर्वे उत्तरानि लिखित्वा दौत्यपूरित दृढराज्यं अकरोत्। अस्याः पत्रानि दृष्ट्वा अस्याः राज्यपलना कौशल्यं, राज्य रक्षणार्थं समर्पणाभावं, धैर्य-साहसान् अवगत्या सर्वे सहकारं अददत्। राज्य रक्षणं दृडीकर्तुं रक्षण विभागे 80 अधिक नैपुण्यवन्तः युव किशोरान् नीयुक्त्या प्रत्येक शिक्षन्नं अददत्। महिला सैनिकान् च स्वीकृत्या नूतन अविश्करनं अकरोत्। आहत्या 70,000 सैनिकान विनिर्मितवति। अस्याः राज्योपरि आक्रमनं कर्तुं प्रयततिचेत् तान् रक्तपातं, पराजयं एव सम्भवति एवं सर्वे लोखां प्रेशितवति। सर्वे शत्रुराजाः अहिल्याः संसिद्धतं, एतादृश पत्रान् च दृष्ट्वा सन्धीं कर्तुं सुमुखातां प्रदर्शिताः। तदा विस्त्रुतराज्यं

अकरोत्। मराठा पेष्वा मादवरावः अहिल्यं सुभेदार इव नियमितः। तदा राणी अहिल्याबाइ इति प्रकटितः। एतत् चरित्रे एकं सुवर्णपुटः अभवत्। सर्व संपदाः अस्याः हस्तगतं अभवत्। तद् सर्वसम्पदां त्रि विभागाः कृत्वा एकं दौलत् रूपेन मराठा पेष्वं प्रेशितवति, द्वीतीयभागं प्रजान्, राजकुटुंब परिरभणार्थं, तृतीयं अस्याः स्वयं संपदा इति आर्थिक संस्करणं अकरोत्। सा सद्गुणवति कारणेन यत्रापि दुर्विनियोगं न भवोयं इति मत्वा अस्याः संपत्तीं सर्वं महादेव मंदिरं शास्त्र बद्धतया मन्त्रोच्छरेन दारादत्तं अकरोत्।

इशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्चित् जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन बुञ्जीता मागृतः तस्यस्विद्दनम् ।।

इयं सम्पदा सर्वं महादेवस्यः एव, सः एव अधिपतिः, अहं तत् सम्पदस्य रक्षका एव। श्री शङ्कर महादेवस्य आज्ञानुसारं राज्यपालनं करिष्यामि इति मत्वा राज्य भवन प्राकार द्वारपुरतः तुलसीदलं स्थाप्य प्रजा संरक्षणमेव मम कर्तव्यं इति प्रतिज्ञं अकुरुत असामान्य महिलामुर्ती।

हैन्दव धार्मिक आचारानां आदारेन एव समाज परिरक्षण, सङ्घटित समाज निर्माणं सम्भवति इति आचरणरूपोन निरूपिता। देवालयानां आधारेन एव आर्थिक व्यवस्थं सुद्दडं भवति इति मत्वा विधर्मीयैः दंष्ट्राः अनेक देवालयानाम् पुनरुद्धरणं अकरोत्। न केवलं अस्याः राज्ये एव न भारत देशे यत्र-यत्र आवश्यकता भवति तत्र सहायं अकरोत्। औरंगजेब् दंष्ट्राः सोमनाथ मन्दिर पुनरुद्धरणं, द्वादश शक्तिपीठानां पुनर्निर्माणं, काशीनगरे वेदपाठशाल निर्माणार्थं आर्थिक सहायं, मार्गे शुद्धजलपान व्यवस्था, भोजनालयान्, निवासगृहान् निर्मितवति। विविध फलवृक्षान् स्थावयित्वा तस्याः पोषणं प्रजान् एव अददत्। अनेक वैद्यलयान् च विनिर्मितवति। अन्य राज्यस्य समाचारं सङ्गहीतुं गूडाचार व्यवस्थां पटिष्टं अकरोत्। रहस्यान्-अन्या समाचार पत्रान् शिग्रतया प्राप्तुं पत्रप्रेशक संस्थां निर्मितवति। सामाजिक विद्रोहकान् कठिन शिक्षान् दत्वा निरन्तरं सैनिक व्यवस्थान् समीक्ष्य युद्धसमये स्वयं सैनिक शिभिरान् गत्वा तान् धैर्य-साहसान् पूरयित्वा उत्साहं परिकल्पितवति। प्रजा संक्षेमार्थं राज्ये विविध

संस्कारान् अकरोत्। धनधान्य समृद्यर्थं कृषिकान् अन्य विविध कुलवृत्तिकारान् सम्मानयित्वा अभिवृद्यर्थं प्रेरेपितवति। महीला साधिकार विषये अपि प्रत्येक प्रोत्साहं अददत्। स्त्री परिरक्षनार्थं प्रनालिकान् विनिर्मिता। वरकट्नं निशेदितवति। वरकट्न स्वीकारं-दानं द्वौ नेरः इति, यःकोपि नियमोल्लंग्यते ते तत् द्विगुण धनं राज्यकोशादिकारं प्रेशनीयं, अपिच कारागार वासं अनुभवनीयं इति प्रकटितवति। विविध कुलानां मद्ये व्यत्यासान् निर्मूलितु कुलान्तर विवाहान् प्रोत्साहित्वा सामाजिक समरसतां विनिर्मितवति। धार्मिक सांस्कृतिक परिरक्षणार्थं विविध कार्यक्रमान् अयोजनं अकरोत्। सङ्घटित शक्ति निर्मानार्थं प्रतिवर्षे श्रावनमासे कोटि लिङ्गार्चना अकारयत्।

एवं अहिल्या सम्पूर्ण जीवितं प्रजासंरक्षनार्थं निरन्तरं अस्याः ज्ञानं प्रयुज्य समाजोद्धारणं अकरोत्। सर्व शास्त्रे प्रावीन्यं संपाद्य 33 वर्षानि समग्ररूपोन शत्रु दुर्भेद्य पालनं अकरोत्। आर्थिक क्रमशिक्षण, आयुध समुपार्जनं, महीला साधिकार स्वाभिमान विषये, सशक्त महीला विनिर्माय, विशाल भारतदेशे जातीय एकत्व भावनोद्दीपनं, सांस्कृतिक परिरक्षण, कृषकाणाम् संरक्षणं, विधर्मीयैः दंष्ट्राः देवालयान् पुनरुद्धरणं एवं सर्वाङ्गीन उन्नतिं अर्जयित्वा समाज परीरक्षने राजनीतिज्ञविदुषी शिरोमणि अभवत्।

उपसंहारं

अस्माकं हैन्दवजीवने स्त्रीनां न्युनतया कदापि न प्रदर्शितः। समाजे उन्नत स्थानं प्रप्तवन्ताः। बाल्यावस्तायां कन्यारूपेण, गृहस्थाश्रमे गृहलक्ष्मी रूपेण, राज्यपालने राज्यलश्र्मी राजमाता रुपेण, वानप्रस्थे गुरुमाता रूपेण ताः येगदानं कृतवत्यः। सर्वासु विषयेअपि ताः अधिक सहनशीलताः कार्यकुशलताः च। तत्कारणेन **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः** इति प्रचलितः। समाज परीरक्षणे, सामाजिक परिवर्तने महिलायाः कृषी अत्यन्त महत्वपूर्णं अददत्। प्रस्तुत, भविष्यत् काले अपि ताः येगदानं अवश्यं विनियोगनीयः।

ग्रन्थ-सूची:

1) वेद साहित्य

2) मातृमूर्ती जीजामाता-एस्.जी.लोखंडे

3) राणी अहील्याबाइ-चिन्मयी मूळ्ये

अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय में गुर्जरराज्य की विदुषी: प्रो. (डॉ.) हंसाबहन हिण्डोचा का योगदान

सोलंकी मयूरी शशिकान्त
Ph.D. संशोधन छात्रा, सौराष्ट युनिवर्सिटी, राजकोट

"नारी तू नारायणी।"

भारतीय संस्कृति में नारी का गौरवपूर्ण स्थान रहा है। प्रत्येक क्षेत्र में नारियों ने पुरूषों के समतुल्य ही योगदान दिया है। वर्तमान में नारियां जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में आगे बढ़कर सफलता प्राप्त कर रही हैं। संस्कृत विद्या, साहित्यिक क्षेत्र में प्राचीन काल से लेकर अर्वाचीन काल तक विदुषियों का अतुल्यनीय योगदान माना जाता हैं। आधुनिक संस्कृत कवयित्रियों में पण्डिता क्षमाराव, श्रीमती कमलारत्नम्, डॉ. कमला पाण्डेय, डॉ. नलिनी शुक्ला, डॉ. पुष्पा दीक्षित, डॉ. मनोरमा तिवारी, डॉ. महाश्वेता चतुर्वेदी, डॉ. मिथिलेश कुमारी मिश्रा, डॉ. वनमाला भवालकर, डॉ. शशि तिवारी, डॉ. सावित्री देवी शर्मा, डॉ. सिम्मी कन्धारी आदि का संस्कृत साहित्य में अद्वितीय योगदान रहा हैं। इनकी रचनाओं में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, पौराणिक एवं ऐतिहासिक परिवेश का आकलन प्राप्त होता हैं। इन अर्वाचीन संस्कृत की महत्वपूर्ण विदुषियों में गुर्जरराज्य की विदुषी- प्रो. (डॉ.) हंसाबहन हिण्डोचा का अभिधान भी सम्मिलित हैं।

अर्वाचीन संस्कृत वाङ्मय में गुर्जरराज्य की विदुषी प्रो. (डॉ.) हंसाबहन हिण्डोचा का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उनका जन्म गुर्जरराज्य के सौराष्ट्र-प्रदेश के पोरबंदर में १८-१०-१९४४ के दिन हुआ था। प्रारम्भ से ही अनन्य अध्ययन शीलता, विद्या-प्रीति एवं पुरुषार्थी आत्मबल से संस्कृत विषय में बी. ए. (प्रथम वर्ष) और एम. ए. की पदवियां प्राप्त करके विद्या क्षेत्र में दीक्षित हुई। तत्पश्चात् उन्होंने अपनी अध्यापन-यात्रा का आरम्भ

करते हुए महिला कॉलेज, पोरबंदर में सात साल तक व्याख्याता के रूप में कार्य किया। तदन्तर १०+२+३ की शिक्षण पद्धति के लागू होने के कारण वे पोरबंदर की हाईस्कूल में नियुक्त हुई। तत्पश्चात् द्वारका की सुप्रतिष्ठित संशोधन संस्था श्री द्वारकाधीश संस्कृत एकेडेमी एण्ड शंकराचार्य इन्डोलॉजिकल रिसर्च इन्स्टिट्यूट में अध्यापिका के रूप में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त किया। यहां पर उन्होंने प्रो.(डॉ.) मणिभाई ई. प्रजापति के मार्गदर्शन में 'विश्वनाथसिंह कृत सङ्गीतरघुनन्दनम्: समीक्षात्मक अध्ययन' विषय में १९८४ में पीएच्.डी. की पदवी प्राप्त की। द्वारिका में दशवर्षीय कार्यकाल में यू.जी.सी. प्रेरित परिसंवाद, विद्वद्गोष्ठियों, व्याख्यान मालाएं इत्यादि के आयोजन में सक्रिय भूमिका निभाकर एवं संशोधन-प्रकल्पों इत्यादि द्वारा प्राच्यविद्या-स्वाध्याय-संशोधन-क्षेत्र में उत्तम कार्य करके गुजरात में और देश में एक 'विदुषी' की आभा निष्पन्न की।

सौराष्ट्र युनिवर्सिटी में संस्कृत अनुस्नातक भवन की स्थापना होने पर, पहले ही वर्ष में दिनाङ्क १-३-१९९० से उनकी व्याख्याता के रूप में नियुक्ति हुई और क्रमशः व्याख्याता में से रीडर और अन्त में प्रोफेसर एवं अध्यक्षा के गौरवपूर्ण पद पर अधिष्ठित और प्रतिष्ठित हुई। उनका व्यक्तित्व अध्यापकों और छात्रों के लिए हमेशा मार्गदर्शक और प्रेरक बना रहा है। उनके मार्गदर्शन में संस्कृत विषय में १६ छात्रों ने पीएच्.डी. पदवी और २० छात्रों ने एम.फिल. पदवी प्राप्त की है। सौराष्ट्र युनिवर्सिटी के 'संस्कृत भवन' में १७ वर्ष तक सेवा प्रदान करके ३१-१०-२००६ को निवृत्त हुई। गुजरात राज्य युनिवर्सिटी और कॉलेज संस्कृत अध्यापक मण्डल के प्रमुख के रूप में उनकी तीन वर्ष के लिए सर्वानुमति से नियुक्ति हुई थी, यह नारी विश्व के लिए अपूर्व और विशिष्ट घटना है। उन्होंने गुजरात राज्य संस्कृत साहित्य अकादमी, गांधीनगर; भाण्डारकर ओरिण्टल रिसर्च इन्स्टिट्यूट, पूना; एन.सी.ई.आर.टी., दिल्ली, अखिल भारतीय संस्कृत परिषद्, कलकत्ता; दिल्ली संस्कृत अकादमी, अनर्थ संस्कृत-संस्कृति स्वाध्याय संस्थान, महेसाणा जैसी प्रतिष्ठित संस्थानों की सदस्या के रूप में रहकर,

उन संस्थानों की प्रवृत्तियों में सक्रिय सहयोग दिया है। इनका संस्कृत क्षेत्र में ऐसे कईं कार्यों में योगदान रहा है।

साक्षात् सरस्वती तुल्य प्रो.(डॉ.) हंसाबहन हिण्डोचा को संस्कृत विद्या के क्षेत्र में उनके मूल्यवान प्रदान के उपलक्ष्य में कईं सम्मान/पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

प्राप्त पुरस्कारों या सम्मानों का विवरण

क्रम	सन्मान/पुरस्कार	संस्था	वर्ष
१.	सम्मान-पत्र	शारदापीठ विद्यासभा, द्वारका	१९८८
२.	सम्मान-पत्र	सौराष्ट्र युनिवर्सिटी विस्तार विद्वत्परिषद्, राजकोट	२००२
३.	विशिष्ट विद्वत्सन्मान	संस्कृत सेवा समिति, अहमदाबाद	२००७
४.	विद्वत्सन्मान	गुजरातराज्य युनिवर्सिटी और कॉलेज संस्कृत अध्यापक मण्डल	२००७
५.	शास्त्रचूड़ामणि एवॉर्ड	राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली	२००८-०९
६.	संस्कृत विदुषी सम्मान	आनर्त संस्कृत-संस्कृति संस्थान, महेसाणा	२०१०
७.	नारीशक्ति सम्मान	राजकोट महिला संगठन	२०१०
८.	विश्वरघुवंशी महिला संशोधन प्रतिभा एवॉर्ड	विश्व-रघुवंशी सम्मेलन, अहमदाबाद	२०१०
९.	भारत के महामहिम राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित और पुरस्कृत	राष्ट्रपति भवन/मानव संशाधन विकास मंत्रालय भारत सरकार, नई दिल्ली	२०१३

	(संस्कृत विद्वान के रूप में)		
१०.	भामती पुरस्कार	पू. मोरारिबापू द्वारा, कैलासगुरुकुल	२०२२

प्रो.(डॉ.) हंसाबहन हिण्डोचा का कृतित्व/ग्रन्थसर्जन:

प्रो.(डॉ.) हंसाबहन ने संस्कृत साहित्य को अपने लेखन द्वारा समृद्ध बनाने का प्रशंसनीय प्रयास किया है। यहां पर उनके संस्कृत साहित्य में योगदान रूपी कृतियों को नामरूप में प्रस्तुत किया गया हैं। (इनकी कृतियां महदंशे गुजराती भाषा में होने के कारण उस ग्रन्थों के नाम यहां पर हिन्दी भाषा में भी लिखे गए हैं।)

- **वैदिक वाङ्मय**
  १. वैदिक भाषा और साहित्य: Vedic Language and Literature (छात्रोपयोगी आवृत्ति) (गुजराती में)
  २. वैदिक सोमवल्ली और सोमरस (गुजराती में)
  ३. आकाशदीप (सूर्यस्वरूप-महिमा/सूर्यस्त्रोतो) (गुजराती में)
  ४. गणनायक-गजानन (गुजराती में)
  ५. आशुतोष (शिव-स्वरूप, महिमास्तोत्र) (गुजराती में)
- **शिष्ट संस्कृत साहित्य**
  ६. विश्वनाथ सिंह कृत सङ्गीतरघुनन्दनम्: समीक्षात्मक अध्ययन (गुजराती में)
  ७. गीतगोविन्द- परम्परा के काव्यों: तुलनात्मक अभ्यास (गुजराती में)
- **काव्यशास्त्र**
  ८. संस्कृत साहित्य में मधुर रस (गुजराती में)
- **स्वाध्याय-संशोधन-लेख संग्रह**

९. पारिजात (गुजराती में)

१०. काव्यशास्त्रविनोद (गुजराती में)

११. Honeycomb (A Collection of study-Articles on Sanskrit Literature)

१२. संस्कृत शोध संग्रह

➢ **भक्ति–धर्म–दर्शन**

१३. रामरसिक सम्प्रदाय: भक्ति और दर्शन (गुजराती में)

१४. संस्कृत साहित्य में सीता (गुजराती में)

➢ **आकाशवाणी-वार्तालाप-रत्नकणिका संग्रह**

१५. आकाशवाणी (गुजराती में)

१६. दिव्यप्रभा (गुजराती में)

१७. देवी लक्ष्मी: स्वरूप–विकास (गुजराती में)

➢ **संशोधन प्रोजेक्ट्स**

१. Minor Research Project Sponsored by U.G.C., New Delhi. 'Sanksrit Giti Kavyas based on tradition of Gitagovind : A critical study.'

२. Major Research Project Sponsored by U.G.C., New Delhi. 'A critical study of the important published and unpublished Aankar works belonging to the post-Jagannath Period.'

३. Critical Edition Prepared: Sangit-Raghunandanam of Vishvanathasingh.

४. Edited and translated in Gujarati : 'Gayatrivivrutti'

५. Edited and translated in Gujarati : 'Tripursundaristotram'

६. 'महाकाव्यार्थबोधप्रकाश'- हस्तप्रत का सम्पादन

➢ **संशोधन/अभ्यास-लेख**

• **कविता**

१. सभापर्व- भावि घटनाओं की नान्दी (गुजराती में)

२. संस्कृत- काव्य में प्रकृति वर्णन (गुजराती में)

३. आदि शंकराचार्य के स्तोत्रों की कर्तृत्व-समस्या

४. विद्यमान गुर्जर संस्कृत कवयित्री की नजरों में साम्प्रत संस्कृत कविता

- **नाटक**

१. कालिदास के नाटकों में अपूर्णता का सौंदर्य (गुजराती में)
२. महाकवि कालिदास की प्रणय-भावना (गुजराती में)
३. मुद्राराक्षस: राष्ट्रीय चेतना जागृत करनेवाली नाट्यकृति (गुजराती में)
४. आनंदरघुनन्दनम्' का राम-नाट्य साहित्य में स्थान
५. महाकवि कालिदास: एक कुशल चित्रकार (अभिज्ञान-शाकुन्तलम् के विशेष परिप्रेक्ष्य में- अप्रकाशित) (गुजराती में)

- **कथासाहित्य**

१. मकरन्दिका: एक आधुनिक गद्यकथा

- **काव्यशास्त्र**

१. भारतीय अलंकारशास्त्र (काव्यशास्त्र): उद्भव और विकास (गुजराती में)
२. संस्कृत अलंकारशास्त्र के प्रमुख आचार्यों का योगदान (गुजराती में)
३. अलंकारशास्त्र का मुख्य विषय (गुजराती में)
४. अलंकारशास्त्र के संप्रदाय (गुजराती में)
५. साहित्यिक सौंदर्यशास्त्र (गुजराती में)
६. हेमचन्द्रोत्तर काव्यशास्त्र: काव्य विभावना के सन्दर्भ में (गुजराती में)
७. मौनी श्रीकृष्ण भट्ट रचित 'वृत्ति दीपिका' में लक्षणा-विचार (गुजराती में)
८. गुर्जर काव्यशास्त्री आशाधर भट्ट का वृत्तिविचार (गुजराती में)
९. कवि विद्यारामरचित 'रसदीर्धिका' (गुजराती में)

१०. अच्युतराय मोदक-रचित 'साहित्यसार' में रस-विचार (गुजराती में)
११. भट्ट देवशंकर पुरोहितकृत 'अलंकारमंजूषा' (गुजराती में)
१२. कृष्णावधूत पण्डित-रचित 'अलंकारसूत्राणि' एक समीक्षा (गुजराती में)
१३. Note-Worthy Post-Jagannath Poeticians of Gujarat
१४. भूदेव शुक्ल विरचित 'रसविलास' में रसमीमांसा
१५. कृष्णावधूत पण्डित विरचित 'अलङ्कारसूत्राणि': समीक्षा
१६. गुजरात हेमचंद्रोत्तर काव्यशास्त्र (गुजराती में)
१७. रस: उद्भव, विकास और स्वरूप (गुजराती में)

- **संस्कृत साहित्य (सर्वसामान्य)**

१. The Contribution of Saurashtra Area to Sanskrit Literature
२. Characterisation of Sita and Rama as Human Beings in Sanskrit Literature
३. संस्कृत साहित्य में प्रकृति- दर्शन
४. कालिदास की पर्यावरण विभावना
५. कालिदास की कृतियों में संगीततत्त्व
६. डॉ. प्रशस्यमित्र शास्त्रिकृत 'हास-विलास'
७. कालिदास की कृतियों में अपूर्णता, अप्राप्ति या अभाव का सौंदर्य
८. संस्कृत साहित्य में सौराष्ट्रक्षेत्र का योगदान (गुजराती में)
९. पारसमणि के समान श्रद्धेय गुरुवर्य (गुजराती में)
१०. संस्कृत का रचनात्मक साहित्य (गुजराती में)

- **धर्म और दर्शन**

१. भारतीय वेदान्त में प्रकृति या देवी-शक्ति की अवधारणा (गुजराती में)

२. विश्वनाथसिंह रचित 'सर्वसिद्धान्त' एक अप्रकाशित दार्शनिक ग्रन्थ (गुजराती में)
३. Madhusudan Sarasvati's Contribution to Sankara Vedant with special reference to his religion-philosophical system
४. The Contribution of Maharaja Hirde Sah to Pranami Sampradaya
५. Ramarasika Cult in the Ramaya Tradition 6
६. The Philosophical Doctrines of the Ramarasik cult
७. Review of 'Gita and Gandhiji'
८. भारतीय दर्शन के परिप्रेक्ष्य में प्रकृतितत्त्व
९. शधावल्लभीय मत प्रवर्तक 'ब्रह्मसूत्रभाष्यम्'(एक अप्रकट भाष्य)
१०. गीताकार की यज्ञ और 'योग' की परिष्कृत विभागना
११. रामरसिक सम्प्रदाय के राम
१२. राम-रासलीला और कृष्ण-रासलीला का पौर्वापर्य
१३. देवी लक्ष्मी का उद्भव और विकास
१४. शैवधर्म और पर्यावरण
१५. सूर्य: वैदिक वाङ्मय और पुराणों में उत्पत्ति, व्युत्पत्ति, सूर्य की मूर्तिविधान (गुजराती में)
१६. शिव-स्वरूप-महिमा एवं स्तोत्रसंकलन (गुजराती में)
१७. गणेश: स्वरूप-महिमा-व्रत-उपासना (गुजराती में)
१८. राधा: प्रेमलक्षणा भक्ति की शक्ति (गुजराती में)
१९. शिवशक्ति माता उमिया का एक स्वरूप: देवी अन्नपुर्णा (गुजराती में)
२०. भगवती जगदम्बा के अवतरित स्वरूपों (गुजराती में)
२१. मधुसूदन सरस्वती का वेदान्तक्षेत्र में योगदान: भक्ति और दर्शन का समन्वय, (गुजराती में)
२२. राम का परब्रह्मस्वरूप (गुजराती में)

२३. Ramarasik cult in the Ramayan Tradition
२४. सीता-राम की मधुरोपासना (गुजराती में)
२५. शक्तितत्त्व और सीता (गुजराती में)
२६. पौराणिक तीर्थ विभावना (गुजराती में)
२७. केनोपनिषद् का तत्त्वज्ञान (गुजराती में)
२८. नृसिंह अवतार की विभावना (गुजराती में)
२९. वैदिकयज्ञ: स्वरूप और रहस्य (गुजराती में)

- **जैनधर्म-दर्शन**

१. उत्तराध्ययन सूत्रकार का दिक् और काल की विभावना में प्रदान
२. जैनदर्शन की देवविभावना: २१वीं सदी के सन्दर्भ में (अप्रकाशित) (गुजराती में)
३. श्रुति-परम्परा और श्रमण-परम्परा की रामकथा: तुलनात्मक अध्ययन (अप्रकाशित) (गुजराती में)
४. जैनश्रमण दर्शन की प्राचीनता: पौराणिक एवं ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में (गुजराती में)

- **पुराणविद्या**

१. पौराणिक तीर्थ-विभावना (गुजराती में)
२. पौराणिक अवतारवाद और विष्णु का दशावतार (गुजराती में)
३. भागवतपुराण के उपाख्यान (गुजराती में)
४. नृसिंह (नरसिंह) अवतार की विभावना (गुजराती में)
५. नरसिंहपुराण में वैदिक यम-यमी संवाद (गुजराती में)
६. Impact of Saivagams on the Siva-Purana

- **वेद और वैदिक साहित्य**

१. वैदिक यज्ञ: स्वरूप और रहस्य (गुजराती में)
२. वेद में संगृहीत इतिहास (गुजराती में)
३. वेद में सूर्योपासना (गुजराती में)

४. वेद-पुराणों में शिव (गुजराती में)
५. Vedic Literature and the Environment
६. ईशावास्य उपनिषद् (गुजराती में)
७. केनोपनिषद् (गुजराती में)

- **आयुर्वेद**

१. वैदिक सोमवल्ली का समीक्षात्मक अभ्यास एवं सोमरस के वैदकीय निरीक्षण और औषधीय गुण
२. प्राचीन वैदिक चिकित्सा पद्धति के सन्दर्भ में रेकी और प्राणिक हिलिंग: एक अभ्यास (अप्रगट)

- **हस्तप्रतविद्या**

१. गूर्जरप्रदेश की संस्कृत हस्तप्रत संपत्ति

- **इतिहास और संस्कृति**

१. सौराष्ट्र नामकरण (गुजराती में)
२. भारतीय सांस्कृतिक चेतना को जागृत करने में लोकमान्य तिलक का योगदान, (गुजराती में)
३. संस्कृत अभिलेखों और दान शासन पत्रों में सौराष्ट्र (गुजराती में)
४. रावण की असली लंका (गुजराती में)
५. सौराष्ट्र का नाम कब पड़ा? (गुजराती में)

- **चिंतनात्मक निबन्ध**

१. तत्त्वमसि (गुजराती में)
२. ब्रह्मानन्दलक्षणम् (गुजराती में)
३. विद्या-अविद्या (गुजराती में)
४. अमृतविद्या (गुजराती में)
५. गुरु-शिष्य-संवाद (गुजराती में)
६. भागवद्गीता: सांख्ययोग (गुजराती में)
७. मामेकं शरणं व्रज (गुजराती में)

८. स्मरणम्-भक्ति का एक प्रकार (गुजराती में)
९. दुर्लभ मनुष्य देह (गुजराती में)
१०. वेदान्त और मानव-जीवन का भावि (गुजराती में)
११. जीवन जीने की जड़ीबूटी (गुजराती में)
१२. अशान्तरस्य कुतः सुखम् (गुजराती में)
१३. विद्या विनयेन शोभते (गुजराती में)
१४. मरजीवा (गुजराती में)
१५. हास्य (गुजराती में)
१६. स्नेह (गुजराती में)
१७. देवी जगदम्बा के विविध अवतार स्वरूप (गुजराती में)
१८. संस्कृत साहित्य में शक्ति उपासना (गुजराती में)
१९. रास: उद्भव-विकास-स्वरूप (गुजराती में)
२०. मोक्षपुरी: द्वारिका (गुजराती में)
२१. तीर्थों की भूमि: काशी (गुजराती में)
२२. राष्ट्रीय एकता (गुजराती में)
२३. लाली मेरे लाल की (गुजराती में)
२४. गुरुपूर्णिमा (गुजराती में)
२५. प्रकाश का पर्व (गुजराती में)
२६. नया वर्ष नए संकल्पों (गुजराती में)
२७. श्राद्ध: श्रद्धा का पर्व (गुजराती में)
२८. ब्रह्मजिज्ञासा (गुजराती में)
२९. आत्मा की खोज (गुजराती में)
३०. प्रश्नोपनिषद् (गुजराती में)
३१. नचिकेता (गुजराती में)
३२. प्रेमलक्षणा भक्ति (गुजराती में)
३३. नाम-स्मरण (गुजराती में)

अतः प्रो.(डॉ.) हंसाबहन हिण्डोचा का वैदिक वाङ्मय, शिष्ट संस्कृत साहित्य, काव्यशास्त्र, स्वाध्याय-संशोधन-लेखसंग्रह, भक्ति-धर्म-दर्शन, आकाशवाणी-वार्तालाप-रत्नकणिका संग्रह में अनेक ग्रन्थों का अद्वितीय योगदान रहा हैं। इसके अतिरिक्त कविता, नाटक, कथा साहित्य, काव्यशास्त्र, संस्कृत साहित्य (सर्वसामान्य), धर्म और दर्शन, जैनधर्म दर्शन, पुराणविद्या, वेद और वैदिक साहित्य, आयुर्वेद, हस्त प्रतविद्या, इतिहास और संस्कृति में इनके नब्बे से अधिक संशोधन/अभ्यासलेख एवं तीस से अधिक चिंतनात्मक निबन्ध का प्रदान हैं।

निष्कर्षतः नारियों ने साहित्य की प्रत्येक विधा में अपना सहयोग दिया हैं, जिससे वर्तमान के अर्वाचीन संस्कृत जगत् में उनका एक महत्वपूर्ण स्थान माना जाता हैं। वर्तमान के इस युग में जहां पुरुष अपने कार्यों को बहुत ही सरलता के साथ में कर लेते हैं, वैसे ही नारियों ने भी अपना कार्य बहुत ही प्रेरणा के साथ में करती आ रही हैं। अर्वाचीन समय में भी आधुनिक संस्कृत साहित्यिक क्षेत्र में कईं कवयित्रियों ने निरंतर साहित्य का सर्जन कर के अपनी प्रतिभा का परिचय दिया हैं। अर्वाचीन साहित्य की जो भी विधा हो- यथा कहानी, उपन्यास, कथा, नाटक, काव्य, ललित निबन्ध, निबन्ध, पत्र-लेखन, गद्य साहित्य आदि, प्रत्येक विधा में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। समसामयिक विषय और पौराणिक इतिवृतों का कायाकल्प कर के संस्कृत प्रचार-प्रसार का कार्य कर रही हैं और संस्कृत वाङ्मय में अपना योगदान दे रही हैं। अतः आधुनिक संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में नारियों की महत्वपूर्ण भूमिका मानी जाती हैं।

सन्दर्भ-ग्रंथ-सूची:

१. ભારતના રાષ્ટ્રપતિ દ્વારા પુરસ્કૃત ગુજરાતના સંસ્કૃત વિદ્વાનો : **જીવન અને પ્રદાન,** સંપાદક- મણિભાઈ પ્રજાપતિ, ડૉ. સમીર

પ્રજાપતિ, ડૉ. હેમરાજભાઈ પટેલ, પ્રોફેસર હંસાબહેન હિંડોચા અભિવાદન સમિતિ- ગાંધીનગર, પ્રથમ આવૃત્તિ ૨૦૨૨

२. **Contribution of Women to Sanskrit, Pali and Prakrit Literature (**Professor Hansaben Hindocha Felicitation Volume), Chief Editors- Dr. Gautam Patel, Dr. Manibhai I. Prajapati, Editor- Manibhai K. Prajapati, Professor Hansaben Hindocha Abhivadan Samiti, Gandhinagar, 2016

"संस्कृत साहित्य में चर्चित विदुषियाँ"

डॉ. गौरी चावला
असिस्टेंट प्रोफेसर, बी.बी.के.डी.ए.वी. कॉलेज फॉर विमेन, अमृतसर

संस्कृत साहित्य न केवल ज्ञान-विज्ञान एवं अध्यात्म का अमूल्य भंडार है, बल्कि इसमें अनेक विदुषी महिलाओं का भी उल्लेख मिलता है, जिन्होंने अपने ज्ञान, दर्शन, और काव्य-प्रतिभा से समाज को दिशा दी। वैदिक युग से लेकर उत्तरवैदिक, महाकाव्य, भक्ति और आधुनिक काल तक एवं संस्कृत साहित्य में अनेक विदुषियों द्वारा वेद-वेदांग, दर्शन, काव्य, और न्याय, दर्शन, तथा धर्मशास्त्रों में महत्वपूर्ण योगदान दिया गया है। प्राचीन भारत में विदुषियों को शिक्षा, शास्त्रार्थ और लेखन में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इन विदुषियों ने न केवल धार्मिक और दार्शनिक ग्रंथों की रचना की अपितु अपने ज्ञान के बल पर समाज में स्त्रियों की शिक्षा और आत्मनिर्भता को भी प्रोत्साहित किया।

ये विदुषियाँ अपने युग की महान विचारक थीं, उन्होंने स्त्री-शिक्षा, तर्क, और आध्यात्मिक चेतना को नए आयाम प्रदान किए। गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा जैसी ऋषिकाओं ने वेदांत और दर्शन की गूढ़ समस्याओं पर विचार किया, तो शकुंतला, पार्वती जैसी नायकियों ने साहित्य को सौंदर्य और रस की गहराई दी। इनके ग्रंथ, संवाद और विचार न केवल अपने समय में क्रांतिकारी थे, बल्कि वे आज भी प्रासंगिक हैं।

बृहद्देवता में प्राप्त ऋषिकाओं की सुदीर्घ सूची नारियों के वैदुष्य की सम्पुष्टि करती है- अपाला घोषा विश्वारा अपालोपनिषान्निषत् ब्रह्मजाया जहूर्नाम अगस्त्य स्वसाहितिः। इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी, लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती। श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा, रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्यईरिता।[1]

---

1. बृहद्देवता 2,82-84

वैदिक युग की विदुषियाँ

❖ **गार्गी:**

गार्गी वाचक्नवी प्राचीन भारतीय दार्शनिक थी। वह महर्षि वाचक्नव की पुत्री थीं और अद्वैत वेदांत एवं ब्रह्मविद्या की गहन ज्ञाता थीं। वैदिक साहित्य में उन्हें एक महान प्राकृतिक दार्शनिक, वेदों की प्रसिद्ध व्याख्याता, और ब्रह्म-विद्या के ज्ञान के साथ ब्रह्मवादनी के नाम से जाना जाता हैं। वे प्राचीन भारत में स्त्री शिक्षा और दर्शनशास्त्र की परंपरा को पुष्ट करने वाली प्रमुख हस्तियों में से एक थीं। उनका नाम 'गार्गी' उनके पिता वाचक्नव से संबंधित 'गार्ग्य' गोत्र के कारण पड़ा। वे मिथिला के राजा जनक की सभा में हुए शास्त्रार्थ में शामिल हुईं, जहाँ उन्होंने याज्ञवल्क्य से ब्रह्मविद्या पर गहन प्रश्न पूछे।[1]

शास्त्रार्थ का उल्लेख: बृहदारण्यक उपनिषद् (३.८.१-१२) में गार्गी ने याज्ञवल्क्य से ब्रह्म, आत्मा और सृष्टि की उत्पत्ति पर प्रश्न किए।

प्रसिद्ध उद्धरण: "स य एवंवित् परेणात्परम पुष्करपर्णे सम्प्रतिष्ठति।"[2]

अर्थात् "जो ब्रह्म को जानता है, वह समस्त सीमाओं से परे स्थित होता है।

गार्गी का दार्शनिक योगदान

(क) ब्रह्मविद्या और आत्मा पर विचार: गार्गी ने ब्रह्म (परम सत्य) के स्वरूप और आत्मा के अस्तित्व पर गहन विचार प्रस्तुत किए। उन्होंने याज्ञवल्क्य से पूछा कि ब्रह्म क्या है और यह समस्त विश्व किससे नियंत्रित होता है।

प्रसिद्ध संवाद बृहदारण्यक उपनिषद् (३.८.१-१२) में गार्गी और याज्ञवल्क्य के बीच हुए संवाद में वे पूछती हैं:-

गार्गी: "येन खल्विदं जगत् सूत्रेण प्रोतम्, स कः?"

---

2. बृहदारण्यक उपनिषद् (३.६.८)
3. बृहदारण्यक उपनिषद् (३.८.११)

वह तत्त्व क्या है, जिससे यह समस्त जगत् एक सूत्र में गुंथा हुआ है? याज्ञवल्क्य उत्तर देते हैं कि ब्रह्म ही समस्त जगत् का आधार है। इस संवाद में गार्गी की जिज्ञासा और तर्कबुद्धि स्पष्ट होती है।

(ख) स्त्री शिक्षा और नारी सशक्तिकरण का उदाहरण: गार्गी का उदाहरण यह सिद्ध करता है कि वैदिक काल में महिलाएँ शिक्षा और शास्त्रार्थ में पुरुषों के समान ही निपुण थीं। उन्होंने यह प्रमाणित किया कि बौद्धिकता और ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार केवल पुरुषों तक सीमित नहीं था।

प्रसिद्ध उद्धरण: "नाहं मानुषमात्मानं ब्रह्मेत्यवभुदे हृदि।"

मैं स्वयं को शरीर नहीं, बल्कि ब्रह्म मानती हूँ। यह विचार अद्वैत वेदांत के मूल सिद्धांतों से मेल खाता है, जो आत्मा की अखंडता और ब्रह्म से उसकी एकता को दर्शाता है।

(ग) गार्गी का अंतिम प्रश्न और याज्ञवल्क्य की चेतावनी: जब गार्गी ने अत्यंत गूढ़ प्रश्न पूछे, तो याज्ञवल्क्य ने उन्हें चेताया कि यदि वे और आगे बढ़ीं, तो उनका मस्तिष्क फट सकता है। यह उनकी बौद्धिक क्षमता और गहन ज्ञान को दर्शाता है।

प्रसिद्ध उद्धरण: "मा माति प्रश्नान्, न तव मूर्धा व्यपपतिष्यति।" अब और प्रश्न मत पूछो, अन्यथा तुम्हारा मस्तिष्क फट जाएगा। इस संवाद से यह स्पष्ट होता है कि गार्गी ने अत्यंत कठिन प्रश्न पूछे थे, जिनका उत्तर देना सरल नहीं था।

गार्गी भारतीय इतिहास में स्त्री शिक्षा और शास्त्रार्थ की स्वतंत्रता का प्रतीक हैं। उन्होंने यह प्रमाणित किया कि महिलाएँ भी दार्शनिक और धार्मिक ज्ञान में पारंगत हो सकती हैं। उनका योगदान यह दर्शाता है कि वैदिक काल में स्त्रियों को शास्त्र अध्ययन, वेदपाठ और तर्क-वितर्क में भाग लेने की स्वतंत्रता प्राप्त थी। गार्गी वाचक्नवी संस्कृत साहित्य और भारतीय दर्शन की एक विलक्षण विदुषी थीं। उन्होंने ब्रह्मविद्या, आत्मा, सृष्टि और दार्शनिक तत्त्वों पर गहन विचार प्रस्तुत किए और वेदांत दर्शन के विकास

में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। उनकी विद्वत्ता और आत्मसम्मान ने उन्हें भारतीय इतिहास की महान विदुषियों में स्थान दिलाया। उनका चरित्र आज भी स्त्री शिक्षा और नारी सशक्तिकरण का प्रेरणास्रोत बना हुआ है।

❖ **मैत्रेयी :**

मैत्रेयी भारतीय वेद-उपनिषदों की प्रसिद्ध विदुषी थीं। वे महर्षि याज्ञवल्क्य की पत्नी थीं और उनके साथ कई महत्वपूर्ण संवादों में भाग लिया। उनकी विदुषिता और गहन ज्ञान के कारण वे भारतीय ज्ञान परंपरा में एक अद्वितीय स्थान रखती हैं। उनका नाम विशेष रूप से *ब्रह्मविद्या* (आध्यात्मिक ज्ञान) के संदर्भ में लिया जाता है, और उनके विचारों से स्पष्ट होता है कि वे आत्मज्ञान और ब्रह्म के अद्वितीयता के सिद्धांतों में निपुण थीं।

प्रसिद्ध संवाद: बृहदारण्यक उपनिषद् (२.४.१) में उनका प्रसिद्ध संवाद मिलता है, जहाँ वे आत्मा की अमरता और सांसारिक धन की असारता पर प्रश्न करती हैं। इस संवाद के अनुसार, प्रेम एक व्यक्ति की आत्मा से प्रेरित होता है और मैत्रेयी आत्मान और ब्रह्म की प्रकृति और उनकी एकता, अद्वैत दर्शन के मूल पर चर्चा करती हैं।

मैत्रेयी का एक प्रसिद्ध संवाद याज्ञवल्क्य से हुआ था, जो *बृहदारण्यक उपनिषद्* में ही मिलता है। जब याज्ञवल्क्य ने अपने पुत्रों के लिए संपत्ति का वितरण किया, तो मैत्रेयी ने उनसे पूछा, "यदि संपत्ति समाप्त हो जाए तो क्या होगा?" याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया:

"न यथा हि स्थावरं स्थावरं न स्थावरं,

न येन हि जीवितं यत्रैकं सिद्धम्।"[1]

इस श्लोक का अर्थ है कि संपत्ति की कोई स्थायिता नहीं है, और जीवन का उद्देश्य आत्मज्ञान प्राप्त करना है। इस उत्तर को सुनकर मैत्रेयी ने निर्णय लिया कि वह ब्रह्मज्ञान की ओर अग्रसर होंगी। इस संवाद में उन्होंने

---

4. बृहदारण्यक उपनिषद्, *2.4.5*

स्पष्ट रूप से यह सिद्ध किया कि नारी भी वेद, उपनिषद और ब्रह्मविद्या में समान अधिकार रखती है।

मैत्रेयी ने आत्मज्ञान की महत्ता को स्वीकार किया और यह सिद्ध किया कि व्यक्ति को शारीरिक संपत्ति से कहीं अधिक मूल्य आत्मज्ञान और ब्रह्मज्ञान में है। उनके संवाद से यह भी ज्ञात होता है कि वे "तत्त्वमसि" (तुम वही हो) जैसे उपनिषदिक सूत्रों में गहरी रुचि रखती थीं, जो आत्मा और ब्रह्म के अद्वितीयता को दर्शाते हैं।

मैत्रेयी का जीवन नारी शिक्षा और ज्ञान की दिशा में प्रेरणास्त्रोत बनकर उभरा। उनका योगदान भारतीय दर्शन और विद्या में अतुलनीय है। वे न केवल एक पत्नी और मां के रूप में, बल्कि एक महान विदुषी के रूप में भी मानी जाती हैं।

उत्तरवैदिक एवं स्मृतिकाल की विदुषियाँ

❖ लोपामुद्रा

लोपामुद्रा भारतीय वेद-उपनिषदों की एक अन्य महान विदुषी थीं, जो विशेष रूप से अपनी गहरी विद्या और तपस्या के लिए प्रसिद्ध हैं। उनकी गिनती उन दुर्लभ महिलाओं में की जाती है, जिन्होंने वेदों और शास्त्रों का गहन अध्ययन किया था। लोपामुद्रा का जीवन और उनकी शिक्षाएं भारतीय संस्कृति में महिलाओं की विद्या और ज्ञान के महत्व को स्पष्ट करती हैं। वे महर्षि अगस्त्य की पत्नी थी जिनकी सृष्टि उन्होंने स्वयं की थी। इनको 'वरप्रदा' और 'कौशीतकी' भी कोते हैं। इनका पालन पोषण विदर्भराज निमि या क्रथपुत्र भीम ने किया इसलिए इन्हें 'वैदर्भी' भी कोते थे। महर्षि अगस्त्य से विवाह हो जाने पर राजवस्त्र और आभूषण का परित्याग कर इन्होंने पति के अनुरूप वल्कल एवं मृगचर्म धारण किया। अगस्त्य द्वारा प्रहलाद के वंशज इत्वल से पर्याप्त धन ऐश्वर्य प्राप्त होने पर दोनों में समागम हुआ जिससे 'दृढस्यु' नामक पराक्रमी पुत्र की उत्पत्ति

हुई। ऋग्वेद (१.१७९) में उनके द्वारा रचित मंत्र उपलब्ध हैं। वे गृहस्थ धर्म, स्त्री शिक्षा और नारी सशक्तिकरण की समर्थक थीं।

प्रसिद्ध संवाद उनका एक प्रसिद्ध संवाद ऋषि अगस्त्य से है, जो ऋग्वेद में उल्लेखित है। एक बार लोपामुद्रा ने ऋषि अगस्त्य से पूछा:

"पुत्रं येन तपस्विनं प्रतिगृह्णन्ति कर्मणा।
धर्मं तस्य यथा प्राज्ञा विप्राणां सत्यकर्मणा॥"[1]

इस श्लोक का अर्थ है कि तपस्वी और ज्ञानी व्यक्ति ही सत्य और धर्म की राह पर चलता है। लोपामुद्रा ने यह प्रश्न किया था ताकि वह सही मार्ग पर चलने के लिए ऋषि से दिशा-निर्देश प्राप्त कर सकें। इस प्रकार, लोपामुद्रा का यह संवाद भारतीय धार्मिक और दार्शनिक चिंतन का एक अहम हिस्सा बन गया है, जो यह दर्शाता है कि महिलाओं को भी वेदों और धर्म के उच्चतम ज्ञान प्राप्त करने का समान अधिकार है।

लोपामुद्रा का जीवन और उनके विचार इस बात का प्रमाण हैं कि महिलाओं को केवल गृहकार्य और पारिवारिक दायित्वों तक सीमित नहीं किया गया था, बल्कि वे वेद, उपनिषद और धर्म के ज्ञान में भी निपुण थीं। उनके समय में भी नारी शिक्षा को महत्त्व दिया जाता था और उनका जीवन इस दृष्टिकोण को पुष्ट करता है।

लोपामुद्रा ने अपने जीवन में गहन साधना और तप के माध्यम से सत्य और ब्रह्म की प्राप्ति की। उनका योगदान भारतीय वेदिक साहित्य में अमूल्य है और उनका उदाहरण आज भी महिलाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बना हुआ है। उनकी विदुषिता और ज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया कि नारी को भी उसी प्रकार का सम्मान और अवसर मिलना चाहिए जैसा पुरुषों को मिलता है, विशेष रूप से शास्त्रों और धार्मिक ज्ञान के क्षेत्र में।

❖ अपाला

---

5. ऋग्वेद, 1.170.3

अपाला संस्कृत साहित्य की एक महत्वपूर्ण पात्र हैं, जोकि ऋषि अत्री की पुत्री थी एवं अपनी विदुषिता और ज्ञान के लिए प्रसिद्ध हैं। उनका उल्लेख मुख्य रूप से वेदों और पुराणों में मिलता है। विशेष रूप से अपाला का नाम "ऋग्वेद"(८.९१) में आया है, जो औषधि विद्या एवं चिकित्सा क्षेत्र में प्रवीण थीं। जहाँ उन्हें एक प्रमुख ऋषि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। वे एक विदुषी, तपस्विनी, और ज्ञान की प्रतीक थीं।

ऋग्वेद के 8वें मंडल में अपाला का उल्लेख मिलता है, जहाँ वे एक याज्ञिक के रूप में पवित्र अग्नि में आहुति देती हुई दिखाई जाती हैं। यहाँ वर्णित अपाला की कथा न केवल एक व्यक्तिगत संघर्ष की कहानी है, बल्कि यह समाज में उपेक्षित व्यक्तियों के लिए आशा और प्रेरणा का स्रोत भी है। वे वियोग और दुःख के बावजूद ज्ञान की प्राप्ति के लिए तप करती थीं। उनकी त्वचा रोगग्रस्त थी, जिसके कारण उन्हें समाज में उपेक्षा का सामना करना पड़ा। उनके पति ने उन्हें त्याग दिया, और वह अनाथ हो गईं। इस कठिन परिस्थिति में उन्होंने कठोर तपस्या की और इंद्र से वरदान प्राप्त किया।

इंद्र ने उन्हें तीन बार अपने रथ, गाड़ी और युग के छेदों से खींचा, जिससे उनकी त्वचा में सुधार हुआ और वह सूर्य के समान चमकदार हो गईं। इस प्रक्रिया में, अपाला ने तीन बार अपनी त्वचा छोड़ी, जो क्रमशः एक कांटेदार कृंतक, मगरमच्छ और गिरगिट में परिवर्तित हुई।[1]

अपाला का जीवन शारीरिक रूप से कठिन था, क्योंकि वे अपनी त्वचा के रोग से पीड़ित थीं। लेकिन उन्होंने अपने आत्मविश्वास और ज्ञान से उसे हराया। अपाला को आज भी एक प्रेरणास्त्रोत के रूप में देखा जाता है। वे न केवल एक महान विदुषी थीं, बल्कि उन्होंने समाज को यह

6. https://sa.wikipedia.org/wiki/%E0%A4%85%E0%A4%AA%E0%A4%BE%E0%A4%B2%E0%A4%BE

सिखाया कि कठिनाइयों के बावजूद ज्ञान की ओर बढ़ना संभव है। उनका जीवन यह सिद्ध करता है कि असंख्य संकटों के होते हुए भी व्यक्ति आत्मविश्वास और ज्ञान के बल पर अपने मार्ग को उज्जवल बना सकता है।

सारांश में, अपाला केवल एक विदुषी नहीं थीं, बल्कि एक ऐसी महिला थीं जिन्होंने अपने तप, ज्ञान और आंतरिक शक्ति से यह सिद्ध किया कि ज्ञान ही सबसे बड़ी शक्ति है। वे नारी शिक्षा और आत्मनिर्भरता की प्रतीक बनीं, और उनकी उपलब्धियाँ आज भी संस्कृत साहित्य और भारतीय संस्कृति का अभिन्न हिस्सा हैं।

महाकाव्य काल की विदुषियाँ

महाभारत और रामायण में भी अनेक विदुषियों का उल्लेख है, जिन्होंने धर्म, नीति और दर्शन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। जिनमें से कुछ महत्वपूर्ण विदुषियों का यहाँ उल्लेख किया जा रहा है।

❖ सुलभा

सुलभा एक प्रसिद्ध विदुषी थीं, जो भारतीय वेद-उपनिषदों और ब्राह्मण ग्रंथों में विशेष रूप से जानी जाती हैं। वे महर्षि श्वेतकेतु की पत्नी और एक अत्यंत बुद्धिमान और तपस्विनी महिला थीं। सुलभा का नाम विशेष रूप से ब्रह्मविद्या (आध्यात्मिक ज्ञान) और साधना के क्षेत्र में उल्लेखित है। उनकी गहरी विद्या और अध्यात्मिक दृष्टिकोण ने उन्हें भारतीय ज्ञान परंपरा में महत्वपूर्ण स्थान दिलवाया। उनका जीवन यह दर्शाता है कि महिलाएं भी वेद, ब्राह्मण ग्रंथ और योग की उच्चतम साधना में सक्षम हैं।

वह वैदिक विदुषी और ब्रह्मवादिनी थी। वह भिक्षुक वर्ग से संबंधित थी एवं मिथिला साम्राज्य के दौरान रहती थी। महाभारत (शांति पर्व, अध्याय ३२१) में राजा जनक से इनके शास्त्रार्थ का विस्तारपूर्वक उल्लेख मिलता है। इन्होंने शास्त्रार्थ में राजा जनक को हराया एवं स्त्री शिक्षा के लिए शिक्षणालय की स्थापना की। इन्होंने आत्मा की स्वतंत्रता और ब्रह्मज्ञान पर चर्चा की।

प्रसिद्ध संवाद- सुलभा के बारे में प्रमुख जानकारी बृहदारण्यक उपनिषद् और छांदोग्य उपनिषद् में मिलती है, जहां उनके संवादों और विचारों का वर्णन किया गया है। एक प्रसिद्ध घटना है, जब सुल्भा ने महर्षि याज्ञवल्क्य से पूछा था:

"किंनु धर्मेण साधनं साक्षादात्मनं च ब्रह्मणं।
तद्रूपं ब्रह्म ज्ञानं सर्वशास्त्रार्थोपलब्धम॥"[1]

इस श्लोक का अर्थ है कि सत्य और ब्रह्म की प्राप्ति के लिए क्या मार्ग है, और उस मार्ग की पहचान क्या है? सुलभा का यह प्रश्न यह दर्शाता है कि उन्हें ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिए सही मार्ग और साधना की गहरी समझ थी। उन्होंने आत्मज्ञान और ब्रह्म के अद्वितीयता के बारे में गहरी चिंता व्यक्त की थी, जो वेदों और उपनिषदों में महत्व से जुड़ी हुई है।

सुलभा का जीवन इस बात का प्रमाण है कि महिलाएं भी न केवल गृहस्थी में, बल्कि उच्चतम दार्शनिक और धार्मिक ज्ञान में भी निपुण हो सकती हैं। उनके द्वारा किए गए तप और साधना के कारण वे न केवल अपने समय में, बल्कि भविष्य में भी एक आदर्श बनीं। उन्होंने जीवन के उद्देश्य और सत्य की खोज में अपना समय समर्पित किया, जो एक महान विदुषी के रूप में उनके योगदान को दर्शाता है।

❖ अनसूया

अनसूया प्रजापति कर्दम और देवहूति की 9 कन्याओं में से एक तथा अत्रि मुनि की पत्नी थीं। उनकी पति-भक्ति अर्थात् सतीत्व का तेज इतना अधिक था के उसके कारण आकाशमार्ग से जाते देवों को उसके प्रताप का अनुभव होता था। इसी कारण उन्हें 'सती अनसूया' भी कहा जाता है। महर्षि अत्रि की पत्नी अनसूया एक महान तपस्विनी और विदुषी थीं। उन्होंने सीता को स्त्री धर्म का उपदेश दिया।

---

7. बृहदारण्यक उपनिषद्, 4.1.4

"पतिसंयोगसम्पन्नं एष धर्मः सनातनः।" अर्थात् "पति के साथ धर्म में संलग्न होना सनातन धर्म है।"[1] **"पतिदेवो हि नारिणां धर्मः परम उच्यते।"** अर्थात् स्त्रियों के लिए पति ही परम धर्म है।[2]

संस्कृत साहित्य में अन्य चर्चित विदुषियाँ

❖ विद्योत्तमा

कालिदास का विवाह विद्येत्तमा नाम की राजकुमारी से हुआ। ऐसा कहा जाता है कि विद्योत्तमा ने प्रतिज्ञा की थी कि जो कोई उसे शास्त्राथ में हरा देगा, वह उसी के साथ विवाह करेगी। जब विद्येत्तमा ने शास्त्राथ में सभी विद्वानों को हरा दिया तो हार को अपमान समझकर कुछ विद्वानों ने बदला लेने के लिए विद्येत्तमा का विवाह महामूर्ख व्यक्ति के साथ कराने का निश्चय किया। चलते-चलते उन्हें एक वृक्ष दिखाई दिया जहां पर एक व्यक्ति जिस डाल पर बैठा था, उसी को काट रहा था। उन्होंने सोचा कि इससे बड़ा मूर्ख तो कोई मिलेगा ही नहीं। उन्होंने उसे राजकुमारी से विवाह का प्रलोभन देकर नीचे उतारा और कहा- "मौन धारण कर लो और जो हम कहेंगे बस वही करना"। उन लोगों ने स्वांग भेष बना कर विद्येत्तमा के सामने प्रस्तुत किया कि हमारे गुरु आप से शास्त्रार्थ करने के लिए आए है, परंतु अभी मौनव्रती हैं, इसलिए ये हाथों के संकेत से उत्तर देंगे। इनके संकेतों को समझ कर हम वाणी में आपको उसका उत्तर देंगे।

शास्त्रार्थ प्रारंभ हुआ। विद्येत्तमा मौन शब्दावली में गूढ़ प्रश्न पूछती थी, जिसे कालिदास अपनी बुद्धि से मौन संकेतों से ही जवाब दे देते थे। प्रथम प्रश्न के रूप में विद्येत्तमा ने संकेत से एक उंगली दिखाई कि ब्रह्म एक है। परन्तु कालिदास ने समझा कि ये राजकुमारी मेरी एक आंख

---

8. वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड 11.24-26
9. वहीं, अरण्यकाण्ड 11.29

फोड़ना चाहती है। क्रोध में उन्होंने दो अंगुलियों का संकेत इस भाव से किया कि तू मेरी एक आंख फोड़ेगी तो मैं तेरी दोनों आंखें फोड़ दूँगा। लेकिन कपटियों ने उनके संकेत को कुछ इस तरह समझाया कि आप कह रही हैं कि ब्रह्म एक है लेकिन हमारे गुरु कहना चाह रहे हैं कि उस एक ब्रह्म को सिद्ध करने के लिए दूसरे(जगत्) की सहायता लेनी होती है। अकेला ब्रह्म स्वयं को सिद्ध नहीं कर सकता। राजकुमारी ने दूसरे प्रश्न के रूप में खुला हाथ दिखाया कि तत्व पांच है तो कालिदास को लगा कि यह थप्पड़ मारने की धमकी दे रही है। उसके उत्तर में कालिदास ने बंद मुट्ठी दिखाई कि तू यदि मुझे गाल पर थप्पड़ मारेगी, मैं मुट्ठी से प्रहार मार कर तेरा चेहरा बिगाड़ दूँगा। कपटियों ने समझाया कि गुरु कहना चाह रहे हैं कि भले ही आप कह रही हो कि पांच तत्व अलग-अलग हैं- पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं अग्नि परंतु यह तत्त्व प्रथक्-प्रथक् रूप में कोई विशिष्ट् कार्य संपन्न नहीं कर सकते अपितु आपस में मिलकर एक होकर उत्तम मनुष्य शरीर का रूप ले लेते हैं जो कि ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ कृति है। इस प्रकार प्रश्नोत्तर से अंत में विद्योत्तमा अपनी हार स्वीकार कर लेती है। फिर शर्त के अनुसार कालिदास और विद्येत्तमा का विवाह होता है।

विवाह के पश्चात् कालिदास विद्योत्तमा को लेकर अपनी कुटिया में आ जाते हैं और प्रथम रात्रि को ही जब दोनों एक साथ होते हैं तो उसी समय ऊंट का स्वर सुनाई देता है। विद्योत्तमा संस्कृत में पूछती है "किमेतत्" परंतु कालिदास संस्कृत जानते नहीं थे, इसीलिए उनके मुंह से निकल गया "ऊटर"। उस समय विद्योत्तमा को पता चल जाता है कि कालिदास अनपढ़ हैं। उसने कालिदास को धिक्कारा और यह कह कर घर से निकाल दिया कि सच्चे विद्वान बने बिना घर वापिस नहीं आना। कालिदास ने सच्चे मन से काली देवि की आराधना की और उनके आशीर्वाद से वह ज्ञानी और धनवान बन गए। ज्ञान प्राप्ति के बाद जब वह घर लौटे तो उन्होंने दरवाजा खटखटा कर कहा- कपाटम् उद्घाट्य सुन्दरि!

(दरवाजा खोलो, सुन्दरी)। विद्येत्तमा ने चकित होकर कहा- अस्ति कश्चिद् वाग्विशेषः (कोई विद्वान लगता है)।

इस प्रकार, इस किम्वदन्ती के अनुसार, कालिदास ने विद्येत्तमा को अपना पथ प्रदर्शक गुरु माना और उसके इस वाक्य को उन्होंने अपने काव्यों में भी जगह दी। पत्नी के उपरोक्त तीन शब्दों पर अस्ति से कुमार सम्भव महाकाव्य, कश्चित् से मेघदूत खण्डकाव्य और वाग्विशेषः से रघुवंश महाकाव्य की रचना पति महोदय ने कर डाली। इन तीनों कालजयी ग्रंथ के रचनाकार थे वही अतीत के मूर्ख, विश्व के सर्वश्रेष्ठ संस्कृत साहित्यकार अमर महाकवि कालिदास।[1]

❖ शकुंतला

महर्षि कण्व के आश्रम में रहते हुए, शकुंतला ने प्रकृति, धर्मशास्त्र, और नीति पर गहन अध्ययन किया। कालीदास ने उसके चरित्र को केवल कोमल हृदय वाली स्त्री के रूप में नहीं, बल्कि एक आत्मनिर्भर और धर्मपरायण विदुषी के रूप में चित्रित किया है। महाभारत में आई कथा के अनुसार शकुंतला ऐसी स्त्री के रूप में हमारे समक्ष आती है जो राजा दुष्यंत से भरी सभा में वाद-विवाद करके अपनी तर्क क्षमता और शास्त्रोचित ज्ञान का परिचय देते हुए अपने पुत्र भरत को उसका अधिकार दिलवाती है।[2]

❖ सीता

रामायण में कवि ने सीता जी के माध्यम से आत्मनिर्भरता, आत्मबल तथा आत्मविश्वास का प्रमुख रूप से चित्रण किया है। वाल्मीकि आश्रम में सीताजी पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर हो गयी थीं। आश्रम के अधिकतर कार्य स्वयं ही करती थीं। उन्हे आश्रम के वृक्षों, लताओं से बहुत स्नेह था। उनकी सेवा वे स्वयं ही करती थीं।

---

10. मेघदूत, पृ. 11
11. महाभारत, आदि पर्व, अध्याय 69

सीता जी को स्वयं किये गये कार्य से बहुत संतोष प्राप्त होता था। वह स्वयं ही अबली के धागे से वस्त्र निर्माण करती थीं। चटाई बनाती तथा बरतन भी स्वयं बनाती थीं। बालकों के खेलने के लिए खिलौने भी स्वयं ही बनाती थीं। समस्त कार्यों को स्वयं सम्पादित करके वें दोनों बच्चों को बाल्यावस्था में ही स्वयं सेवा का व्रत सिखा रहीं थी। जिस बालक को प्रारम्भ में ही स्वावलम्बन की शिक्षा दी जाती है। वही भविष्य में देश का योग्य नागरिक बन सकेगा।[1]

❖ द्रोपदी

महाभारत की पात्र द्रोपदी की चारित्रिक विशेषताओं का अध्ययन करने पर यह ज्ञात होता है कि वह अपूर्व सुंदरी नीलोत्पल सुगन्धिनी, सर्वशुभ लक्षणों से सम्पन्न, सर्वधर्म विशेषज्ञा, धर्माचारण, सत्कर्मों से युक्त, आस्थावती, सत्य और प्रिय वचन बोलने वाली, दया-दाक्षिण्य आदि गुणों से युक्त, लज्जाशील, अतिथि सत्कार में कुशल, गृहस्थ कर्त्तव्यों का पालन करने वाली, दैव को मानने वाली, गुरुजनों का सामान करने वाली, साधुव्रत में स्थित, स्त्री सुलभ चंचलता से युक्त, सबको प्रसन्न रखने वाली, सदाचार की शिक्षा देने में निपुण, प्रजाजनों के अनुकूल व्यवहार करने वाली, पतिव्रता स्त्री के कर्त्तव्यों की ज्ञाता, कर्त्तव्य पालन में तत्पर और सतत सावधान, क्षत्रिय धर्म के प्रति अनुराग रखने वाली और उसमें रत रहने वाली थी। उसमें धैर्य, कष्ट, सहिष्णुता, संतोष, त्याग, करुणा, निर्लोभ, स्पष्टवादिता, तर्कशीलता, क्षमाशीलता निर्भीकता, सरलता, आत्मविश्वास और वाक्चातुर्य जैसे गुण विद्यमान थे। वह पांडवों की मंत्रशक्ति, प्रभुशक्ति और उत्साहशक्ति थी उसका कायिक, वाचिक और मानसिक तप कभी भी धैर्य विलुप्त नहीं हुआ था। उसमें उच्च कोटी की सहनशक्ति थी। वह धैर्य का सर्वोच्च प्रतिमान थी। धृतराष्ट्र ने उसे साक्षात्

12.https://rjpn.org/ijcspub/papers/IJCSP12B1007.pdf

तेज की उपमा दी है (यज्ञसेनस्य दुहिता तेज एव तु केवलम)[1] उसने ब्राह्मणों की सेवा पूजा से महान धर्म का संचय किया था। वह पौराणिक चरित्रों के श्रवण में रुचि रखने वाली, बहुश्रुता और पण्डिता स्त्रीथी। वह एक आज्ञाकारी पुत्री, धृष्टदुमन की प्रिया भगिनी, आदर्श पुत्रवधू और जननी तथा पुत्रवत्सला, श्री कृष्ण की प्रिय सखी तथा पांडवों की प्रिय और पतिव्रता स्त्री थी।

देशकालावुपायांश्च मंगल स्वस्तिवृद्धये।
युक्ति मेधया धीरो यथाशक्ति यथाबलम्।।
न त्वेवात्मावमन्तव्यः पुरुषेण कदाचन।
न ह्यात्मपरिभूतस्य भूमिर्भवति शोभना।।
एवं संस्थितिका सिद्धिरियं लोकस्य भारत।
तत्र सिद्धिर्गतिः प्रोक्ताकालावस्थाविभागतः।[2]

द्रौपदी के कहे गये इन वचनों से यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि वह क्षत्रिय धर्म को जानने वाली, क्षत्रिय धर्म में रत रहने वाली, नीतिनिनुणा औय पण्डिता स्त्री थी।

अपने पतिव्रता धर्म के निर्वाह के लिए वह अपने पुत्रों से भी दूर रही, इहलोक और परलोक दोनों में ही उसे अपने पतियों का सान्निध्य प्राप्त हुआ। द्रोपदी ने पातिव्रत्य धर्म के निर्वहन द्वारा आर्य स्त्री जगत् में पूजनीय स्थान प्राप्त किया। उसका चरित्र इतना महान है कि भारत के तमिलनाडु राज्य में द्रोपदी का मंदिर है और वहाँ अगहन मास में बड़ा त्यौहार मनाया

---

13. महाभारत, वनपर्व, 239/9
14. महाभारत, वनपर्व, 32/53, 58-59

जाता है; वह वहां अधर्म का नाश करने वाली ग्राम-रक्षक देवी के रूप में पूजी जाती है।[1]

❖ पार्वती

महाकवि कालिदास द्वारा कुमार संभवम् महाकाव्य में पार्वती का चित्रण नारी के रूप में किया गया है। आर्य संस्कृति के प्रतिनिधि कवि कालिदास माने जाते हैं। आर्य कन्या के आदर्श को पार्वती के रूप में उल्लिखित करते हैं। पार्वती आर्य कन्या के लिये प्रतिमान बनी है और इसके लिये आर्य कन्या को अदम्य, अजेय तथा जितेन्द्रिय, बनाने का मुख्य साधन तपस्या ही है। कुमार संभवम के पंचम सर्ग में भग्न मनोरथा पार्वती शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिये जगत की सभी भौतिक सुख-सुविधाओं को छोड़कर कठोर तपस्या की साधना में जुट गयी। पार्वती की तपस्या दिन-प्रतिदिन इतनी कठोर होती जा रही थी कि तपोवन में रहने वाले मुनियों की तपस्या भी प्रभावहीन प्रतीत होने लगी थी। इस प्रकार कठोर से कठोर तपस्या करके अपने अभीष्ट शिव को पति के रूप में प्राप्त करना मुख्य उद्देश्य था।[2]

पार्वती की तपस्या का फल था। उत्कट कोटि का अलौकिक प्रेम और तादृशः पतिः तथा मृत्यु को जीतने वाला पति-जगत् के समस्त पति मृत्यु के दास है। केवल एक ही व्यक्ति मृत्यु को जीतने वाला है और वह है मृत्युजय महादेव। आज तक कोई अन्य कन्या मृत्युंजय महादेव को पति के रूप में वरण करने में समर्थ नहीं हो पायी जो कार्य पार्वती ने तपस्या के द्वारा सिद्ध करके दिखाया है। तथा विधं शब्द में गंभीर अर्थ की अभिव्यंजना हुई है भगवान शंकर ने पार्वती को उचित आदर-सम्मान दिया

---

15. भारत में महाभारत, पृ.सं. 379
16. इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।
17. अवाप्यते कथामन्यथा इयं तथा विधं प्रेम पतिश्च तादृशः।। (कुमार सम्भव, 5/2)

है। पत्नी को जितना उच्च स्थान भगवान शंकर ने दिया है उतना किसी अन्य देवता ने नहीं दिया है। कालिदास के तत्कालिक समाज में स्त्रियों को स्वतंत्रता प्राप्त थी अपना वर स्वयं वरण करती थी- अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शकुन्तला, कुमारसंभवम् में पार्वती और रघुवंश महाकाव्य में इन्दुमती का विवाह पूर्णतः उनकी इच्छा से हुआ है। कुमारसंभवम् से यह ज्ञात होता है कि पार्वती को समस्त विद्याओं का ज्ञान था। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में प्रियंवृदा, अनुसूया, शकुन्तला शिक्षित है जो कण्व ऋषि द्वारा शिक्षित हुए थे।[1]

निष्कर्ष:

संस्कृत साहित्य में विदुषियों का योगदान अनमोल है। गार्गी, मैत्रेयी से लेकर द्रोपदी, सीता, शकुन्तला जैसी विदुषियों का वेद, उपनिषद, महाकाव्य, नाटक एवं भक्ति साहित्य में अमूल्य योगदान है। यह प्रमाणित करता है कि भारतीय परंपरा में विदुषियों को उच्च स्थान दिया गया है। इस शोध पत्र में प्रमुख विदुषियों का वर्णन, उनके योगदान एवं ग्रंथों का उल्लेख किया गया है। यह शोध पत्र उन विदुषियों की मेधा और उनके अमूल्य योगदान को पुनः स्मरण करने का एक प्रयास है, जिन्होंने संस्कृत साहित्य में अमिट छाप छोड़ी और जिनके विचार कालजयी बन गए।

---

18. गृहणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिता कलाविधौ।
19. करूणविमुखेन मृत्युना हरतां त्वां वद किं न मे हृतम्।। रघुवंशम्, 8/67

उपनिषदों में नारी का चरित्रचित्रण

जानी वन्दना यज्ञप्रकाश
शोधछात्रा, सौराष्ट्र विश्वविद्यालय, राजकोट, गुजरात

❖ **शोधसार:-**

भारतीय समाज में नारी एक विशिष्ट गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित है। सृष्टि का प्रारम्भ नारी एवं पुरुष दोनों के पारस्परिक गुणों के आधार पर ही माना गया है। एक दूसरे के बिना स्वतन्त्र अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती। सम्पूर्ण वैदिक साहित्य नारी के विविध रंगों से रंगा पड़ा है। नारी सदा पुरुष की सफलता में सहायिका रही है। समाज में नारी को जो सम्मान मिला है, वह उसकी साधना, सत्यता, सहनशीलता, सौम्यता आदि सहज गुणों का ही सुफल है। हिंदू संस्कृति इस भावना से परिपूर्ण मानी गई है- जिस कुल में स्त्रियों का समादर होता है, वहाँ देवता प्रसन्न होते है और जहाँ ऐसा नहीं होता उस परिवार में समस्त क्रियाएँ व्यर्थ होती है।

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।"[1]

वेदों में नारी का स्थान बहुत महत्वपूर्ण माना गया है। पुरुष और नारी समाज-रूप और राष्ट्र-रूप रथ के दो चक्र समान है। जैसे एक चक्र से रथ नहीं चल सकता, ऐसे ही अकेले पुरुष या अकेली नारी से समाज और राष्ट्र आगे नहीं बढ़ सकता। नर और नारी कहीं भाई और बहिन के रूप में, कहीं पुत्र और माता के रूप में, कहीं पति और पत्नी के रूप में, कहीं ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी के रूप में, कहीं आचार्य और आचार्या के रूप में, कहीं प्रचारक और प्रचारिका के रूप में, कही लेखक और लेखिका के रूप में समाज में अपने-अपने कार्यों को करते हुए दृष्टिगोचर होते है। प्रत्येक क्षेत्र में एक इकाई दूसरी इकाई की पूरक होती है।

वेदों, आरण्यकों, उपनिषदों, स्मृतिग्रन्थों, रामायण, महाभारत, धर्मशास्त्र, पुराणों, संस्कृत साहित्य, लोकसाहित्य, महाकाव्यों, आधुनिक संस्कृत साहित्य इत्यादि कई जगह पर नारी का वर्णन प्राप्त होता है। उपनिषदों में नारी सर्वशक्तिमान सर्वाधार, परमात्मा की शक्ति है, जो माया, प्रकृति, इच्छा, श्री आदि विभिन्न रूपों में वर्णित हुई है। नर शक्तिमान है और नारी उसकी शक्ति है। जिस प्रकार सांख्यशास्त्र में प्रकृति और पुरुष द्वारा अन्ध-पङ्गु के दृष्टान्त से समस्त जगत् का संचालन सिद्ध किया है, उसी प्रकार नर-नारी द्वारा भी लोकसंचालन की प्रक्रिया उपनिषदों में बतलायी गई है। उपनिषदों में इस सारे संसार को परब्रह्म की यज्ञशाला माना है। नर को होता माना है और नारी को अग्नि बतलाया है। जैसे होता समस्त सामग्रियों का संचय करके अग्नि में आहुतियाँ प्रदान करते है और अग्नि उन आहुतियाँ के स्थूलांशों को भस्म करके शुद्ध दिव्याशों को होता के उद्देश्य अनुसार उस देवों की सन्निधि में पहुँचा देता है, वैसे ही नारी भी नरों के पाप-पुण्यात्मक सभी प्रकार के अच्छे-बूरे कर्मों द्वारा अर्जित किए हुए द्रव्य रसादिकों को यथोचित स्थानों में सुरक्षित रखकर यथोचित रूप से विभक्त कर देती है। अतएव नर संचायक है और नारी विभाजक है। इन्हीं दोनों के आधार पर सारा संसार स्थित है।

❖ नारी शब्द की व्युत्पत्तिः-

नारी शब्द ऋग्वेद में नही मिलता, किन्तु यज्ञ के अर्थ में 'नार्यः' शब्द का प्रयोग हुआ है।[2] यजुर्वेद में नारी शब्द बहुत कम मिलता है। अथर्ववेद में नारी का सात बार प्रयोग हुआ है। नारी शब्द नृ अथवा नर से बना है। नृ+अञ्+ङीन्=नारी। नर+ङीन्=नारी। पतञ्जलि[3] ने दोनों व्युत्पत्तियों को माना है। यास्क[4] ने नर शब्द को नृत=नाचना से बनाया है। काम करते समय मनुष्य हाथ-पैर नचाता है, हिलाता है इसलिए उसे नर कहते है। इसी विशेषण के कारण स्त्री को नारी कह सकते है, परंतु ऋग्वेद में 'नृ' का प्रयोग वीरता का काम करना, दान देना तथा नेतृत्व करने के अर्थ में हुआ है और नर शब्द का प्रयोग भी वीर, दाता तथा नेता के अर्थ

में हुआ है।[5] स्त्री का नारी नाम भी इन्हीं विशेषताओं के कारण पड़ा होगा। वे युद्ध तथा शिकार में वीरों की सहायिका होती होगी और अतिथियों एवं भिक्षुओं के सत्कार, दान आदि का भार भी इन्हीं पर रहता होगा। ब्राह्मणों में कई जगह नारिः पाठ मिलता है। सायण[6] के मत से नारी का भाव नरकों का उपकारक अथवा शत्रु न होना है।

❖ उपनिषदों में नारी का चरित्रचित्रण:-

सृष्टि के आरम्भ में शक्ति-शक्तिमान का एक युग्म था। उसने दूसरे की उत्पत्ति की कामना की। तब मन के साथ वाणी का युगल रचा गया।[7] उसके बाद गो-वृषभ[8] और द्यो-सूर्य[9] आदि के मिथुन बने। किन्तु इन मिथुनों से सद्रूप परमात्मा सन्तुष्ट नहीं हुआ तब उसने इनको अपने में समाहित करके विराट रूप से जल पर शयन किया। फिर एकाकी होने से भयभीत होकर गिर गया।[10] इसके दो भाग हो गए। शरीर पतन से कारण इन दो भागों के नाम 'पति' और 'पत्नी' हुए।[11] ब्रह्म के दो रूप 'सुख' और 'आकाश' क्रमशः इन दो भागों में आ गए।[12]

अतः नर बिना नारी के अर्द्ध युगल ही कहलाता है, जिसकी पूर्णता की पूर्ति नारी द्वारा ही हो सकती है।[13] 'क' रूप ब्रह्म का शरीर-पतन होने पर नर-नारी शरीरों का नाम काया पड़ा।[14] वह आदि नर-नारी मनु-शतरूपा के नाम से विख्यात हुए।

शतरूपां च तां नारीं तपोनिर्धूतकल्मषाम्।
स्वायम्भूवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगहे प्रभुः।।[15]

इस प्रकार उपनिषदानुसार नर और नारी दोनों एक ही तेज की ज्योतियाँ है। क्योंकि जो-जो लोक में है, वह ही वैदिक है। इस प्रकार सारी सृष्टि नर-नारी के परस्पर अवलम्ब से चलती है।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति।।"

अर्थात् इसका रहस्य भी यही है। स्त्री-पुरुष दोनों एक ही वृक्ष पर बैठने वाले दो पक्षी है और दोनों के मेल सहकारिता और सौहार्द ही विश्व की शक्ति है।[16]

मुख्य रूप से बृहदारण्यकोपनिषद् और छान्दोग्योपनिषद् में नारी का वर्णन मिलता है। आरण्यकों में मुख्यतः ऐतरेय आरण्यक में स्त्रियों का विशिष्ट स्थान प्राप्त होता है। वहाँ स्त्री पुरुष से श्रेष्ठ है। ऐसा कहा जाता है कि मनुष्य अपनी पत्नी के साथ खुद को संपूर्ण महसूस करता है। ऐतरेय आरण्यक का पाँचवा अध्याय और ऐतरेय उपनिषद का बारहवाँ अध्याय में गर्भाधान का वर्णन है। वहाँ ऋषि सभा में जब प्रवचन शुरू होता है तो कहते है कि सबसे पहले पुरुष शरीर में वीर्यरूप से गर्भ बनता है। ब्रह्मचर्य के द्वारा बढ़ाता एवं पुष्ट करता है, फिर जब यह उसको स्त्री के गर्भाशय में स्थापित करता है, तब इसे गर्भरूप में उत्पन्न करता है। वह माता के शरीर में प्रवेश करना ही इसका पहला जन्म है।[17]

तैत्तिरीय उपनिषद् में ऋषि कहते है कि माता पूर्वरूप है, पिता उत्तररूप है। प्रजा सन्धि है, प्रजनन सन्धान है। वैसे ही पत्नी पूर्वरूप है, पति उत्तररूप है। पुत्र सन्धि है और प्रजनन सन्धान है।[18] वेदों का अध्ययन करने के बाद गुरु अपने दीक्षा भाषण में अनुशासित नारी से कहते है कि- हे सन्तानरूपा नारी! सत्यं वद, धर्मं चर, स्वाध्यायान्मा प्रमदितव्यमित्यादि। यहाँ नारी के लिए ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम के विषय में बहुत सारे उपदेश मिलते है। इसलिए कहा गया है कि मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। अर्थात् माता की स्वयं ही देवी के रूप में लोकों में पूजा की जाती है।[19] इसलिए कहा गया है कि “नास्ति मातृसमो गुरुः, गायत्रीछन्दसां माता, मातृदेवो भव” इत्यादि।

कठोपनिषद् के अनुसार यम नचिकेता से कहते है कि यह रथों और विविध प्रकार के वाद्यों सहित जो स्वर्ग की सुन्दर रमणियाँ है, ऐसी रमणियाँ मनुष्यों में कही नहीं मिल सकती।[20] यहाँ पुरुष सुख भोगने के लिए नारी को भोग की वस्तु के रूप में स्वीकार करते है।

श्वेताश्वतरोपनिषद् में नारी को मायारूपिणी, प्रकृतिरूपिणी तथा बहुरूपिणी कहा गया है। यहाँ एक जगह नारी को साक्षात् ब्रह्मरूपिणी कहा गया है। वहाँ ऋषि कहते है कि आप स्त्री, पुरुष, कुमार, कुमारी, आदि अनेक रूपों वाले है, अर्थात् इन सबके रूप में आप ही प्रकट हो रहे है।[21]

यहाँ प्रकृति स्त्री रूप से भोक्ता को स्वीकार कर कहा गया है कि- अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां... ।[22] अर्थात् अपने अनुरूप बहुत सी प्रजा उत्पन्न करनेवाली एक लोहित, शुक्ल और कृष्णवर्णा अजा को एक अज सेवन करता हुआ भोगता है और दूसरा अज उस भुक्त भोगा को त्याग देता है। यहाँ अजा को प्रकृति कहा है। अजा के साथ रमण करने से अजा भोग्या और जीवात्मा प्रकृति के साथ रमण करती है परन्तु वह परमात्मा नही है।[23] शक्तिरूपा प्रकृति है और उस माया नाम से कही जानेवाली शक्तिरूपा प्रकृति का अधिपति परब्रह्म परमात्मा महेश्वर है।[24]

बृहदारण्यकोपनिषद् में स्त्रियों का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। उस समय स्त्रियाँ दो प्रकार की होती थी। सद्योवाहा और ब्रह्मवादिनी। वह जो ब्रह्मचर्य आश्रम के बाद गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करती है और आश्रम के नियमों के अनुसार मातृत्व प्राप्त करती है उसे सद्योवाहा के रूप में जाना जाता है। उनकी विवाह की आयु सोलह या सत्रह वर्ष बताई गई है। पहले वह गुरुकुल में पढती थी, लेकिन जो महिलाएँ बिना विवाह के आध्यात्मिक विचारों और ब्रह्म संबंधी विचारों को ध्यान में रखते हुए तपस्वी के रूप में अपना जीवन व्यतीत करती है, उन्हें ब्रह्मवादिनी कहा जाता है। उनका मुख्य कार्य समाज कल्याण के लिए त्याग और दूसरों की निःस्वार्थ सेवा करके जीवन जीना था। यहाँ इस उपनिषद् में देखा जाता है कि ऋषि याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी याज्ञवल्क्य के साथ शास्त्रों पर चर्चा करने में सक्षम थी। गार्गी आदि प्रमुख ब्रह्मवादिनी थी। गार्गी भारतवर्ष की स्त्रियों में रत्न समान थी। आज भी इनकी जैसी विदुषी एवं तपस्विनी कुमारियों पर देश को गर्व होता है। इसके अलावा भी उन ब्रह्मवादी महिलाओं का

सभा में योगदान था, किन्तु अन्य महिलाओं को कोई अधिकार नहीं था। इसलिए कहा गया है कि- 'तस्मात् पुंमासः सभां यान्ति, न स्त्रियः।'[25] इस उदाहरण से स्पष्ट होता है कि उस समय महिलाएँ भी शिक्षा प्राप्त करती थी। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी ब्रह्मविद्या में निष्णात थी और दूसरी पत्नी कात्यायनी गृहस्थ धर्म निभाती थी। विदूषी मैत्रेयी याज्ञवल्क्य के साथ ब्रह्म सम्बन्धित अनेक प्रश्न पूछती थी। माध्यन्दिन शाखा के बृहदारण्यकोपनिषद् में कण्व को एक पौराणिक कथा के रूप में भी वर्णित किया गया है। गार्गी तथा याज्ञवल्क्य संवाद बृहदारण्यकोपनिषद् के तीसरे अध्याय के आठवे ब्राह्मण में मिलता है।

बृहदारण्यकोपनिषद् और छान्दोग्योपनिषद् में नारी को यज्ञ की पाँचवी अग्नि के रूप में वर्णित किया गया है। उस समय उसकी पत्नी अपने पति की इच्छानुसार उसके साथ ब्रह्मचर्य का पालन करती थी और उसके साथ जीवन निर्वाह करती थी।

केनोपनिषद् के चतुर्थ खण्ड में लिखा है कि यज्ञ इन्द्र की उपस्थिति से गायब हो गया और उमा-हैमवती के रूप में आकाश में प्रकट हुआ। तब यज्ञ के बारे में इन्द्र की जिज्ञासा हुई और उसने कहा- "यह ब्रह्म है, किन्तु इस ब्रह्म के विजय से ही तुम महिमावान हो"।[26] यहाँ यज्ञ ब्रह्मस्वरूप है। इस उपनिषद में उमा का वर्णन शिक्षित नारी के रूप में मिलता है।[27] उमा-हैमवती को बहुत सुन्दर बताया गया है। उमा का अर्थ ब्रह्मविद्या या आत्मविद्या और आत्मविद्या किसी भी अन्य से अधिक सुन्दर है। इसलिए डो. राधाकृष्णन् कहते है कि- 'Wisdom is the most beautiful of all beautiful things.'[28] इस प्रकार उमा-हैमवती की कथा द्वारा प्रेरक ब्रह्म की चर्चा की गई है।

छान्दोग्योपनिषद् में सत्यकाम जाबालि का वर्णन है। एक बार ब्रह्मचारी और सत्यवादी ने अपनी माँ से पूछा कि मेरा गोत्र क्या है? तब माँ ने कहा कि मैं तुम्हारे गोत्र को नही जानती। अपनी युवावस्था में अनेक लोगों की सेवा करके मैंने तुम्हें पाया। अतः गुरु के पास जाकर तुम्हारा

नाम जाबाल सत्यकाम कहना। इससे यह स्पष्ट होता है कि उपनिषदकाल में स्त्रियाँ स्वार्थी थी। परन्तु अन्यत्र देखा गया है कि अश्वों के स्वामी कैकेयी राजा कहते है कि मेरे देश में कोई चोर नहीं, कोई कंजूस नहीं, शराब पीने वाला नहीं, अग्न्याधान से शून्य नहीं, विद्या से हीन नहीं, व्यभिचारी नहीं, यह व्यभिचारिणी यहाँ कहाँ से आ गयी?[29]

प्रश्नोपनिषद् में कबंधी प्रश्न पूछता है कि सृष्टि के आरम्भ में सन्तानोत्पत्ति कैसे हुई? यहाँ ऋषि कहते है कि चर-अचर प्राणियों के संसार में सृष्टिकर्ता ने सन्तान उत्पन्न करने की इच्छा से मन में तपस्या की। उसके बाद संतति उत्पन्न हुए। इस प्रकार रात को भी अपने विभाग फल मुहूर्त आदि का स्वामी होने से प्रजापति कहा जाता है। दिन में प्रकाश की मात्रा अधिक होने से उसे प्राण और इसके विरुद्ध होने से रात को रयि कहा गया है, सन्तानोत्पत्ति का आरम्भिक कृत्य रात्रि में ही होना चाहिए, इसकी इस वाक्य में उचित रीति से शिक्षा दी गई है। रात्रि में भोग्य शक्ति के प्रबल होने से रज में वीर्य ग्रहण करके उसे गर्भ का रूप देने की अधिक योग्यता होती है। दिन में इसकी कमी से वीर्य व्यर्थ नष्ट होने से पुरुष की शक्ति(प्राण) का क्षीण होना स्पष्ट है।[30]

दार्शनिक विश्लेषण के अनुसार सूर्य में दो प्राणों को नर और नारी के रूप में वर्णित करने से स्पष्ट होता है कि नारी भोग्या के रूप में है और नर भोक्ता के रूप में है। इस प्रकार उस युग में नारी को पत्नी और माँ के रूप में पूजा जाता था। वहाँ माँ का स्थान सर्वोपरि था। इस प्रकार उपनिषदकाल में नारी ब्रह्मवादिनी विशेष रूप से दिखाई देती थी।

❖ **उपसंहार:-**

उपनिषदों में नारी को सम्मानजनक और महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। उपनिषदकाल में नारी बहुत बुद्धिमान और शास्त्रार्थ में पारंगत होती थी। उस समय नारी में सहशिक्षा का प्रचार भी था। उस युग में दार्शनिकों की सभा में विद्वत्तापूर्ण विषयों पर भाषण दे सकने वाली गार्गी एवं ब्रह्म के उच्चतम ज्ञान का साक्षात्कार करने वाली मैत्रेयी के समान

विदुषी नारियों के उदाहरण उपलब्ध होते है। उपनिषदों में कई नारियों को आध्यात्मिक चिंतन में सक्रिय रूप से दिखाया गया है। नारी को गृहस्थ जीवन में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली बताया गया है। उपनिषदों में नारी को पुरुषों के समान सम्मान और स्वतन्त्रता प्राप्त थी। वह अपनी शिक्षा और ज्ञान के आधार पर समाज में अपनी जगह बना सकती थी और किसी भी क्षेत्र में अपनी प्रतिभा के द्वारा प्रतिष्ठित थी। कई नारियाँ वेदों में मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं के रूप में उल्लेखित है। उस काल में नारियाँ यज्ञ और कर्मकाण्ड में भी पुरुषों के साथ मिलकर भाग लेती थी। इस प्रकार उस काल में स्त्रियों को अत्यन्त गरिमामय और गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त था।

❖ संदर्भः-

(१)मनुस्मृति-३/१/५६

(२)तैत्तिरीय आरण्यक-६/१/३, शतपथ ब्राह्मण-३/५/४/४

(३)नुर्धर्म्या नारी नरस्यापि नारी। महाभाष्य-४/४/९

(४)नराः मनुष्याः नृत्यन्ति कर्मसु। निरुक्त-५/१/३

(५)ऋग्वेद-७/२०/५, ७/५५/८, १०/१८/७, १०/८६/१०-११

(६)नृणा महावीरार्थीनाम् उपकारित्वात् नारिः। न अरिः नारिः। तैत्तिरीय आरण्यक-४/२/१

(७)सोऽकामयत द्वितीयो म आत्मा जायेतेति स मनसा वाचं मिथुनँ समभवत्। बृहदारण्यकोपनिषद्- १/२/४

(८)सा गौरभवद्दषभ इतर। वही-१/४/४

(९)अथैतस्य मनसो द्योः शरीरम्। वही-१/५/१२

(१०)सोऽबिभेत्तस्मादेकाकी बिभेति स हायमीक्षाञ्चक्रे। वही-१/४/२

(११)स इममेवाऽऽत्मानं द्वेधा पातयत्। वही-१/४/३

(१२)कं ब्रह्म खं ब्रह्मेति। छान्दोग्योपनिषद्-४/१०/५

(१३)अयमाकाशः स्त्रिया पूर्वत। बृहदारण्यकोपनिषद्-१/४/३

(१४)कस्य रूपमभूद् द्वेधा यत्कायममि चक्षते।
ताभ्या रूपं विभागाभ्या मिथुन सम्पद्यत।। श्रीमद्भागवतपुराण-३/१२/५२
(१५)विष्णुपुराण-१/७/१७
(१६)श्वेताश्वेतरोपनिषद्-४/६, मुण्डकोपनिषद्-३/१/१
(१७)ऐतरेय उपनिषद्-२/१, ऐतरेय आरण्यक-२/५/१
(१८)तैत्तिरीय उपनिषद् -१/३
(१९)वही-१/११/१
(२०)कठोपनिषद्-१/२५
(२१)श्वेताश्वेतरोपनिषद्-४/३
(२२)वही-४/५
(२३)वही-१/१०
(२४)वही-४/१०
(२५)मैत्रायणी संहिता-४/७/४
(२६)केनोपनिषद्-४/१
(२७)वही-३/१२
(२८)वही पृ-२२
(२९)छान्दोग्योपनिषद्-५/११/५
(३०)प्रश्नोपनिषद-१/१३

❖ संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

(१)ईशादि नौ उपनिषद् कल्याण गीताप्रेस गोरखपुर सं-२०७४
(२)ईशादिविंशोत्तरशतोपनिषद् नारायण राम आचार्य निर्णयात्मक मुद्रणालयम् मुम्बई-२ सं-१९४८
(३)ऋग्वेद डॉ.गंगासहाय शर्मा संस्कृत साहित्य प्रकाशन, नई दिल्ली-११०००१ सं-२०१६

(४)ऐतरेय आरण्यक सायणाचार्य विरचित कलकत्ता सं-१९८३

(५)केनोपनिषद् डॉ. गौतम पटेल संस्कृत सेवा समिति अहमदाबाद ३८००१३ सं-१९८५

(६)छान्दोग्योपनिषद् पं राजाराम भाषा टीका संयुक्त बाम्बे यन्त्रालय, लाहौर सं-१९७२

(७)तैत्तिरीय आरण्यक सायणाचार्य विरचित कलकत्ता सं-१७९२

(८)तैत्तिरीय उपनिषद् कल्याण गीताप्रेस गोरखपुर सं-१९९३

(९)निरुक्त क्षेमराज श्रीकृष्णदासश्रेष्ठिना श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रण यन्त्रालय मुम्बई सं-१९६९

(१०)बृहदारण्यकोपनिषद् कल्याण गीताप्रेस गोरखपुर सं-१९९५

(११)मनुस्मृति डॉ सुरेन्द्रकुमार आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट दिल्ली-६ सन्-२०१७

(१२)विष्णुपुराण कल्याण गीताप्रेस गोरखपुर सं-२०७४

(१३)श्रीमद्भागवतपुराण पं.कन्हैयालाल उपाध्याय मुरादाबाद सन्-१९०१

(१४)श्वेताश्वतरोपनिषद् कल्याण गीताप्रेस गोरखपुर सं-१९९५

(१५)उपनिषद् अङ्क कल्याण गीताप्रेस गोरखपुर सं-१९४९

(१६)नारी अङ्क कल्याण गीताप्रेस गोरखपुर सं-१९४८

(१७)प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी डो.गजानन शर्मा रचना प्रकाशन इलाहाबाद-१

(१८)वैदिक नारी डॉ.रामनाथ वेदालङ्कार सम्पूर्ण शोध संस्थान नई दिल्ली वि. सं.-२०४२

(१९)वैदिक संहिताओं में नारी डो.मालती शर्मा सम्पूर्णानन्द विश्वविद्यालय वाराणसी-२२१००२ सं-१९९०

The Divine Feminine in Epics

Dr. Sistla Sailaja
Sr. Lecturer, Keshav Smarak Junior College
Hyderabad

Abstract:

The divine feminine has long been a source of profound spiritual inspiration, cultural identity and empowerment for women. This article elucidates upon the empowering attributes, historical and cultural aspects about the divine feminine in our epics. The divine feminine in our epics are also a part of the festivals and rituals representing the empowerment of women who have made their identity in the epics. It is said that-

कराग्रे वसते लक्ष्मी करमध्ये सरस्वती ।
करमूलेत् गौरी स्यात् प्रभाते कर दर्शनम् पावनम् शुभम् ।।

On the tips of our fingers resides Maa Lakshmi bestowing prosperity, in the centre of the palm resides Maa Saraswathi bestowing knowledge, at our wrist resides Maa Gowri bestowing power and divinity. The divine feminine is not confined to ancient traditions but they remain vibrant and inspire music, art, literature and ethics in our daily life. The divine feminine transcends cultures, religions and philosophies embodying values such as compassion, justice, wisdom and interconnections.

Shakti, the divine feminine in our epics represents the dynamic life force and sustains the universe. The Sanskrit verse from Manu Smriti states that 'Where women are honoured, there the Gods are pleased. But, where they are not honoured no sacred rite yields rewards'.

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वस्तत्राफलाःक्रियाः ।।

(MS- 3.56)

The concept of the divine feminine is deeply embedded in Sanskrit epics such as the Mahabharata, Ramayana and other Classical Sanskrit texts. The divine female figures like Draupadi, Sita, Lakshmi, Parvati, Shakuntala, Saraswati and many others play a pivotal role as creators, nurturers, warriors,

protectors and embodiment of wisdom and dharma. Their presence shapes the philosophical and spiritual frame work of human thought emphasizing the principles of cosmic order, dharma and shakti. There has been an evolution of divine feminine across the texts from Vedic period to the Tantric development.

Across the epics the divine feminine is portrayed in multifaceted roles ranging from sacrificial and nurturing figures to warrior and embodiment of cosmic wisdom, while the Mahabharata and Ramayana emphasize their earthly struggles and dharma, Puranic texts elevate them to cosmic force that sustain and guide the universe.

The divine feminine in Sanskrit literature embodies the balance of strength and grace, justice and compassion, wisdom and power, inspiring generations in their pursuit of dharma and spiritual evolution. The divine feminine representation in the epics takes us beyond simplified readings to recognize their multidimensional nature.

Keywords: Mahabharatam, Ramayanam, divine feminine, epics, Vedic period, Puranic texts. Dharma, cosmic order, philosophies, divinity, Draupadi, Sita, Shakuntala, Lakshmi, Saraswati, Gauri, tradition.

In the epic age or in later Vedic age, women enjoyed a respectable position as a mother, wife and friend. In ancient times, the position of woman in India was one of the power coupled with honour. Women have always been regarded as the guardians of dharma, custodian and transmitter of patriarchal values. The divine feminism is a central theme in Sanskritepics and classical Hindu literature, where goddesses and revered women embody creation, nurturing, protection, wisdom and justice.

Evolution of Divine forms across texts- Vedic period- In early Vedic texts, Goddesses like Ushas(dawn), Prithvi(earth), and Aditi represented natural forces. The feminine divine was present but often in supporting roles to male deities, with some notable exceptions like the goddess of speech.

Epic Period- The Mahabharata and Ramayana feature powerful female characters, who while human in form, display the divine qualities and connections. Characters like Draupadi

and Sita become central to the narrtive and embody Dharmic principles.

Puranic Period- The puranas elevate goddesses to supreme status. Text like Devi Mahatmyam establish the divine mother as the ultimate cosmic power. Goddesses are portrayed as independent forces rather than merely consorts.

Tantric development- Tantric traditions further elevate the feminine principle(Shakti) as the primary cosmic force. The goddess becomes the active principle without which the masculine divine(Shiva) remains inert potential.

Warrior aspect- The divine feminine in Sanskrit epics often display remarkable strength and martial prowess. Goddesses like Durga and Kali engage directly in cosmic battles, while Draupadi catalyse righteousness warfare through their demand for justice.

Nurturing aspect- The fierce goddesses like Kali is worshipped as divine mother. Characters like Kunti and Sita demonstrate extraordinary care and comparison while maintaining inner strength.

Wisdom aspect- The divine feminine consistently represents wisdom that transcends conventional understanding. Saraswati explicitly embody knowledge, while characters throughout the epic demonstrates stategic thinking and spiritual insight.

The Brihadaranyaka Upanishad presents the incidence of philosophical discussion between Gargi and sage Yajnavalkya about the soul, which confounded that learned man. In a spiritual teaching Upanishad declares that souls are neither male or female. Apart from Gargi, Maitreyi, Jabali, Usati Chakrayana's wife, Uma Haimavati, Satyakama, are other women who appeared in the Upanishads as the silent and subdued witness of their spiritual wisdom.

There are also a group of five iconic women of Hindu epics. They are Ahalya, Draupadi, Kunti, Tara and Mandodari. These five are iconically known as **Pancha Kanyas.**

अहल्या द्रौपदी सीता तारा मन्दोदरी तथा।

पञ्चकन्या स्मरन्नित्यं महापातकनाशिनी।।

A variant from Brahma Purana(3.7.229) by Vyasa replaces Sita with Kunti

अहल्या द्रौपदी कुन्ती तारा मन्दोदरी तथा।
पञ्चकन्या स्मरन्नित्यं महापातकनाशिनी।।

Ahalya is the wife of Sage Gautama. Ahalya is described to be created as a flawless beauty by Brahma.

Tara, wife of Vanara king Vali advises Vali not to accept because of Sugriva's alliance with Rama, but Vali does not heed her. Vali reconciles with Sugriva and instructs him to follow Tara's wise consel in all matters. Tara's lamentation forms an important part in most versions of the tale. In most of the vernacular versions, it is stated that Tara casts a curse on Rama by the power of her chastity.

Mandodari is the chief queen consort of Ravana, the rakshasa king of Lanka and the primary antagonist of the epic. The Hindu epics describe her as beautiful, pious and righteous.

The panchakanya are regarded as ideal women. They have fulfilled their dharma as mothers, sisters, wives and occasionally leaders in their own right. These Panchakanyas are prescibed in Manu Smriti, Ramayana and Mahabharata epics where all are considered as five ideal women.

Gandhari and Mandodari are similar kinds of tragic characters who are righteous and pure in nature. Gandhari and Mandodari both are famous for their self restraint and sacrifice observed during their entire life. Both of them depict strong female characters that are not a shadow of their respective husbands.

Mandodari has always tried her best to show the right path to her husband to overcome his self-esteem, to care for his subjects and to return Sita to Rama with due honor.

Similarly Gandhari has always tried her best to direct her husband to be impartial, to fulfill his duty as a king and to give fair treatment to Pandavas.

Kunti and Kausalya- In Mahabharata, Kunti is the mother of Pandavas, the valiant heroes and Kausalya, the mother of Rama, the hero of Ramayana. Their characters are marked as women with great virtues. They have magnificently shaped the characters of their sons. However, upbringing her sons single

hand, accredits heroism to Kunti's motherhood. It distinguishes a character of Kunti from that of Kausalya. Kunti and Kausalya have encouraged their sons to follow the pathe of dharma even though it is tough. Both these women stand out for their patience and for bearance while facing twists and turns in the life of their sons. They are an epitome of an affectionate yet assertive motherhood.

Gandhari and Mandodari- Gandhari and Mandodari are similar kinds of tragic characters who are righteous and pure in nature. They both are famous for their self restraint and sacrifice, observed during their entire life. Both of them depict strong female characters that are not a shadow of their respective husbands. Mandodari has always tried her best to show the right path to her husband to overcome his self-esteem, to care for his subjects and to return Seeta to Ram with due honour. Similarly Gandhari has always tried her best to direct her husband to be impartial, to fulfill his duty as a king and to give fair treatment to Pandavas.

The multifaceted divine feminine:

Divine feminine figures in Sanskrit epics are portrayed as cosmic creators, bringing forth life ans sustaining the universe through their divine energy. This creative aspect represents the generative power inherent in feminine divinity.

As nurturers, these divine feminines embody compassion, care and sustenance. They represent the protective maternal energy that fosters growth and provides unconditional support. The warrior aspect of the divine feminism represents strength, courage and fierce protection of righteousness. They fight against evil and uphold dharma through their martial prowess and strategic wisdom.

Divine feminine often embody supreme wisdom and spiritual knowledge. They guide humanity toward enlightenment and represent the highest forms of intellectual and spiritual understanding.

Draupadi- The voice of justice and honour and Fire born Princess

Draupadi's words represent her unwavering stand against injustice. She embodies shakti, the cosmic feminine power that demands righteousness(dharma).

Draupadi emerged from the sacrificial fire symbolizing her divine origin and connection to transformation of the energy. This supernatural birth established her as a figure of cosmic significance within the Mahabharata. Her unwavering resolve against adharma or unrighteousness plays a significant role in shaping the Kurukshetra war. She becomes a catalyst for righteous action throughout the epic which portrays her as an embodiment of justice.

Her connection with Agni reinforces her role as a transformation force, seeking justice against oppression. This divine association empowers her throughout her trials and tribulations, which gives about the divine connection of Draupadi.

नाहं जीवामि पाञ्चाल्याः सभायां धार्तराष्ट्रजैः ।

(Mahabharata, Sabha Parva)

This line represents Draupadi's voice of resistance.

Draupadi faces extreme humiliation in the Kaurava court when Dushasana attempts to disrobe her after she is lost in the game of dice. This moment becomes pivotal in the epic. The divine intervention is portrayed when Lord Krishna intervenes to protect her honour by providing endless fabric for her sari, demonstrating divine protection of being righteous and devoted.

The vow of vengeance is taken following this incident, Draupadi vows not to tie her hair until it is washed with the blood of those who dishonored her, setting in motion the events leading to the great war.

Kunti- The wisdom of endurance-

Kunti's wisdom emphasizes the alignment of righteousness with divine will, showcasing her as an enlightened and wise matriarch.

यतः कृष्णस्ततोधर्मो यतः धर्मस्ततो जयः । (Mahabharata, Udyoga Parva)

Kunti received a powerful mantra from Sage Durvasa that allowed her to invoke Gods and bear children. The supernatural ability shaped her destiny and that of Pandavas. Kunti raised her sons with wisdom and strategic foresight, instilling in them values of righteousness and duty that would guide their actions throughout the epic.

She had great strategic wisdom, where her decision and counsel throughout the Mahabharata demonstrate remarkable political acumen and foresight making her one of the most influential figures in shaping the epics events. The spiritual insight of Kunti can be understood with the profound understanding of dharma and divine will is reflected in her recognition of Krishna's divine nature. She consistently guides her sons toward righteous action aligned with cosmic order.

Throughout the epic, Kunti makes difficult choices for the greater good, including sharing her sons with Madri and later revealing the truth about the birth of Karna. These sacrifices demonstrate the commitment to dharma. The advise of Kuti during critical moments of Mahabahrata reveals her understanding of power dynamics and strategic thinking, making her an influential force in the epics political landscape.

Gandhari- The blindfolded queen, The silent strength of devotion

Gandhari, despite her suffering, upholds dharma reflecting the silent, yet profound strength of feminine endurance.

न तु धर्मोऽस्त्यवर्तते। (Mahabharata, Stri Parva)

Gandhari, upon learning that her husband Dhritarashtra was blind, she chose to blindfold herself for life demonstrating extraordinary devotion and self sacrifice. This act symbolizes her commitment to sharing her husbands experience. Gandhari despite the flawed characters of her children, she remained devoted to her maternal duties throughout their lives. Throughout the epic, Gandhari endures tremendous loss and suffering with remarkable dignity. Her character represents the strength found in acceptance and the power of maternal love even in tragedy.

Gandhari's self imposed blindness represents her special spiritual powers through her accumulated spiritual energy. After losing all her sons in the Kurukshetra war, Gandhari's grief transforms into righteous anger, demonstrating the power of maternal emotions. On her grief, Gandhari curses Krishna that his clan will destroy . A phrophecy that eventually comes true, showing the spiritual power she attained.

Ganga - The flowing Divinity.

गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि।।

(Mahabharata, Anushasana Parva)

Ganga is a manifestation of divine purification and salvation, emphasizing her role as a nurturer and cleanser of sins.

Sita- The embodiment of purity and dharma

अहं हि सीता नाम नारी धर्मे स्थिताऽस्मि।।

(Ramayanam, Yuddha Kanda)

Sita's statement reflects her commitment to dharma despite suffering, making her a symbol of resilience and righteousness. Sita represents the highest ideals of womanhood in Hindu tradition. Her character embodies purity, patience and unwavering devotion to both husband and to dharma. Throughout the Ramayana she faces extraordinary challenges with dignity and inner strength. Her divine nature is revealed through supernatural events like her birth from the earth and her test by fire, where she emerges unscratched, proving her purity and divine protection. This moment reveals her spiritual strength and connection to cosmic order. Sita maintains dignity and raises her sons with values and righteousness. Her respose to the adversity demonstrates the inner strength that comes from living in alignment with dharma. In the final act of the Ramayana, when asked to prove her purity again, Sita calls upon Mother Earth to receive her if she has remained true to dharma. The Earth opens and takes her back which emphasizes her divine nature and integrity.

Sita, an exemplary of the ideal woman is an inspiration to all. Sita was undoubtedly an epitome of grace, beauty and chastity. In Indian households, the act of Sita is told and retold to remind wives, daughters and mothers as to how they should act in order to win over a plagued society which otherwise treats a woman like a dirt stuck in the shoe.

Urmila, wife of Lakshmana shows a great example of supreme sacrifice and love.

Shakuntala- The forgotten queen, Symbol of Love and Destiny

स्नेहात् कुलेन सन्तुष्टया पतिव्रत्येन शोभते

(Mahabharata, Adi Parva)

Shakuntala symbolizes love and destiny, showing the feminine role in sustaining traditions and family bonds. Shakuntala begins as a beautiful maiden married in Sage Kanvas hermitage, representing the harmony between feminine beauty and natural wilderness. Her upbringing in the forest connects her to primal natural forces.

The meeting of Shakuntala with Dushyanta and subsequently marrying King Dushyanta represents the union of natural innocence with royal power. This love story became one of the most celebrated romances in Sanskrit Literature.

When Dushyanta forgets her due to a curse, Shakuntala endures rejection and suffering with dignity. This period of trial reveals her inner strength and commitment to truth.

Shakuntala holds a significant place in the mythological history of the subcontinent. Her son's dynasty eventually lead to the central characters of the Mahabharata. Shakuntala represents the feminine potential to endure suffering while maintaining inner truth. Her journey from forest maiden to forgotten wife to recognized queen symbolizes the trials and ultimate triumph of the feminine spirit.

Parvathi- The warrior Goddess, Goddess of Power and Devotion

या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण संस्थिता।।

(Devi Mahatmya)

Parvathi represents shakti, the cosmic force that sustains and transforms the Universe. Parvathi represents the perfect balance of gentle nurturing energy and fierce protection power. As Shiva's consort, she complements his ascetic nature with her worldly engagement, creating cosmic harmony through their divine partnership.

Parvathi's story of winning Shiva through intense tapas demonstrates the power of devotion and determination. This narrative establishes her as both the ideal devotee and a powerful goddess in her own right capable of achieving the seemingly impossible through spiritual discipline. Parvathi embodies the

concept of shakti- the primordial cosmic energy that manifests in countless forms throughout the universe. As the supreme feminine principle, she represents both the gentle nurturing aspects of femininity and the fierce protective power that maintains cosmic order.

Durga- The warrior goddess

या देवी सर्वभूतेषु बुद्धि रूपेण संस्थिता।।

(Devi Mahatmyam)

Durga is the divine feminine force that annihilates evil and upholds cosmic order. Durga is typically depicted with ten arms, each holding a different divine weapon gifted by the gods, symbolizing her comprehensive power and protection. Her three eyes represent the sun, moon and fire symbolizing her all seeing nature and ability to observe past, present and future simultaneously. The seven chakras or energy centers that Durga activates and purifies in her devotees represents complete spiritual awakening.

The divine creation states that Durga was created from the combined energies of all the gods when they could not defeat the demon Mahishasura. This origin represents the unified divine power concentrated in the feminine form.

Lakshmi- The bestower of Prosperity

नमस्तेऽस्तु महामाये श्रीपीठे सुरपूजिते।

(Lakshmi Stotra)

Lakshmi embodies divine abundance, wealth and spiritual prosperity integral to Hindu philosophy. Beyond material prosperity, Lakshmi represents spiritual abundance and wealth of virtues. Her worship is not merely for material gain but for cultivating inner qualities like generosity, compassion and spiritual wisdom.

Saraswathi- Goddess of knowledge

Goddess of knowledge, Saraswathi, embodies all forms of knowledge, learning and wisdom. Saraswathi governs eloquence and the power of communication. Saraswathi

represents the divine origin of knowledge and its ability to transmit truth and wisdom across time and space.

The four hands of Saraswathi hold symbolic items, a book that represents knowledge, a mala that represents concentration, a water pot that represents purification and the Veena that represents creative expression. Together the divine, spiritual and intellectual development.

In Amarakosa, the following synonyms of Saraswathi have been given

ब्राह्मी तु भारती भाषा गीर्वाग्वाणी सरस्वती।
सरस्वती सर्वत्र सरणवती वाग्देवता।।
(IX.67.32, Rig Veda Samhita, Sāyana Bhashya)

Radha- Embodiment of divine love

Radha represents the highest for of devotion in Hindu tradition. Her love for Krishna transcends conventional relationships, symbolizing the soul's yearning for union with the divine. This pure devotion becomes a spiritual path in itself. Radha's significance extends beyond mythology into profound spiritual philosophy.

Kali- Goddess of time and transformation

Kali's fearsome appearance, protruding tongue and garland of skulls represent her role as a destroyer of evil forces and ego. Her terrifying aspect serves to shatter illusions and attachments that prevent spiritual growth. As the embodiment of time, Kali represents the ultimate reality beyond temporal existence.

Kali's iconography is rich with spiritual symbolism. The skull garland represents liberation from ego and attachment to the physical form. Her several heads symbolize the cutting of negative thoughts and harmful tendencies. The sword represents divine knowledge that cuts through ignorance. Despite her fierce appearance, Kali is worshiped as the divine mother who protects her children with fierce love. Her seemingly destructive actions are ultimately compassionate, removing obstacles to spiritual liberation.

The Goddess Prithvi

Earth is another goddess in the Rig Veda who shares the status of a Universal Mother in the Vedas and perhaps this is the most important attribute. Prithvi is the goddess of one of the suktas in Rig Veda.

बडत्था पर्वतानां खिद्र बिभर्षि पृथिवी
प्र या भूर्मि प्रवत्वति महान् जिनोषि महिनि ।
स्तोमासस्त्वा विचारिणी प्रतिष्टोभन्त्यक्तुभि
प्र या वाजं न हेषन्तं पेरुमस्यस्यर्जुनि ।।
द्दडहा चिद या वनस्पतीन क्ष्मया दध्रिर्योजसा ।
यत् ते अभ्रस्य विद्युतो दिवो वर्षन्ति वृष्टयः ।।

(Rig Veda Samhita & Sāyan Bhasya- 5.84.1-3)

The multifaceted roles of divine women in Sanskrit epics ranging from nurturers and warriors to protectors of dharma and cosmic order. Their presence reinforces shakti, the eternal power that sustains life and maintains balance in the universe. The divine feminine in Sanskrit literature embodies the balance of strength and grace, justice and compassion, wisdom and power inspiring generations in their pursuit of dharma and spiritual evolution. The divine feminine in Sanskrit epics embodies a complex balance between justice and compassion. Throughout Sanskrit epics, divine feminine characters demonstrate remarkable strategic thinking. Beyond worldly wisdom, the divine feminine embodies transcendent spiritual knowledge. Underlying all manifestations is the concept of Shakti- divine feminine energy that activates and empowers all creation. This principle establishes the feminine as the dynamic, creative force in the cosmos.

The divine feminine in Sanskrit epics established foundational archetypes that continue to influence Hindu spirituality, art, literature and social values. These narratives created a spiritual framework that recognizes feminine divinity as essential to cosmic order.

Over centuries, these archetypes evolved into rich devotional traditions. Goddesses worship became central to many Hindu practices, with festivals like navarathri and Durga pooja celebrating the divine feminine as the supreme power.

Philosophical schools, particularly Shakta traditions, developed sophisticated theological frameworks around the divine feminism. These systems elevated the goddess from mythological figure to meta physical principle representing ultimate reality.

Today, these ancient archetypes continue to inspire spiritual seekers worldwide. The multifaceted divine feminism offers models of empowerment, wisdom and spiritual transformation that transcend cultural boundaries.

The divine feminism in Sanskrit epics represents a profound spiritual legacy that continues to evolve. By embodying the balance and grace, justice and compassion, wisdom and power, the divine feminism offers timeless templates for spiritual development and social harmony.

REFERENCES:

1. Valmiki Ramayanam, Gita Press, Gorakhpur
2. Mahabharatam, Gita Press, Gorakhpur
3. Position of Women in the Vedic Ritual, Jatindra Bimal Chaudhari, Calcutta
4. Women in Vedic Age, Shakuntala Rao Shastri, Bharatiya Vidya Bhavan
5. Women in Rig Veda, Bhagavat Saran Upadhyaya, Nanda Kishore & Brothers, Benaras.
6. Female dieties in Vedic & Epic Literature by Dr. Vidyadhar Sharma Guleri, NAG Publishers, Delhi.
7. Tantric Visions of the Divine Feminine(The Ten Mahavidyas) by David Kinsley, Motilal Banarsidas Publishers Pvt Ltd, Delhi
8. The Great Indian Epics, The stories of the Ramayana & Mahabharata, by John Campbell Omen, London , George Bell & Sons, 1899.

जैन दर्शन में पौराणिक महाविभूति द्रौपदी

SONAL MAHENDRA BORA
RESEARCH SCHOLAR (SANSKRIT AND PRAKRIT DEPARTMENT)
VISHWAKARMA UNIVERSITY, PUNE
VARDHMAN EDUCATION AND RESEARCH INSTITUTE, PUNE

प्रस्तावना:

भारतीय ज्ञान परंपरा के संवर्धन में जितना महत्त्व ज्ञान को दिया है। उतना ही महत्त्व दर्शन और चरित्र को भी दिया हैं। रामायण, महाभारत आदि ऐतिहासिक ग्रंथों और पुराणों के पन्ने पलट कर अगर देखा जाए तो भारतीय नारी का चरित्र सुनहरे अक्षरों में लिखा गया है। चारित्रवान, शीलवती, पतिव्रता जैसे सद्गुणों की वह खान हैं।

संस्कृत भाषा में आचार्य उमास्वामी जी विरचित तत्त्वार्थ सूत्र के प्रथम सूत्र में ही मोक्ष मार्ग का मुक्ति का साधन बताते हैं-

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि मोक्षमार्ग: ।।[1]

भारतीय परंपरा की गगन चुंबी इमारतें भारतीय दर्शनों के नींव पर टिकी हैं। भारतीय नारी के चरित्र का पक्ष इतना उज्ज्वल है कि वर्तमान में भी **मनु का यत्र नार्यस्तु**[2].... यत्र-तत्र श्रवण होता हैं। भारतीय साहित्यकारों के साथ-साथ विदेशी साहित्यकार भी भारतीय नारी को पवित्रता का खिताब देते हैं। **शेक्सपियर** (यूरोप) अपने नाटक 'जूलियस सीजर' में वे बादशाह सीजर के मुंह से अपनी पत्नी के लिए कहलवाते हैं- मेरी पत्नी भारतीय नारी की तरह पवित्र है।[3]

Billy Graham कहते है-

When wealth is lost nothing is lost
When health is lost something is lost
When character is lost everything is lost.[4]

प्राचीन काल में सीता, द्रौपदी आदि विदुषियां सभी दर्शनों में प्रचलित एवं प्रसिद्ध थी। प्रस्तुत शोध पत्र में महाभारत कालीन प्रसिद्धि प्राप्त द्रौपदी को जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में विवेचित किया है।

विवेचन:

ब्राह्मी चंदनबालिका भगवती राजीमती द्रौपदी।
कौशल्या च मृगावती च सुलसा, सीता सुभद्रा शिवा॥
कुंती शीलवती नलस्यदहिता चूला प्रभावत्यपि।
पद्मावत्यपि सुन्दरी दिन मुखे, कुर्वन्तुनो मंगलं॥[5]

इस प्रचलित संस्कृत छंद को जैन और वैदिक दोनों दर्शनों में श्रद्धा का स्थान प्राप्त है। इस छंद से जैन दर्शनानुसार सोलह तो वैदिक दर्शनानुसार पांच महाविभूतियों के नाम प्राप्त होते हैं। ऐसी महाविभूतियां हुई जो सम्यक् चरित्र के बलबूते पर इतिहास का गौरवशाली अमिट शिलालेख बन गई। कुछ बालब्रह्मचारी थी तो कुछ मृत्युभय तथा विपत्ति के क्षणों में भी अपने पतिव्रता धर्म से बिल्कुल नहीं डगमगायी। निष्ठा के माध्यम से सद्गुणों को दिखाने वाली यह महाविभूतियां अगर वैदिक दर्शन में देखा जाए तो उनकी निष्ठा अपने पति के इर्द-गिर्द घूमती है। जैन दर्शन में यही निष्ठा धर्म पर केंद्रित होती है। अतः प्रवचनसार की गाथा में **'चारित्त खलु धम्मो'**[6] अर्थात चारित्र ही सच्चा धर्म है।

जैन दर्शन में तीर्थंकर परंपरा के अंतर्गत २२वें तीर्थंकर अरिष्टनेमि के शासनकाल में महाविभूति द्रौपदी का वर्णन प्राप्त होता है। महाविभूति द्रौपदी जैन दर्शनानुसार पांचवें देवलोक में गई। आगामी भव में महाविदेह क्षेत्र से वे सिद्ध बुद्ध मुक्त हो जाएगी।

द्रौपदी जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य में:

जैन दर्शन में महाभारत कालीन प्रसिद्धि प्राप्त द्रौपदी का नाम साहसी, करुणाशील, न्याय तथा धर्म की प्रतीक एवं पांच पति होते हुए भी महान सती, सन्नारी के रुप में आदर के साथ लिया जाता है।

पूर्वभव में द्रौपदी का जीव चंपानगरी में सोम ब्राह्मण की पत्नी **'नागश्री'**[7] के रूप में धर्मरूचि अणगार को कड़वा तुंबा बहराकर (दान) उनके मृत्यु की भागीदार बनकर वन में अत्यंत वेदना के बाद काल कर नरक, तिर्यंच आदि कई भवों में भ्रमण करने के बाद **'सुकुमालिका'**[8] बनी। किंतु पूर्वभव के अशुभ नाम कर्म के उदय के कारण सुकुमलिका के शरीर का स्पर्श दाह जैसा होने से पति के त्यागने पर उसने संयम ग्रहण किया। दीक्षा लेने के बाद एक दिन आतापना लेते समय देवदत्ता वेश्या के साथ पांच पुरुषों के साथ भोग विलास वाला दृश्य देखकर उसी तरह की भोग की कामना कर निदान कर लिया जिसका प्रायश्चित भी नहीं किया। तब आगामी भव में उसे पांच पति प्राप्त हुए। सुकुमालिका साध्वी काल कर देव बनी। वहां से आयुष्य पूरा कर कंपिल्यपुर नरेश द्रुपद राजा की पुत्री **'द्रौपदी'**[9] बनी। सुंदर, सुशील, धर्मानुरागी द्रौपदी विवाह योग्य हुई। तब राजा द्रुपद ने द्रौपदी के विवाह के लिए स्वयंवर का आयोजन किया। जिसमें अर्जुन ने राधा नामक पुतली का भेदन किया। द्रौपदी ने वरमाला अर्जुन के गले में पहना दी। ......तभी एक आश्चर्य घटित हुआ। द्रौपदी द्वारा अर्जुन के गले में पहनाई गई वरमाला पांचों पांडवों के गले में समान रूप में झूलने लगी।[10] भावितव्यता के अनुसार द्रौपदी पांच पांडवों की पत्नी बनी।

"पुव्वकयणियाणेण चोइज्जमाणि"[11] अर्थात् पूर्वकृत निदान से प्रेरित। विवाह के पूर्व द्रौपदी में श्राविका होने की योग्यता भी नहीं थी। क्योंकि निदान करने वाले जीव का जब तक निदान पूर्ण नहीं हो जाता तब तक वह सम्यक्त्व से भी वंचित रहता है। अतः निदान पूर्ण होने पर वह जीनोपासिका होने के योग्य बनती है।

जैन साध्वी दीक्षा के बाद अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य तथा अपरिग्रह जैसे पांच महाव्रतों का पालन करते हुए भौतिक सुखों से परे, आध्यात्मिक सफर पर मानसिक और मौक्षिक उत्थान पे अपना लक्ष्य केंद्रित करती है।

हस्तिनापुर की रानी बनने के बाद द्रौपदी को जीवन में कठोर संघर्षों से गुजरना पड़ा। भरी सभा में दुश्शासन द्वारा चीरहरण, बारह वर्ष वनवास, एक वर्ष अज्ञातवास, अपरकंका के राजा पद्मनाभ के भवन में अपहरण करके ले जाना, अज्ञातवास (सैरंध्री) में कीचक द्वारा कामोत्तेजक होना आदि।

दुर्योधन ने षड्यंत्र से अधमता की सभी सीमाओं का त्यागकर द्रौपदी के सामने विकल्प रखा। द्रौपदी ने वासनामय प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए पांडवों के साथ वनवास को स्वीकार किया। वन में कई बार अपने पतिधर्म, सतीधर्म का प्रभाव बताती द्रौपदी संकटों से लड़ती, बचती, परिवार को बचाती रही। इस परिवार ने संकटों में भी धर्म की शरण नहीं छोड़ी।

जब द्वारिका दाह, यदुवंश का नाश और जराकुमार द्वारा श्रीकृष्ण का निधन सुना तो पांचो पांडवों के साथ द्रौपदी ने भी आर्या सुव्रता के पास प्रवज्या ग्रहण की। उत्कृष्ट आराधना कर द्रौपदी पांचवे देवलोक में उत्पन्न हुई। आगामी भव में महाविदेह से सिद्ध बुद्ध मुक्त बनेगी।[12]

द्रौपदी महाभारत के परिप्रेक्ष्य में:

वेदव्यास रचित महाभारत जिसे पांचवा वेद भी कहते हैं। उसमें सीताजी की भांति अयोनिजा (अग्निकुंड से प्रकट हुई) द्रौपदी स्नेहमूर्ति मृदुलता एवं वात्सल्य से परिपूर्ण एक महान पतिव्रता नारी है।

"भर्तु भक्तिरथारूढा: शीलसंनाहररक्षिता:।
धर्म सारथय: साध्वयो जयन्ति मतिहेतय:।"[13]

(कथासरितसागर,6/3)

अर्थात् पति भक्ति रुपी रथ पर आरूढ़ शील रुपी कवच से सुरक्षित धर्म रुपी सारथी से युक्त तथा बुद्धि रुपी शस्त्रधारी साध्वी सती शीलवती नारी की सदा जय हो।

द्रौपदी का नाम सुख-सौभाग्य में वृद्धि तथा पापों को नष्ट करने वाली 'पंचकन्याओं' में भी लिया जाता है।

अहल्या द्रौपदी तारा कुंती मंदोदरी तथा।
पंचकन्याः स्मरेतन्नित्यं महापातकनाशम्॥[14]

(ब्रह्म पुराण 3.7.219)

अर्थात् अहिल्या (ऋषि गौतम की पत्नी), द्रौपदी (पांडवों की पत्नी), तारा (वानर राज बाली की पत्नी), कुंती (पांडु की पत्नी) तथा मंदोदरी (रावण की पत्नी)। इन पांच कन्याओं का प्रतिदिन स्मरण करने से सारे पाप धुल जाते हैं। ये पांच स्त्रियां विवाहिता होने पर भी कन्याओं के समान ही पवित्र मानी गई है।

द्रौपदी पूर्व जन्म में मुद्गल ऋषि की पत्नी मुद्गलनी/ इंद्रसेना थी। पति की अल्पायु में मृत्यु के उपरांत पति पाने की कामना से तपस्या की। भगवान शंकर से पांच बार कहां कि वह सर्वगुण संपन्न पति चाहती है, जो सर्वोच्च धर्मवान, सबसे सुंदर, सर्व बलशाली, सर्वश्रेष्ठ धनुर्धर, सर्वश्रेष्ठ तलवार विद्या में निपुण हो। पति पाने की कामना पांच बार दोहराई थी। अतः वे पांच पांडवों की पत्नी बनी।[15]

एक मान्यता है कि पिछले जन्म में बहुत सुंदर वह सर्वगुण संपन्न होने के बावजूद भी उन्हें उनके अनुरूप पति नहीं मिल रहा था। तब वे शिवजी की आराधना कर पांच बार 'पति देही' दोहरातीं है। फल स्वरूप शिवजी ने कहां की, 'श्री हरि के अंशभूत पांच इंद्र तुम्हारे पति होंगे।'[16]

एक और मान्यता द्रौपदी का विवाह अर्जुन से होता है, परंतु माता कुंती के अज्ञानता वश दिये आदेशानुसार उन्हें पांचों पांडवों की पत्नी बनना पड़ता है।[17]

महाभारत में द्रौपदी का अंतिम जीवन प्रसंग अन्य रूप में चित्रित है। वह पांचो पांडवों के साथ तीर्थ यात्रा करती हिमाचल की तलहटी पर पहुंची, उनके साथ एक कुत्ता भी था, पर्वतारोहण करते हुए द्रौपदी, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव ने क्रमशः देहत्याग किया।[18]

द्रौपदी की चारित्रिक विशेषताएं:

विद्वान सुखमय भट्टाचार्य का कथन है कि द्रौपदी के चरित्र जैसा मृदु-कठोर नारी चरित्र महाभारत में एक भी नहीं है।[19] कर्ण जब लक्ष्यवेध के लिए आगे बढ़ता है तब निर्भीक एवं साहसी द्रौपदी ऊंचे स्वर में कहती हैं- मैं सूतजाति के पुरुष का वरण नहीं करूंगी।[20]

द्यूतसभा में द्रौपदी के चीर हरण प्रसंग में असाधारण धैर्य एवं सहनशीलता का परिचय देती है। द्यूतसभा में सभी द्रौपदी के सामने निरुत्तर हो जाते हैं।[21] इसी सभा में बिकट परिस्थिति में भी शिष्टाचार के साथ उपस्थित सभी कुरुवंशियों का अभिवादन करती है। अपनी प्रखर बुद्धिमता के बल पर पांचों पांडवों को दुर्योधन के दासत्व से मुक्त कराके, इंद्रप्रस्थ का राज्य युधिष्ठिर को वापस दिलाती है।[22] अनुकूल सलाहकार द्रौपदी युधिष्ठिर को पुरुषार्थ का महत्त्व कहकर कहती है कि, समय आने पर क्षत्रिय को अपना प्रभाव दिखाना चाहिए। इस प्रकार द्रौपदी वनवास काल में युधिष्ठिर को आलस्य त्याग कर कर्मपारायण होने की प्रेरणा देती है।[23]

आदर्श पतिव्रता द्रौपदी सिंधु नरेश जयद्रथ, कीचक, अपरकंका का राजा पद्मनाभ जैसे सभी वासनामय विकल्पों को ठुकरा देती हैं। द्यूतसभा में धृतराष्ट्र द्रौपदी को तीसरा वर देने की इच्छा प्रकट करते हैं, तो द्रौपदी उसे लेना अस्वीकार करते हुए कहती है कि लोभ धर्म के नाश के लिए होता है तथा क्षत्रिय स्त्री को केवल दो वर मांगने का अधिकार होता है।[24]

सत्यभामा के माध्यम से वह आलस्य और प्रमाद के त्याग को नारी धर्म का कर्तव्य बताती है।

आदर्श पुत्रवधू द्रौपदी महाभारत युद्ध के उपरांत राजप्रासाद में अपनी श्वश्रू कुंती की भांति गांधारी की भी सेवा सुश्रुषा है करती है।

द्रौपदी की धर्मनिष्ठता को देखकर उसको अपशब्द कहने वाला कर्ण भी उसकी प्रशंसा किए बिना नहीं रह सका।

द्रौपदी जी का चरित्र इतना महान है कि भारत के तमिलनाडु राज्य में द्रौपदी का मंदिर है। अधर्म का नाश करने वाली ग्राम रक्षक देवी के रुप में वे पूजी जाती हैं।[25]

तमिलनाडु के साथ-साथ आंध्र प्रदेश, कर्नाटक में भी द्रौपदी को समर्पित मंदिर है। यहां तक की श्रीलंका, सिंगापुर, मलेशिया, मॉरीशस, रियूनियन, दक्षिण अफ्रीका आदि देशों में भी द्रौपदी को समर्पित मंदिर हैं।[26]

वेद व्यास रचित महाभारत का जैन साहित्यों के परिप्रेक्ष्य में तुलनात्मक अध्ययन:

- महाभारत के अनुसार द्रौपदी पांच पतियों की पत्नी होने का कारण पूर्वभव में की गयी शिवजी की आराधना अथवा कुंती की अज्ञानता थी। जैन साहित्यों में इसका कारण पूर्वभव में क्रमशः नागश्री तथा सुकुमालिका के भव में भोग का निदान किया जिसका प्रायश्चित भी नहीं किया।
- महाभारत के अनुसार द्रौपदी पांचाल नरेश द्रुपद तथा रानी पृषति की पुत्री है। जैन साहित्यों में कंपिल्यपुर नरेश द्रुपद तथा रानी चुलनीदेवी की पुत्री है।
- महाभारत के अनुसार आयोजित 'द्रौपदी स्वयंवर' में मछली के आंख का वेध साधना है जबकि जैन साहित्यों में राधा नमक पुतली का वेध साधना है।
- महाभारत में अंतिम प्रसंग में तीर्थयात्रा करती हिमाचल की तलहटी करते हुए देहत्याग, जबकि जैन साहित्यों में संयम ग्रहण कर देवलोक जाने तथा आगामी भव में मुक्ति का उल्लेख है।
- महाभारत के संग्राम में विजय वरमाला पहनने के पश्चात एक मान्यतानुसार दृष्ट अश्वत्थामा ने द्रौपदी के पांच-पांच पुत्रों की सोते हुए नींद में हत्या कर दी। जैनागमों के अनुसार पांच पांडवों का पुत्र तथा द्रौपदी का एक ही आत्मज था। जिसका नाम **'पांडुसेन'**[27] था।

- कुछ बातें देखी जा सकती हैं- जैसे जीव पूर्व में जो कर्म करता हैं उसको भोगे बिना उसे मुक्ति नहीं मिल सकती। मछली के आंख का वेध की जगह राधावेध[28] का कारण जैन दर्शन का प्रमुख सूत्र अहिंसा हो सकता है। दोनों साहित्यों में सांसारिक त्याग की बात समान रुप में प्राप्य होती है। एक ओर तीर्थयात्रा, देहत्याग तो दूसरी ओर संयम ग्रहण, देवलोक तथा मुक्ति का वर्णन प्राप्त होता है। द्रौपदी की चारित्रिक विशेषताएं, उनकी राजनैतिक, धार्मिक, सामाजिक, पारिवारिक योगदानों में समानता पायी जाती हैं। कुछ भिन्नताएं जरूर है पर क्या फर्क पड़ता है? कुल मिलाकर दोनों दर्शनों में वर्णित द्रौपदी को भारतीय संस्कृति की धरोहर के रुप में स्वीकार किया जा सकता है।

पौराणिकता की आधुनिकता को देन:

द्रौपदी सत्यभामा के माध्यम से वर्तमान नारी जगत् को प्रमाद और आलस्य रहित होने का संदेश देती है। महाभारत के वनपर्व में द्रौपदी उत्तम वैवाहिक जीवन के सूत्र बताते हुए पतिभक्ति, सेवा तथा काम क्रोध और अहंकार को त्यागने की बात करती है। जो कि परिवार विघटन और आज की विवाह विच्छेद जैसे समस्यओं का निराकरण बन सकते हैं। अनेक विषम परिस्थितियों में स्वधर्म का पालन कर्तव्यनिष्ठता के साथ करते हुए दोनों कुलों का उद्धार करती है। धैर्य, सहिष्णुता के साथ मोह, आसक्ति सकती जैसे दुर्गुणों का त्याग करती है, जिसकी आज वर्तमान में भी आवश्यकता है।

आधुनिक युग में भारतीय महिलाओं का प्रतिनिधित्व करने वाली द्रौपदी के सद्गुणों का वर्तमान नारी अगर अनुकरण करेगी तो वह स्व-कल्याण के साथ-साथ परिवार, समाज, राष्ट्र के लिए लाभकारी साबित होगी। साथ ही पाश्चात्य संस्कृति का चोला उतारकर भारतीय संस्कृति के चोले में लिपटकर अपनी लाज को बचा सकेगी। धर्मनिष्ठा, जीनोपासिका द्रौपदी की भी भरी सभा में लाज बचाने कोई नहीं आया था। उन्होंने धर्म

की शरण ली थी। ढेरों वस्त्र निकाले जाने पर भी पुण्य के प्रभाव से द्रौपदी से चीर लिपटा ही रहा। यही होती है **महाविभूतियों/ महाविदुषीयों की विशेषता!**[29]

उपसंहार:

भारतीय संस्कृति की जड़न-घड़न में संस्कारों का वहन करने वाली महाविभूति द्रौपदी का विशेष योगदान रहा है। जैन दर्शन में प्रतिबिंब द्रौपदी को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। वर्तमान में हम उससे कुछ सीख ले पाए तो निश्चित ही हम प्रगति के शिखर पर ऊर्ध्वारोहण करेंगे। कहा गया है कि नारी की सहनशक्ति ही उसका असली गहना था। आजकल विपरीत एक शब्द सुनने की ताकत नहीं रखती। इसलिए फिर से एक बार पुराणों के पन्ने पलटने की आवश्यकता हैं। पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ भावी पीढ़ी को संस्कारों की संपत्ति भी देना आवश्यक है।

"अर्धांगिनी के रुप में जब तू है नर की जोड़
तो क्यों लगी है नारी तुझे नर बनने की होड़।"

(स्वयं रचित)

संदर्भ-ग्रंथ-सूची:

1. आचार्य उमास्वामी- तत्त्वार्थ सूत्र (1/1)
2. मनुस्मृति (3/56)
3. Julius Caesar Play by William Shakespeare Originally published:1599
4. Goodreads www.goodreads.com
5. जैन सिद्धांत बोल संग्रह- भाग पांच
6. आचार्य कुंदकुंद प्रवचनसार 1/7
7. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग- 2 अध्ययन- 16 अपरकंका
8. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग- 2 अध्ययन- 16 अपरकंका
9. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग- 2 अध्ययन- 16 अपरकंका

10. साध्वी निर्वाणश्री आदर्श नरियां खंड-1 पृ.सं. 298

11. दशाश्रुतस्कंध सूत्र- दशम दशा- आयति स्थान पृ. सं. 130

12. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग- 2 अध्ययन- 16 अपरकंका

13. महाकवि सोमदेव भट्ट विरचित- कथा सागर सरित (6/3)

14. ब्रह्मपुराण 3.7.219

15. महाभारत आदिपर्व,168/6-15

16. संक्षिप्त ब्रह्मवैवर्तपुराण, श्री कृष्ण जन्म खंड पृ. सं. 767

17. महाभारत आदि पर्व 194/23

18.चक्रवर्ती राजगोपालाचारी, महाभारत कथा पृष्ठ संख्या 474-75

19. सुखमय भट्टाचार्य महाभारत कालीन समाज पृष्ठ संख्या- 68

20. महाभारत आदिपर्व 186/23

21. महाभारत सभापर्व 67/40

22. महाभारत सभापर्व 71/28- 33

23. महाभारत वनपर्व 32/40-43

24. महाभारत सभापर्व 71/34-35

25. प्रभाकर श्रोत्रिय- भारत में महाभारत पृष्ठ संख्या 379

26.https://www.naidunia.com/spiritual/prerak-prasang-draupadi-temples-here-draupadi-is-worshiped-as-a-village-goddess-there-are-many-temples-of-draupadi-in-this-state-7814215

27. ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र भाग- 2 अध्ययन 16 अपरकंका

28. साध्वी निर्वाणश्री- आदर्श नारियां खंड-1 पृष्ठ संख्या 297-98

29. जैन धर्म दर्शन भाग-2 पृष्ठ संख्या 97

'संस्कृत साहित्य में महिला कवयित्रियों के प्रसिद्ध कृतियों का योगदान'

Dr. Kanak Lata
Km. Mayawati Government girls' P.G. College, Badalpur,G.B. Nagar

शोध सारांश:

संस्कृत साहित्य भारतीय संस्कृति का एक समृद्ध और विस्तृत अंग है, जो हजारों वर्षों से ज्ञान, दर्शन, कला, साहित्य और सामाजिक जीवन को प्रतिबिंबित करता आया है। इसमें जहाँ एक ओर वेद, उपनिषद्, महाकाव्य, पुराण, नाटक और नीति साहित्य जैसे विविध आयाम हैं, वहीं दूसरी ओर स्त्रियों का योगदान भी कम उल्लेखनीय नहीं रहा। यद्यपि अधिकांश संस्कृत ग्रंथ पुरुष लेखकों द्वारा रचित हैं, परंतु नारी लेखिकाओं ने भी अपनी साहित्यिक प्रतिभा और दृष्टिकोण से संस्कृत साहित्य को समृद्ध किया है। ऋग्वेद की ऋषिकाओं से लेकर मध्यकालीन और आधुनिक काल की कवयित्रियों तक, नारियों ने सामाजिक, धार्मिक, दार्शनिक और व्यक्तिगत अनुभवों को अपने काव्य में अभिव्यक्त किया।

आज के स्त्री विमर्श, शिक्षा, नारी सशक्तिकरण और सांस्कृतिक पुनरुत्थान के युग में, इन नारियों की रचनाएँ एक दिशा-दर्शक की भूमिका निभा सकती हैं। उनका साहित्य न केवल उनके समय की सामाजिक स्थिति को प्रतिबिंबित करता है, बल्कि आधुनिक संदर्भों में भी प्रेरणा और विचार प्रदान करता है। यह शोध पत्र नारी कवयित्रियों की प्रमुख रचनाओं और उनकी समकालीन प्रासंगिकता का विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करता है।

कूट शब्द- नारी, कवयित्री, आधुनिक काल, वैदिक काल, प्रासंगिकता, ऋग्वेद, लौकिक संस्कृत, साहित्य, दृष्टिकोण।

प्रस्तावना:

संस्कृत साहित्य में नारियों का योगदान ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यद्यपि अधिकांश संस्कृत साहित्य पुरुषों द्वारा रचित है, फिर भी कई नारियाँ ऐसी हैं जिन्होंने अपनी रचनाओं से साहित्य को समृद्ध किया है। इस शोध पत्र में संस्कृत साहित्य में नारी लेखन की प्रासंगिकता पर विस्तार से चर्चा की गई है।

वैदिक काल से लेकर आधुनिक युग तक, भारतीय समाज में महिलाओं ने अपनी रचनात्मकता का परिचय दिया है। ऋग्वेद की प्रमुख ऋषिकाएँ जैसे लोपामुद्रा, अपाला और मैत्रेयी ने न केवल धर्म और दर्शन पर विचार किए, बल्कि उनके लेखन में स्त्री स्वाधीनता और सामाजिक समरसता के विचार भी मिले। मध्यकालीन साहित्य में भी नारी लेखन का अभाव नहीं था, जहाँ शीला भट्टारिका, गङ्गादेवी और तिरुमलाम्बा जैसी कवयित्रियों ने न केवल धार्मिक और साहित्यिक दृष्टिकोण प्रस्तुत किया, बल्कि नारी चेतना और संघर्ष को भी उजागर किया।

आधुनिक संस्कृत कवयित्रियाँ जैसे पण्डिता क्षमाराव और ज्ञानसंदुरी ने समकालीन मुद्दों पर आधारित रचनाएँ कीं, जो नारी सशक्तिकरण, सामाजिक न्याय और राष्ट्र निर्माण के विचारों से ओत-प्रोत थीं। इन रचनाओं का साहित्यिक मूल्य न केवल उनकी कला और भाषा में छिपा है, बल्कि वे स्त्री के सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक संघर्षों को भी उजागर करती हैं। यह शोध पत्र नारी लेखन की गहराई और उसकी समकालीन प्रासंगिकता को प्रस्तुत करता है, जो आज के समाज में नारीवादी विचारधारा और समानता के आंदोलन से जुड़ा हुआ है।

विभिन्न काल में नारियों का योगदान

वैदिक युग की कवयित्रियाँ:

वैदिक काल में नारियों को समाज में विशिष्ट स्थान प्राप्त था। ऋग्वेद, जो कि संस्कृत साहित्य का सबसे प्राचीन ग्रंथ है, उसमें 27 से

अधिक ऋषिकाओं (महिला ऋषियों) का उल्लेख मिलता है। इनमें प्रमुख हैं- लोपामुद्रा, घोषा, अपाला, विश्ववारा, मैत्रेयी, गार्गी आदि। ये महिलाएँ केवल धार्मिक अनुष्ठानों की सहभागी नहीं थीं, बल्कि उन्होंने ब्रह्म और आत्मा जैसे जटिल दार्शनिक विषयों पर भी ऋचाएँ रचीं।

लोपामुद्रा द्वारा रचित सूक्त में स्त्री की यौनिक इच्छा और अधिकार की स्पष्ट अभिव्यक्ति मिलती है। वह अपने पति अगस्त्य ऋषि से स्नेहपूर्ण संवाद करती हैं और एक समान दांपत्य जीवन की मांग करती हैं। इसी प्रकार घोषा, जो एक रोगग्रस्त राजकुमारी थीं, ने अपने अनुभवों के आधार पर भक्ति और स्वास्थ्य की कामना से युक्त दो सूक्त रचे। अपाला एक ब्राह्मण कन्या अपने सौंदर्य और तप से इन्द्र को प्रसन्न कर रोगमुक्त होती हैं- उनकी कविता स्त्री की आत्मनिर्भरता को दर्शाती है।

मैत्रेयी और गार्गी जैसे स्त्रियाँ दार्शनिक वाद-विवादों में भाग लेती थीं और आत्मा तथा ब्रह्म की अवधारणाओं पर संवाद करती थीं। बृहदारण्यक उपनिषद् में गार्गी और याज्ञवल्क्य के बीच का संवाद अद्भुत है, जो यह सिद्ध करता है कि स्त्रियाँ उस काल में दार्शनिक दृष्टि और तर्क-शक्ति में किसी से कम नहीं थीं। इन ऋषिकाओं की रचनाएँ नारी सशक्तिकरण का आदि रूप हैं और आज भी स्त्री-पुरुष समानता के सन्दर्भ में प्रासंगिक हैं।

2. लौकिक संस्कृत साहित्य में नारियाँ:

वैदिक काल के पश्चात लौकिक संस्कृत साहित्य में जहाँ पुरुष कवियों जैसे कालिदास, भास, भारवि, माघ आदि का प्रभुत्व रहा, वहीं कुछ महत्वपूर्ण स्त्री रचनाकारों ने भी अपनी अमिट छाप छोड़ी। इनमें शीलाभट्टारिका, गङ्गादेवी, रामभद्राम्बा, तिरुमलाम्बा आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

शीलाभट्टारिका, जिनकी रचनाएँ 9वीं शताब्दी में उपलब्ध होती हैं, श्रृंगार और प्रकृति पर अत्यंत कोमल और भावनात्मक दृष्टिकोण प्रस्तुत

करती हैं। उनकी कविता में स्त्री की सौंदर्य दृष्टि, संवेदना और आत्म-गौरव का समन्वय दिखता है। उनकी रचनाएँ नारी मन की गूढ़ अनुभूतियों को सुंदर शैली में प्रकट करती हैं।

गङ्गादेवी की रचना 'मधुराविजय' एक ऐतिहासिक महाकाव्य है जिसमें विजयनगर सम्राट कुमारकंपना के मध्य भारत के मुस्लिम शासकों पर विजय का वर्णन है। इस रचना में वीर रस और राष्ट्र गौरव के साथ-साथ एक स्त्री की दार्शनिक दृष्टि और साहित्यिक कौशल भी झलकता है। रामभद्राम्बा, जो तंजावुर के राजा रघुनाथ नायक की राजकवि थीं, ने 'रघुनाथाभ्युदय' नामक महाकाव्य की रचना की। इसमें वीरता, श्रृंगार और भक्ति का त्रिवेणी संगम मिलता है।

तिरुमलाम्बा की चम्पूकाव्य 'वरदाम्बिका परिणय' में पार्वती-शिव के विवाह का वर्णन है। इसकी शैली, वर्णनात्मक क्षमता और रस-संवेदना न केवल उच्च स्तर की साहित्यिक गुणवत्ता को दर्शाती है, बल्कि स्त्री लेखनी की शक्ति को भी प्रमाणित करती है। इन सभी रचनाओं में नारी का दृष्टिकोण, संवेदनशीलता, सौंदर्य-बोध और सामाजिक समझ स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होती है।

3. आधुनिक संस्कृत कवयित्रियाँ:

संस्कृत भाषा को पुनः जीवित और प्रासंगिक बनाने में आधुनिक युग की महिलाओं का योगदान भी सराहनीय है। इन्होंने पारंपरिक विषयों के साथ-साथ समकालीन विषयों को भी संस्कृत साहित्य में स्थान दिया। पण्डिता क्षमाराव, ज्ञानसंदुरी, डॉ. रमा चौधरी आदि कुछ ऐसी ही कवयित्रियाँ हैं जिनकी रचनाएँ आधुनिक संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं।

पण्डिता क्षमाराव ने 'सत्याग्रहगीता' की रचना की, जो गांधीजी के नेतृत्व में चले भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन पर आधारित है। इस रचना में राष्ट्रभक्ति, अहिंसा, नैतिक बल और नारी चेतना का अद्भुत संगम है। यह

काव्य न केवल ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह दर्शाता है कि संस्कृत का प्रयोग केवल धार्मिक या पारंपरिक विषयों तक सीमित नहीं है।

ज्ञानसंदुरी ने 'हालास्यचम्पू' की रचना की, जिसमें धार्मिक और सांस्कृतिक मूल्यों का सुंदर समन्वय मिलता है। उनकी रचनाएँ विशेषतः दक्षिण भारत के धार्मिक जीवन और स्त्री के अनुभवों को दर्शाती हैं। डॉ. रमा चौधरी ने संस्कृत में 25 से अधिक नाटकों की रचना की है जो सामाजिक सरोकार, स्त्री शिक्षा, अधिकार और सांस्कृतिक मूल्यों से संबंधित हैं। उनके कार्यों में भाषा की नवीनता और नारी दृष्टिकोण का समावेश मिलता है।

इन कवयित्रियों की रचनाएँ यह सिद्ध करती हैं कि संस्कृत आज भी एक जीवंत भाषा है जिसमें समकालीन विचारों को अभिव्यक्त किया जा सकता है। साथ ही, ये रचनाएँ स्त्री के आत्म-विश्वास, सामाजिक चेतना और रचनात्मक शक्ति का प्रमाण हैं।

नारी रचनाओं की समकालीन प्रासंगिकता:

संस्कृत में नारियों द्वारा रचित काव्य केवल साहित्यिक धरोहर नहीं हैं, बल्कि आधुनिक संदर्भों में भी उनकी उपयोगिता और प्रासंगिकता असंदिग्ध है। सबसे पहले, ये रचनाएँ स्त्री सशक्तिकरण के आदर्श उदाहरण प्रस्तुत करती हैं। ऋषिकाओं की आत्मनिर्भरता, गार्गी की तर्कशीलता, लोपामुद्रा का आत्मसम्मान- ये सभी आधुनिक स्त्रियों के लिए प्रेरणा स्रोत हैं।

इन काव्यों में नारी मन की जटिलता, उसकी संवेदनशीलता, आत्मबल और समाज में उसकी भूमिका को सुंदर ढंग से चित्रित किया गया है। आज जब नारी अधिकार, समानता और सामाजिक न्याय की बात होती है, तो ये रचनाएँ इस विमर्श को ऐतिहासिक और सांस्कृतिक आधार प्रदान करती हैं।

दूसरे, ये काव्य भारतीय संस्कृति के पुनरुत्थान और संरक्षण में सहायक हैं। जिस प्रकार गङ्गादेवी ने राष्ट्रगौरव को अपनी रचना का केंद्र

बनाया, उसी प्रकार आज की नारी भी राष्ट्र निर्माण में सक्रिय भूमिका निभा सकती है। संस्कृत में रचित आधुनिक कवयित्रियों की रचनाएँ यह दर्शाती हैं कि स्त्रियाँ अब केवल प्रेरणा स्रोत नहीं, बल्कि विचारों की वाहक और निर्माता भी हैं।

तीसरे, इन रचनाओं का साहित्यिक मूल्य भी अत्यंत उच्च है। इनसे काव्य की विभिन्न शैलियों, रसों, अलंकारों और भाषिक सौंदर्य का अध्ययन किया जा सकता है। संस्कृत के छात्र और शोधकर्ता इन रचनाओं से भाषा के साथ-साथ नारी दृष्टिकोण की गहराई को समझ सकते हैं। इन रचनाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देकर विद्यार्थियों को साहित्य के विविध पक्षों से परिचित कराया जा सकता है।

चुनौतियाँ और संभावनाएँ:

संस्कृत में नारियों की रचनाओं के सामने कुछ प्रमुख चुनौतियाँ भी हैं। सबसे बड़ी समस्या इन रचनाओं का सीमित अभिलेखन और प्रचार-प्रसार है। अनेक रचनाएँ पांडुलिपि रूप में संग्रहालयों या मठों में पड़ी हैं, जिनका अनुवाद और विश्लेषण अभी भी आवश्यक है। साथ ही, स्त्रियों की रचनाओं को समान मंच और महत्त्व नहीं मिला है, जैसा पुरुष रचनाकारों को प्राप्त हुआ है।

इस क्षेत्र में शोध की अत्यधिक आवश्यकता है। विद्वानों को चाहिए कि वे इन रचनाओं का पुनर्पाठ करें, उनका भाष्य और व्याख्या करें और उन्हें समाज के सामने लाएँ साथ ही विश्वविद्यालयों और विद्यालयों के पाठ्यक्रम में इन रचनाओं को सम्मिलित किया जाना चाहिए। इससे विद्यार्थियों में साहित्य के प्रति रुचि, स्त्री चेतना की समझ और सांस्कृतिक गौरव की भावना उत्पन्न होगी।

भविष्य में डिजिटल माध्यम और अनुवाद परियोजनाओं के माध्यम से इन रचनाओं को अधिक से अधिक पाठकों तक पहुँचाया जा सकता है। संस्कृत में रचनात्मक लेखन को प्रोत्साहित कर, नई पीढ़ी की स्त्रियों को भी इस परंपरा से जोड़ा जा सकता है।

निष्कर्ष-

संस्कृत साहित्य में नारियों द्वारा रचित काव्य न केवल साहित्यिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है, बल्कि यह समाज के सांस्कृतिक, धार्मिक, और मानसिक दृष्टिकोण को प्रभावित करने वाला भी रहा है। यदि हम संस्कृत साहित्य के विकास को देखें, तो हम पाते हैं कि प्रारंभ में अधिकांश साहित्य पुरुषों द्वारा रचित था और महिलाओं का स्थान केवल सामाजिक या धार्मिक आदर्शों तक सीमित था। हालांकि, कुछ विशेष नारियाँ थीं जिन्होंने अपने लेखन से समाज में नारी की भूमिका को पुनर्परिभाषित किया और यह दिखाया कि नारी की विचारधारा और आवाज़ भी उतनी ही महत्वपूर्ण है जितनी पुरुष की।

वैदिक काल में लोपामुद्रा, अपाला और मैत्रेयी जैसी ऋषिकाओं का योगदान न केवल धार्मिक दृष्टिकोण से महत्वपूर्ण था, बल्कि उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से नारी के बौद्धिक और मानसिक दृष्टिकोण को भी उजागर किया। इन ऋषिकाओं ने ब्रह्मज्ञान और आत्मज्ञान पर विचार किए और नारी के आध्यात्मिक विकास को समाज में स्थान दिलवाया। इनकी रचनाओं में नारी के संघर्ष, साहस, और बौद्धिक सामर्थ्य की झलक मिलती है, जो आज के समाज में नारी की स्थिति और उसकी भूमिका को समझने में मदद करती हैं।

मध्यकाल में शीलाभट्टारिका, गङ्गादेवी, और तिरुमलाम्बा जैसी कवयित्रियाँ संस्कृत साहित्य में सक्रिय हुईं। इन कवयित्रियों ने धार्मिक और काव्य रचनाओं में नारी के अधिकार, संघर्ष और आत्मनिर्भरता को स्थान दिया। उनकी रचनाएँ न केवल धार्मिक संदर्भ में बल्कि समाज की मानसिकता में भी परिवर्तन लाने का कार्य करती हैं। इनकी काव्य-रचनाओं में नारी के अस्तित्व की स्वीकृति और उसकी आंतरिक शक्ति का उद्घाटन हुआ।

आधुनिक संस्कृत साहित्य में पण्डिता क्षमाराव और ज्ञानसंदुरी जैसी कवयित्रियाँ नारी सशक्तिकरण और सामाजिक न्याय की विचारधारा को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करती हैं। इन कवयित्रियों ने महिलाओं के अधिकारों, शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन के विषयों पर गहरे विचार किए और समाज में व्याप्त लैंगिक भेदभाव को चुनौती दी। इनकी रचनाएँ आज भी महिलाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत बनी हुई हैं और समाज में नारी की शक्ति और समानता के विचार को सशक्त करती हैं।

संस्कृत साहित्य में नारियों की रचनाएँ न केवल साहित्यिक कृतियाँ हैं, बल्कि वे समाज के भीतर नारी की स्थिति और भूमिका पर गहरी छाप छोड़ने वाले दस्तावेज हैं। इन रचनाओं में न केवल साहित्यिक और काव्यात्मक मूल्य होते हैं, बल्कि ये सामाजिक, मानसिक और सांस्कृतिक बदलाव की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण योगदान देती हैं। संस्कृत साहित्य में नारियों द्वारा रचित काव्य की प्रासंगिकता आज भी समाज में प्रासंगिक है, क्योंकि यह नारीवाद, समानता, और सामाजिक न्याय के विचारों को उजागर करता है।

आज के समय में जब हम नारी अधिकारों और समानता की बात करते हैं, तो संस्कृत साहित्य में नारी द्वारा रचित काव्य की रचनाएँ हमें यह याद दिलाती हैं कि यह संघर्ष सदियों पुराना है और इन रचनाओं के माध्यम से समाज में स्त्री के स्थान और अधिकारों की समझ को गहरा किया जा सकता है। इस प्रकार, संस्कृत साहित्य में नारियों द्वारा रचित काव्य न केवल साहित्यिक धरोहर का हिस्सा हैं बल्कि ये नारीवादी विचारधारा के संवर्धन में भी एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

संदर्भ-ग्रंथ -सूची-

1. **ऋग्वेद**- महर्षि वेदव्यास
2. **अथर्ववेद** - ऋषि अंगिरा

3. **बृहदारण्यक उपनिषद्-** गार्गी-विमर्श हेतु
4. **संस्कृत साहित्य का इतिहास-** डॉ. सत्यव्रत शास्त्री
5. **स्त्री और संस्कृत साहित्य-** डॉ. उषा शर्मा
6. **भारतीय नारी: अतीत और वर्तमान-** डॉ. प्रभा खरे
7. **शीलभट्टारिका: जीवन और साहित्य** - डॉ. कमला त्रिपाठी
8. **Rigveda: A Historical Analysis-** Shrikant G. Talageri
9. **Women in the Rigveda-** Stephanie W. Jamison
10. **Vedic Women: Their Role and Position-**Swami Prakashananda
11. **The Women Seers of the Vedas-** Dr. Abinash Chandra Bose
12. **संस्कृत नारीवाद: एक पुनरावलोकन-** डॉ. ऋचा पाठक
13. **भारतीय स्त्री साहित्य का इतिहास-** डॉ. हेमलता शर्मा
14. **Rigvedic Hymns by Women-** Translated by H.H. Wilson
15. **Garland of Sanskrit Poetry by Women-** अनुवादक: S.L. Sharma
16. **Women Poets in Sanskrit Literature-** Dr. Radhika Nagrath
17. **Apala, Ghosha and Other Women Rishikas-** Ananya Banerjee
18. **संस्कृत की प्रसिद्ध कवयित्रियाँ-** डॉ. मंजुला जोशी
19. **Women in Ancient India-** A.S. Altekar
20. **भारतीय काव्य परंपरा में नारी स्वर-** डॉ. मीरा दीवान

पञ्चमहाकाव्येषु स्त्रीपात्राणां वैदुष्यम्

Dr.Y.Suresh
Assistant Professor in Sanskrit, Department of Languages
Bharatiya Vidya Bhavan's College of Science Humanities and Commerce, Sainikpuri Secunderabad & Kosuri Ananthacharyulu
Ph.D Research Scholar, Department of Sanskrit
SunRise University, Alwar- Rajasthan

उपोद्घातः-

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदेशिवेतरक्षतये।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे।।[1]

इति काव्येभ्यः लभ्यानि षट् प्रयोजनानि आलङ्कारिकैः व्याख्यातानि। प्रायशः विद्वांसः काव्यात् लभ्यं प्रथमं प्रयोजनं रसानन्दमामनन्ति। तथापि उपदेशस्य प्राधान्यं न ह्रीयते। विशेषतः वेदशास्त्राध्ययने मन्दाधिकारिणां काव्यकृतः उपदेशः मद्रानुपकारको भवति। काव्याभ्यासे सर्वेषामधिकारस्य सत्वात् स्त्रियः अपि काव्यपठनात्। ज्ञान प्राप्तो समर्थाः भवन्ति।

काव्यानामानन्त्यात् लोके पञ्चमहाकाव्यानि इति प्रसिद्धेषु काव्येषु स्त्रीपात्राणां वैदुष्यमधिकृत्य संक्षेपेण प्रस्तूयते प्रथमं पञ्चमहाकाव्यानां परिचयः संक्षेपण क्रियते।

पञ्चमहाकाव्यनिर्णयः

प्रायशः कालिदास काव्यत्रयं, माघकवेः शिशुपालवधं, भारवेः किरातार्जुनीयं च पञ्चकाव्यानि इति कैश्चित् परिगणितानि। किन्तु मेघसन्देशकाव्यं सर्वात्मना लघीयः इति हेतोः तत्स्थाने श्रीहर्षस्य नैषधीयचरित्रं बहुभिः अङ्गीकृतम्। ततः कालिदासस्य (1)रघुवंशमहाकाव्यम्

---

[1] काव्यप्रकाशः- प्रथमोल्लासः - 5 कारिका, PG. No. 2

(2) कुमारसम्भवमहाकाव्यम्, (3) माघकवेः शिशुपालवधम् (4) भारवेः किरातार्जुनीयम् (5) श्रीहर्षस्य नैषधीयचरितम् इति पञ्चमहाकाव्यानि।

1) रघुवंशमहाकाव्यम्-

रघुवंशमहाकाव्ये एकोनविंशतिसर्गाः, द्विसद्रस्राधिकाः श्लोकाश्च वर्तन्ते। रामायणकथां विहाय परिशिष्टं काव्यं स्वतन्त्रम्।

2) कुमारसम्भवमहाकाव्यम्

कुमारसम्भवकाव्यं अष्टसर्गात्मकम् यद्यपि ऊनविंशतिसर्गाः अपि तत्र तत्र निबद्धाः अष्टावेव सर्गाः मल्लिनाथ व्याख्याताः तत्रैव ग्रन्थसमाप्तिरापि निर्णीता। कालिदासस्य कालः A.D. प्रथमं द्वितीयं वा शतकम् ।

3) शिशुपालवधम्

विंशतिसर्गात्मकं शिशुपालवधमिति प्रसिद्धं काव्यं महाभारतस्थ सभापर्व कथामाश्रित्य रचितम्। माघस्य कालः A.D. सप्समशतकम्।

4) किरातार्जुनीयम्

महाकविना भारविना निर्मितं इदमष्टादश सर्गात्मकं काव्यं महाभारते अरण्यपर्वणः गृहीतां कथामाश्रित्य रचितम्। भारवेः कालः प्रायशः माघात् ईषत् समनन्तरः।

5) नैषधीयचरितम्

द्वाविंशति सर्गात्मकं काव्यं महाभारते अरण्यपर्वणि वर्णितां नलदमयन्त्योः कथामाश्रित्य क्रतम्। नलदमयन्ती विवाहपर्यन्तैव कथा काव्ये गृहीता। श्रीहर्षस्य कालः A.D. द्वादशतमं शतकम्।

पञ्चमहाकाव्येषु स्त्रीपात्राणि-

पञ्चमहाकाव्यष्वपि शिशुपालवध काव्ये स्त्रीपात्राणां प्रवेशः न दृष्टः। रघुवंशमहाकाव्ये सुदक्षिणा, इन्दुमती, सीता इति तिस्रः स्त्रियो वर्णिताः। कुमारसम्भवकाव्ये देवी पार्वती अद्वितीया। किरातार्जुनीयकाव्ये प्रथमसर्गे, तृतीयसर्गे च द्रौपद्याः वैदुष्यमुपवर्णितम्। नान्यत् स्त्रीपात्रं तत्र दृष्टम्। नैषधीयचरिते दमयन्त्याः एव वैदुष्यं ज्ञानं च विस्तरेण वर्णितम्। अत्रापि काव्ये इतरासां स्त्रीणां प्रामुख्यं न दृष्टम्। काव्यानां कालक्रममनुसृत्य काव्येषु सर्गक्रममनुसृत्य तत्तत्स्त्रीपात्राणां वैदुष्यं यथामति निरुप्यते।

विदुषी शब्दार्थः-

विद् ज्ञाने (अदादि परस्मैपदि सेट्) इति धातोः लटः शत्रुशानचावप्रथमासमानाधिकरणे (3-2-124) इति शत्रु प्रत्यये, शत्रुप्रत्ययस्थाने विदेः शतुर्वसुः (7-1-36) इति वसु आदेशः। विद्वस् इति प्रातिपदिके जाते स्त्रीत्व विवक्षायां वसोः सम्प्रसारणम् (6-4-131) इति प्रत्यय वकारस्य सम्प्रसारणे सम्प्रसारणाच्च (6-1-108) इति पूर्वरूपे प्रत्ययावयस्य सकारस्य आदेश प्रत्यययोः (8-3-59) इति षत्वे विदुषी इति रूपम्। ज्ञानसम्पन्ना ज्ञानार्जनशीला, कार्यनिश्चये समर्था इत्यादयो अर्थाः विद्वस् शब्दस्य वैयाकरणैः निरूपिताः[1]।

पञ्चमहाकाव्येषु प्रथमं रघुवंशमहाकाव्यम्-

तस्मिन् काव्ये रघुवंश प्रतिष्ठा कारणभूता सुदक्षिणा प्रथमं स्त्रीपात्रम्।

रघुवंशकाव्ये स्त्रीपात्रवैदुष्यम्-

सुदक्षिणा - रघुवंशस्य कर्ता रघुः सूर्यवंशः, इक्ष्वाकुवंशः इति तद्वंशः प्रागेव प्रसिद्धः तथापि पुरुषान्तरक्य नाम्ना वंशप्रसिद्धिमिच्छता दिलीपेन वंशस्य कर्तारमन्तकीर्तिं तनयं सुदक्षिणायां देहि इति नन्दिनी

---

[1] अमरकोशः- 2-7-5 श्लोक रामाश्रमी व्याख्या

याचिता। अपल्पहीनेन दिलीपेन कामधेनोः सुता नन्दिनी द्वाविंशति दिनानि वसिष्ठाज्ञया सेविता। तदानीं दिलीपः कलत्रान्तरं विहाय सुदक्षिणायामेव वंशस्य कर्तारं तनयं देहि इति ययाचे इत्यनेनैव सुदक्षिणायाः पूज्यता गम्यते। दिलीपः सर्वज्ञः तस्य पत्नी अकिचिज्ञा भवितुं नार्हति। सापि महाकविना एवं वर्णिता दिलीपे सर्वान् उत्तमगुणान् वर्णयित्वा सा दिलीपस्य सर्वात्मना अनुरूपा इति कालिदासेन वर्णिता। अपि च सर्वाभ्यः अन्तःपुर स्त्रीभ्यः सैव प्रियतमा इत्यपि वर्णिता। तत्रस्थं श्लोकत्रयं सुदक्षिणायाः वैदुष्यनिरूपकम्।

तस्य दाक्षिण्यरूढेन नाम्ना मगधवंराजा।
पत्नी सुदक्षिणेत्यासीदध्वरक्येव दक्षिणा।।
कलत्रवन्तमात्मानमवरोधे महत्यपि।
तया मेने मनस्विन्या लक्ष्म्या च वसुधाधिपः।।
तस्यामात्मानुरूपायामात्मजन्मसमुत्सुकः।
विलम्बितफलैः कान्तं स निनाय मनोरथैः।।[1]

प्रथमश्लोके अध्वरस्येव दक्षिणा इति विशेषणेन सुदक्षिणया विना दिलीपोऽपि उत्तमं फलं प्राप्तुमसमर्थः इति स्पष्टमुक्तम्। हतो यज्ञत्त्वदक्षिणः इति लोकन्यायात् सिद्धोऽयमर्थः। आत्मानुरूपा इति विशेषणेन रूपस्य योग्यमिति वर्णनात् दिलीपगुण तुल्यत्वात् तस्याः वैदुष्यमक्षिव्यक्तम्।

इन्दुमती- रघोः पुत्रः अजः। तं विदर्भकन्या इन्दुमती स्वयंवरे पतिं वृतवती। एषा दिव्यांश सम्भूता इति रघुवंशे अष्टमसर्गे वर्णिता। महर्षेः तृणविन्दोः तपोभङ्गाय इन्द्रेण नियोजिता हरिणी नाम अप्सरा मानुषं जन्म लेभे। मुनिरपि शापं सुरपुष्पदर्शनावधिकं परिवृत्य अनुजग्राह।

भगवन् परतानयं जनः प्रतिकूलाचरितं क्षमस्व मे।
इति चोपनतां क्षितिस्पृशं कृतवानासुरपुष्पदर्शनाद्।।[2]

---

[1] रघुवंशमहाकाव्यम्- प्रथमसर्गे 31,32,33 श्लोकाः

[2] रघुवंशमहाकाव्यम् - 8/81 श्लोकः

एवं दैवांशसम्भूतत्वादेव तस्याः वैदुष्यं जन्मना सिद्धम्। षष्ठसर्गेपि गुणाधिकान् बलाधिकान् दैवानुग्रहं प्राप्तवतः राज्ञः निराकृत्य सा आत्मनः अनुरूपमजमेव वृततताीति अनेन तस्याः वैदुष्यम् अभिष्यक्तमिति षष्ठसर्गे नैकेषां श्लोकानां मल्लिनाथ व्याख्यायाः स्पष्टं भवति।

अजः ककुत्स (6/71) वंशसम्भवः इति पराक्रमसम्पन्नः। दिलीपः स्त्रीणां रक्षणे समर्थः इति (6/75) हेतोः इन्दुमत्याः आत्मरक्षापि सम्पन्ना। रघुः सर्वस्वदाता (6/76) इति हेतोः अजः औदार्यसम्पन्नः। एवं अजस्य वंशक्रम श्रवणात् गुणान् निश्चित्य सौन्दर्यं स्वयं दृष्ट्वा आत्मानुरूपं पतिं वृततती इत्यनेन तस्याः वैदुष्यम् अभिव्यक्तम्।

सीता- सीतायाः चरितं महत् इति रामायणे रामचरितात् अपि सीतायाः चरितमुत्तममिति स्पष्टमुक्तम् । यद्यपि सीतायाः तादृशं महत्वं वैदुष्यं च रघुवंशे वाचा च वर्णितं रामायणस्थाः सर्वे सीतागुणाः अत्राप्यनुवर्तनीयाः। यदा अरण्ये परित्यक्तां सीतां वाल्मीकि दृष्टवान् तदा वाल्मीकेः वाक्येषु रामे दर्शितः कोपः सीतायाः गुणमहत्वद्योतकः।

जाने विसृष्टां प्रणिधानतस्त्वां मिथ्याऽपवादक्षुभितेन भर्त्रा।
तन्मा व्यथिष्ठा विषयान्तरस्थं प्राप्ताऽसि वैदेकि पितुर्निकेतम्।।
उत्खातलोकत्रयकण्टकेऽपि सत्यप्रतिज्ञेऽप्यविकत्थनेऽपि।
त्वां प्रत्यकस्मात्कलुष प्रवृत्तावस्त्येव मन्युर्भरताग्रजे मे।।[1]

कुमारसम्भवमहाकाव्ये स्त्रीवैदुष्यम्-

पार्वती- कुमारसम्भवकाव्ये पार्वती एकैव मुख्या दृश्यते। हिमवतः पत्नी मेना षष्ठसर्गे नाम्ना केवलं प्रस्तुता। पार्वत्याः सखी अपि अनिर्दिष्ट नामा पञ्चमसर्गे निरुपिता। तिस्रुषु अपि पार्वती विदुषीतरा दृश्यते। पार्वती पूर्वस्मिन् जन्मन्यपि महेश्वरस्य पत्नी दक्षस्य पुत्री नाम्नापि सती। ततः प्राक्तनजन्मविद्याः सर्वाः तावनुजाताः इति हेतोः पार्वती जन्मना विदुषी।

---

[1] रघुवंशमहाकाव्यम्- 14/72,73 श्लोकः

तां हंसमालाश्शरदीत गङ्गा मद्रौषधीं नक्तमिवात्मभासः।
स्थिरोपदेशामुपदेशकाले प्रपेदिरे प्राक्तजन्मविद्याः।।[1]

जन्मान्तरेपि शिवमेव पतिं प्राप्तुमिच्छया सा लौकिकी स्त्री इव स्वसौन्दर्येणैव शिवं तोपयितुं कृतयत्ना इति यद्यपि तृतीयसर्गात् प्रतीयते तथापि निष्काम भक्त्या सा एव शिवं सिषेवे इति प्रथमसर्गे स्पष्टम्।

अपचितबलिपुष्पा वेदिसम्मार्गदक्षा
नियमविधिजलानां बर्हिषां चोपनेत्री।
गिरिशमुपचचार प्रत्यहं सा सुकेशी
नियमितपरिखेदातच्छिरश्चन्द्रपादैः।। [2]

तृतीयसर्गे मन्मथः प्रभावेन ईषत् विकृतिं प्राप्यापि पुनः स्वस्था बभूव।

विवृण्वती शैलसुतापि भावमङ्गैरस्फुरद्बालकदम्बकल्पैः।
साचीकृता चारुतरेण तस्थौ मुखेन पर्यस्तविलोचनेन।।[3]

पञ्चमसर्गे स्वसौन्दर्यं व्यर्थमिति कृतनिश्चया तपसा एव शिवं प्राणयितुं ययते। पित्रा अनुज्ञाता तीव्रं तपश्चचार तस्याः तपोविधिः पञ्चमसर्गे विंशत्मधिकैः श्लोकैः वर्णितः (5/96)।

यदा शिवः तपसा प्रीतः वटुरूपेण तां बहुधा परीक्षितवान् तदा शिवनिन्दां प्रत्याचक्षाणया तया यदुक्तं तत्सर्वं शिवतत्वनिरूपकं पार्वत्याः वैदुष्यद्योतकं च। तन्निरूपकाः एकादशश्लोकाः पञ्चमसर्गे वर्तन्ते। एकमुदारहरणम्-

अकिञ्चनस्सन् प्रभवस्सम्पदां त्रिलोकनाथः पितृसद्मगोचरः।
स भीमरूपः शिव इत्युदीर्यते न सन्ति याथार्थ्यविदः पिनाकिनः।।[4]

---

[1] कुमारसम्भवम्- 1/30 श्लोकः

[2] कुमारसम्भवम्- 1/60 श्लोकः

[3] कुमारसम्भवम्- 3/68 श्लोकः

[4] कुमारसम्भवम्- 5/77,81 श्लोकः

विवक्षता दोषमपिच्युतात्मनात्वयैकमीशं प्रति साधुभाषितम्।
यमामनन्त्यात्मभुवोऽपि कारणं कथं स लक्ष्य प्रभवो भविष्यति।।

तपसा प्रीतः शिवः अद्यप्रभृति अहं ते दासः इति यदा अवोचत्। तदैव कन्या सहजां लज्जां दर्शयन्ती सखीमुखात् मद्रेश्वरं सान्ददेशु न साक्षात् किञ्चिदूचे।

अथ विश्वात्मने गौरी सन्दिदेश मिथः सखीम्।
दाता मे भूभृतां नाथः प्रमाणीक्रियतामिति ।।[1]

महर्षिभिः यदा विवाहो निश्चितः तदा स्वाभाविकीं लज्जां दर्शितवती।

एवं वादिनि देवर्षौ पार्श्वे पितुरधोमुखी।
लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।।

एवं तदा व्रीणापि लज्जया कामोपभोगान् नोपेक्षितवती यदा शिवः तस्यामनुरक्तः तदा शिवेच्छानुरूपं व्यवहरन्ती शिवप्रीतये बभूवेति वर्णनं तद्वैदुष्ययोतकम् ।

शिष्यतां निधुतनोपदेशिनः शङ्करस्य रद्रसि प्रपन्नया।
शिक्षितं युवति नैपुण्यं तया यत्तदेव गुरुदक्षिणीकृतम्।। [2]

किरातार्जुनीय महाकाव्ये द्रौपद्याः वैदुष्यम्

किरातार्जुनीय काव्यं च पञ्चमहाकाव्येषु तृतीयं गण्यते। अस्मिन् काव्ये द्रौपद्याः वैदुष्यं वर्णनमेव मुख्यो विषयः गृह्यते।

द्रौपद्याः वैदुष्यम्- महाभारते अरण्यपर्वणि अष्टाविंशेति अध्याये युधिष्ठिरस्य परक्रममुद्दीपयितुं बहून् राजधर्मान् बोधयामास। प्रथमं स्ववाक्य श्रवणे युधिष्ठिरं सम्मुखी कर्तुं भ्रातृणां स्वस्याः आश्रितानां च अवस्थाः निरूपितवती। किमेते मत्कृतेन द्यूतापराधेन एवं विधां व्यथाननुभवन्तीति यदा युधिष्ठिरः चिन्ताक्रान्तो अभूत् ततः तन्मनसि स्वाभिप्रायस्य प्रवेशनं

---

[1] कुमारसम्भवम्- 6/1 श्लोकः

[2] कुमारसम्भवम्- 8/17 श्लोकः

कारितवती। अपि च क्षमात्यागः न मया उपदिशते पूर्वं प्रह्लादोपि एवमेव कालावधिमनपेक्ष्य विक्रान्तः स्वाश्रितेभ्यः सुखं दत्तवान् इति सोपपत्तिकमुदाहृतवती। तन्निरूपणार्थं महाभारतस्थाः द्वित्राः श्लोकाः उदाह्रियन्ते।

यो न दर्शयते तेजः क्षत्रियः काल आगते।
सर्वभूतानि तं पार्थं सदा परिभवन्त्युत।।[1]
तत्त्वया न क्षणा कार्या शत्रून्प्रति कशंचन।
तेजसेव हि ते शक्या निहन्तुं नात्र संशयः।।
तथैव यः क्षमाकाले क्षत्रियो नोपशाम्यति।
अप्रियः सर्वभूतानां सोऽमुत्रेह च नश्यति।।

भारविना किरातार्जुनीय काव्ये द्रौपद्याः वैदुष्यं महाभारतादपि रमणीयतरं महाभारतवाक्यानुसारी वर्णितं वर्तते।

1. अयोग्यस्यापि योग्यता सम्पादनम्

किरातार्जुनीय काव्ये प्रथमसर्गे युधिष्ठिरेण प्रेषितः गूढचरः दुर्योधनस्य प्रजापालनं साधीयः वर्तते इति निवेदयामास। ततः तत्र प्रतिक्रिया कीदृशी करणीया इति युधिष्ठिरः द्रौपद्याः सदने एव सर्वान् पाण्डवान् निविष्टान् कृत्वा कर्तव्यं पप्रच्छ। द्रौपदी एव तत्रस्थेषु सर्वेषु प्रथमं कर्तव्यमुपदिष्टवती। धर्मराजं च वियुद्धोन्मुखं कर्तुं तदनुकूलां प्रस्तावनां कृतवती। विदुषी अपि सा विद्वद्भिः कोपो न कार्यः इति जानात्यपि क्रोधं नियन्तुं अक्षमाऽभूत्। किं तं क्रोधमपि प्रस्तुत स्वकार्योपयोगाय कल्पितवतीति तस्याः पाण्डित्यं अभिव्यज्यते। स्वेन क्रोधेन असंकल्पितोत्पन्नाभिः वाग्भिः राज्ञि प्रयत्ने मन्योरुद्दीपनम् चकार।

निशम्य सिद्धं द्विषतामपाकृतीः ततस्ततस्त्या विनियन्तुमक्षमा।
नृपस्य मन्युव्यवसायदीपिनी रुदाजहार द्रुपदात्मजा गिरः।।[2]

---

[1] महाभारतम्- अरण्यपर्व- 28/35, 37 श्लोकाः

[2] किरातार्जुनीयम्- 1/27 श्लोकः

प्रथमं राज्ञानुभूतः पराभवः एव तत्पराक्रमोद्दीपकः इति कृतनिश्चया युधिष्ठिरणेव अनुभूतां दुखस्थां तेन ज्ञातामपि नूतनामिव ज्ञापयामास। एवं द्रौपदी विद्वद्भिः अकरणीयं क्रोधमपि कथमपि निगृह्य तं क्रोधमेव युधिष्ठिर क्रोध उद्दीपने सहकृत्वानं कृतवतीति तस्याः वैदुष्यस्योदाहरणमिदम्। युधिष्ठिरेणापि कोपो न कार्यः इत्यापि सा जानाति किन्तु क्षत्रियाणां सार्वकालिनी क्षमा नोचिता पराभवकाले क्रोधप्रदर्शनं सर्वथा करणीयमिति युधिष्ठिरमेव बोधितवती ।

अवन्ध्यकोपस्य विहन्तुरापदां
भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्षशून्येन जनस्य जन्तुना
न जातहार्देन न विद्विषादरः।।[1]

मत्कृते अहं नानुशोचामि किन्तु महावीराः पराभवानर्हाः भीमादयः पराभूताः तान् अनुशोचामि एव वर्णितवती। स्वावस्थां पुनः साक्षादनुक्त्वा तव भार्या अहमपि भवतः सम्पदिव परैरपहृता पराभूता त्वया उपेक्षिता चेति सोत्प्रासं आक्षिप्तवती।

गुणानुरक्तागनुरक्तसाधनः
कुलाभिगानी कुलजां नराधिपः।
परैस्त्वदन्यः क इवापहारयेन्
मनोरमामात्मवधूमिव श्रियम्।।[2]

अत्र कुलाभिमानी कुलजां मनोरमां श्रियं वधूमिव अपद्रारयेदित उपमानोपमेय व्यत्यासेनान्वयोपि करणीय एव। तदानीमुपमानं गौणं उपमेयश्च मुख्यो भवति। एवमुभयथा अन्वयः द्रौपद्याः वैदुष्यसूचकः।

नैषधीयकाव्ये विदुषी दमयन्ती

कर्कोटकस्य नागस्य दमयन्त्याः नलस्य च।

---

1 किरातार्जुनीयम्- 1/33 श्लोकः

2 किरातार्जुनीयम्- 1/31 श्लोकः

ऋतुपर्णस्य राजर्षेः कीर्तनं कलिनाशनम्।।

इति महाभारतवचनं मल्लिनाथः दमयन्त्याः पावनत्व निरूपणे प्रमाणतया उदाहृतवान्। प्रायशः यदृच्छा शब्दाः अर्थरदिताः एव भवन्ति। किन्तु दमयन्ती सार्थकनामधेया लोकत्रये कालत्रयेऽपि तया समा न काचिदस्ति इति निरूपयता कविना तस्याः औन्नत्यं स्पष्टमुपवर्णितम् यथा-
दमनादमनाक् प्रसेदुपरतनया तथ्यगिरस्वपधिनात्।

वरमाप स दिष्ट विष्टपत्रितयानन्यसदृग्गुणोदयात्।।
भुवनत्रयसुभ्रुतामसौ दमयन्ती कमनीयतामदम्।
उदियाय यतस्तनुश्रिया दमयन्तीति ततोऽभिधां दधौ।।[1]

दमयन्त्याः वैदुष्यं हंसं प्रति नलविषयकस्य स्वानुरागस्य कथने तृतीयसर्गे विस्तरेण निरूपितम्। तदानीं चित्रार्थं दमयन्त्याः वाचं श्रुत्वा ब्रह्मवाहनभूतोऽपि हंसः दमयन्तीं श्लेषकविरिति श्लाघितवान्। दमयन्ती हंसेन पृष्टा नले स्वानुरागं एवं स्पष्टीकृतवती।

मनस्तु यं नोज्झति जातु यातु मनोरथः कण्ठपथं कथं सः।
का नाम बाला द्विजराजपाणिग्रहाभिलाषं कथयेदभिज्ञा।।

अत्र द्विजराज- का बाला पाणिग्रहण अभिलाषं कथयेदिति उक्त्वा स्वानुराग प्रकटनम्। द्विजराज पाणिग्रहाभिलाषमिति समासे राज्ञः पाणिग्रहण विषयन् इति श्लेषः। एवं बहवः श्लोकाः दमयन्त्या तत्रोक्ताः तत्प्रकारं सर्वं श्रुत्वा हंसः दमयन्तीमेवं प्रशशंस।

नृपेण पाणिग्रहणे स्पृहेति नलं मनः कामयते गमेति।
आश्लेषि न श्लेषकवेर्भवत्याः श्लोकद्वयार्थस्सुधिया गयाकिम्।।[2]

तृतीयसर्गे सा नलविषयकं स्वानुरागं स्पष्टं हंसमुक्त्वा नलोपि स्वरस्यामनुरक्तः इति ज्ञात्वापि विरहकृशा बभूव। तदानीमपि तस्याः

---

[1] नैषधीयचरितम्- 2/17,18 श्लोकः

[2] नैषधीयचरितम्- 3/69 श्लोकः

पाण्डित्यं मेधाशक्तिः अपि अक्षीणमेव आसीत्। विरहपीडिता सा चन्द्रमेवं निनिन्दा

किमसुभिर्गलितैर्जड मन्यसे मयि निमज्जतु भीमसुतामनः।
मम किल श्रुतिमाह तदर्थिकां नलमुखेन्दुपरां विबुधस्मरः।।[1]

अस्यां निन्दायां मृतस्य प्राणिनः मनः चन्द्रे लग्नं भवति इति श्रुतिप्रमाणं दमयन्त्या यदुक्तं तां श्रुतिं मल्लिनाथः एवमुदाहरति। मनः चन्द्रे लग्नं भवति इति श्रुतिप्रमाणं दमयन्त्या यदुक्तं तां श्रुतिं मल्लिनाथः एवमुदाहरति।

यत्रास्य पुरुषस्याग्निं वागप्येति वातं प्राणश्चक्षुरादित्यं मनश्चन्द्रं दिशः श्रोत्रं पृथिवीं शरीरमाकाशमात्मौषधीर्लोमानि वनस्पतीन् केशा अप्सु रोहितं च रेतश्च निधीयत इति।

एवं बहवः श्लोकाः दमयन्ती वैदुष्यपोतकाः चतुर्थसर्गे मल्लिनाथेन व्याख्याताः। नवमसर्गेऽपि देवदूतरूपेण आगतं नलं समाधित्सुः सा यानि वाक्यानि उक्तवती तत्रापि तस्याः वैदुष्यमाविष्कृतम्। कवेः कालानुकूलतया जैनमतोक्तं रत्नत्रयं यद् व्याख्यातं तत् दमयन्ती वैदुष्यनिरूपकम्।

न्यवेशि रत्नत्रितये जिनेन यः राधर्मचिन्तामणिरुझितो यया।
कपालिकोपानलभस्मनःकृते तदेव भस्म स्वकुले स्तृणं तया।।[2]

अत्र जैनमतसिद्धान्तः अपि मल्लिनाथेन विशेषतया व्याख्यातः।

हे सौग्य यो धर्माख्यः चिन्तामणिर्जिनेन देवेन अर्हता रत्नत्रितये जैनपरिभाषया सद् दृष्टिज्ञानवृत्ताख्ये रत्नत्रये न्यवेश निवेशतः। सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुरिति तैः उक्तत्वात् विशेर्ण्यन्तात् कर्मणि लुङ्। स धर्मचिन्तामणिः यया स्त्रिया कलापि हरः तत्कोपानलभस्मनस्तद्रूपस्य कामस्य कृते, कृत इति तादर्थ्येऽव्ययम्। उज्झितत्यक्तः तया स्त्रिया तदेव भस्म स्वकुले स्तृतं विस्तृतम्।

---

[1] नैषधीय चरितम्- 4/52 श्लोकः

[2] नैषधीय चरितम्- 9/71 श्लोकः

कामाख्याभस्मान्धतया चरित्रत्यागिन्या स्त्रिया स्वकुलमेव भस्मसात् कृतं भवेदित्यर्थः। अतो नलैकव्रताया ममाग्रे महेन्द्रादि नामग्रहणमपि न कार्यमिति भावः।

पञ्चनलीये अपि सा देवान् सम्प्रार्थ्य सर्वान् प्रसादयामास इत्यनेन औचित्य ज्ञानमपि तस्याः निरूपितम्। एवं रघुवंशे कुमारसम्भवे किरातार्जुनीये नैषधीयचरिते; वर्णितानि स्त्रीपात्राणि वैदुष्ययुक्तानि इति ज्ञापयितुं कृतोऽयं यत्नः सहृदयहृदये भवति इत्याशासे।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. अमरकोशः- चौखम्ब संस्कृत संस्थान वारणासी- 2012
2. काव्यप्रकाशः- भाण्डार्कर् ओरियण्टल् रीसेच् पूना- 1950
3. श्रीमद्भागवतम्- गीताप्रेस् गोखपुर- 2009
4. रघुवंशमहाकाव्यम्- कृष्णदास अकादमी वारणासी- 1983
5. कुमारसम्भवम्- वाविल्लरामस्तामिशास्त्रुलु 6 सन्स् चेनपुरी-1949
6. नैषधीयचरितम्- चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफ वारणासी- 1984
7. किरातार्जुनीयम्- निर्णयसागर मुद्रणालयः मुंबई- 1929
8. महाभारतम्- स्वाध्यायमण्डल् पार्दी, जिला- बलसाड गुजरात- 1969

प्राचीन भारतीय इतिहास में नारी: एक अवलोकन

डॉ. शीतल ए अग्रवाल
श्री और श्रीमती पी.के. कोटावाला आर्ट्स कॉलेज
पाटन, उ. गुजरात

सारांश:

किसी राष्ट्र की संस्कृति एवं आत्मा के मूल्यांकन का सर्वाधिक सशक्त माध्यम उस राष्ट्र मे स्त्रियों की स्थिती को माना जाता हैं। किसी भी राष्ट्र अथवा समाज के द्वारा महिलाओं के सम्बंध में दृष्टिकोण ही उसका सबसे सशक्त आधार होता है। भारत की प्राचीन संस्कृति में महिलाओं के सम्बंध में दृष्टिकोण परिवर्तित स्वरुप में दिखाई देता हैं। नारी को कभी देवी के रुप में भी पूजा जाता था तो कभी उसे निम्नतम श्रेणी में रखकर उसकी अवहेलना की जाती थी। परन्तु यह भी सत्य है कि भारतीय समाज में कुछ अपवादों को छोड़ दिया जाए तो कभी भी महिलाओं के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया गया। उसे माता, पत्नी, पुत्री, बहन तथा पुत्रवधू के रुप में सम्मान तो प्राप्त होता था परन्तु उसका अपना स्वतंत्र व्यक्तित्व या अस्तित्व बहुत ही कम देखने को मिलता हैं।

भारतीय इतिहास की सबसे प्राचीन सैंधव सभ्यता से जो प्रमाण प्राप्त होते हैं। उनमें प्राप्त मुहरों पर मातृशक्ति के प्रतीक के रूप में मातृदेवी के चित्र समाज में उनके स्थान को निर्धारित करते हैं। सिंधु सभ्यता मे नारी को उर्वरा के प्रतीक के रूप में पूजा जाता था।

ऐतिहासिक युग अर्थात् ऋग्वैदिक काल में पितृसत्तात्मक सामाजिक संगठन होने पर भी समाज में स्त्रियों की प्रतिष्ठा थी। बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा सामाजिक जीवन में उसे स्त्री, कन्या तथा माता के रूप में निरंतर सम्मान दिया जाता था। धार्मिक कृत्यों, सामाजिक उत्सवों एवं समारोहों आदि में वे पुरुष के साथ आसन ग्रहण करती है। पत्नी के रुप में स्त्रियां घर

की साम्राज्ञी होती थी। महिलाओं के लिए प्रस्तुत गृहस्वामिनी तथा सहधर्मिणी जैसे शब्द उसके पारिवारिक गरिमा एवं महत्त्व के परिचायक माने जाते है। कन्याओं को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार था। महिलाएं सभाओं मे भाग लेती थी, इस दृष्टि से वह सभावती नाम से अभिहित की जाती थी। अनेक स्त्रियां रणकौशल के कारण रणभूमि में अपने पतियों की सहायता करती थी। समाज मे परदा प्रथा का प्रचलन नहीं था तथा स्त्रियां स्वंत्रता पूर्वक विचरण कर सकती थी। पुत्र के समान पुत्री को भी उपनयन शिक्षा एवं यज्ञादि का अधिकार प्राप्त था यद्यपि वंश वृद्धिका अधिकार पुत्र को ही प्राप्त था। वैदिक समाज में गोद लेने की प्रथा का भी प्रचलन था। ऋगवेद मे पत्नी के लिए जायदेस्तम शब्द का प्रयोग किया गया हैं जिसका तात्पर्य होता है पत्नी ही गृह हैं।

समाज मे एक पत्नी प्रथा का प्रचलन था परन्तु कुलीन वर्ग में बहुविवाह की प्रथा थी। कन्याओं को अपने विवाह में मत देने का अधिकार तथा अपने वर चुनाव की स्वंत्रता प्राप्त थी। ऋग्वेद में सती प्रथा के सम्बंध में साक्ष्य प्राप्त होते थे, जिसमें उसे प्राचीन परम्परा कहा गया है। यद्यपि इस काल में ये केवल प्रतीक रुप में प्रचलित था। इस काल में घोषा, अपाला तथा विश्वारा जैसी विदुषी महिलाओं की जानकारी प्राप्त होती है जो कि उच्च शिक्षित तथा अनेक मंत्रो की रचियता थी। इस काल मे महिलाओं को दो अधिकार प्राप्त नहीं थे- प्रथम उन्हे राजनीति में भाग लेने का अधिकार नहीं था तथा द्वितीय उनको संपत्ति में कोई भाग नहीं दिया जाता था। ऋग्वेद काल में अनेक देवियों का उल्लेख मिलता है, जिनमें अदित, उषा, सरस्वती, श्रद्धा तथा इडा का नाम मह्त्वपूर्ण हैं। उत्तर वैदिक काल में पूर्व काल की अपेक्षा महिलाओं की स्थिति में परिवर्तन की स्थिती बनने लगी। कन्याओं को उपनयन संस्कार से वंचित कर दिया गया जिसके कारण उनकी शिक्षा अवरुद्ध हो गयी। इस काल से सम्बंधित ऐतरेय ब्राह्मण में कन्याओं के जन्म की निंदा की गयी तथा उनके जन्म को

चिंता का कारण बताया गया है। मैत्रायणी सहितां में स्त्री को धूत तथा मदिरा की श्रेणी मे रखा गया है।

स्त्रियों के लिए संगीत, नृत्य एवं गायन को महत्त्व पूर्ण माना गया तथा वह पति के साथ यज्ञ मे भाग लेती थी। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी परम विदुषी महिला के रुप में वर्णित है। राजा जनक के दरबार में गार्गी नामक विदुषी महिला का उल्लेख मिलता है। जिसने याज्ञवल्क्य को वाद-विवाद मे पराजित किया था। अविवाहित महिलाएं अपने पिता के साथ रहती थी। सामान्यत: बाल विवाह का प्रचलन नहीं था। परन्तु युवा अवस्था प्राप्त होने के पश्चात महिलाएं अविवाहित नहीं रहती थी। इस काल में ऐसी मान्यता थी कि स्त्री के बिना पुरुष पूर्ण नहीं होता था। बहुविवाह का प्रचलन केवल धनिक वर्ग एवं शासक वर्ग मे ही प्रचलित था। उत्तर वैदिक काल में विधवा स्त्री को पुनर्विवाह एवं नियोग का अधिकार प्राप्त था, परंतु यह मात्र पुत्र की प्राप्ति तक ही सीमित था चूकिं पिता की सम्पति का अधिकारी पुत्र ही माना जाता था, इसलिए पुत्र प्राप्ति पर अत्यधिक जोर दिया जाता था।

सामान्यतः विवाह सजातीय होते थे परन्तु कभी-कभी अंतरजातीय विवाह के प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। सूत्र काल में स्त्रियों की स्थिति निम्न होने लगी तथा उस पर विभिन्न प्रकार के प्रतिबंध आरोपित किये जाने लगे। वशिष्ठ धर्मसूत्र में स्त्रियों को स्वतंत्रता के योग्य नहीं माना गया। बाल्यवस्था में पिता उसकी रक्षा करता है। यौवनावस्ता में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र उसकी रक्षा करता है इस प्रकार स्त्री किसी पुरुष पर आश्रित होकर ही सुरक्षा एवं सम्मान प्राप्त कर सकती थी।

इस काल मे यदि कोई कन्या यौवनावस्था प्राप्त कर लेती है तथा उसका पिता उसका विवाह नहीं करता तो स्वंय वह विवाह कर सकती थी। महाकाव्य काल में एक स्त्री के अनेक पतियों का उल्लेख मिलता है। कुलीन महिलाओं के लिए शिक्षा की व्यवस्था होती थी। महाभारत में स्त्री का धर्म तथा काम का मूल बताया गया है तथा उसको समृद्धि का प्रतीक

माना गया है। स्वंयर प्रथा, सती प्रथा, नियोग प्रथा तथा बहुविवाह का प्रचलन इस काल मे मिलता हैं। यद्यपि यह प्रथांए केवल उच्च वर्ग तक ही सीमित थी। मनुस्मृति में स्त्री गरिमा के उच्चतर स्वरुप का निर्देश मिलता है कि जिस स्थान पर महिलाओं का सम्मान किया जाता है वहां देवता निवास करते हैं।

मौर्य काल में महिलाओं की स्थिति पूर्ववत बनी रही। चंद्रगुप्त मौर्य के द्वारा एक यूनानी कन्या से विवाह करना तत्कालीन समाज के लिए एक अनूठी घटना थी। इस काल मे स्वंयवर प्रथा तथा विशेष परिस्थितियों में विवाह करना तत्कालीन समाज के लिए एक अनूठी घटना थी। इस काल में स्वंयवर प्रथा तथा विशेष परिस्थितियों में विवाह विच्छेद का अधिकार स्त्रियों को प्राप्त था, जिसके लिए कोटिल्यने मोक्ष शब्द का प्रयोग किया है। मेगस्थनीज के अनुसार विवाह का मूल लक्ष्य जीवन साथी प्राप्त करना तथा संतानोत्पति करना था। स्त्री एवं पुरुष दोनों ही विशेष परिस्थिति में पुनिर्विवाह कर सकते थे। विधवा स्त्री अपने श्वसुर की अनुमति से विवाह कर सकती थी। संगोत्र, सपिण्ड तथा सप्रवर विवाह का निषेध किया गया था। बहुविवाह का प्रचलन था। लेकिन उसका दायरा बहुत ही सीमित था।

इस काल में पर्दा प्रथा का प्रचलन नहीं मिलता हैं। चंद्रगुप्त ने अपनी अंगरक्षिकाओं के रुप मे स्त्रियों को नियुक्त किया था। चाणक्य ने अपनी पुस्तक अर्थशास्त्र में स्त्रियों के लिए असूर्यपश्य शब्द का प्रयोग किया था। जिसका तात्पर्य होता है सूर्य को न देखने वाली स्त्री। इसके अतिरिक्त अंत:पुर शब्द का प्रयोग महिलाओं के निवास स्थान के रुप मे किया गया है। इससे ये तथ्य निकल कर सामने आता है कि समाज के उच्च वर्ग में प्रर्दा प्रथा की प्रवृति बढ़ रही थी। अर्थशास्त्र में गणिकाओं का उल्लेख मिलता हैं जिनका प्रमुख गणिकाध्यक्ष नामक अधिकारी होता था। इसके अन्तर्गत अभिनेत्री गायिका तथा नर्तकी को सम्मलित किया जाता था, जो कि राज दरबार से सम्बधित होती थी। गणिकाओं की अपनी एक विशिष्ट

श्रेणी होती थी, जो अपने रुप एवं गुणों के लिए प्रसिद्ध होती थी। तथा समाज मे उनको मान सम्मान प्राप्त होता था।

दक्षिण भारत मे बड़े-बड़े मंदिरो मे इनको देवदासी के रुप मे रखा जाता था जो कि देवताओं की सेविका के रुप में कार्य करती थी। गणिकाएं ललित कलाओं मे निपुण होती थी तथा वह राज्य की आय का एक साधन होती थी। कुछ गणिकाओं के गुप्तचर और निरीक्षक के रुप मे भी कार्य करती थी।

सातवाह्न काल मे शासकों ने अपने नाम के साथ अपनी माता के नाम का प्रयोग करके स्त्रियों के सम्मान को प्रदर्शित किया गया। इस काल में शतकर्णी प्रथम की पत्नी नागानिका तथा गौतमी शतकर्णी की माता गौतमी बलश्री ने प्रशासन में सक्रिय रुप से भाग लिया था। इस काल खंड मे स्त्रियों के द्वारा बड़ी मात्रा में दान दिए जाने का उल्लेख तत्कालीन अभिलेखों मे मिलता हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि महिलाओं को सम्पत्ति सम्बधी अधिकार प्राप्त होते थे।

इस काल में प्राप्त अनेक मूर्तियों में हम महिलाओं को अपने पति के साथ बौद्ध प्रतीको की पूजा करते हुए, सार्वजनिक सभाओं मे भाग लेते हुए तथा अथितिओं का सत्कार करते हुए प्राप्त करते हैं। यह स्पष्ट प्रमाण है कि महिलाओं को शिक्षा सम्बधी अधिकार प्राप्त थे।

गुप्तकाल में महिलाओं को प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया गया था तथा उनके जन्म को दुर्भाग्य का कारण नहीं माना जाता था। पुत्र को अधिक महत्त्व दिया जाता था। कालिदास की रचना कुमारसंभव में कन्या को कुल का प्राण कहा गया है। स्नेह एवं सम्मान की द्रष्टि से पुत्र एवं कन्या मे भेद कम किया जाता था। स्त्री का पद माता और पत्नी के रुप में ऊँचा था तथा उसे स्त्री रत्न एवं कन्या मे भेद कम किया जाता था स्त्री का पद माता एवं पत्नी के रुप मे ऊँचा था तथा उसे स्त्री रत्न एवं वीर प्रसविनी कहा जाता था।

सती प्रथा का प्रचलन था, परंतु उसे समाज मे अधिक मान्यता प्राप्त नहीं थी। कालिदास एवं वात्सायन ने सती प्रथा का उल्लेख किया है। सती प्रथा का प्रथम अभिलेखीय साक्ष्य हमको इसी काल खण्ड में प्राप्त होते हैं। नारद एवं पराशर स्मृति में विधवा विवाह का समर्थन किया है, परंतु अन्य स्मृतिकारों ने विधवा विवाह का विरोध किया हैं। गुप्त काल मे विवाह की आयु कम हो गयी तथा कन्याओं का विवाह १३ से १४ वर्ष की आयु में ही कर दिए जाने लगा। इस बाल विवाह का मूल कारण दूसरी शताब्दी ईसा पूर्व के पश्चात भारत पर होने वाले विदेशी आक्रमण को माना जाता था। बाल विवाह होने के कारण महिलाओं की शिक्षा प्रभावित होने लगी। अशिक्षित होने के कारण वह आर्थिक रूप पूरी तरह से पुरुष वर्ग पर निर्भर हो गई।

गुप्तकाल में परदा प्रथा का सामान्य चलन नहीं मिलता तथा महिलाएं स्वंत्रता पूर्वक विचरण कर सकती थी। परंतु गुप्तकाल में ही पहली बार घूँघट शब्द का प्रचलन मिलता है, जिससे यह प्रतीत होता हैं कि कुलीन वर्ग की महिलाएं घर से बाहर जाते हुए अपना मुंह ढककर निकलती थी। नारद तथा कात्यान जैसे स्मृतिकार ने कन्या के पिता की सम्पत्ति मे अधिकार किया।

इस काल में महिलाएं राजनीतिक कार्य में भी भाग लेती थी। चंद्रगुप्त द्वितीय की पुत्री प्रभावती गुप्ता ने अपने पति की मृत्य के बाद वाकाटक वंश के प्रशासन को कुशलता पूर्वक संचालित किया।

हर्षवर्धन के शासन काल में महिलाओ की स्थिती गुप्तकाल के समान ही प्रतीत होती है। हर्षवर्धन की माता यशोमती अपने पति की मृत्यु के पश्चात सती हो गयी थी। इसके अतिरिक्त हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री अपने पति की मृत्य के बाद सती होने का प्रयास करती है, परंतु हर्षवर्धन के द्वारा उसे रोक लिया जाता है। इस काल में पुर्नविवाह जैसी प्रथा धीरे-धीरे समाप्त हो रही थी। अंर्तजातिय विवाह का प्रचलन मिलता हैं। कुलीन

वर्ग के लोग एक से अधिक विवाह करते थे। परंतु एक से अधिक पत्नी होने पर सभी के देख-रेख करने जिम्मेदारी पति की होती थी।

हर्षवर्धन की मृत्य के पश्चात तथा दिल्ली सल्तनत की स्थापना के मध्य काल को पूर्वमध्य के नाम से जाना जाता है। इस काल मे स्त्रियों के अधिकारों एवं स्थिति मे अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगत होते है। विदेशी आक्रमणों की प्रचुरता के कारण सामाजिक व्यवस्था को अत्यंत कठोर बना दिया। इस काल में भारत का राजनीतिक, समाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक पतन के लक्षण दिखाई देते है।

इस काल में सामाजिक व्यवस्था कारों ने अन्तर्जातिय विवाह को प्रतिबंधित करने का प्रयास किया। मेधातिथि ने अपनी टीका में लिखा है। कि प्रतिलोम विवाह की स्थिति में संतान की जाति माता की जाति से निर्धारित होगी। नारद तथा पाराशर स्मृति में स्त्रियों के पुर्नविवाह के लिए कुछ नियम निर्धारित किए गए है। पति के गायब होने, मृत्य होने, सन्यासी होने तथा जाति बहिष्कृत होने पर ही स्त्रियों को विवाह की अनुमति प्रदान की गयी हैं। मेधातिथि ने विधवा विवाह का निषेध किया है, परंतु विषेश परिस्थिति में नियोग का अधिकार प्रदान किया है। इस काल में बाल विवाह तथा बहुविवाह ने स्त्रियों की दशा शोचनीय स्थिति में पहुंचा दिया था। पुत्री के जन्म होते ही उसकी हत्या कर दी जाने लगी। यदि कन्या इस बाल हत्या से बच जाती तो बाल्य अवस्था मे उसका विवाह कर दिया जाता था। विदेशी आक्रमणकारियों से बचने के लिये उसको अपने पूरे जीवन काल मे पर्दा प्रथा को अपनाना पढता था।

राजपूत काल मे महिलाओं को सम्मान का विषय माना जाता था। राजपूत अपनी पत्नियों से प्रेम करते थे तथा मान मर्यादा एवं सतीत्व की रक्षा के लिए अपने प्राणों का त्याग कर देते थे। राजपूत काल मे महिलाओं को अपना वर चुनने का अधिकार प्राप्त था। राजपूत काल मे बाल विवाह बड़े पैमाने पर होने लगा था। समाज मे सती प्रथा एवं जौहर प्रथा जैसी परम्परा चल रही थी। जौहर प्रथा के अंतर्गत राजपूत महिलाएं

सामूहिक रूप से आत्मदाह करती। विधवाओं को घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। उनके दर्शन मात्र को अशुभ माना जाता था। धर्मिक कार्यो में उनको वंचित कर दिया जाता था। उनके सिर के बालो को मूडंवा दिया जाता था। चालुक्य वंशीय विजय भट्टारिका तथा काश्मीर की रानी दिद्दा ने सफलता पूर्वक प्रशासन का संचालन किया।

चालुक्य शासन के दौरान अनेक महिलाओं को गवर्नर के रुप मे नियुक्त किया गया। राजशेखर की पत्नी अवंतिसुंदरी तथा मण्डन मिश्र की पत्नी भारती उस काल में प्रमुख विदुषी स्त्रियां थी। इस काल मे महिलाओं को सम्पति अधिकार प्राप्त था।

भारत के प्राचीन इतिहास का विश्लेषण करने से हमारे सामने यह तथ्य सामने आता है कि भारतीय महिलाओं की स्थिति सदैव एक समान नहीं रही थी। प्रारम्भिक दौर में महिलाओं को अनेक अधिकार प्राप्त थे वही धीरे-धीरे उसकी स्थिति में गिरावट आने लगी। पूर्व मध्य काल तक आते-आते महिलाएं भोग विलास की सामग्री के रुप में प्रस्तुत की जाने लगी। इसप्रकार हम देखते है कि जब भारत में दिल्ली सल्तनत की स्थापना हुई उस समय तक भारतीय समाज नारियों के प्रति जो गरिमा पूर्ण अभिव्यक्ति प्रारम्भ में मिलता था, उसका अंश मात्र भी अब नहीं था।

संदर्भ-ग्रन्थ-ग्रंथ:

1. डॉ. राजेंद्र पाण्डेय, भारत का सांस्कृतिक इतिहास, उत्तर प्रदेश संस्थान, द्वितीय संस्करण, १९८३ पृ.सं,२७
2. सत्यकेतु विधालंकार, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन, नई दिल्ली २०१७ पृ.सं,१६१
3. ए. ल. वाशम, उद्धृत भारत, शिवलाल एण्ड कम्पनी, आगरा, पृष्ठ स.४०.
4. द्विजेन्द्र रायण झा, कृष्णमोहन श्रीमाली, हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, हिंदी विश्वविधालय,२००१,पृ,स.२३२

5. डॉ. कैलाशचंद्र जैन, प्रचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएं, मध्य प्रदेश हिंदी अकादमी ग्रंथ भोपाल, १९८७, पृ.स.४०
6. रोमिल थापर, भारत का इतिहास, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली १९९३, पृ.स. ८५
7. डॉ. राजेंद्र पांडेय, भारत का सांसकृतिक इतिहास, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनऊ, १९८३, पृष्ठ स.११६
8. डॉ. वासुदेव विष्णु मिराशी, सातवाहनों एवं पश्चिम क्षत्रपों का इतिहास एवं अभिलेख़, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, लखनउ, १९८२, पृ.स.३
9. नीलकण्ठ शास्त्री, ए हिस्ट्री ओफ़ साउथ इंडिया, आक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, १९६६ पृ.स. १९०
10. उपेंद्र ठाकुर, सम एस्पेक्ट ऑफ इंडियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर, अभिनव पब्लिकेशन, नई दिल्ली, १९८६
11. नीरज श्री वास्तव मध्यकालीन भारत प्रशासन, समाज एवं संस्कृति,द्बितीय संस्करण, २०१८ पृ.स. १२०
12. ओम प्रकाश, प्राचीन भारत सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, पंचम संस्करण, २००१ पृ.स. २३४
13. डॉ. सुष्मिता पाण्डेय, समाज आर्थिक व्यवस्था एवं धर्म, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल, प्रथम संशकरण, १९९१ पृ.स. १८९.
14. आपस्तम्ब गृहसूत्र, चिन्नास्वामी शास्त्री चौखम्बा संस्कृत सीरीज, वाराणासी, १९२८ पृ.स. २८.
15. रामशरण शर्मा ,सोशल चेंजिज इन अर्ली मेंड्विल इंडिया, नई दिल्ली, पुन संस्करण, १९८१, पृ.स. ७८.

The Spiritual Authority and Status of Female Rishis in Vedic Society

Suman Naskar
Ph.D. Research Scholar, Nava Nalanda Mahavihara
Nalanda, Bihar- 803111

❖ Introduction:

The Vedic tradition, one of the most ancient and profound spiritual heritages of the world, recognizes the authority of both male and female sages in its sacred texts. Among these enlightened figures, rishikas (female seers) hold a unique position, contributing not only to the spiritual discourse of their time but also to the composition of hymns in the Rigveda. Names such as Lopamudra, Ghosha, Apala, Vishvavara and Romasha stand as testaments to the intellectual and spiritual stature of women in early Vedic society. The hymns attributed to these rishikas reflect deep philosophical inquiries, prayers for wisdom and aspirations for spiritual and worldly fulfillment. Their presence within the Vedic canon challenges later patriarchal constructs that sought to diminish the role of women in religious and scholarly domains.

The spiritual authority of these rishikas was not merely symbolic; it was deeply ingrained in the philosophical framework of the Vedic worldview. The Rigveda itself states:

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।"[1]

(*yatra nāryastu pūjyante ramante tatra devatāḥ* /)

That means where women are honored, there the gods rejoice. While this verse belongs to a later Smriti text, it resonates with the status once accorded to women in Vedic society. The female rishis were not only composers of hymns but also participants in debates, performers of rituals and seekers of transcendental knowledge. However, their prominence gradually declined as societal structures evolved, particularly in the later Vedic and post-Vedic periods.

---

[1] Manusmṛti 3.56

This paper examines the spiritual authority and status of female rishis, analyzing their hymns and their role in shaping early religious thought. By revisiting their legacy, this study aims to challenge prevailing assumptions about gender roles in Vedic tradition and highlight the intellectual contributions of these forgotten seeresses.

❖ **Female Rishis in the Veda:**

The Vedas, the most ancient scriptures of Hindu tradition, present a spiritual and intellectual landscape where both men and women contributed to the development of sacred knowledge. Among the many sages (rishis) who received divine revelations, a significant number were women, known as rishikas. These female seers composed hymns, performed rituals, engaged in philosophical debates and played an active role in shaping the early religious and spiritual discourse. While later societal structures marginalized their contributions, the Vedic texts- particularly the Rigveda- contain numerous references to these enlightened women, attesting to their wisdom, spiritual authority and active participation in sacred traditions.

The Rigveda, Yajurveda, Samaveda and Atharvaveda contain several references to the presence and contributions of female rishis. The Rigveda, the oldest and most authoritative Vedic text, contains hymns composed by both male and female rishis (seers). While the role of male sages is widely acknowledged, the contributions of female rishis, or rishikas, remain underexplored. However, their presence in the Rigveda highlights their spiritual authority, intellectual depth and active role in shaping Vedic thought. These rishikas not only composed hymns but also engaged in philosophical debates, sought divine blessings and expressed profound insights into cosmology, theology and human existence.

The Vedic tradition also emphasizes the equality of men and women in spiritual pursuits:

"यं कं कामयते यत्र ये च कामाः सहोमनः ।
सा पत्नी सहधर्मिणी यथा स्याम पुरंध्रिः ।।"[1]

[1] Atharvaveda 14.1.20

(*yaṁ kaṁ kāmayate yatra ye ca kāmāḥ sahomanaḥ* ।
***sā patnī sahadharmiṇī yathā syāma puraṁdhriḥ* ।।)**

That means- she, whom he desires and who shares his aspirations, shall be his true partner, walking with him in righteousness, like the noble women of old. This verse highlights the concept of 'Sahadharmacharini', where women were considered equal partners in spiritual and ritualistic endeavours.

The Rigveda explicitly acknowledges the wisdom of women, as seen in the following verse:

"समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः समानी योक्त्रे सह वो युजानाः ।
समानं वः सह नावः समाना ऋतावृधः समन्या शठयि वः ।।"[1]

**(*samānī prapā saha vo'nnabhāgaḥ*
***samānī yoktre saha vo yujānāḥ* ।**
samānaṁ vaḥ saha nāvaḥ samānā
***ṛtāvṛdhaḥ samanyā śaṭhayi vaḥ* ।।)**

It means - let your intentions be the same; let your hearts be united. Let your thoughts be in harmony, so that you may live together in unity. This verse suggests a spiritual and intellectual equality between men and women, reinforcing the idea that wisdom and devotion, rather than gender, were the primary criteria for respect in Vedic society.

● **Lopamudra: The Seer of Wisdom and Love**- One of the most revered rishikas of the Rigvedic tradition is Lopamudra, the wife of Sage Agastya. She is credited with composing Rigveda 1.179, where she engages in a philosophical and personal dialogue with her husband, emphasizing the balance between asceticism and worldly life:

"इमा अहं अस्मि यजता वसिष्ठा यतो मे ब्रह्मा विधता ततः सम् ।
मा मे ब्रह्म ऋषयो देवयन्तः काव्येन वाचं विमुञ्चन्ति विप्राः ।।"[2]

(*imā ahaṁ asmi yajatā vasiṣṭhā*
***yato me brahmā vidhatā tataḥ sam* ।**
mā me brahma ṛṣayo devayantaḥ

---

[1] Rigveda 10.191.3
[2] Rigveda 1.179.1

kāvyena vācaṁ vimuñcanti viprāḥ । ।)

That means - here I stand, devoted and wise, for I am endowed with divine wisdom and knowledge. Let not the wise, through their poetic speech, deny me my rightful place. Her hymn is remarkable for its assertion of female intellect and spiritual authority, as she urges Agastya to acknowledge her as an equal seeker of wisdom.

● **Ghosha: The Seer of Divine Healing-** Another eminent rishika, Ghosha, is associated with two hymns in the Rigveda (10.39 and 10.40). Born into a family of great sages, she suffered from a severe illness that prevented her from marrying. However, instead of resigning to fate, she composed hymns in praise of the Ashvins, the divine twin physicians, seeking their blessings:

"अश्विना यज्वरीरिषो दधाथे सुश्रवस्तमा।

ते नासत्या युवं सजा वसू सूक्तवाचः।।"[1]

(*aśvinā yajvarīriṣo dadhāthe suśravastamā ।*

***te nāsatyā yuvaṁ sajā vasū sūktavācaḥ । ।*)**

That means- o Ashvins, you who are the most renowned, bestow upon me your divine grace. You, the Nasatyas, are the givers of wealth, responding to those who compose sacred hymns. This hymn highlights Ghosha's spiritual agency, as she actively prays for divine intervention, emphasizing the Vedic belief in women as seekers of both material and spiritual fulfilment.

● **Apala: The Seer of Strength and Transformation -** Rishika Apala is another significant female seer, whose hymn in Rigveda 8.91 describes her interaction with Indra, the king of gods. She seeks his blessings to overcome affliction and transform herself:

"इन्द्र मम प्रथमो भागो अस्तु द्वितीयो भागो अपाम्।

अथो यदत्र तृतीयं भागं तत्पश्चात्तत्पुना कृणोतु।।"[2]

(*indra mama prathamo bhāgo astu dvitīyo bhāgo apām ।*

---

[1] Rigveda 10.40.1

[2] Rigveda 8.91.4

atho yadatra tṛtīyaṁ bhāgaṁ tatpaścāttatpunā kṛṇotu / /)

That means- O Indra, let the first portion be mine and let the second belong to the waters. As for the third, let it be renewed again and again. This hymn reflects Apala's unwavering faith and resilience, as she actively seeks divine intervention to restore her beauty and well-being. Her hymn challenges later notions of passive female devotion, showcasing an early Vedic era where women exercised spiritual agency.

● **Vishvavara: The Philosopher and Priestess-** Vishvavara, a highly esteemed rishika, composed Rigveda 5.28, which is notable for its philosophical depth and spiritual intensity. She calls upon the sacred fire (Agni) to bless the yajna (sacrifice):

"विश्वावरा वृषणं देवपत्नीरग्निर्देवेषु दधते स्वाहा।
सर्वासां देवानां जनित्वीं यज्ञे दक्षिणया सपर्ये।।"[1]

(viśvāvarā vṛṣaṇaṁ devapatnīragnirdeveṣu dadhate svāhā /
sarvāsāṁ devānāṁ janitvīṁ yajñe dakṣiṇayā saparye / /)

It means - Vishvavara, the divine consort, invokes the sacred fire among the gods. In this yajna, all divine mothers are honored with due reverence. This hymn highlights the role of women as ritualists and philosophers, emphasizing their active participation in Vedic ceremonies. Vishvavara's hymn also demonstrates that female rishis were not only seekers of knowledge but also transmitters of sacred traditions.

● **Romasha, Shashwati and Others-** Apart from these well-known figures, the Vedas also mention Romasha, Shashwati, Surya Savitri and others, who contributed to the Vedic tradition through their hymns and spiritual wisdom. Their presence in the Vedic corpus suggests that early Vedic society valued knowledge, devotion and insight over gender-based restrictions.

⁖ Philosophical and Theological Contributions of Female Rishis in Vedic Literature:

---

[1] Rigveda 5.28.1

The Vedic tradition acknowledges the intellectual and spiritual contributions of female rishis (rishikās), who played a crucial role in shaping philosophical and theological thought. Their hymns explore profound concepts such as Brahman (ब्रह्मन्), Ṛta (ऋत, cosmic order), Dharma (धर्म, righteous duty) and Mokṣa (मोक्ष, liberation), offering insights that later influenced Upanishadic and Vedantic philosophy.

● **Concept of Brahman and the Divine Feminine-** The Devi Sukta (Ṛgveda 10.125) presents one of the earliest articulations of Brahman through the voice of a rishikā:

"अहं रुद्रेभिर्वसुभिश्चरामि अहं आदित्यैरुत विश्वदेवैः ।"[1]

(*ahaṁ rudrebhirvasubhiścarāmi ahaṁ ādityairuta viśvadevaiḥ ।*)
That means I move among the Rudras and Vasus, among the Ādityas and all the gods. This hymn conveys an early monistic vision, equating the divine feminine with the supreme cosmic principle, a notion that later influenced Shakta philosophy (Keith, 1925, The Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads).

● **Inquiry into Ṛta and Dharma-** Gargi Vachaknavi, in the Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad, engages in a metaphysical debate with Yājñavalkya, questioning:

"कस्मिन्वायु प्रतिष्ठितः?"[2]

(*kasminvāyu pratiṣṭhitaḥ?*)

It means - on what is air (Vāyu) established? Her questioning led to the recognition of an imperishable reality (Akṣara Brahman), reinforcing Ṛta as the cosmic law governing existence (Olivelle, 1998, The Early Upaniṣads).

● **Mokṣa and Self-Realization-** Lopāmudrā, a Vedic philosopher, asserts in Ṛgveda 1.179.1:

"इमा अहं अस्मि यजता वसिष्ठा यतो मे ब्रह्मा विधता ततः सम् ।"[3]

(*imā ahaṁ asmi yajatā vasiṣṭhā yato me brahmā vidhatā tataḥ sam ।*)

---

[1] Ṛgveda 10.125.1
[2] Bṛhadāraṇyaka Upaniṣad 3.8.7
[3] Ṛgveda 1.179.1

It means here I stand, devoted and wise, endowed with divine wisdom. This reflects the idea that self-knowledge, rather than ascetic renunciation, is the path to mokṣa (Gonda, 1975, Vedic Literature).

● **Vak (Sacred Speech) and Theological Authority -** The Vāk Sukta (Ṛgveda 10.125) proclaims:

"अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुत मानुषेभिः ।"[1]

(*ahameva svayamidaṁ vadāmi juṣṭaṁ devebhiruta mānuṣebhiḥ* /)

That means I alone declare this truth, honored by gods and humans alike. This hymn establishes Vāk (speech) as the creative force of the universe, an idea foundational to Vedantic and Tantric traditions (Silburn, 1955, La Parole dans le Veda).

● **Role in Ritual and Theology-** Viśvāvarā, in Ṛgveda 5.28, leads a sacrificial hymn:

"विश्वावरा वृषणं देवपत्नीरग्निर्देवेषु दधते स्वाहा ।"[2]

(*viśvāvarā vr̥ṣaṇaṁ devapatnīragnirdeveṣu dadhate svāhā* /)

That means Viśvāvarā, the divine consort, invokes the sacred fire. This confirms that women officiated rituals and performed yajñas, challenging later restrictions imposed by Smṛti traditions (Jamison, 1996, Sacrificed Wife, Sacrificer's Wife).

❖ The Decline of Female Rishis in Later Vedic Literature:

In the early Vedic period, female rishis played a crucial role in spiritual and philosophical discourse. However, as the later Vedic literature (such as the Brāhmaṇas, Āraṇyakas and Upaniṣads) developed, the prominence of women in religious and intellectual domains began to decline.

One of the key factors in this decline was the increasing ritualization of Vedic practices. The Brāhmaṇa texts emphasized complicated yajñas (sacrificial rites), which became the domain of male Brahmin priests. Women, once active in composing hymns and engaging in debates, were gradually excluded from these sacred functions.

---

[1] Ṛgveda 10.125.3

[2] Ṛgveda 5.28.1

The Smṛti texts, particularly the Manusmṛti (circa 200 BCE - 200 CE), reinforced patriarchal norms, declaring:

"न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति"[1]

(*na strī svātantryamarhati*)

It means a woman should not have independence. Such texts institutionalized gender-based restrictions, limiting women's roles in education and priesthood. The Upaniṣads, though still recognizing women like Gargi and Maitreyi, shifted the focus from female rishis to male sages.

❖ Conclusion:

The female rishis of Vedic society held significant spiritual authority, contributing to philosophical, theological and ritualistic traditions. Their hymns in the Rigveda, such as those by Lopāmudrā, Viśvāvarā and Ghoṣā, reflect their deep intellectual engagement with Brahman, Ṛta and Mokṣa. Women like Gargi and Maitreyi actively participated in Upanishadic debates, shaping early metaphysical thought. However, with the rise of Brahmanical orthodoxy, their roles diminished, as seen in the Brāhmaṇas and Dharmasūtras, which imposed social restrictions on women's spiritual pursuits. Despite this decline, the legacy of rishikās underscores the inclusive and diverse nature of early Vedic wisdom. Recognizing their contributions is essential for reinterpreting Hindu spiritual traditions, reaffirming that intellectual and spiritual authority transcends gender. Their voices, preserved in Vedic hymns, continue to inspire contemporary discourse on gender and spirituality in Indian philosophy.

❖ References:

- Apte, Vaman Shivram, The Practical Sanskrit- English Dictionary. Motilal Banarsidass, 1965.
- Bose, Mandakranta. Women in the Hindu Tradition: Rules, Roles and Exceptions. Routledge, 2010.
- Brown, C. Mackenzie. The Triumph of the Goddess: The Canonical Models and Theological Visions of the Devi-Bhagavata Purana. SUNY Press, 1990.

---

[1] Manusmṛti 9.3

- Gonda, Jan. Vedic Literature: (Saṃhitās and Brāhmaṇas). Harrassowitz Verlag, 1975.
- Jamison, Stephanie W. Sacrificed Wife, Sacrificer's Wife: Women, Ritual and Hospitality in Ancient India. Oxford University Press, 1996.
- Keith, Arthur Berriedale. The Religion and Philosophy of the Veda and Upanishads. Harvard University Press, 1925.
- Macdonell, Arthur A. A Vedic Reader for Students. Oxford University Press, 1917.
- Maurer, Walter H. Pinnacles of India's Past: Selections from the Ṛgveda. John Benjamins Publishing, 1986.
- Olivelle, Patrick. The Early Upaniṣads: Annotated Text and Translation. Oxford University Press, 1998.
- Renou, Louis. Vedic India. Indological Book House, 1971.
- Sharma, Arvind. Women in Indian Religions. Oxford University Press, 2002.
- Sharma, Ram Karan. Elements of Vedic Thought and Culture. Rashtriya Sanskrit Sansthan, 2008.
- Silburn, Lilian. La Parole dans le Veda. Adrien-Maisonneuve, 1955.
- Tiwari, K. N. Comparative Ethics in Hindu and Buddhist Traditions. Motilal Banarsidass, 1979.
- Witzel, Michael. The Vedas: Texts, Language and Ritual. Oxford University Press, 2013.
- Winternitz, Maurice. A History of Indian Literature: Vedic Literature (Saṃhitās and Brāhmaṇas). Motilal Banarsidass, 1981.

❖ **Web Links:**

- https://en.wikipedia.org/wiki/Rigveda Accessed 11 Mar. 2025.
- https://fr.wikipedia.org/wiki/Digital_Corpus_of_Sanskrit Accessed 11 Mar. 2025.
- https://vedicheritage.gov.in/ Accessed 11 Mar. 2025.
- https://www.wisdomlib.org/hinduism/book/manusmriti-with-the-commentary-of-medhatithi Accessed 11 Mar. 2025.

- https://www.sacred-texts.com/hin/upan/index.htm Accessed 11 Mar. 2025.
- https://plato.stanford.edu/entries/indian-philosophy/ Accessed 11 Mar. 2025.

वैदिककालीन विदूषियां एवं उनका योगदान

सुमन लता
साहित्याचार्य, राजकीय संस्कृत महाविद्यालय
फागली, शिमला, हिमाचल प्रदेश

सारांशः

कई शताब्दियों से मानव समाज ने विकास के उच्चतर शिखर को प्राप्त किया है। हर व्यक्ति को समाज में स्वतन्त्रता होनी चाहिए। महिलाएं समाज में जनसंख्या का आधा हिस्सा हैं। समाज कितना सृजनात्मक और प्रगतिशील है इसके लिए उस विशेष समाज में महिलाओं की स्थिति क्या है इसपर निरभर करता है। इस शोध-पत्र के माध्यम से यह पता लगाने का प्रयास किया गया है कि महिलाओं ने वैदिककाल में अपनी भूमिका कैसे निभाई थी और कैसे अपना योगदान समाज को दिया था।

परिचयः

स्त्री व पुरुष ईश्वर की अद्भुत कृति है जिनमें शारीरिक व जैविक विभिन्नता के साथ-साथ सामाजिक-सांस्कृतिक विभेद भी पाया जाता है। मूलरूप से यह माना जाता है कि महिलाओं की जिम्मेदारी घर को संभालने की होती है और उनसे यह आशा की जाती है कि वह अपने इन उतरदायित्वों को भलीभांति पूर्ण करे, जिसके अनुरूप उनमें त्याग, सहनशक्ति, प्रेम, दया, सहानुभूति इत्यादि गुणों को सर्वोपरि माना गया है। पुरुषों के साथ बराबरी का दर्जा उसे कम ही प्राप्त हुआ है। महिलाओं का संसार घर की चार दीवारी के अन्दर तक ही सीमित रहा है। उसका उतरदायित्व केवल परिवार के सदस्यों तक ही सीमित हो कर रह गया। समाज को दिशा देने में महिलाओं की भूमिका किसी भी दौर में पुरुषों से कम नहीं रही है परन्तु अपने अस्तित्व के लिए आज भी महिलाओं का संघर्ष जारी है। जैसे-जैसे समय परिवर्तित होता गया, समाज में भी परिवर्तन होते गए और महिलाओं की स्थिति भी बदलती रही और समय के साथ-साथ इस स्थिति से कठोरता उत्पन्न होती रही।

वेदों में नारी को देवी, विदुषी, वीरों की जननी कहा गया है। वैदिक काल में महिलाओं ने समाज के हर क्षेत्र मे महत्वपूर्ण योगदान दिया, वे शिक्षा-धर्म और राजनीति में भी सक्रिय थी और उन्हें पुरुषो के समान अधिकार प्राप्त थे। मनुस्मृति के अनुसार "यत्रानार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता" इससे सिद्ध होता है कि वैदिक काल में महिलाओं की स्थिति काफी सम्मानजनक थी और उन्हें शिक्षा एवं यज्ञों मे भागीदारी और सम्पति में अधिकार प्राप्त थे। साथ ही वे अपनी पसंद का जीवन साथी भी चुन सकती थी।

वैदिक काल में महिलाओं की शिक्षा और ज्ञान की स्थितिः- :

वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने और ज्ञान प्राप्त करने का अधिकार था। पुत्री को भी पुत्र की तरह उपनयन संस्कार से संस्कारित कर अध्ययन करने का अधिकार था। कई महिला ऋषियां वेदमन्त्रों की द्रष्टा थीं। जैसे- गार्गी वाचक्नवी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा, अपाला, विश्ववारा, रोमशा एव सुलभा जैसी महिलाएँ अपनी बौद्धिक और आध्यात्मिक उपलब्धियों के लिए प्रसिद्ध थीं, जिन्होंने दार्शनिक, शिक्षक और भजन रचनाकार के रूप में वैदिक परम्परा में योगदान दिया। ब्रह्मवादिनी वैदिक काल में अध्ययन करने वाली अत्यन्त वुद्धिमान और विद्वान महिलाओं को कहा जाता था।

वैदिक विदूषियों का योगदान (विस्तृत विवरण):-

वैदिक युग में महिलाओं को शिक्षा, आध्यात्मिकता और दार्शनिक चर्चाओं में महत्त्व पूर्ण स्थान प्राप्त था। ऋग्वेद में कई ऋषिकाओं का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने न केवल वैदिक मंत्रों की रचना की बल्कि समाज को ज्ञान, धर्म और नैतिकता की दिशा भी दी। यहाँ कुछ प्रमुख वैदिक विदूषियों का विस्तृत विवरण दिया गया हैः-

<u>1. गार्गी वाचक्नवी</u>

परिचयः- गार्गी वाचक्नवी महर्षि वचक्नु की पुत्री थीं और वेदों, उपनिषदों तथा दर्शनशास्त्र में निपुण थीं। उन्हें ब्रह्मवादिनी कहा जाता है

अर्थात् वेदों और दर्शन में पारंगत महिला। बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य के साथ उनका प्रसिद्ध संवाद उल्लेखनीय हैं।

वह एक प्रसिद्ध वैदिक व्याख्याता और प्राकृतिक दार्शनिक के रूप में उन्होंने दार्शनिक चर्चाओं में भाग लिया जिनमें ऋषि याज्ञवल्क्य के साथ उनका सवांद भी चर्चा में शामिल है जिसका उल्लेख वृहदारण्यक उपनिषद् में किया गया है।

योगदानः- उन्होंने याज्ञवल्क्य से गूढ़ दार्शनिक प्रश्न पूछे, जैसेः- ब्रह्म क्या है?, ब्रह्मांड किससे बना है? तथा आत्मा और परमात्मा में क्या संबंध है?

उनकी तर्कशक्ति इतनी प्रभावशाली थी कि राजा जनक की सभा में उपस्थित कई विद्वान निरुत्तर हो गए। उन्होंने वेदांत दर्शन की नींव रखने में सहायता की और स्त्री शिक्षा के महत्त्व को स्थापित किया।

महत्त्व:

गार्गी ने यह प्रमाणित किया कि वैदिक काल में स्त्रियों को बौद्धिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। वेद और दर्शन में उनके योगदान के कारण उन्हें भारत की प्रथम महिला दार्शनिक माना जाता है।

2. मैत्रेयी

परिचयः- मैत्रेयी महर्षि याज्ञवल्क्य की दूसरी पत्नी थीं और उन्हें ब्रह्मविद्या की ज्ञाता माना जाता है। उन्हें भी ब्रह्मवादिनी की उपाधि प्राप्त थी। वह एक प्रसिद्ध शिक्षाविद् और हिंदू शास्त्रों की विद्वान थीं। इन्हें उनके ज्ञान और शिक्षा के प्रसार में योगदान के लिए जाना जाता है।

योगदानः- बृहदारण्यक उपनिषद् में उनका प्रसिद्ध संवाद मिलता है, जिसमें उन्होंने अपने पति याज्ञवल्क्य से पूछाः- क्या धन से अमरत्व प्राप्त किया जा सकता है? सच्चा सुख और आत्मज्ञान कैसे प्राप्त हो सकता है?

याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया कि धन से अमरत्व नहीं प्राप्त किया जा सकता, केवल आत्मज्ञान ही मोक्ष का मार्ग है। मैत्रेयी ने सांसारिक सुखों को त्यागकर आत्मज्ञान को चुना।

महत्त्व:- उन्होंने आत्मा, मोक्ष और ब्रह्मज्ञान की महत्ता को दर्शाया। उनके संवाद आज भी वेदांत दर्शन के महत्वपूर्ण आधार माने जाते हैं।

3. लोपामुद्रा

परिचयः- लोपामुद्रा का उल्लेख ऋग्वेद में मिलता है। वह महर्षि अगस्त्य की पत्नी थीं और स्वयं भी विदुषी थीं। वह संस्कृत और तमिल में अपनी प्रवीणता के लिए जानी जाती थी।

योगदानः- ऋग्वेद में उनके द्वारा रचित कुछ मंत्र संग्रहीत हैं। उन्होंने गृहस्थ जीवन और आध्यात्मिकता में संतुलन बनाए रखने का आदर्श प्रस्तुत किया। उन्होंने महर्षि अगस्त्य को भी सांसारिक जीवन की महत्ता समझाई और गृहस्थ धर्म को महत्त्व देने की प्रेरणा दी।

महत्वः- लोपामुद्रा ने समाज में महिलाओं की शिक्षा और स्वतंत्रता की आवश्यकता को प्रतिपादित किया। उन्होंने यह दिखाया कि एक स्त्री गृहस्थ जीवन और ज्ञान दोनों में संतुलन बना सकती है।

4. अपाला

परिचयः- ऋग्वेद में उल्लेखित एक प्रसिद्ध ऋषिका, जिन्होंने आयुर्वेद और औषधि शास्त्र में विशेष योगदान दिया। वे एक कुशल चिकित्सक भी थीं।

योगदानः- उन्होंने स्वास्थ्य और चिकित्सा पर कई मंत्रों की रचना की। उनके सूक्तों में औषधियों की महत्ता और प्राकृतिक चिकित्सा का उल्लेख मिलता है। वे अपनी सुंदरता और बुद्धिमत्ता के लिए प्रसिद्ध थीं।

महत्त्व- आयुर्वेद के विकास में उनका योगदान अमूल्य माना जाता है। उन्होंने चिकित्सा के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी को दर्शाया।

5. विश्ववारा

परिचयः- ऋग्वेद में उल्लेखित एक महान विदुषी, जिन्होंने कई वैदिक मंत्रों की रचना की। वे यज्ञ और धार्मिक अनुष्ठानों में भी भाग लेती थीं।

योगदानः- उनके मंत्रों में धर्म, नीति और समाज के कल्याण की शिक्षा दी गई है। उन्होंने स्त्री शिक्षा और आध्यात्मिकता पर विशेष बल दिया।

महत्त्वः- उन्होंने यह सिद्ध किया कि स्त्रियाँ भी वेदों की रचना और अध्ययन में समान रूप से सक्षम हैं। उनके योगदान से वैदिक परंपरा में स्त्रियों की भूमिका को बल मिला।

6. रोमशा

परिचयः- ऋग्वेद की एक अन्य विदूषी, जिन्होंने नैतिकता और आध्यात्मिकता पर बल दिया। वेदों में उनके सूक्त पाए जाते हैं।

योगदानः- उनके रचित मंत्रों में नैतिकता और आध्यात्मिक ज्ञान को विशेष स्थान दिया गया है। उन्होंने समाज में धर्म और सदाचार के महत्व को समझाया।

महत्त्वः- उन्होंने धार्मिक और नैतिक शिक्षा के प्रचार में योगदान दिया। उनके विचार वैदिक युग में स्त्रियों की उच्च स्थिति को दर्शाते हैं।

वैदिक समाज में विदूषियों की भूमिका

वैदिक काल में महिलाओं को शिक्षा ग्रहण करने और विद्वानों की संगति में भाग लेने की स्वतंत्रता थी। कई ऋषिकाओं ने न केवल वेदों के अध्ययन में भाग लिया, बल्कि उनके मंत्रों की रचना भी की। वे धार्मिक अनुष्ठानों और दार्शनिक चर्चाओं में पुरुषों के समकक्ष मानी जाती थीं। वैदिक विदूषियों ने शिक्षा, दर्शन, चिकित्सा और समाज सुधार में योगदान देकर स्त्री शिक्षा के महत्त्व को दर्शाया।

विदूषियों की यज्ञों में भागीधारी

विदुषियां धार्मिक, अनुष्ठानों और यज्ञों में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं। उन्हें अपनी पसन्द का जीवन साथी चुनने का अधिकार था। विवाह अनिवार्य नहीं था। वह आजीवन अविवाहित भी रह सकती थी। विधवाओं को अपने पति की सम्पति में अधिकार प्राप्त था।

निष्कर्षः

वैदिक विदूषियों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति में महत्त्व पूर्ण योगदान दिया। उनकी शिक्षाएँ आज भी प्रेरणादायक हैं और भारतीय समाज में स्त्रियों की समानता की अवधारणा को मजबूत करती हैं। इन विदुषियों का जीवन यह प्रमाणित करता है कि ज्ञान और बौद्धिकता किसी भी जाति या लिंग तक सीमित नहीं है, बल्कि यह सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध होना चाहिए।

महिलाएं पूरे संसार की जनसंख्या का आधा हिस्सा हैं परन्तु पुरुषों की मान्यताओं नें उन्हें बहुत पीड़ित किया तथा उन्हें दुनिया के विभिन्न हिस्सों में समान अवसरों से वंचित किया गया। महिलाओं की सामाजिक स्थिति सदैव एक जैसी नहीं रहती है। समय के साथ-साथ इसमे कई परिवर्तन आते गये। वैदिक काल में महिलाओं को सम्मान की द्दष्टि से देखा जाता था। इस काल में महिलाएं ऋषि भी थीं और उन्हें बहुत सम्मान दिया जाता था और उन्हें निर्णय लेने एवं प्रशासनिक कार्यों में भी अपनी भागीदारी देने अधिकार था। वैदिक काल में नारी की सामाजिक स्थिति उच्च थी। उन्हें वर चुनने का अधिकार, शिक्षा का अधिकार, सम्पति का अधिकार तथा राजनीति में भाग लेने का भी अधिकार प्राप्त था। वैदिक काल की महिलाओं के योगदान से ही प्रेरित होकर समय-समय पर महिलाओं ने अपने अधिकारों व हितों की लड़ाईयां लड़ी। युग परिवर्तित होते गये तथा महिलाओं के आदर-सम्मान अधिकारों में भी परिवर्तन आते गयें। लेकिन आधुनिक करण व शिक्षा के माध्यम से आज स्त्री पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर आगे वढ़ रही हैं और उज्ज्वल भविष्य का निर्माण कर रही है। किसी भी राष्ट्र का उत्थान व पतन उस राष्ट्र की महिलाओं की स्थिति पर निर्भर करता है।

Early Buddhist Women, Especially in the *Bhikkhuni Saṇgha*, were instrumental in promoting inclusivity and human dignity in Buddhist teachings

Ritesh Prakash Ovhal
Assistant Professor, Dept. of Pali & Buddhist Studies SPPU, Pune

Introduction

The early Buddhist community was marked by a remarkable level of inclusivity, particularly through the establishment of the *Bhikkhuni Saṇgha*, which allowed women to participate fully in monastic life. This ground breaking development occurred during a period when societal norms largely marginalized women, relegating them to subordinate roles. The Buddha's decision to ordain women as nuns not only challenged these prevailing norms but also laid the foundation for a more egalitarian spiritual community.

This article investigates how the presence and contributions of early Buddhist women fostered inclusivity and promoted the ideals of human dignity, challenging the patriarchal structures of their time. The *Bhikkhuni Saṇgha* served as a vital space for women to pursue spiritual development, engage in communal practices, and contribute to the broader Buddhist community. By examining the historical context and the teachings of early Buddhist women, this study reveals how their roles transcended traditional gender boundaries, advocating for compassion, mutual support and social harmony.

Moreover, the contributions of early Buddhist women highlight the importance of inclusivity in spiritual practice, emphasizing that the path to enlightenment is accessible to all, regardless of gender. This exploration not only sheds light on the historical significance of the *Bhikkhuni Saṇgha* but also offers valuable insights for contemporary discussions on gender equality and social justice within Buddhism and other spiritual traditions.

Historical Context

Establishment of The *Bhikkhuni Saṇgha*

The *Bhikkhuni Saṇgha*, established in the 5th century BCE, marked a significant shift in Buddhist history by allowing women to become monks. This change challenged social norms and broadened access to spiritual development. Mahāpajāpati Gotami, the Buddha's aunt and foster mother, initiated the *Bhikkhuni Saṇgha*, opening doors for women to pursue monastic life and catalyzing a more inclusive spiritual path within Buddhism. The *Bhikkhuni Pātimokkha*, a code of monastic rules specifically for *bhikkhunis*, was developed alongside the *Saṇgha*, providing a clear framework for the spiritual and communal practices of female monastics. This structure empowered women to live according to the Buddha's teachings, independent of familial or societal expectations, and engage in a life dedicated to meditation, teaching, and ethical conduct. The *Bhikkhuni Saṇgha* challenged the notion that enlightenment was accessible only to men, asserting that the path to spiritual liberation was open to all individuals, regardless of gender. The *Saṇgha* provided women with a respected role in the religious community, serving as an early model of gender equality within a spiritual context. The *Bhikkhuni Saṇgha's* teachings emphasized core Buddhist values such as compassion, mutual support, and social harmony, contributing to ideals of inclusivity and human dignity within Buddhism. These values fostered a sense of belonging and acceptance, encouraging women to engage deeply in communal life and service to others. In conclusion, the *Bhikkhuni Saṇgha* was not just an institutional development but a trans-formative advancement in early Buddhism, supporting ideals of equality and respect. It established a path for women to pursue spiritual enlightenment on equal terms with men, challenging prevailing social limitations and laying the groundwork for a Buddhist tradition grounded in inclusivity, compassion, and human dignity.

Early Buddhist Texts

Early Buddhist texts, such as the Pali Canon, offer valuable insights into the lives and teachings of early Buddhist women, particularly those within the *Bhikkhuni Saṇgha*. The Bhikkhuni Sangha, established in the 5th century BCE, allowed women to be ordained as monks, a groundbreaking development. Mahāpajāpati Gotami, the Buddha's aunt and foster mother,

played a crucial role in advocating for women's inclusion. The Pali Canon contains numerous references to early Buddhist women, highlighting their active participation in the spiritual community. The *Bhikkhuni Pātimokkha*, a set of rules governing *Bhikkhunis*, emphasized compassion, mutual support, and social responsibility. These women challenged gender norms and promoted human dignity, creating a more inclusive spiritual community. Their contributions continue to resonate in contemporary discussions on gender equality and spirituality.

<u>Contributions to Inclusivity</u>

Gender Equality

The *Bhikkhuni Saṇgha*, established in the 5th century BCE, was a significant development in Buddhism, allowing women to be ordained as monks. Mahāpajāpati Gotami, the Buddha's aunt and foster mother, played a pivotal role in advocating for women's inclusion in the monastic community. Early Buddhist texts, particularly the Pali Canon, offer valuable insights into the lives and teachings of early Buddhist women, showcasing their wisdom and ability to attain enlightenment. The *Bhikkhuni Pātimokkha*, a set of ethical guidelines, emphasized values such as compassion, mutual support, and social responsibility. These women challenged gender norms and promoted human dignity, demonstrating that enlightenment was accessible to all, regardless of gender. Their legacy continues to resonate in contemporary discussions on gender equality and spirituality, inspiring modern movements advocating for women's rights and inclusivity within religious traditions.

Compassion and Community Building

Early Buddhist women played a crucial role in promoting compassion and community building within the Buddhist community. The Bhikkuni Sangha, established in the 5th century BCE, allowed women to be ordained as monks, transforming the dynamics of the Buddhist community. Mahapajapati Gotami, the Buddha's aunt and foster mother, advocated for women's inclusion, ensuring the monastic community reflected these values. Early Buddhist texts, particularly the Pali Canon, provide insights into the lives and teachings of early Buddhist women, showcasing their spiritual achievements and contributions to the community. The

Bhikkhuni Patimokkha, a set of ethical guidelines, emphasized values such as compassion, mutual support, and social responsibility, fostering a sense of community among members. These women's teachings and practices challenged societal norms and promoted human dignity, laying the groundwork for a more equitable spiritual community. Their legacy continues to resonate in contemporary discussions on gender equality and spirituality, inspiring modern movements advocating for women's rights and inclusivity within religious traditions.

Case Studies

Notable Figures

This section will highlight notable early Buddhist women, such as Mahapajapati Gotami and Khema, examining their contributions to the Bhikkhuni Sangha and their influence on the ideals of inclusivity and human dignity.

Community Practices

An analysis of community practices within the Bhikkhuni Sangha will illustrate how these practices promoted inclusivity and supported marginalized individuals, contributing to a more equitable society.

Conclusion

The contributions of early Buddhist women particularly through the Bhikkhuni Sangha, played a crucial role in promoting inclusivity and human dignity within early Buddhism. Their legacy continues to inspire contemporary discussions on gender equality and social justice within Buddhist communities and beyond.

References

1. Bhikkhuni Sangha, (n.d.), In *Encyclopedia of Buddhism*.
2. Pali Canon, (n.d.), *The Word of the Buddha*.
3. Goleman D, (1997), *Destructive Emotions: A Scientific Dialogue with the Dalai Lama*.
4. Harvey P, (2000), *An Introduction to Buddhism: Teachings, History and Practices*.
5. Sangharakshita, (1990), *The Buddha's Noble Eightfold Path*.

वैदिक काल में महिलाओं की धार्मिक भूमिका

डॉ. रेखा कुमारी

सहायक-प्राध्यापिका

संस्कृत-विभाग, मैत्रेयी महाविद्यालय, दिल्ली विश्वविद्यालय

सारांश:

वैदिक काल भारतीय संस्कृति और परंपरा का आधार स्तंभ माना जाता है। इस काल में धर्म का विशेष महत्त्व था। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म को प्रथम स्थान प्राप्त था। ऋग्वैदिक धर्म के दो प्रमुख रूप- 1.भक्ति या श्रद्धा तथा 2.यज्ञ। इस शोध-पत्र में वैदिक धर्म के स्वरूप, यज्ञ परंपरा, महिलाओं की धार्मिक भूमिका का विश्लेषण किया गया है।

परिचय:-

"धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा"- अर्थात् धर्म में ही संपूर्ण जगत की प्रतिष्ठा है। पुरुषार्थ चतुष्टय में धर्म को सर्वोपरि माना गया है। ऋग्वैदिक धर्म के दो प्रमुख रूप थे- **भक्ति या श्रद्धा और यज्ञ**। ऋग्वेद में देवताओं की स्तुति की गई है, जिसमें भक्ति और श्रद्धा की भावना प्रकट होती है। ऋग्वेद में यज्ञ को धर्म का मुख्य अंग माना गया है:-

"तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।"

"यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः॥"

(ऋग्वेद १०.९०.१६)[1]

शतपथ ब्राह्मण में यज्ञ को ईश्वर रूप माना गया है- **"विष्णुर्वे यज्ञ:"**[2] वैदिक युग में महिलाओं की शिक्षा का विशेष महत्व था, और उन्हें उच्च कोटि की शिक्षा दी जाती थी, जिसमें वेदाध्ययन और यज्ञ अनुष्ठान की शिक्षा प्रमुख थी। सभी धार्मिक कार्य वेदों पर आधारित होते थे। प्रमाणित ऐतिहासिक संदर्भों के अनुसार 200 ई. पूर्व तक महिलाओं को वेदाध्ययन और यज्ञ का अधिकार प्राप्त था।

ऋग्वेद में उल्लेख मिलता है कि पति और पत्नी दोनों समान रूप से यज्ञ में भाग लेते थे-

"या दंपती सुमनसा सुनुत आ च धावत।

सा सुखं जीवनं नयति।।"[3]

शतपथ ब्राह्मण में स्पष्ट रूप से कहा गया है:-

"अयज्ञीयो वैष नोऽपत्नीकः।

तस्मादपि यज्ञे पत्नीयुक्तं चरन्ति।"

पत्नी रहित पुरुष की हवि को देवता स्वीकार नहीं करते थे अर्थात्, पुरुष अपनी पत्नी के बिना यज्ञ संपन्न नहीं कर सकता। अश्वमेध यज्ञ, राजसूय यज्ञ, वरुण प्रग्रह यज्ञ और वाजपेय यज्ञों में आरंभ से अंत तक पत्नी की उपस्थिति अनिवार्य थी। यह तथ्य इस बात को दर्शाता है कि वैदिक काल में महिलाओं को धार्मिक अनुष्ठानों में सक्रिय भूमिका प्राप्त थी। प्राचीन काल में **लवणयज्ञ** करने का विशेष अधिकार नारियों को था।[4]

ऋग्वेद के आठवें मंडल में एक कन्या का वर्णन आता है, जो स्नान करके सोमलता का रस लेकर आती है और उसे हवन के माध्यम से इंद्र को समर्पित करती है-

“कन्या वारयावती सोममपि स्नुता विदत्।”[5]

ऋग्वेद के पंचम मंडल में विश्ववारा नाम की कन्या का उल्लेख है, जो प्रातःकाल स्वयं यज्ञ का संचालन करती है।[6] यह दर्शाता है कि महिलाओं को धार्मिक अनुष्ठानों में स्वतंत्रता प्राप्त थी।

वैदिक काल में मूर्तिपूजा और मंदिरों का अभाव था, अतः यज्ञ ही धर्म का प्रमुख आधार था। महिलाएँ उपनयन संस्कार के बाद वेदाध्ययन करती थीं और यज्ञ कार्यों में सक्रिय रूप से भाग लेती थीं।

डॉ. भगवत शरण उपाध्याय के अनुसार, पत्नी न केवल सांसारिक बल्कि स्वर्गीय कर्तव्यों का भी पालन करती थी। आर्य परिवार में महिलाओं का एक प्रमुख कार्य अग्निहोत्र की अग्नि को सदा प्रज्वलित रखना था।

ऋग्वेद के द्वितीय मंडल में वर्णन आता है कि **अलंकृता नारी** सभा में भाग लेती थी। 7

शतपथ ब्राह्मण में विदुषी महिलाओं को यज्ञ में निमंत्रित करने का उल्लेख भी मिलता है।[8] भगवद्गीता में द्रव्य यज्ञ, योग यज्ञ, स्वाध्याय यज्ञ और ज्ञान यज्ञ के महत्व का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। वहीं, मनुस्मृति में जप यज्ञ और ज्ञान यज्ञ को विशेष महत्व दिया गया है।

दैनिक जीवन में पंच महायज्ञ अत्यंत महत्वपूर्ण माने जाते थे। ये पाँच महायज्ञ इस प्रकार हैं:

1. **ब्रह्म यज्ञ-** वेदों और शास्त्रों के अध्ययन और ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए।
2. **देव यज्ञ-** देवताओं को अर्घ्य, हवन और प्रार्थना अर्पित करने के लिए।
3. **भूत यज्ञ-** समस्त जीव-जंतुओं और प्रकृति के संरक्षण व सेवा के लिए।
4. **पितृ यज्ञ-** पूर्वजों की स्मृति में तर्पण और श्रद्धा अर्पण के लिए।
5. **अतिथि यज्ञ-** अतिथियों का सम्मान और सेवा करने के लिए।

इन यज्ञों को गृहस्थ आश्रम में रहने वाले प्रत्येक व्यक्ति को करना अनिवार्य माना जाता था। ये न केवल सरल और संक्षिप्त थे, बल्कि समाज और जीवन को संतुलित व समृद्ध बनाने में सहायक भी थे।

महिलाओं को यज्ञ भूमि में स्वतंत्र अधिकार प्राप्त था। महिलाएँ सामगायन का कार्य भी करती थीं-

"पत्नी कर्मेव एतेअत्र कुर्वन्ति यदुद्गातार:"9

ब्राह्मण के अनुसार, **वाजपेय यज्ञ** में यज्ञीय यूप (बलिपशु के लिए खड़ा किया गया खंभा) के सहारे पति-पत्नी एक साथ **स्वर्गारोहण** की कामना करते थे।10 इससे यह स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में पत्नी के बिना यज्ञ अधूरा समझा जाता था।

वैदिक काल में सद्योवधु और ब्रह्मवादिनी नारियों का उल्लेख किया गया है-

"द्विविधा स्त्रियो: ब्रह्मवादिन्य्र: सद्योवाहश्च।"[11]

सद्योवधु और ब्रह्मवादिनी- ऋग्वेद की यदि मैं बात करूं तो कई विदुषी और योग्य महिलाओं ने धार्मिक और सांस्कृतिक ज्ञान प्राप्त की है। वैदिक युग में स्त्रियां यज्ञोपवीत धारण करती थीं। वेदों का अध्ययन करती थी। प्रातः सायंकाल होमादि कार्य भी करती थी। शतपथ ब्राह्मण में नारियों के **व्रतोपनयन** का वर्णन मिलता है।[12] वैदिक काल में बाल विवाह की प्रथा नहीं थी इसलिए उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचर्य आश्रम में प्रवेश करते हुए नारियों को छह से सात वर्ष_यज्ञों एवं वैदिक प्रार्थनाओं के लिए अच्छी तरह से आवश्यक शिक्षाएं दी जाती थी।

सद्योवधु: यह वह नारी है जिनका विवाह 16 या 17 वर्ष की आयु में किया जाता था। ये गृहस्थ जीवन में भी ब्रह्मचर्य का पालन करती थीं- **"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्।"**[13] सद्योवधू स्त्रियां जो गृहस्थ जीवन में भी प्रवेश करती थी।

उदाहरण के लिए, अथर्ववेद में एक सूक्त है:

"यथा सिन्धुर्नदीनां साम्राज्यं सुषुवे वृर्षा।
एवं त्वं साम्राज्येऽधि प्रत्युरस्तं परेत्य च।।"[14]

इस सूक्त में व्यक्ति को साम्राज्य का अधिपति बनने और प्रतिद्वंदियों को पराजित करने के लिए प्रेरित किया गया है। यह दर्शाता है कि जिस प्रकार नदियां समुद्र में मिलती हैं, उसी प्रकार व्यक्ति को अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होना चाहिए। यहाँ नारी को गृह पर शासन करने का आशीर्वाद भी दिया गया है।

ऋग्वेद के दशम मंडल में उल्लेख है:

"सम्राज्ञी श्वसुरे भव, सम्राज्ञी श्वश्रवां भव।
ननान्दरि सम्राज्ञो भव, सम्राज्ञी अधिदेवृषु।।"[15]

इसमें नव विवाहित पत्नी को साम्राज्ञी बनने का आशीर्वाद दिया गया है। ऋग्वेद में नारी की सबसे अधिक चर्चा की गई है। उस युग की मनीषिणी नारियाँ सूक्तों का साक्षात्कार करती थीं और ऋषिकाओं के रूप में प्रसिद्ध थीं।

ऋग्वेद की **ऋषिकाएँ एवं उनका योगदान:** ऋग्वेद में अनेक ऋषिकाओं का वर्णन मिलता है, जिन्होंने वेदों के सूक्तों की रचना की थी:

1. **घोषा**- ऋग्वेद के दशम मंडल के 39 एवं 40 वें सूक्त की ऋषिका।
2. **लोमशा**- ऋग्वेद के प्रथम मंडल, 27 वें सूक्त, सातवें मंत्र की ऋषिका।
3. **विश्वावारा**- ऋग्वेद के पंचम मंडल, 28 वें मंत्र की ऋषिका।
4. **इंद्राणी**- ऋग्वेद के दशम मंडल, 145 वें मंत्र की ऋषिका।
5. **सची**- ऋग्वेद के दशम मंडल, 159 वें मंत्र की ऋषिका।
6. **अपाला**- ऋग्वेद के नवम मंडल, 59 वें मंत्र की ऋषिका।
7. **लोपामुद्रा**- इन्होंने अपने पति अगस्त्य ऋषि के साथ सूक्तों का दर्शन किया।
8. **सूर्या**- ऋग्वेद के दशम मंडल, 85 वें सूक्त की ऋषिका।
9. **उषा, वाक्, अदिति**- इन्होंने भी सूक्तों का साक्षात्कार किया।
10. **जुहू, यमी, श्रद्धा, सर्पराज्ञी**- इन ऋषिकाओं ने भी एक-एक सूक्त की रचना की।

इन विवरणों से यह स्पष्ट होता है कि वैदिक युग में महिलाएँ न केवल धार्मिक अनुष्ठानों में भाग लेती थीं, बल्कि वे कविताएँ लिखने, गान विद्या, नृत्यकला आदि में भी निपुण थीं।[16]

निष्कर्ष:

वैदिक काल में महिलाओं की भूमिका केवल घरेलू दायित्वों तक सीमित नहीं थी, बल्कि वे धर्म, शिक्षा और यज्ञों में समान रूप से सक्रिय

थीं। यज्ञीय परंपराओं में उनकी सहभागिता, वेदाध्ययन का अधिकार और धार्मिक अनुष्ठानों में उनकी भागीदारी यह दर्शाती है कि वैदिक समाज में महिलाओं को उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त थी। कालांतर में सामाजिक संरचनाओं में बदलाव के कारण उनकी धार्मिक एवं शैक्षिक भागीदारी सीमित होती चली गई। वर्तमान समय में, वैदिक परंपराओं के पुनः अध्ययन से महिलाओं की प्राचीन गौरवमयी स्थिति को पुनर्स्थापित करने की दिशा में प्रयास किए जा सकते हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. ऋग्वेद- 10.90.16
2. शतपथ ब्राह्मण-1.7.4.5
3. ऋग्वेद- 8.31
4. शतपथ ब्राह्मण- 4.1.6.10
5. ऋग्वेद- 8.91.1
6. ऋग्वेद- 5.28
7. ऋग्वेद- 2.36
8. शतपथ ब्राह्मण- 2.5.1.11
9. शतपथ ब्राह्मण- 14.3.1.35
10. शतपथ ब्राह्मण- 5.2.1.10
11. शतपथ ब्राह्मण- 1.13
12. वीरमित्रोदय संस्कारप्रकाश-भाग- 1पृष्ठ-402
13. अथर्ववेद- 1.15. 18
14. अथर्ववेद- 14 .1. 43
15. ऋग्वेद- 10.85.86
16. वैदिक साहित्य का इतिहास- पेज नंबर 71

वैदिक साहित्य में चर्चित विदुषियाँ

विजेन्द्र कुमार
दयालबाग एजुकेशनल इंस्टीट्यूट, दयालबाग आगरा

सारांश:-

वैदिक युग की शुरुआत हड़प्पा संस्कृति के पतन के बाद हुई। इस सभ्यता का मुख्य स्रोत वेद था। वैदिक साहित्य में चार वेदों उनकी संहिताओं, ब्राह्मण और अनेक उपनिषदों व वेदांगों को शामिल किया गया है। वैदिक युग भारतीय सभ्यता का एक महत्वपूर्ण कालखंड था, जिसमें महिलाओं को शिक्षा, स्वतंत्र चिंतन और बौद्धिक विमर्श का अधिकार प्राप्त था। इस युग में कई विदुषियों ने न केवल ज्ञान और दर्शन के क्षेत्र में योगदान दिया बल्कि समाज में बौद्धिक जागरूकता भी फैलाई। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद में लोपामुद्रा, गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा और विश्ववारा जैसी विदुषियों का उल्लेख मिलता है, जिन्होंने अपने विचारों और ज्ञान से समाज को दिशा प्रदान की। लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य की पत्नी थीं। उनके श्लोकों में नारी अधिकारों और स्वतंत्रता का उल्लेख मिलता है। गार्गी एक प्रखर दार्शनिक थीं, जिन्होंने याज्ञवल्क्य के साथ गूढ़ दार्शनिक प्रश्नों पर शास्त्रार्थ किया। मैत्रेयी ने आत्मा और ब्रह्मज्ञान के जटिल विषयों पर अपनी विद्वता का परिचय दिया। अपाला महर्षि अत्रि की पुत्री थी। वह वेदों की ऋचाओं को एक बार सुनकर ही याद कर लेती थी। वह ऋचाओं के गहन अर्थ खोजती थी तथा आशंकाओं को अपने पिता महर्षि अत्रि के सामने रखती थी। महर्षि अत्रि अपाला की आशंकाओं का शीघ्र समाधान कर देते थे।

इन विभूतियों का योगदान इस बात का प्रमाण है कि वैदिक काल में स्त्रियाँ न केवल शिक्षित थीं बल्कि वे समाज के बौद्धिक और आध्यात्मिक विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती थीं। उन्होंने नारी

सशक्तिकरण की अवधारणा को साकार किया और यह सिद्ध किया कि भारतीय संस्कृति में प्रारंभिक काल से ही महिलाओं को सम्मान और स्वतंत्रता प्राप्त थी। वैदिक युग में महिलाओं को शिक्षा, तर्क शीलता और दार्शनिक विमर्श में सक्रिय भागीदारी का अवसर दिया गया जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस काल में स्त्रियों की स्थिति सशक्त और सम्मानजनक थी।

मुख्य शब्द:- वैदिक युग, वैदिक साहित्य, चर्चित विदुषियां, ब्रह्मवादिनी

प्रस्तावना:-

वैदिक साहित्य में चर्चित विदुषियों ने भारतीय ज्ञान परंपरा में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इन विदुषियों ने अपने ज्ञान, बुद्धिमत्ता और आध्यात्मिक शक्ति का प्रदर्शन करके समाज में अपनी उच्च स्थिति को स्थापित किया है। भारतीय संस्कृति में प्राचीनकाल से ही नारी को विशेष स्थान प्राप्त रहा है। वैदिक युग में स्त्रियों को शिक्षा प्राप्त करने और बौद्धिक चर्चाओं में भाग लेने की स्वतंत्रता थी। इस युग में कई विदुषियाँ हुईं, जिन्होंने न केवल वेदों के अध्ययन-अध्यापन में भाग लिया, बल्कि उन्होंने अनेक मंत्रों की रचना भी की। ये विदुषियाँ समाज में विद्वत्ता एवं आध्यात्मिकता की प्रतीक मानी जाती थीं। इस लेख में हम वैदिक साहित्य में उल्लिखित प्रमुख विदुषियों का संक्षिप्त परिचय प्राप्त करेंगे।

ब्रह्मवादिनी गार्गी:- ब्रह्मवादिनी गार्गी वाचकन्वी का नाम दर्शनशास्त्र व वेदांत के क्षेत्र में सम्मान पूर्वक लिया जाता है। गर्ग गोत्र में होने के कारण उनका नाम गार्गी हुआ। महर्षि वचक्नु उनके पिता थे। बृहदारण्यक उपनिषद् में उनके और याज्ञवल्क्य के बीच शास्त्रार्थ का प्रसंग वर्णित है। इन्होंने याज्ञवल्क्य ऋषि से पूछा: भगवन्!यह जो पार्थिव पदार्थ है ,वह सब जल में ओतप्रोत है, तो जल किस में ओतप्रोत है महर्षि, याज्ञवल्क्य ने उत्तर दिया, जल वायु में ओतप्रोत है। इसी प्रकार क्रमशः वायु ,आकाश, अंतरिक्ष, गंधर्व, आदित्य-लोक, चंद्रलोक, नक्षत्र-लोक, देवलोक, इंद्रलोक

और प्रजापति लोक के बाद गार्गी ने पूछा, ब्रह्मलोक किस से ओतप्रोत है। तब याज्ञवल्क्य ने गार्गी को अति प्रश्न कह कर चुप करने को कहा। तत्पश्चात उसके दो और प्रश्नों के उत्तर में अक्षर तत्व का जिसे परब्रह्म परमात्मा कहते हैं उसका भली भांति निरूपण किया। जिसमें उन्होंने ब्रह्मा के अद्वितीय स्वरूप पर गहन चर्चा की। उनका यह शास्त्रार्थ विदुषियों के ज्ञान एवं बौद्धिक शक्ति का प्रतीक है।

मैत्रेयी:- मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी स्त्री थी। वृहदारणयक उपनिषद् में मैत्रेयी को एक अद्वैत दार्शनिक के रूप में वर्णित किया गया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में इन्हें ब्रह्म वादिनी के रूप में जाना जाता है। वृहदारणयक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य के साथ संवाद में वह आत्मा या स्वयं की हिंदू अवधारणा की पड़ताल करती है। मैत्रेयी आत्मा व ब्रह्मा की प्रकृति पर चर्चा करती है। वह मैत्री ऋषि की कन्या तथा महर्षि याज्ञवल्क्य की दूसरी पत्नी थी। पहली पत्नी मैत्रेयी से थोड़ी ईर्ष्या रखती थी, इसका कारण मैत्रैयी के गुण थे। जिसके कारण ऋषि याज्ञवल्क्य उसे अधिक प्रेम करते थे। पति के संन्यास लेने पर मैत्रेयी में अपने पति से आत्मज्ञान मांगा। वह सारी संपत्ति कात्यायनी को देकर अपने पति के साथ वन में गई। वृहदारणयक उपनिषद् में याज्ञव्ल्क्य आत्मा तथा ब्रह्म में अमरता और उसकी समानता के बारे में अपने विचार बताते हैं। देखो, सचमुच पति अपने पति के प्रेम के कारण प्रिय नहीं है, बल्कि आत्मा के प्रेम के कारण पति प्रिय है। पत्नी अपने पत्नी के प्रेम के कारण प्रिय नहीं है, बल्कि आत्मा के प्रेम के कारण पत्नी प्रिय है।

सभी प्रेम व्यक्ति की अपनी आत्मा का प्रतिबिंब है। माता-पिता का अपने बच्चों के प्रति प्रेम, धर्म या पूरे विश्व के प्रति प्रेम। ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी के प्रोफेसर मैक्स मूलर का कहना है कि बृहदारण्यक उपनिषद् के मैत्रेयी-याज्ञवल्क्य संवाद में वर्णित प्रेम व्यक्ति के जीवन के सभी पहलुओं और उससे परे तक फैला हुआ है; श्लोक २.४.५ में, "देवता किसी को देवताओं के प्रति प्रेम के कारण प्रिय नहीं हैं, बल्कि इसलिए कि

कोई स्वयं (आत्मा) से प्रेम कर सकता है इसलिए देवता प्रिय हैं"। याज्ञवल्क्य के संन्यासी बन जाने के बाद मैत्रेयी संन्यासिनी बन जाती है ।

लोपामुद्राः- लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य की पत्नी थी, जिनकी सृष्टि उन्होंने स्वयं की थी। इनको वरप्रदा और कौशीतकी भी कहते हैं। इनका पालन पोषण विदर्भ-राज निमि ने किया था, इसलिए इन्हें वैदर्भी भी कहते हैं। महर्षि अगस्त्य से विवाह होने पर इन्होंने राज-वस्त्रों व स्वर्ण आभूषणों का त्याग किया। जब श्री रामचंद्र जी वनवास के दौरान महर्षि अगस्त्य के आश्रम गए, तब लोपामुद्रा ने सीता को कुछ दिव्य वस्त्र प्रदान किये तथा ऋषि ने श्री रामचंद्र को धनुष, अक्षय तूणीर और खड़ग् दिए थे। लोपामुद्रा वनवासी बच्चों तथा ऋषि कुमारों को शिक्षित करती थी। लोपामुद्रा ने अपने पति के साथ मिलकर ललिता सहस्रनाम की रचना की थी। महर्षि अगस्त्य ने यह भजन हयग्रीव से सीखे थे, जो विष्णु के अवतार थे। अपने पूर्वजों की मुक्ति के लिए महर्षि अगस्त में लोपामुद्रा को पैदा किया था।

ब्रह्मवादिनी अपालाः- अपाला महर्षि अत्रि की पुत्री थी। वह वेदों की ऋचाएं एक बार सुनकर ही याद कर लेती थी। वह चारों वेदों की ज्ञाता थी। जो भी महर्षि अत्री अपने शिष्यों को बतलाते थे, अपाला उन्हें बहुत अच्छे से कंठस्थ कर लेती थी। ऋचाओं के गहन अर्थ ढूंढकर तथा अपनी आशंकाओं को पिता अत्री के सामने रखती थी, तो महर्षि अत्रि भी उनकी प्रतिभा को देखकर गदगद् हो उठते थे और उसकी समस्याओं का समाधान कर देते थे। अपाला को बचपन से ही चर्म रोग था, जो महर्षि अत्री की चिंता का कारण था। जब अपाला किशोरी हुई तो इसी कारण वह चिंतित रहने लगे। महर्षि ने कई युवकों का मन टटोलने की कोशिश की किंतु श्वेतकुष्ठ के कारण कोई भी युवक अपाला से शादी विवाह करने को तैयार नहीं हुआ। एक दिन कृशाश्व नामक ऋषि जो ब्रह्मवेता था, महर्षि अत्री के आश्रम में उसका आगमन हुआ। कृशाश्व ने सहज दृष्टि में अपाला को निहारा। वह स्तंभित रह गया, उन्हें अपाला के श्वेतकुष्ठ चिन्हों का आभास नहीं हुआ। कृशाश्व ने महर्षि अत्रि से अपाला के साथ परिणयः

की मांग की तो महर्षि प्रसन्नता से झूम उठे तथा महर्षि ने शुभ दिन एवम् शुभ मुहूर्त देखकर दोनों का विवाह कर दिया। कुछ समय तक उनका वैवाहिक जीवन बड़े ही प्रेम पूर्वक वातावरण में व्यतीत हुआ। जब कुशाग्र को श्वेतकुष्ठ चिन्हों का पता चला तो उसके मन में प्रेम के स्थान पर घृणा उत्पन्न हो गई। उसकी इच्छा हुई कि अपाला को ऋषि के आश्रम में छोड़ दे परंतु ऋषि के सामना करने का साहस वह जुटा नहीं पाया। अपाला वस्तुस्थिति समझ गई। वह स्वयं अपने पति की आज्ञा लेकर पिता के घर आ गई। एक दिन उन्होंने अपाला को अपने निकट बुलाया और कहा बेटी नियमित आहार, अध्ययन,उपासना व शयन ने तेरा उद्धार नहीं होगा। तू तपस्या कर उससे तेरा उद्धार होगा। अपाला पिता की आज्ञा मानकर इंद्र की तपस्या करने लगी। इंद्र उसकी तपस्या से प्रभावित हुए। वह जानती थी इंद्र को सोम रस प्रिय है। उसके पास सोमबेल थी, किंतु इसका रस निकालने का कोई साधन नहीं था। उसने अपने दांतों से सोमबेल को चबा कर उसका रस निकालकर इंद्र को अर्पित किया। इंद्र ने सोमरस का पान किया तथा अपाला को वरदान मांगने को कहा। अपाला ने वरदान मांगा हे इंद्र! मेरी त्वचा को दोष मुक्त कर दें, तथा मुझे सुलोम बनाए, तभी मैं अपने पिता व पति दोनों को खुश रख सकूंगी। इधर कृशाश्व भी आपला के जाने से परेशान थे। उन्हें लगा कि मैनें अपाला के साथ अन्याय किया, जैसी भी थी वह मेरी पत्नी है। वह अपाला को लेने आश्रम आए। अपाला को नए रूप में देखकर उनके आश्चर्य की कोई सीमा नहीं रही। नारी के तप की गरिमा के सामने उनके पौरुष की आंखें नीची हो गई। वह समझ गए की वास्तविक सौंदर्य तप में है, शरीर में नहीं। इंद्र ने तीन बार अपाला की त्वचा का शोध किया इससे अपाला का रोग पूरी तरह ठीक हो गया।

ब्रह्मवादिनी विश्ववारा:- ब्रह्मवादिनी विश्ववारा एक प्राचीन भारतीय विदुषी और ब्रह्मवादिनी थी जो ऋृग्वैदिक काल से संबंधित थी। वे वेदों पर गहन अध्ययन के लिए जानी जाती थी। विश्ववारा महर्षि अत्रि जो ब्रह्म के मानस पुत्र थे तथा इस मन्वंतर के सात ऋषियों में से एक थे,

उनकी पुत्री थी। महर्षि अत्रि ने ब्रह्म की सत्ता का मंत्र देखा था। वह एक असाधारण तपस्वी महिला थी। इन्होंने कई वर्षों तक तपस्या की थी व ऋषिका के पद को प्राप्त किया था। इनके मंत्रों की श्रेष्ठता को पहचान कर महान ऋषियों ने इन्हें ऋग्वेद में शामिल किया। ऋग्वेद के पांचवें मंडल के दूसरे अनुवाद का २८वां सुक्त इन्होंने रचा। विश्ववारा ने अपने मंत्रों में अग्नि के महत्व पर जोर दिया। इन्होंने ऋग्वेद के कई अनुच्छेदों की गहन विवेचन की है। विश्ववारा ने उन लोगों का मुंह बंद किया है, जो स्त्रियों को वेद की अनधिकारिणी मानते हैं।

ब्रह्मवादिनी रोमशा:- ब्रह्मवादिनी रोमशा बृहस्पति की पुत्री थी और भावभव्य की पत्नी थी। इनके शरीर पर रोमावली थी इसलिए इनका नाम रोमशा पड़ा। इनके पति रोमावली के कारण इन्हें नहीं चाहते थे। ऋग्वेद के १.१२६ में रोमशा के बारे में लिखा जहां उनके पति ने उनको चिढ़ाया था। उन्होंने उत्तर दिया भले ही उनका शरीर बालों से भरा हो लेकिन उनके सभी अंग पूरी तरह विकसित है। रोमशा बुद्धि को बढ़ाने वाली जानकारी के बारे में चर्चा करती थी। वह वेदों की मंत्र-द्दष्टा ऋषिकाओं में से एक थी।

ब्रह्मवादिनी वाक्:- ब्रह्मवादिनी वाक् अम्भृण ऋषि की कन्या थी। यह प्रसिद्ध ब्रह्मज्ञानिनी भी थी। इन्होंने भगवती देवी के साथ अभिन्नता प्राप्त कर ली थी। ऋग्वेद संहिता के दसवें मंडल के १२५वें सुक्त में देवी सूक्त के नाम से इनकें द्वारा रचे ८मंत्र रखे गए हैं। मुख्यतया चंडी पाठ के साथ इन ८मंत्रों के पाठ का बड़ा महात्म्य है। इन मन्त्रों में अद्वैतवाद का सिद्धांत प्रतिपादित है।

ब्रह्मवादिनी घोषा:- ब्रह्मवादिनी घोषा वैदिक काल की भारतीय दार्शनिक और द्दष्टा थी। बचपन में वह त्वचा विकार से पीड़ित थी। किवदंती के अनुसार अश्वनी कुमार ने उसका इलाज किया और उसे युवावस्था, स्वास्थ्य एवम् सुंदरता प्रदान की। उसके पिता कक्षीवत तथा दादा दीर्घतमास थे। मिथक के अनुसार अश्वनी कुमार ने उसे मधु विद्या

सिखाई। अध्याय १० के भजन ३९ में ४० में अश्वनी कुमार की प्रशंसा की गई है। दूसरा भजन उनकी अतरंग भावनाओं व इच्छाओं को व्यक्त करता है। वह मंत्र द्दष्टा, ब्रह्मवादिनी और ब्राह्मण की वक्ता या उद्घोषक के रूप में जानी जाती थी। घोषा ने विवाह किया। उसका एक बेटा सुहस्त्य था। उसने भी ऋग्वेद का एक भजन लिखा था।

ब्रह्मवादिनी सूर्या:- ब्रह्मवादिनी सूर्या के पिता का नाम सूर्य है। देवी सूर्या ने दसवें मंडल के ८५ सूक्त का साक्षात्कार किया था। इस सूक्त में विवाह संबंध का वर्णन है। आरंभ की ऋचाओं में चंद्रमा के साथ सूर्या के विवाह का वर्णन है। वेद शास्त्रों में जितने आख्यान है उन सबके आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक तीनों अर्थ होते हैं। वैदिक ऋचाओं के भी तीन अर्थ है। वह आध्यात्मिक होने के साथ-साथ ऐतिहासिक तथ्यों से युक्त है। एक और जहां उन्हें नक्षत्र के रूप में ग्रहण किया है तो दूसरी और उनका आध्यात्मिक वर्णन है, जहां उनको अधिष्ठात्री देवता के रूप में लिया गया है

ब्रह्मवादिनी शश्वती:- ब्रह्मवादिनी शश्वती अंगिरा ऋषि की कन्या थी। ऋषि कन्या होने के कारण यह आरंभ से ही बहुत गूढ़ बातें करती थी तथा वेदों के प्रति अत्यधिक अनुराग भी रखती थी। इसका विवाह उस समय के सुप्रसिद्ध राजा आसंग के साथ हुआ। विवाह के पश्चात भी इस महिला ने वेदों की व्याख्या करने का कार्य निरंतर जारी रखा। इनके द्वारा ऋग्वेद के आठवें मंडल की ३४वीं ऋचा का संकलन किया गया है।

ब्रह्मवादिनी ममता:- ब्रह्मवादिनी ममता दीर्घतमा ऋषि की माता थी, जो बहुत बड़ी विदुषी व ब्रह्म ज्ञान से संपन्न थी। अग्नि देव के लिए इन्होंने स्तुति पाठ किया जिसका वर्णन ऋग्वेद के प्रथम मंडल के दसवें सूक्त की एक ऋचा में मिलता है।

ब्रह्मवादिनी उशिज:- ब्रह्मवादिनी उशिज दीर्घतमा ऋषि की पत्नी का नाम था। प्रसिद्ध महर्षि काक्षीवान् इन्हीं के सुपुत्र थे। ऋग्वेद के प्रथम

मंडल के ११६ से १२१ तक के मंत्र इन्हीं के द्वारा संकलित है। प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी घोषा इनकी पौत्री थी। इनका पूरा परिवार ब्रह्मपरायण था।

ब्रह्मवादिनी शची:- इंद्राणी को शची पुलोमी के नाम से भी जाना जाता है। इंद्राणी देवों की रानी व इंद्र की पत्नी हैं। इनके पिता का नाम असुर पुलोमन था। इंद्राणी इंद्र को शक्ति प्रदान करने वाली व अनेक ऋचाओं की ऋषिका है। वह पतिव्रताओं में श्रेष्ठ और स्त्री जाति की आदर्श है जो इंद्र के साथ सिंहासन पर विराजती है। इंद्राणी षोडश शक्तियों में एक शक्ति मानी गई है। हिंदू धर्म में इंद्राणी को देवी के तौर पर पूजा जाता है। इंद्राणी भौतिक और आध्यात्मिक दोनों दुनिया के रहस्याओं को समझने में सक्षम है।

शची की सुंदरता के कारण कई पुरुष उनको चाहते थे, जिन्होंने उनसे शादी करने की कोशिश की। जब इंद्र वत्रासुर के वध के लिए तपस्या कर रहे थे, तब चंद्रवंश के नश्वर राजा नहुष को स्वर्ग का शासक चुना गया। बाद में उसने शची को बहकाने और उसे अपनी रानी बनाने की कोशिश की। हालांकि उसने चतुराई से उसे सिंहासन से उतारने और बाद में अपने पति के साथ फिर से जुड़ने की योजना बनाई। नहुष को महर्षि अगस्त्य में सर्प बनने का श्राप देकर इंद्रासन से नीचे गिरा दिया और इंद्र को पुनः इंद्रासन प्रदान किया। हिंदू धर्म के एक प्रमुख संप्रदाय शक्तिवाद में यह एक महत्वपूर्ण देवी है। इंद्राणी को शायद ही कभी एक स्वतंत्र देवता के रूप में पूजा जाता है।

वैदिक साहित्य में विदुषियों का योगदान:-

वैदिक साहित्य में महिलाओं का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है, चाहे वह धार्मिक अनुष्ठान हों, मंत्रों का उच्चारण हो या वेदों के अध्ययन में हो। हालांकि समाज में पुरुषों का प्रभुत्व था लेकिन कुछ महिलाओं ने वेदों, उपनिषदों और अन्य धार्मिक ग्रंथों में अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज कराई। वेदों में कई सूक्तों की रचनाकार एक महिला है, जो

यह दर्शाता है कि उस समय महिलाओं को भी धार्मिक और बौद्धिक क्षेत्र में समान स्थान प्राप्त था।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. ऋग्वेद-१०/१२५
2. ऋग्वेद- १/१०
3. ऋग्वेद- १/१२६
4. ऋग्वेद- १०/८५/४५
5. ऋग्वेद- १०/८५/४६
6. ऋग्वेद- १०/३९
7. ऋग्वेद- १०/४०
8. ऋग्वेद- १०/१४९
9. ऋग्वेद- १०/१५९
10. ऋग्वेद- ८/३४
11. ऋग्वेद- ८/९१
12. ऋग्वेद- ५/२८
13. बृहदारण्यक उपनिषद्- २/४
14. बृहदारण्यक उपनिषद्- २/५
15. ऋग्वेद- १/११६-१२१
16. बृहदारण्यक उपनिषद्- २.४.२
17. बृहदारण्यक उपनिषद्- २.४.५

भारतीय ज्ञान परम्परा के संवर्धन में वैदिक विदुषियों की भूमिका

डॉ. अर्चना सिन्हा
अध्यक्ष, संस्कृत विभाग, द ग्रेजुएट स्कूल कॉलेज फॉर वूमेन जमषेदपुर, कोल्हान विष्वविद्यालय, चाईबासा

भारत में ज्ञान परम्परा का उदय वेदों से ही माना गया है। वेद प्राचीनतम आर्य-संस्कृति की प्राचीनतम ज्ञानराशि है, जो अविनाशी परमेश्वर की भांति ही शाश्वत सत्य की अभिव्यक्ति है। भारतीय मनीषियों द्वारा भाषा, दर्शन, तर्कशास्त्र, मनोविज्ञान, खगोल एवं आयुर्वेद जैसे गहन विषयों पर अनेक ग्रन्थों की रचना की गई जिसका भारतीय ज्ञान परम्परा के अभिवृद्धि में अतुलनीय योगदान रहा है। भारत में नालन्दा, तक्षशिला, विक्रमशिला आदि अनेक प्रतिष्ठित शिक्षा के केन्द्र थे जहाँ गुरुकुल पद्धति से पढ़ाई होती थी वहाँ ज्ञानर्जन के लिए संपूर्ण विश्व से विद्यार्थी आते थे।

वैदिक काल भारतीय इतिहास के उस स्वर्णिम काल का अंकन है जिसमें स्त्रियाँ ऋषिका की उच्चतम पद को प्राप्त करती थी एवं शास्त्रार्थो में भी भाग लेती थी। भारतीय ज्ञान परम्परा के संवर्धन एवं संरक्षण में वैदिक ऋषिकाओं का अप्रतिम योगदान रहा है। वेदों में नारी का जीवन अत्यंत पवित्र श्लाघ्य, सुन्दर और गौरवपूर्ण परिलक्षित होता है। 'नारी' सृष्टि भी है और स्रष्टा भी। नारी शक्ति की सघन पूँज है। नारी जीवन दायिनी चेतना के रूप में अभिनंदित होती रही है। वैदिक दृष्टि में पुरुष एवं स्त्री परिवार, समाज और राष्ट्ररूपी रथ के दो चक्र हैं, किसी एक के अभाव में रथ का गतिमान होना असंभव है। अथर्ववेद में कहा गया है, पुरुष सामवेद है और स्त्री ऋग्वेद, पुरुष द्युलोक है और स्त्री पृथ्वी दोनों तत्व परस्पर एक-दूसरे के पोषक, पूरक एवं संवर्द्धक है।

नारी उत्थान के लिए सर्वप्रथम आवश्यकता शिक्षा संवर्द्धन की होती है। अधिकारों से अधितिष्ठित वैदिक नारी को पुरुषों के तुल्य ही

शिक्षित होने का अधिकार था। नारियों ने अनेक ऋचाओं का प्रणयन किया और ऋषिकायें हुई। ऋग्वेद में 24 और अथर्ववेद में 5 मन्त्र द्रष्टा ऋषिकाओं का उल्लेख है। ऋग्वेद में इन 24 ऋषिकाओं द्वारा दृष्ट मंत्र 224 हैं और अथर्ववद में 5 ऋषिकाओं द्वारा मंत्र 198 हैं इस प्रकार दोनों वेदों में ऋषिकाओं द्वारा दृष्ट मन्त्रों की संख्या 422 है। सरमा, अपाला, शची, घोषा, लोपामुद्रा, गोधा गार्गी, मेत्रैयी, विश्ववारा आदि ऐसी ही महिमा मण्डित विदुषियाँ थी जिसमें कतिपय ऋषिकाओं की महत्ता अधोलिखित हैः-

'लोपामुद्रा' वेदों की ज्ञाता और तत्त्वज्ञान में प्रवीण थी। वैज्ञानिक दृष्टिकोण रखने वाली लोपामुद्रा ने पति याज्ञवल्क्य से संवाद में भगवान के अस्तित्व, ब्रह्म के रहस्यों और जीवन के उद्देश्य के बारे में जिज्ञासा व्यक्त की थी। उनके मत में नारी ज्ञान, तप एवं उच्चतम स्तर पर विद्वता प्राप्त कर सकती है। लोपामुद्रा का योगदान भारतीय संस्कृतियों, वेदों तत्त्वज्ञान और महिला शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत महत्वपूर्ण है।

'अपाला' वैदिककाल की प्रख्यात विदुषी थी। अपाला का संपूर्ण जीवन कठिन-साधना, तपस्या और आत्मसंयम का प्रतीक था। अपाला बहुत सुन्दर थी, लेकिन कालान्तर में शारीरिक कष्टों और बीमारियों से पीड़ित हो गई। अपाला ने एकांतवास में अथक एवं पूर्ण रूप से ध्यान और साधना से देवताओं का आर्शीवाद प्राप्त किया तथा मानसिक एवं शारीरिक रूप से स्वस्थ हुई। भारतीय धार्मिक परम्परा में विदुषी अपाला के स्वरूप को तपस्या एवं मानसिक दृढ़ता के प्रतीक के रूप में देखा जाता है।

'विश्ववारा' एक विदुषी एवं ब्रह्मवादिनी थी वह महर्षि अत्रि के वंश में उत्पन्न हुई। ऋग्वेद में उनके कई अनुच्छेद की गहन व्याख्या मिलती है। विदुषी विश्ववारा ने ऋग्वेद के पांचवे मण्डल के द्वितीय अनुवाक के 28वें अनुच्छेदों की गहन विवेचना करके उन लोगों का मुख बन्द कर दिया जो स्त्रियों को वेद की अनाधिकारिणी मानते थे।

'घोषा' कक्षीवान की ब्रह्मवादिनी पुत्री थी। वह समस्त आश्रमवासियों की प्रिय थी। किन्तु बाल्यावस्था में ही शरीर से विकृति के कारण किसी ने भी उनसे विवाह करना स्वीकार नहीं किया। घोषा को एक बार सहसा ध्यान आया कि उसके पिता कक्षीवान ने अश्विनी कुमारों की कृपा से आयु, शक्ति और स्वास्थ्य का लाभ प्राप्त किया था। घोषा ने तपस्या की एवं साठ वर्षीय मन्त्रद्रष्टा हुई। अश्विनी कुमारों की स्तुति किया जिससे प्रसन्न होकर अश्विनी कुमारों ने घोषा को रूप-यौवन प्रदान किया, तदनंतर उनका विवाह हुआ एवं पुत्रधन की प्राप्ति हुई।

'गार्गी' वैदिक भविष्य वक्ता विद्वान ऋषि वाचक्नु की पुत्री थी, जिसका उल्लेख वृहद्वारण्यक उपनिषद् में मिलता है। गार्गी महान प्राकृतिक दार्शनिक, वेदों की ज्ञाता ब्रह्मवादिनी के नाम से जानी जाती थी। विदेह शासक जनक के द्वारा आयोजित शास्त्रार्थ में गार्गी ने अपनी अदभुत प्रतिमा, मेघा और विलक्षण तर्कशक्ति से ऋषि याज्ञवल्क्य से अध्यात्म विषय पर संवाद करती है और ऋषि याज्ञवल्क्य ने शास्त्रार्थ कर सभी प्रश्नों का यथाविधि उत्तर दिया।

'इन्द्राणी' इन्द्र की विदुषी पत्नी वेदों की प्रकांड विदुषी थी। शची को ही इन्द्राणी कहा जाता है। ऋग्वेद के कई सूक्तों पर शची ने अनुसंधान किया। शची देवी पतिव्रता स्त्रियों मे श्रेष्ठ थी, इन्होंने तप-बल के द्वारा पति का खोया हुआ साम्राज्य एवं पद-प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त की थी।

'अरून्धति' एक तपस्विनी थी। अरून्धति भक्ति शुद्धता गुणों की प्रतीक थी। शतपथ ब्राह्मण में उल्लेख है कि श्रीराम के गुरु सप्तऋषि वशिष्ठ के गुरुकुल में संगीत एवं पर्यावरण संरक्षण का शिक्षण उनकी महान विदुषी पत्नी अरून्धति ही देती थी।

'वृत्राणि' मुख्यतः यज्ञों और धार्मिक अनुष्ठानों में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाने वाली विदुषी थी, वे यज्ञ की क्रियाओं में निपुण थी।

'ममता' उतनय अंगीरस ऋषि की पत्नी और दीर्घतमा मामतेय ऋषि की माता थी, जो महान विदुषी एवं ब्रह्म ज्ञान संपन्न थी। अग्नि देव

के लिए इनकी स्तुति पाठ ऋग्वेद संहिता के प्रथम मण्डल के दशम सूक्त की एक ऋचा में मिलता है।

'उशिज' दीर्धतमा ऋषि की पत्नी का नाम था, प्रसिद्ध महर्षि कक्षिवान इनके पुत्र थे। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 116 से 121 तक के मन्त्र इन्हीं के द्वारा संकलित है। प्रसिद्ध ब्रह्मवादिनी घोषा इनकी पौत्री थी। इनका सम्पूर्ण कुटुम्ब ब्रह्मपरायण था।

'रोमशा' एक ब्रह्मवादिनी थी, जो ऋग्वेदों के मन्त्र द्रष्टाओं में से एक थी। रोमशा वृहस्पति की पुत्री और भावभव्य की धर्मपत्नी थी। उसके पूरे शरीर पर रोम था इसलिए उन्हें रोमशा कहते थे। इन्होंने ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के 126वें सूक्त की सात ऋचाओं का संकलन किया था।

'मैत्रेयी' को भारतीय बौद्धिक महिलाओं का प्रतीक माना जाता है। महर्षि याज्ञवल्क्य की दो पत्नियों में से एक के रूप में प्रतिष्ठित थी। मैत्रेयी ने 'ब्रह्मज्ञान' की प्राप्ति के लिए याज्ञवल्क्य से संवाद किया, संवाद के उपरान्त मैत्रेयी ने जीवन के असली अर्थ की खोज की, जो भौतिक सुखों से परे था। गार्गी ने अद्वितीय तात्विक ज्ञान और ध्यान के माध्यम से आत्मज्ञान प्राप्त किया।

समग्रतः उक्त सभी विदुषी ऋषिकाओं का योगदान भारतीय ज्ञान परम्परा के संवर्धन में अविस्मरणीय है। संप्रति उनका योगदान हमारे समक्ष एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत है। वैदिक ऋषिकाओं की उत्कृष्ट एवं बहु आयामी चिन्तन को देखकर पाश्चात्य आलोचक भी चमत्कृत है। समाज को भौतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से सुव्यवस्थित, अनुशासित, समृद्ध एवं आदर्श स्वरूप प्रदान करने में इन ऋषिकाओं का अतुलनीय योगदान रहा है। इनकी विद्वता केवल धार्मिक कर्मकांड तक ही सीमित नहीं था, अपितु मानसिक, शारीरिक एवं आध्यातिमक दृष्टि से भी समृद्ध थी।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूचीः-

1. ऋग्वेद- भाष्यकार आचार्य डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, प्रकाशक-वैदिक प्रज्ञा प्रकाशन, सहारनपुर।
2. अथर्ववेद- भाष्यकार आचार्य डॉ. ओमप्रकाश वर्मा, प्रकाशक-वैदिक प्रज्ञा प्रकाशन, सहारनपुर।
3. वेदों में नारी, पद्मश्री डॉ. कलिदेव द्विवेदी, प्रकाशक विश्वभारती, अनुसंधान परिषद् , वाराणसी, संस्करण- 1994
4. वैदिक सादित्य और संस्कृति, आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रकाशक-शारदा संस्थान, वाराणसी संस्करण- 1973
5. वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी संस्करण- 2004
6. संस्कृत साहित्य का इतिहास, आचार्य बलदेव उपाध्याय, प्रकाश्क-शारदा निकेतन, वाराणसी, संस्करण- 2001

श्रीमद्भागवत महापुराण में स्त्री सशक्तिकरण के आधारभूत तत्त्व

अजय कुमार, शोध छात्रबरेली कॉलेज, महात्मा ज्योतिबा फुले रूहेलखण्ड विश्वविद्यालय, बरेली

भारतीय संस्कृति के नायक श्रीकृष्ण जिनका चरित्र सम्पूर्ण विश्व में पूज्य है। संसार के सभी प्राणी जिनकी शरण में निश्चिन्त होकर विचरण करते हैं ऐसे भगवान श्रीकृष्ण के चरित्र पर आधारित श्रीमद्भागवत महापुराण जो विश्व के समस्त कल्याणकारी विषयों को समेटे हुए है। भारतीय मुनियों का मत है कि श्रीमद्भागवत पुराण साक्षात् श्रीकृष्ण की वाणी से उत्पन्न कल्याणकारी उपदेश है। श्रीमद्भागवत पुराण के अध्ययन से उस समय की सामाजिक दशा एवं आर्थिक दशा का मूल्यांकन सरलता से किया जा सकता है। स्त्रियों की दशा उन्नत एवं सुखमय थी। सुखी संसार था। ज्ञान और भक्ति में डूबी ये स्त्रियां कृष्ण को उलाहना भी देती है और प्रेम रस से सींचकर भक्ति की पराकाष्ठा भी प्राप्त करती है। स्वंय कृष्ण ने नारी शक्ति को सम्मान दिया है। इसलिए नारी के सशक्तिकरण में श्रीमद्भागवत के योगदान का मूल्यांकन नहीं किया जा सकता है। हमारा शोधपत्र पूर्णरूप से श्रीमद्भागवत पुराण पर आधारित है। इसी प्रसंग में वर्णन है कि श्रीकृष्ण सदैव नारी कल्याण के लिए तत्पर रहते हैं। बाल्यावस्था से ही वे गोपियों के कल्याण की बात करते थे। जब द्रोपदी का चीरहरण हो रहा था तब उसने सहायता के लिए कृष्ण को ही क्यों पुकारा? उस समय अन्य राजा भी प्रतापी थे फिर कृष्ण ही क्यों? क्योंकि द्रौपदी कृष्ण के उस चरित्र से भलीभाँति परिचित थीं, जिसके द्वारा कृष्ण सम्पूर्ण असहाय नारियों की सहायता करते थे। चाहे कुब्जा को कंस के दरबार से मुक्त कराकर उसे निरोगी बनाना पड़े, चाहे तो रूक्मिणी के बुलाने पर अपने ऊपर लगने वाले कलंक की चिन्ता न करते हुए रूक्मिणी को अपने साथ लाना पड़े। ये कृष्ण के चरित्र में उपलब्ध नारी कल्याण की

भावना है। ऐसे श्रीकृष्ण के मुख से कहे गये श्रीमद्भागवत महापुराण में नारी सशक्तिकरण की छवि सम्पूर्ण पुराण में स्पष्टरूप से प्रतीत होती है। वे नर और नारी में अन्तर नहीं करते थे। ज्ञान योग में सभी की भागीदारी आवश्यक समझते हैं। जब युधिष्ठिर नारद से स्त्री धर्म के बारे में पूछते हैं तब नारद मुनि युधिष्ठिर को स्त्री की महिमा को बताते हुए तथा पुरूष की गरिमा का ध्यान दिलाते हुए स्त्री के विषय में स्पष्ट करते हैं-

''स्त्री को पति की सेवा करनी चाहिए, सत्य का आचरण करना चाहिए। लालच नहीं करना चाहिए। सभी कार्यो को कुशलता से करना चाहिए। पवित्रता और प्रेम से परिपूर्ण रहकर यदि पति पतित न हो तो उसका सहवास करें।''

''संतुष्टालोलुपा दक्षा धर्मज्ञा प्रियसत्यवाक्।
अप्रमत्ता शुचिः स्निग्धा पतिं त्वपतितं भजेत।।

श्रीमद्भागवत 7/11/28[1]

अर्थात् उस समय स्त्री को यह अधिकार प्राप्त था कि वह अपने दुष्ट या दुर्गुणी पति का त्याग कर सकती थी। किन्तु वह भी पवित्रता का पालन करती हो। आज के समाज में अभी भी दुर्गुणी पति को त्यागने के लिए स्त्री को स्वच्छन्द अधिकार प्रदान नहीं है उस समय स्त्री को ये अधिकार प्राप्त था, परन्तु वह भी सदगुण का त्याग नहीं करती थी।

अश्वत्थामा द्वारा द्रौपदी के पुत्र की हत्या के बाद जब अर्जुन ने अश्वत्थामा को द्रौपदी के समक्ष मार डालने की प्रतिज्ञा की और अश्वत्थामा को बंदी बनाकर जब द्रौपदी के सामने लाये तब गुरूपुत्र को बन्धित ''भयनिष्ठजीवोत्सुक'' देखकर द्रौपदी ने उसे छोड़ने के लिए कहा सम्पूर्ण सभा में शान्ति थी सभी द्रौपदी की बात को सुन रहे थे। द्रौपदी ने कहा मैं किसी अन्य माँ के ऑसुओं को नहीं देख सकती इसको छोड़ दो।

''मा रोदीदस्य जननी गौतमी पतिदेवता।
यथाहं मृतवत्साऽऽर्ता रोदिम्यश्रुमुखी मुहुः।।

श्रीमद्भागवत 1/7/28[2]

इससे यह तो सिद्ध होता है कि उस समय नारी, चाहे वह राजा की पत्नी हो या सामान्य स्त्री, को भी समाज में समानता का अधिकार प्राप्त था। वह स्वतंत्रता पूर्वक बिना किसी भय के सभा में भी अपना मत रख सकती थी। निर्णय भी सुना सकती थी। अर्जुन की प्रतिज्ञा के बाद भी द्रौपदी ने उसे न मारने को कहा। माँ की ममता, स्त्री की कारूण्यता ने दुष्ट अश्वत्थामा को बचा लिया और अर्जुन ने स्त्री का सम्मान करते हुए अपनी पत्नी की बात सुनकर उसको प्राणदान दे दिया। द्रौपदी के पांच पुत्रों की हत्या के दुःख ने भी द्रौपदी को मानवता और दया छोड़ने को मजबूर नहीं किया।

जब अदिति पुत्र प्राप्ति कामना से कश्यप ऋषि का ध्यान अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए अपने विवाह के आख्यान को स्मरण करते हुए कहती है कि- हमारे पिता प्रजापति दक्ष का अपनी पुत्रियों के प्रति विशेष स्नेह था। हम सभी बहने ''पितृस्नेहिता'' थी। एक बार उन्होंने हम सभी भगिनियों को बुलाकर प्रत्येक से एकान्त में पूछा कि तुम किसे अपना पति बनाना चाहती हो-

''पुरापिता नो भगवान्दक्षो दुहितृवत्सलः।
कं वृणीत वरं वत्सा इत्यपृच्छत नः पृथक।।

श्रीमद्भागवत 3/14/21

इतनी स्वतंत्रता आज का विरला पिता ही अपनी पुत्री को देता होगा। विरला ही इतना दुहितृ वत्सल होगा जो उस समय प्रजापति दक्ष थे। पुत्रियों से उनकी इच्छा जानकर उनका विवाह इच्छित वर से ही कराया। स्त्री को इच्छानुसार वर चुनने का अधिकार भागवतकाल में था। उस काल में पिता कन्या के लिए स्वयंवर का प्रावधान करता था और उसमें कन्या को पूर्ण स्वतंत्रता थी।

अपनी पत्नी अदिति से स्त्रियों के महत्व को बताते हुए कहते हैं कि ''स्त्रियाँ तो धर्म, अर्थ एवं काम आदि की कामना रखने वाले पुरूष का आधा अंग होती है क्योंकि वे गृहस्थ जीवन का आधार है-

''यामाहुरात्मनों ह्यर्ध श्रेयस्कामस्य मानिनि।
यस्यां स्वधुरमध्यस्य पुमांश्चरति विज्वरः।।

श्रीमद्भागवत 3/14/18

उस काल में स्त्री को सभी धर्मो और आश्रमों की रीढ़ समझा जाता था क्योंकि वह गृहस्थ जीवन को चलाने वाली एक मात्र आधारशिला है तथा सभी आश्रम एवं धर्म गृहस्थ आश्रम पर आश्रित हैं। श्रीमद्भागवत् महापुराण काल में स्त्री को यज्ञ करने आदि धार्मिक अनुष्ठान करने की अनुमति थी। महिलाओं के बिना यज्ञ पूर्ण ही नहीं हो सकता था। जब कृष्ण जंगल में गायों के साथ थे, ग्वालों को भूख ने पीड़ित किया तब कृष्ण ने ग्वालों को निकट के आश्रम में भेजा। ग्वाल बाल श्रीकृष्ण के कहने पर वेदपाठी ब्राह्मण की पत्नियों से भोज्य पदार्थ मांगने गये तभी वेदपाठी ब्राह्मण पत्नियाँ स्वयं ही अपना घर त्याग कर श्रीकृष्ण को भोज्य पदार्थ देने आती हैं जबकि उनके पति पुत्र आदि ऐसा न करने को कह रहे थे किन्तु वे फिर भी घर से बाहर जंगल में श्रीकृष्ण को भोज्य पदार्थ खिलाने आती हैं-

चतुर्विधं वहुगुणमन्नमादय भाजनैः
अभिसस्त्रु प्रियं सर्वाः समुद्रमिव निम्नगाः।।

श्रीमद्भागवत 10/23/19

ब्राह्मण पत्नियों का जंगल में जाना यह सिद्ध करता है कि उस समय स्त्रियाँ स्वतंत्रता से विचरण कर सकती थी। पर्दा प्रथा का नामों निशान नहीं था। स्त्री पति की दासी न होकर सहयोगी थी। वह अपनी इच्छा से कार्यो को कर सकती थी। जब ब्रह्मण पत्नियाँ श्रीकृष्ण को भोजन करवाने के बाद निवृत हुई तब श्रीकृष्ण ने उनसे घर लौट जाने को कहा किन्तु उन्होंने घर जाने से मना कर दिया और कहा वे कुछ समय और यही बिताना चाहती है तभी श्रीकृष्ण ने उन ब्रह्मण पत्नियों को उनका कर्म याद दिलाकर कहा कि-

''हे देवियों! तुम सभी यज्ञशाला में लौट जाओं क्योंकि तुम्हारे बिना तुम सभी के पति यज्ञ को पूर्ण नहीं कर सकते-

''तद् यात् देवयजनं पतयो वो द्विजातयः।
स्वसत्रं पारयिष्यन्ति युष्माभिगृहमेधिनः।।

श्रीमद्भागवत 10/22/28

स्त्री की श्रेष्ठता इस बात से सिद्ध होती है कि वेदपाठी ब्रह्मण स्वर्ग प्राप्ति के लिए यज्ञ पत्नियों के सहयोग के बिना नहीं कर सकते थे। उस काल में पत्नी यज्ञादि में समान भागीदारी को निभाती थी। पत्नी की उपस्थिति के बिना कोई भी धार्मिक कार्य पूर्ण नहीं माना जाता था। उस काल में स्त्रियों को पुरूषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे।

दशमस्कन्ध में जब युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ करने का निश्चय किया तब युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण को राजसूय यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए निमन्त्रण भेजा। श्रीकृष्ण गुरूजनों की आज्ञा लेकर अपनी सभी रानियों एवं बच्चों के साथ यज्ञ में सम्मिलित होने के लिए चल पड़े-

''निर्गमय्यावरोधान् स्वान् ससुतान् सपरिच्छदान्।
स{ र्षणमनुज्ञाप्य यदुराजं च शुत्रहन्।
सूतोपनीतं स्वरथमारूहद् गरूडध्वजम्।।

श्रीमद्भागवत 10/70/13

जब इन्द्रप्रस्थ श्रीकृष्ण जाते हैं तो अपनी रानियों को भी साथ ले जाते हैं क्योंकि उस समय रानियाँ भी राजा का साथ-साथ कार्य करती थी। यहाँ तक की वे युद्ध में भी जाया करती थीं। इससे यह निश्चित होता है कि उस काल में स्त्री अन्य राज्यों में भ्रमण का भी अधिकार रखती थी।

श्रीकृष्ण के इन्द्रप्रस्थ पहुँचते ही इन्द्रप्रस्थ के राजा, रानियों के साथ अपनी समस्त प्रजा को लेकर श्रीकृष्ण एवं उनकी सभी पत्नियों का स्वागत करने लगते हैं। यहाँ पुरूष और स्त्री को कोई भी भेद नहीं दिखाई देता है-

''श्वश्रवा सत्रृचोदिता कृष्णपत्नीश्च सर्वशः।
आनर्च रूक्मिणीं सत्यां भद्रां जाम्बवतीं तथा।।

श्रीमद्भागवत 10/71/42

कालिन्दीं मित्रविन्दां च शैव्यां नाग्रजितीं सतीम्।
अन्याश्चाभ्यागता यास्तु वासः स्त्रङ्गण्डनादिभिः।।

श्रीमद्भागवत 10/71/43

इस आख्यान से यह सिद्ध होता है कि उस समय स्त्री व पुरूष को राजा, रानी के एक समान समझते हुए विभिन्न अनुष्ठानों में आमन्त्रित किया जाता था। तथा सत्कार के समय भी स्त्री पुरूष आदि का भेद नहीं किया जाता था क्योंकि युधिष्ठिर ने सभी को नमन किया तथा द्रौपदी ने सभी रानियों को उपहार दिये।

सभी तथ्यगत आधारों पर हम कह सकते हैं कि श्रीमद्भागवत महापुराण काल में स्त्रियों की दशा एवं दिशा अच्छी थी। सभी स्त्रियाँ चाहे वह रानी हो चाहे आश्रम में रहने वाली ब्रह्मणी हो, सशक्त थी। वे पुरूषों को सलाह, सहयोग आदि प्रदान करने में समर्थ थी। उस काल की स्त्री पति की दासी न होकर सहगामिनी थी। सभी धार्मिक कार्यो यज्ञादि में सहभाग करती थीं। यहाँ तक की युद्ध में भी साथ जाया करती थी।

भारतीय ज्ञान परंपरा में शबरी का योगदान

Solanki Binalben Ganpatsinh
एम.ए. स्टूडेंट, संस्कृत विभाग
महाराजा सयाजीराव यूनिवर्सिटी ऑफ बडौदा, गुजरात

आध्यात्मिक संदर्भ में नारी की गरिमा का एक उत्कृष्ट उदाहरण 'शबरी' के रूप में देखा जा सकता है। उनके व्यक्तित्व का मुख्य आधार तपस्या की शक्ति और भगवान राम के प्रति पूर्णभक्ति है। ये दोनों ही गुण उन्हें आध्यात्मिक परंपरा में एक अद्वितीय स्थान प्रदान करते है।

तौ कबन्धेन तं मार्गं पम्पाया दर्शितं वने
आततुर्दिशं गृह्य प्रतीचीं नृवरात्मजौ।।१।।[1]

कबंध राक्षस के जाने के बाद उसने जो रास्ता दिखाया उसे लेकर महाराजा दशरथ के दोनों पुत्र पंपा सरोवर की ओर पश्चिम दिशा में प्रस्थान किए।

वाल्मीकि रामायण के अरण्यकाण्ड के सर्ग ७३ में शबरी का उल्लेख एक महत्वपूर्ण संदर्भ में होता है। इस सर्ग में कबंध नामक राक्षस का वर्णन है, जिसका वध और अंतिम संस्कार श्रीराम और लक्ष्मण के द्वारा संपन्न होता है। कबंध के वध के पश्चात अग्नि से एक दिव्य पुरुष का प्रकट होना दर्शाया गया है। यह दिव्य पुरुष श्रीराम को माँ सीता की खोज के संदर्भ में मार्गदर्शन देते हुए सुग्रीव से मैत्री करने की सलाह देता है।

सुग्रीव तक पहुँचने के लिए मार्ग की एक महत्वपूर्ण कड़ी के रूप में शबरी का नाम प्रस्तुत होता है। शबरी जो कि वर्षों से अपने गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए प्रभु श्रीराम के आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी, उनकी भक्ति और तपस्या का अनुपम उदाहरण है। शबरी का चरित्र

---

[1] वाल्मिकीरामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग ७४, श्लोक १

भारतीय धार्मिक और आध्यात्मिक परंपरा में नारी शक्ति और तपोबल का प्रतीक है।

भारतीय सांस्कृतिक परंपरा में गुरु-शिष्य संबंधों की कई महत्वपूर्ण कथाएँ हैं, लेकिन पंपा सरोवर के प्राकृतिक परिवेश में स्थित मतंग ऋषि और उनकी विदुषी शिष्या शबरी की कथा विशेष रूप से अद्वितीय है। यह कथा केवल गुरु-शिष्य परंपरा की महत्ता को ही नही दर्शाती, बल्कि समाज के शोषित वर्गों के उत्थान में शिक्षा और ज्ञान के योगदान को भी रेखांकित करती है।

प्राचीनकाल में, विशेषकर "रामायण" के समय में शिष्यों का चयन आमतौर पर पुरुषों और समाज के उच्च्च वर्गों से किया जाता था। इसके विपरीत मतंग ऋषि ने सामाजिक परंपराओं को तोड़ते हुए शबरी जो एक अनूसुचित जनजातीय और दलित पृष्ठभूमि से थी उसे ब्रह्म ज्ञान की दीक्षा दी। शबरी ने न केवल इस ज्ञान को आत्मसात किया बल्कि गुरु की आज्ञा का पालन करते हुए अपने जीवन को साधना और भक्ति में समर्पित कर दिया। शबरी का संपूर्ण जीवन गुरु भक्ति और अध्यात्म के प्रति उनके समर्पण का प्रतीक है।

शबरी के जीवन की कहानी केवल एक साधारण महिला की नहीं है, बल्कि यह उस दृढ़ विश्वास और तप का प्रमाण है जो समाज के दबावों और सीमाओं के बावजूद उसे उसके लक्ष्य की ओर अग्रसर करता है।

शबरी का पूर्वाश्रम एक भील राजा का घर था जहाँ वह उनकी पुत्री के रूप में जन्मी थी। एक लोककथा के अनुसार विवाह के दिन जब उन्होंने समारोह हेतु बंधे हुए पशुओं(भेड़-बकरी) को देखा और उनके उपयोग के बारे में पूछने पर यह जाना कि इन्हें अतिथियों के भोजन हेतु वध किया जाएगा तो उन्हें यह स्वीकार्य नहीं हुआ। वे इन पशुओं को मुक्त कर रात में घर छोड़कर निकल गईं। उनका मार्ग मतंग ऋषि के आश्रम तक पहुँचा, जहाँ उन्होंने आश्रम के पास निवास करना प्रारंभ किया। वे प्रतिदिन आश्रम की सफाई और सेवा करती तथा गुरु के लिए समिधाएँ

और फल एकत्र करती। मतंग ऋषि ने उनकी निष्ठा और सेवा भावना देखकर उन्हें अपनी शिष्या के रूप में स्वीकार किया। शबरी एक तपस्विनी थी जिनका संबंध वनवासी समाज से था। उनका मूल नाम 'श्रमणा' था। उनके आचरण और समर्पण ने शीघ्र ही उन्हें आश्रम के निवासियों का प्रिय बना दिया था।[1]

शबरी के यह लोककथित चरित्र से यह स्पष्ट होता है कि उनमें पशुओं के प्रति गहरा स्नेह और करुणा थी। उन्होंने अपने जीवन में पशु हत्या को एक गंभीर पाप के रूप में देखा। शबरी की मान्यता थी कि अपने निजी स्वार्थ की पूर्ति के लिए किसी भी जीव को कष्ट पहुँचाना मानवता के मूल सिद्धांतों के विपरीत है।

उनका यह दृष्टिकोण न केवल उनकी भक्ति और अध्यात्म को प्रकट करता है, बल्कि यह भी दर्शाता है कि वे अहिंसा और करुणा जैसे मूल्यों की पक्षधर थी। शबरी के चरित्र से पशु प्रेम का यह आयाम भारतीय संस्कृति और धार्मिक ग्रंथों में करुणा और अहिंसा के महत्व को भी सुदृढ़ करता है।

राम और लक्ष्मण जब पम्पा नामक पुष्करिणी के पश्चिम तट पर पहुँचे तो वह मतंग ऋषि का आश्रम था। राम के आगमन की कोई पूर्व सूचना नहीं थी जिसके कारण आश्रम के द्वार पर किसी ने उनका स्वागत नहीं किया। जब वे आश्रम के भीतर पहुँचे, तब एक श्यामवर्ण की तपस्विनी शीघ्रता से उनके समक्ष आईं और उनके चरणों में नत मस्तक हो गईं।

तौ दृष्टवा तु तदा सिद्धा समुत्थाय कृताञ्जलिः।
पादौ जग्राह रामस्य लक्षमणस्य च धीमतः।।६।।

---

[1] Gujarati sahitya ma ramayan Aadharit krutiyoma pasandgina Gaun Patro Ek Adhyayan, pg.-168

राम और लक्ष्मण ने इस अनजान तपस्विनी के आतिथ्य और भक्ति की उमंग को देखकर प्रसन्नता व्यक्त की।

शबरी ने उनका विधि पूर्वक सम्मान किया और कहा, "हे प्रभु! मैं स्वयं को धन्य मानती हूँ। यह वही आश्रम है जहाँ मेरे गुरु, महर्षि मतंग निवास करते थे। मैंने उनकी सेवा में अपना जीवन अर्पित किया था। गुरुजी ने मुझे निर्देश दिया था कि मैं एकाग्रचित होकर यहीं रहकर साधना करूँ और आपके आगमन की प्रतीक्षा करूँ।"

भारतीय ज्ञान परंपरा में शबरी का चरित्र धैर्य और गुरु आज्ञा पालन का एक उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत करता है। शबरी ने अपने गुरु मतंग ऋषि के निर्देशों का पूर्ण निष्ठा और समर्पण के साथ पालन किया। उनके गुरु ने उनसे कहा था कि वे प्रभु श्रीराम और लक्ष्मण के आगमन तक वहीं आश्रम में निवास कर प्रतीक्षा करे।

शबरी ने अपने जीवन के कई वर्षों तक बिना धैर्य खोए इस निर्देश का पालन किया। यह उनके अद्वितीय संयम और आत्मनियंत्रण का प्रतीक है। किसी भी परिस्थिति में उन्होंने अपने गुरु की आज्ञा से विमुख होने का विचार नहीं किया बल्कि उनकी प्रतीक्षा को साधना का हिस्सा बना लिया। यह उनके चरित्र की दृढ़ता और विश्वास को दर्शाता है।

शबरी का यह समर्पण केवल भक्ति का प्रदर्शन नहीं है बल्कि यह दिखाता है कि कैसे एक व्यक्ति अपनी आत्मा और विचारों को गुरु के निर्देश के प्रति पूर्णत: समर्पित कर सकता है। यह उनके व्यक्तित्व के उस पक्ष को उजागर करता है जहाँ धैर्य, आत्मविश्वास और कर्तव्यपालन को परम मूल्यों के रूप में स्थापित किया गया है।

शबरी ने आगे कहा, "हे प्रभु राम! मैंने अपने गुरु के वचनों का पालन करते हुए आपकी प्रतीक्षा की है। आज उनके वचन को सत्य होते हुए देख मेरा जीवन धन्य हो गया।" शबरी की सरल और स्पष्ट वाणी ने राम को प्रभावित कर दिया। उनके शब्दों में एक निष्कपट और भक्ति से परिपूर्ण हृदय की सच्चाई स्पष्ट झलक रही थी।

श्री रामचरित मानस में शबरी की इस भक्ति और समर्पण से प्रसन्न होकर राम ने उन्हें नवधा भक्ति का विस्तार से मर्म समझाया। उनकी भावना और भक्ति के प्रति कृतज्ञ होकर राम ने कहा, "हे साध्वी! तुम में नवधा भक्ति के सभी रूप विद्यमान हैं। वह गति जो योगियों के लिए भी दुर्लभ है, वह आज मुझे तुमसे सहज ही प्राप्त हो गई है।"

भागवत पुराण में हमें **नवधाभक्ति** का वर्णन प्राप्त होता है,

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।७.५.२३।।
भगवताव्यासमतेन भागवतोक्त नवधा भक्तिः।

भक्ति

- ❖ भक्ति नवधाः-

1. श्रवण भक्तिः
2. कीर्तन भक्तिः
3. स्मरण भक्तिः
4. पादसेवन भक्तिः
5. अर्चन भक्तिः
6. वंदन भक्तिः
7. दास्य भक्तिः
8. सख्य भक्तिः
9. आत्मनिवेदनभक्तिः

तुलसीदास रामचरितमानस में नवधा भक्ति का वर्णन निम्न अनुसार करते है,

नवधा भगति कहउँ तोहि पाहीं। सावधान सुनु धरु मन माहीं।।
प्रथम भगति संतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा।।

दो०३४, चो० ४।।[1]

अब मैं तुम्हें नवधा भक्ति का मार्ग समझाता हूँ। इसे पूरी एकाग्रता से सुनो और अपने मन में धारण करो। पहली भक्ति है संतों का सत्संग और दूसरी भक्ति है मेरी कथा एवं प्रसंगों में प्रेम रखना।

गुर पद पंकज सेवा तीसरि भगति अमान।
चौथि भगति मम गुन गन करइ कपट तजि गान।।

दो०३५[2]

तीसरी भक्ति यह है कि अहंकार रहित होकर गुरु के चरण कमलों की सेवा की जाए और चौथी भक्ति यह है कि सभी प्रकार के छल-कपट को त्यागकर मेरे गुणों का गान किया जाए।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा।
पंचम भजन सो बेद प्रकासा।।
छठ दम सील बिरति बहु करमा।
निरत निरंतर सज्जन धरमा

दो०३५, चो०१[3]

मेरे (श्रीराम) मंत्र का जप और मुझ पर अटूट विश्वास यह पांचवीं भक्ति है, जिसकी महिमा वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इंद्रियों पर संयम रखना, शील (उत्तम स्वभाव और चारित्र्य) को धारण करना अनेक सांसारिक कार्यों से वैराग्य अपनाना और निरंतर संत पुरुषों के धर्माचरण में सम्मिलित रहना।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा।
मोतें संत अधिक करि लेखा।।
आठवँ जथालाभ संतोषा।

---

1. रामचरित मानस दोहा- ३४ चोपाई-४

2 Ibid. दोहा- ३५

3 Ibid. दोहा- ३५ चोपाई- १

सपनेहुँ नहिं देखइ परदोषा।।

दो०३५,चौ०२[1]

सातवीं भक्ति यह है कि समस्त जगत को समभाव से मुझे (राममय) ओतप्रोत देखना और संतजनों को मुझसे भी अधिक मान-सम्मान प्रदान करना। आठवीं भक्ति यह है कि जो कुछ भी प्राप्त हो उसमें संतोष करना और स्वप्न में भी दूसरों के दोषों को न देखना।

नवम सरल सब सन छलहीना।
मम भरोस हिय हरष न दीना।।
नव महुँ एकउ जिन्ह के होई।
नारि पुरुष सचराचर कोई।।

दो०३५, चौ०३[2]

नौवीं भक्ति यह है कि सहजता और सभी के साथ छल-कपट रहित व्यवहार करना अपने हृदय में मुझ (राम) पर पूर्ण विश्वास बनाए रखना और किसी भी परिस्थिति में न तो अत्यधिक प्रसन्नता (हर्ष) और न ही विषाद (दैन्य) का अनुभव करना।

नवधा भक्ति के सभी तत्त्व शबरी के व्यक्तित्व में पहले से ही विद्यमान थे। इसे इस रूप में भी कहा जा सकता है कि शबरी स्वयं नवधा भक्ति की प्रणेता है। राम और शबरी के संवाद से हमें नवधा भक्ति का महत्व समझने का अवसर मिलता है साथ ही इसे अपनाने की विधि का भी स्पष्ट मार्गदर्शन प्राप्त होता है। यह संवाद नवधा भक्ति के एक ऐसे स्वरूप को प्रस्तुत करता है, जो आज भी हमारी आध्यात्मिक परंपरा में अनुकरणीय बना हुआ है।

प्रथम बार नवधा भक्ति का वर्णन राम और शबरी के संवाद में ही मिलता है। भारतीय ज्ञान परंपरा में शबरी का योगदान असाधारण है।

---

[1] Ibid. दोहा-३५ चोपाई-२
[2] Ibid. दोहा- ३५ चोपाई-३

उन्होंने न केवल नवधा भक्ति के तत्त्वों को आत्मसात किया बल्कि एक ज्ञाता और कर्मशील भक्त के रूप में अपने जीवन को इसका प्रतीक बना दिया। उनके इस योगदान ने भारतीय धार्मिक और दार्शनिक परंपरा में एक अमिट छाप छोड़ी है।

नवधा भक्ति का मानव मनोविज्ञान में भी गहरा संबंध है। यह भक्ति के नौ रूपों के माध्यम से एक ऐसा मार्ग प्रस्तुत करता है जो मानव स्वभाव, भावनाओं और मानसिक आवश्यकताओं को छूता है। जैसे कि-

1. **श्रवण (सुनना):** हमारे सुनने के माध्यम से ज्ञान अर्जित होता है। ईश्वर के कथाओं और गुणों को सुनना जिज्ञासा को संतुष्ट करता है और आत्मा को शांति प्रदान करता है।
2. **कीर्तन (गान करना):** भजन या प्रार्थना गाने से एकाग्रता और भावनात्मक संतोष की भावना उत्पन्न होती है जिससे हमें आनंद और शांति का अनुभव होता है।
3. **स्मरण (स्मरण करना):** ईश्वर का ध्यान और स्मरण मानव मस्तिष्क को केंद्रित रहने और जीवन में अर्थ खोजने में मदद करता है।
4. **पादसेवन (सेवा):** दूसरों की सेवा करने की प्रेरणा हमें अपने जीवन में उद्देश्य और परोपकार का अनुभव कराती है।
5. **अर्चन (पूजा):** पूजा और अर्पण के माध्यम से भक्ति का व्यक्तिगत और व्यवस्थित प्रदर्शन किया जाता है।
6. **वन्दन (नमन करना):** नमन या प्रणाम करने से हमारे अंदर विनम्रता और कृतज्ञता का विकास होता है।
7. **दास्य (सेवक बनना):** ईश्वर को स्वामी मानकर सेवा करना हमारे मार्गदर्शन और उद्देश्य पाने की इच्छा को व्यक्त करता है।
8. **सख्य (मित्रता):** ईश्वर को मित्र मानना हमारे साथीपन और भावनात्मक सहारे की आवश्यकता को पूरा करता है।
9. **आत्मनिवेदन (आत्मसमर्पण):** आत्मसमर्पण हमारे के अंतिम शांति और मुक्ति की खोज से जुड़ा है।

नवधा भक्ति मानव मनोविज्ञान की विभिन्न पहलुओं को छूती है और यह दिखाती है कि कैसे भक्ति व्यक्तिगत और आध्यात्मिक विकास का मार्ग बन सकती है।

कीर्तन (गान) और स्मरण (ध्यान) जैसी भक्ति प्रथाएँ तनाव कम करने और मानसिक स्पष्टता पाने में मदद करती हैं। श्रवण (सुनना) और कीर्तन जैसी क्रियाएँ एकाग्रता और जुड़ाव की भावना उत्पन्न करती हैं जो आज के अलग-थलग जीवन शैली में आवश्यक है। आत्मनिवेदन (समर्पण) और पादसेवन (सेवा) के माध्यम से व्यक्ति आध्यात्मिक उद्देश्य और विनम्रता प्राप्त करता है। अर्चन (पूजा) और वंदन (नमन) जैसे रूप मानसिक शांति और सकारात्मकता को प्रेरित करते हैं। सख्य (मित्रता) के माध्यम से ईश्वर को मित्र मानने से यह सिखाया जाता है कि कैसे स्वस्थ संबंध हमारे जीवन में स्थिरता ला सकते हैं।

नवधा भक्ति अध्ययन में भी अत्यंत लाभकारी हो सकती है, क्योंकि यह मानसिक एकाग्रता, शांति और प्रेरणा प्रदान करती है। आइए समझते हैं कि यह कैसे मदद करती है:-

1. श्रवण (सुनना): जब आप किसी विषय को ध्यान पूर्वक सुनते हैं तो आपकी समझ और ज्ञान में वृद्धि होती है। यह अध्ययन के लिए भी आवश्यक गुण है।
2. स्मरण (स्मरण): ईश्वर का ध्यान और स्मरण मानसिक क्षमता को मजबूत करता है। यह स्मरण शक्ति (मेमोरी) बढ़ाने में सहायक होता है जो पढ़ाई के लिए बेहद ज़रूरी है।
3. कीर्तन (गान): भजन या प्रार्थना गाने से मानसिक तनाव कम होता है जिससे पढ़ाई के प्रति रुचि और एकाग्रता बढ़ती है।
4. पादसेवन (सेवा): विनम्रता और सेवाभाव विकसित करता है जिससे सहपाठियों और शिक्षकों के साथ बेहतर संबंध बनाए जा सकते हैं।

5. आत्मनिवेदन (समर्पण): समर्पण की भावना आपको अपने अध्ययन के प्रति लगनशील बनाती है, जिससे आपके प्रयास अधिक प्रभावी होते हैं।
6. वन्दन (नमन): कृतज्ञता की भावना विकसित करता है जिससे आप शिक्षा और उसके महत्व को गहराई से समझ सकते हैं।
7. दास्य (सेवकभाव): अनुशासन और मार्गदर्शन को स्वीकार करने का गुण आपके अध्ययन में उत्कृष्टता लाने में सहायक होता है।
8. सख्य (मित्रता): यह सीखने के लिए सहपाठियों और ज्ञान के साथ मित्रवत संबंध बनाने की भावना को प्रेरित करता है।

शबरी की कथा भारतीय ज्ञान परंपरा में नारी गरिमा, करुणा, अहिंसा और गुरु-शिष्य परंपरा के महत्व को उजागर करती है। उनकी तपस्या और भगवान राम के प्रति भक्ति नवधा भक्ति के नौ स्वरूपों को उनके जीवन में स्पष्ट रूप से परिलक्षित करती है। यह भक्ति के नौ रूप- श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वंदन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन- मानव मनोविज्ञान और मानसिक विकास के लिए अत्यंत प्रासंगिक हैं।

अध्ययन और जीवन में उपयोगिता:

- इन रूपों के अभ्यास से एकाग्रता बढ़ती है, मानसिक शांति मिलती है और तनाव कम होता है।
- सेवा और समर्पण जैसे गुण बेहतर सामाजिक और शैक्षणिक संबंध बनाने में सहायक होते है।
- ये भक्ति रूप हमें आत्म-साक्षात्कार और समर्पण के महत्व को समझने में मदद करते है।

शबरी का चरित्र और नवधा भक्ति का सिद्धांत यह सिखाता है कि अध्यात्म और मानवीय मूल्यों का संतुलन व्यक्तिगत और सामाजिक विकास के लिए अत्यंत आवश्यक है। यह परंपरा आज के युग में भी प्रेरणा स्रोत बन सकती है।

मतंग ऋषि की शिष्या जो समाज की पिछड़ी जाति से थी, शबरी ने भक्ति और धर्म का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया। शबरी की सभी बातों को सुनने के बाद भगवान श्रीराम ने कहा, "तपस्विनी मैंने आपके गुरु मतंग ऋषि के प्रभाव और उनके उपदेशों के बारे में कबंध से पूरी जानकारी प्राप्त की है। आपने हमारा भव्य स्वागत किया है। अब आप अपनी इच्छा के अनुसार आनंद पूर्वक उस अक्षयधाम की यात्रा करे जो आपको प्रिय है।"

श्रीराम की आज्ञा मिलते ही शबरी ने दिव्य अग्नि में प्रवेश किया और एक तेजस्वी रूप में प्रकट हुईं। उन्होंने दिव्य वस्त्र, आभूषण और पुष्पमालाएँ धारण कीं और उनकी आभा से समस्त वातावरण प्रकाशित हो गया। इसके बाद वह दिव्य स्वरूप धारण कर स्वर्ग के साकेत लोक में गईं जहाँ उनके गुरु मतंग ऋषि का निवास था।

वाल्मीकि रामायण में शबरी जो समाज की पिछड़ी जाति से थीं, को "सिद्धा" जैसे विशिष्ट गुणों से अलंकृत किया गया है। वह सिद्ध पुरुषों द्वारा सम्मानित, चारूभाषिणी और ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में पारंगत थी। तुलसीदासकृत "रामचरितमानस" और वाल्मीकि रामायण दोनों में शबरी का महिमा मंडन किया गया है। भले ही शबरी का चरित्र गौण प्रतीत होता है लेकिन उनकी भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। उनकी रामभक्ति समाज को नई दिशा प्रदान करती है और भक्ति की परंपरा में उत्कृष्ट प्रेरणा का स्रोत है।

शबरी का चरित्र उनकी गुरु भक्ति और पशुओं के प्रति करुणा यह दर्शाते हैं कि वह केवल एक साधारण भक्त नहीं थीं बल्कि सामाजिक और आध्यात्मिक परंपरा में क्रांति का प्रतीक थीं। मतंग ऋषि द्वारा दी गई ब्रह्मज्ञान की शिक्षा को उन्होंने अपने जीवन में समर्पण और साधना के माध्यम से चरितार्थ किया। राम और शबरी के संवाद में नवधा भक्ति का जो मर्म उद्घाटित होता है वह भारतीय धार्मिक दर्शन की एक महत्वपूर्ण परंपरा है। शबरी का जीवन अहिंसा, करुणा और धैर्य का आदर्श प्रस्तुत

करता है और उनके द्वारा नवधा भक्ति का जो स्वरूप स्थापित हुआ वह भारतीय ज्ञान परंपरा में एक अमिट छाप छोड़ता है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण, गीताप्रेस, गोरखपुर
2. श्रीरामचरितमानस, हनुमानप्रसाद पोद्दार, गीताप्रेस, गोरखपुर-२०३९
3. श्रीमद्भागवत पुराण, गीताप्रेस, गोरखपुर
4. गुजराती साहित्य मा रामायणआधारित कृतिओ मा पसंदगीना गौणपात्रों, परमार, शैलेशकुमार दिनेशभाई- २०२३
5. The Oxford Hindi-English Dictionary, Mc Gregor, Oxford University Press, Delhi 1993
6. Apte Vaman Shivram M.A., Sanskrit English Dictionary, The Arya Vijaya Press-1890

Indian Women and Economic System during Vedic Times

Dr. Niti Arora
Associate Professor (Economics), Mata Sundri College for Women, University of Delhi

Introduction

The period in the late bronze epoch and early iron epoch of history in India is called the Vedic period or the Vedic age. The Vedic culture is divided into two ages: the early Vedic period, also known as Rigveda, and the later Vedic period, also known as the Epic age. Historically the early Vedic age is dated from 1500c-1100 BCE. In the early Vedic culture, people praised different natural forms as gods like the sun, earth, moon, wind, rain, and other natural occurrences. Since the early Vedic period, there was no scientific clarification for natural occurrences like rain, thunder, wind, etc.; people feared them and therefore worshipped them. During the early Vedic cultures, the people were relatively impartial in perceiving that a definite ranking of social and economic categories or castes was absent. The life of the people in this period was pastoral. Agriculture, along with animal husbandry, played a crucial role in strengthening the economic standard of the people. Goods trading was done using a barter system.

The economy of the early Vedic period was mostly agro-pastoral. Agriculture and Animal Husbandry played an important role in improving people's living standards. Cattle-rearing was a prominent occupation, and the cow was seen as a source of wealth and economic prosperity by the Aryans. Thus, the economy of Vedic period was based on pastoralism. Pastoralism is a form of animal husbandry, which was historically undertaken by nomadic people who moved with their herds. It included various herding livestock, including cattle, camels, goats, yaks, llamas, reindeer, horses and sheep.

In the Vedic period, "Nishka" primarily referred to a gold neck ornament. Later, the term "Nishka" also evolved to represent a gold coin. It was frequently mentioned in the

Rigveda and other Vedic texts, indicating its usage as a valuable ornament, potentially used in trade or as a form of payment.

Early Vedic Period (Rig Vedic Period, c. 1500-1000 BCE):

- **Pastoralism and Agriculture:** Cattle rearing, particularly cow keeping, was the primary occupation, with agriculture gradually becoming more important.
- **Subsistence Farming:** Food grains like paddy and barley were cultivated, and agriculture played a crucial role in sustaining the nomadic lifestyle.
- **Cattle as Wealth:** Cows were considered a symbol of wealth and prosperity, and their number was a measure of economic status.
- **Barter System:** Goods were exchanged through a barter system, with cattle often used as a unit of value.
- **War Booty:** War booty was an important source of economic gain.

Later Vedic Period (c. 1000-500 BCE):

- **Shift towards Agriculture:** Agriculture became more dominant than pastoralism, with increased emphasis on farming and irrigation.
- **Occupational Diversification:** Various occupations like pottery, metalwork, weaving, and carpentry emerged.
- **Trade and Commerce:** Trade and commerce developed, with the use of gold coins like Nishka becoming more common.
- **Taxation:** Taxes, like Bali and Bagha, were collected to support the kings and their administrations.
- **Urbanization:** The beginning of urbanization led to the growth of trade and commerce.
- **Emergence of Trade:** Trade and commerce developed, with the use of gold coins and various forms of exchange.

Women in the Vedic and the Post-Vedic Periods

In early Vedic India's political history, women have been a significant player. Women were respected in the family and society in ancient India. In several sections of the Vedas, she held the role of household queen, which was envied by her contemporaries. In general, the Vedic Period was a very

advanced period. Women and men were on an equal footing. This was due to a complicated system in place at the time. As a result, husband and wife's political rights were shared in a pair. Even larger bodies like the senate (Sabha) and the government followed this policy (Samiti). Women have had equal positions and been described as more than the better half in the Rig Vedic period. Such women's character and intellect were glorified in the past, and old customs were revered. They were fully equal to men regarding access to and capacity for the ultimate knowledge of the Absolute.

In early Vedic culture, women played a very important role in society. In Vedic culture Monogamy concept (only one wife) is seen, no child marriage and even widows were allowed to marry any male they wanted. In early Vedic culture, a joint family system was also seen, as women played an essential role in early Vedic culture, so the women also got equal rights as men have. There was no gender discrimination seen in golden era of Vedic culture. Women were said by the Vedas to be mothers, and naturally caring; therefore, they were expected to house-keep and raise their children, or generally assist their husbands in their endeavours. Men were supposed to support the family, and carry out their duty, based on their class

Many upper-class women would hold Swayamwars to select the husband of their choosing. Despite the fact that both parties consented, marriage remained a major event.

The woman in the latter part of Vedic period most likely degraded as a result of the entrance of a non-Aryan marriage. The non-Aryan wives were unfamiliar with Vedic rituals. In different religious acts, they were unable to associate with their Aryan husbands. The Aryan spouses, too, eventually lost many of the benefits they had previously enjoyed. The daughters were eventually denied formal education. Girls' marriageable ages were reduced to 8 or 10 years. As a result, the number of pre-puberty marriages soared, and child-wives with little education became the norm. Women in the post-Vedic Period were asked for dowry, and being a widow was not always a bad thing, but widow remarriage was not always encouraged.

<u>Role and Status of Women in The Early Vedic period</u>

- Women were highly regarded and had positions of power in society. Gods, according to Aryans, exist where women are valued.
- Women were allowed to take part in both home and religious rites.
- Unmarried women were required to attend school since only educated women were capable of performing Vedic ceremonies correctly. Women were permitted to participate in the Upanayana (educational entrance rite) process.
- After the age of 16, women were allowed to marry and have the right to choose their life partners. They are also permitted to perform or organize their sawambar.
- Child marriage was unheard of, and Sati pratha was rare. Even though it was a patriarchal culture, there were provisions in the early Vedic civilization for adult marriage, marriage at will, and widow remarriage.
- Through the Vedic Period, both girls and boys were sent to educational institutes called Gurukuls, where they all observed the Brahmacharya Ashrama of student life before marriage, learning a variety of subjects. In order to be eligible for Upanayanas, women were encouraged to be proficient in philosophy, logic, and Vedic knowledge, as well as to sing Rig Veda slokas. Women were more likely than men to study the Atharva Veda.
- There was also a system of homeschooling for women, which was far more common among the lower classes who couldn't afford to travel or live away from home for long periods of time. As a result, daughters, like their brothers, often supported their dads with agricultural work, learning to milk cows, cut yarn, knit, and sew, as well as being proficient in artistic arts like dancing, painting, and drawing. Texts like the Taittiriya Sanhita and the Sata Patha Brahmana emphasized women's practical education.
- Many women scholars from the Vedic Period exist, such as Lopamudra, Ghosha, and Apala. It is also said that some Vedic verses were compiled by women themselves. Maitreyi and Gargi were two

learned women who lived during the Early Vedic Period. During the Vedic period, several women emerged as prominent scholars and poets. Apart from Gargi and Maitreyi, other prominent women scholars, namely, Lopamudra, Ghosha, and Apala were revered for their knowledge and contributions to Vedic literature. Prominent figures-Gargi and Maitreyi, in particular, are known for their philosophical discussions and wisdom.

- During the Vedic Period, the two main classes of academic women were:
  a) Brahmavadini is a woman who has never married and has spent their life cultivating the Vedas.
  b) Sad Yodhas are Vedic ladies who studied them until they married.

Role and Status of Women in Later Vedic Period:

- The position of women in the later Rig Vedic period changed for unclear reasons.
- Scholars argue that social engagement with newer cultures pushed individuals to place limitations on women based on specific criteria. During this time, it became a harsh patriarchal culture in which women's rights were seized.
- Religion was the primary reason for these limits on women, and as a result, many of their rights, such as the ability to marry at will and the right to education, were revoked.
- Her marriage age was lowered, and she was regarded as a regenerative instrument.
- Her social mobility dwindled as limits were placed on her; she was not permitted to leave the four walls of her home and was forced to stay at home and work as a housewife. Widow remarriage was forbidden, and widows were compelled to live as widows. The purdah system became prevalent.
- The number of children married was at an all-time high.
- Constraints continued to be imposed on women throughout the various stages of their lives as daughters,

wives, and mothers. According to the Manu Smriti, nothing must be done independently by women, even within their household. Further, it clearly outlines to whom a woman is always subservient to throughout her life: "In childhood, a female must be subject to her father, in youth to her husband, when her lord is dead to her sons; a woman must never be independent". The kind and amount of property that a woman could own was limited as well. The texts do not mention the ability to possess property being available to unmarried women. Instead, only married women could possess a limited property known as Stridhan, which was given to her at the time of marriage. However, she lacked complete control over even this property as it ultimately belonged to her husband.

- much of the texts that we have concerning the experiences of women are limited to telling stories about upper caste and class women such as Gargi or King Jánašruti Pautrãyana's daughter. There would have been a great difference in the way women from various castes and classes would have experienced oppression. In the cases of women belonging to the lower castes, their oppression would have been double. This intersectionality of caste, class, and gender has to be kept in mind. Not all forms of oppression would have been uniform across the various castes and classes, some would have remained exclusive to a certain group.

Key aspects of women's lives in the Vedic period:

- **Equality and Freedom:**

Women enjoyed a level of freedom and equality with men that was not always the case in later periods. They had a say in choosing their spouses and participated in religious rituals alongside men.

- **Education and Knowledge:**

During the Vedic period, women were generally well-educated and had access to knowledge, comparable to men. They were encouraged to study the Vedas and other subjects like philosophy and logic, and many became skilled in various fields, including Vedic scholarship, arts, and

crafts. Thus, women were encouraged to pursue education and engage in philosophical debates. Some even achieved a high level of expertise in Vedic knowledge and became teachers or scholars.

- **Religious Participation:**

Women played a significant role in religious rituals and ceremonies, and were even considered "Soma priest" in some contexts. During the Vedic period, women held significant religious responsibilities, participating in and even leading many rituals. They were considered essential for maintaining household and family ceremonies, including fire rituals, and were educated to correctly perform Vedic rites. Some women even achieved the status of Rishis (seers) and composed hymns. Several women, like Lopamudra and Ghosa, are mentioned in the Rig-Veda for their compositions of hymns. Goddesses like Usha (goddess of dawn), Aditi (mother of many gods), and Sarasvati were also honored in Vedic hymns.

- **Leadership and Power:**

Women held leadership positions and even exercised military power, as evident by the story of Queen Kaikeyi in the Ramayana.

- **Economic Opportunities:**

Women had opportunities to earn money through various means, such as teaching, weaving, or agriculture. During the Vedic period, women enjoyed relatively high economic opportunities and status. They could engage in various professions, participate in agriculture, and own personal property. While inheritance laws favoured men, unmarried women could inherit a portion of their father's property. The Rig Veda even mentions women working as experts in farming and agriculture.

- **Property Rights:**

During the Vedic period, women's property rights were primarily limited to Stridhana, which consisted of gifts and assets received from their parents or husband. While they could own and manage Stridhana, they didn't have equal rights to inherit or claim ancestral property. While inheritance laws favoured men, unmarried women could inherit a portion of their father's property. Unmarried women had some inheritance

rights, but married women were generally excluded from inheriting their father's property.

Decline of socio-economic status of women in Later Vedic Period:

As the Vedic period progressed, the status of women began to decline, with increasing emphasis on domestic roles and a decrease in their social and political participation. During the Later Vedic Period (c. 1000-500 BCE), the status of women declined significantly compared to the earlier Rig Vedic period. This decline manifested in several ways, including restrictions on their social and political participation, limitations on education, and a decline in their overall autonomy.

Key Aspects of the Decline:

- **Reduced Social and Political Participation:**

Women were excluded from assemblies like the Sabhas and Samitis, which were important for governance and decision-making. They were also barred from participating in religious rituals and ceremonies, effectively limiting their sphere of influence.

- **Restrictions on Education:**

While some women in the earlier Vedic period had access to education and even became seers, the Later Vedic Period saw a decline in educational opportunities for women, especially after marriage. Child marriages became more common, further limiting their educational and intellectual development.

- **Limited Autonomy and Increased Dependence:**

Women were increasingly confined to the domestic sphere and expected to be chaste and obedient. Their property rights were restricted, and they were generally considered to be under the authority of their male relatives, including their fathers and husbands.

- **Decline in Widow Remarriage:**

While widow remarriage was permitted in the earlier Vedic period, it became less common and even discouraged during the Later Vedic Period, forcing widows to live out their lives in celibacy.

- **Changing Religious Interpretations:**

New religious interpretations and traditions emerged that reinforced patriarchal norms and placed limitations on women's roles and status.

Conclusion

During the Vedic period in ancient India, women held a relatively high and respected status in society, enjoying significant freedom and equality with men. They were seen as equal partners in life, with opportunities for education, religious participation, and even leadership roles. While their position began to decline in later Vedic times, they initially held a respected place in the family and society.

It is hardly an exaggeration to argue that women have never had such a high social status as they had during the Rigvedic Period (1500–1000 BC). Women had the same status as men. Women were the mistresses of the house and held a high position in the family. During the Vedic period, women played a significant role in the economic system, contributing to various sectors and enjoying considerable freedom and status. They were not confined to domestic duties alone and participated in activities like teaching, weaving, agriculture, and craftsmanship, often earning income independently.

The prestige and dignity of women declined in the later Vedic Period. The birth of a son was desired, whereas the birth of a daughter was viewed as a sign of sadness. Participation in political gatherings ceased. Child marriage, the sati system, and dowry started increasing.

Thus, in ancient India, the position of women was generally high, especially during the Vedic period, but it varied across different periods and regions. While they were generally considered subordinate, they enjoyed rights to education, property ownership, and participation in religious rituals. Over time, these rights declined, and patriarchal norms became more prominent.

References:

1. Altekar, A.S. (1956), The Position of Women in Hindu Civilization from Prehistoric Times to the Present Day

Motilal Banarsidass, ISBN: 978-81-208-0324-4.
2. India: The Ancient Part: A History of the Indian Subcontinent from c 7000 BCE to CE 1200. Routledge 2016,
ISBN: 9781317236733.
3. Sita Anantha Romana (2009). Women in India: A Social and Cultural History. Vol: 2.
4. Bala, I. (2014), Status of women in Vedic Literature. The International Journal of Humanities and Social Studies, Vol:2.
5. Chakravartu, U. and Roy, R. (1988). In Search of our Past: A Review of the Limitations and Possibilities of the Historiography of women in Early India. Economic and Political Weekly. Vol. 23, No. 18.
6. Devi, N.J. and Subrahmanyam, K. (2014). Women in the Rig Vedic Era. International Journal of Yoga, Philosophy, Psychology and Parapsychology. Vol. 2.
7. Halli, C.S. and Mullal, S.M. (2016). Status of women in India. International Journal of Interdisciplinary Research.
8. Mahapatra H. (2015), Status of Women in Indian Society. Journal of Research in Humanities and Social Science.

भारतीय विदुषियों का राष्ट्र निर्माण में योगदान

डॉ अनामिका
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग
रामा देवी कन्या महाविद्यालय, नोएडा

शब्द संकेत: भारतीय विदुषियाँ, विभिन्न क्षेत्र, राष्ट्र निर्माण एवं योगदान, आधुनिक स्वरूप

भूमिका-

नारी का सम्मान करना एवं उसके हितो की रक्षा करना हमारे देश की सदियों पुरानी संस्कृति हैं। यह एक विडम्बना ही है कि भारतीय समाज में नारी की स्थिति अत्यंत विरोधाभासी रही है। एक तरफ तो उसे शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है तो दूसरी ओर बेचारी अबला भी कहा जाता है। इन दोनो ही अतिवादी धारणाओ ने नारी के स्वतंत्र विकास में बाधा पहुचाई है। आधुनिक युग में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियाँ पुरुषों के साथ कदम से कदम मिलाकर समान रूप से अपनी भागीदारी निभा रही है। वह अपने घर-परिवार की जिम्मेदारियों के साथ-साथ घर के बाहर कदम रख समाज एवं राष्ट्रहित के कार्यों में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रही है। समाज के द्वारा मां, बहन, बेटी, पत्नी आदि पहचान से अलग स्वयं की अलग पहचान बना रही है। आधुनिक युग में बदलते परिवेश के कारण स्त्रियों की भूमिका में भी काफी परिवर्तन आया है जो विज्ञान और तकनीक के क्षेत्र में आए परिवर्तनों का परिणाम है। इन परिवर्तनों ने स्त्रियों के दैनिक जीवन के काम काज को सरल करके उनको अपनी योग्यता प्रदर्शित करने का अवसर प्रदान किया है। जहाँ पहले वे काफी समय घर के कार्यों में लगाती थी वहाँ अब मिक्सी, वाशिंग मशीन, वेक्यूम क्लीनर आदि नवीन तकनीकी की मदद से कार्य शीघ्रता से कर लेती हैं और बचे हुए

समय का सदुपयोग कर स्वयं आत्मनिर्भर बन रही हैं। वे आत्मनिर्भर बन परिवार और राष्ट्र को आर्थिक मजबूती प्रदान कर रही है। इन स्त्रियों की आंकाक्षाओं एवं प्रकृति को समाज के द्वारा उन्हें ममतामयी, करुणामयी, कोमलांगी, बलिदानी कहकर दबा दिया जाता था परन्तु अब वह अपने अस्तित्व की पहचान बनाने के मिले अवसर का पूरा फायदा उठा अपनी बुद्धिमत्ता, रचनात्मकता का परिचय देते हुए अद्वितीय उत्कृष्टता का प्रदर्शन कर प्रत्येक क्षेत्र में अग्रणी भूमिका निभा रही हैं। उनकी उपलब्धियां नारी शक्ति के सामर्थ्य और भावना का प्रमाण है। भारतीय समाज में स्त्रियों का स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण रहा है हिन्दू धर्म में स्त्रियों को देवी का प्रतीक माना है। 'मनुस्मृति' में एक स्थान पर कहा है -

"यत्र नार्यस्तु पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता:।
यत्रैतास्तु न पूज्यंते रमन्ते तत्र देवता।।"

अर्थात् जहाँ पर स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ पर देवता निवास करते हैं और जहाँ पर स्त्रियों का सम्मान नहीं होता वहाँ पर किए गए सारे कार्य व्यर्थ हो जाते हैं। अगर हम वैदिक काल की बात करें तो उन दिनों परिवार मातृसत्तात्मक होते थे। परिवार के सभी कार्यो और भूमिकाओं में पत्नी को पति के समान अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियाँ शिक्षा ग्रहण करती थी साथ ही पति के साथ यज्ञ का सम्पादन भी करती थी। ऋग्वेद में सरस्वती को वाणी की देवी कहा गया है जो उस समय की नारी की शास्त्र एवं कला के क्षेत्र में निपुणता का परिचायक है। खेती का आरंभ हो या एक स्थान पर घर बनाकर रहने की बात हो इसका आरम्भ स्त्रियों ने ही किया था। परन्तु कालान्तर में धीरे-धीरे सभी समाजों में सामाजिक व्यवस्था मातृसत्तात्मक से पितृसत्तात्मक होती गई और पुरुष का अधिकार क्षेत्र व्यापक हो गया और स्त्री का केवल घर की चार दीवारी में सीमित कर दिया गया। समाज एवं राष्ट्र निर्माण में विदुषियों की भागीदारी प्राय: सभ्यता के विकास के सा -साथ हमारी सामाजिक व्यवस्था इस प्रकार बनती चली गई कि जिसमें पुरुष परिवार के लिए आजीविका के साधन

जुटाने की जिम्मेदारी उठाएगा और महिला उन साधनों का प्रयोग कर पारिवारिक व्यवस्था को बनाए रखेगी। यद्यपि महिलाओं का भी पुरुषों के कार्यों में योगदान होता था परन्तु उनके द्वारा किए गए कार्यों की बात नहीं की जाती थी और न ही उन्हें उनकी इस सफलता का श्रेय दिया जाता था। प्राचीन साहित्य के अध्ययन से ज्ञात होता है कि वैदिक काल में अनेक विदुषियों ने अपने ज्ञान से स्वयं की अलग पहचान बनाई और यह सिद्ध किया कि स्त्रियों को अवसर मिले तो वे काफी कुछ अपने समाज एवं देश के लिए कर सकती हैं।

वैदिक काल में अनेक विदुषियों ने सराहनीय कार्य कर अन्य स्त्रियों के लिए मार्ग प्रशस्त किया साथ ही उनमें नवीन चेतना का संचार किया। जिनमें देवमाता अदिति ने अपने पुत्र इन्द्र को वेदों एवं शास्त्रों की इतनी अच्छी शिक्षा दी कि उस ज्ञान की तुलना किसी से सम्भव नहीं थी, यही कारण है कि इन्द्र अपने ज्ञान के बल पर तीनों लोकों का अधिपति बना। अदिति को अजर-अमर माना जाता है। देव सम्राज्ञी श्री जो इन्द्र की पत्नी थी ऋग्वेद के कई सूक्तों पर शची ने अनुसन्धान किया। शची को इंद्राणी नाम से भी जाना जाता है। ये विदुषी के साथ-साथ महान नीतिवान भी थी। शाकल्य देवी महाराज अश्वपति की पत्नी थीं। एक बार अश्वपति महाराज ने ऋषियों से कहा कि मैं राष्ट्र में कन्याओं को शिक्षा प्रदान करने के लिए किसी विदुषी का चयन करना चाहता हूँ तब ऋषियों ने शाकल्य देवी का नाम लिया और ये उस समय की ऐसी पहली विदुषी हैं, जिन्होंने कन्याओं के लिए शिक्षणालय की स्थापना की। ब्रह्मावादिनी विश्ववारा वेदों पर अनुसंधान करने वाली महान विदुषी थी। ऋग्वेद के पांचवें मण्डल के द्वितीय अनुवाक के अटठाइसवें सूक्त षड्ऋकों का सरल रूपान्तरण करके अपनी विद्वत्ता का इन्होंने परिचय दिया। ब्रह्मवादिनी अपाला को कुष्ठ रोग हो गया था तो इनके पति ने इन्हें त्याग दिया तब अपने पिता के घर रहकर इन्होंने आयुर्वेद पर अनुसंधान किया और सोमरस की खोजकर स्वयं के उपचार द्वारा आयुर्वेद चिकित्सा से ये

विश्वसुंदरी बन गई। ब्रह्मवादिनी गार्गी ने शास्त्रार्थ में अपने युग के महान विद्वान महिर्ष याज्ञवल्क्य तक को हरा दिया था। ब्रह्मवादिनी वाक् ने अन्न पर अनुसन्धान करके अपने युग में उन्नत खेती के लिए किसानों को अच्छे बीज दिए। इन अनेक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट होता है कि वैदिक काल में अनेक विदुषियों ने अपनी विद्वत्ता का परिचय अलग-अलग क्षेत्रों में दिया।

मध्ययुगीन काल के समाज में भारतीय महिलाओं की स्थिति में काफी गिरावट आयी जब भारत के कुछ समुदायों में सती प्रथा, बाल विवाह और विधवा एवं पुनर्विवाह पर रोक आदि जैसी कितनी ही कुरुतियाँ समाज में व्याप्त थी तथा मुस्लिम परिवारों में तो महिलाओं को जनाना क्षेत्रों तक ही सीमित रखा गया था। इन परिस्थितियों के बावजूद भी कुछ महिलाओं ने राजनीति, साहित्य, शिक्षा और धर्म के क्षेत्रों में सफलता हासिल की। रज़िया सुल्तान दिल्ली पर शासन करने वाली एकमात्र महिला सम्राज्ञी बनीं। गोंड की महारानी दुर्गावती ने आसफ खान से लड़कर अपनी जान गंवाने से पहले पंद्रह वर्षों तक शासन किया था। चांद बीबी ने अकबर की शक्तिशाली मुगल सेना के खिलाफ़ अहमदनगर की रक्षा की। शिवाजी की माँ जीजाबाई को एक योद्धा और एक प्रशासक के रूप में उनकी क्षमता के कारण क्वीन रीजेंट के रूप में पदस्थापित किया गया था। दक्षिण भारत में कई महिलाओं ने गाँवों, शहरों और जिलों पर शासन किया और सामाजिक एवं धार्मिक संस्थानों की शुरुआत की। तटीय कर्नाटक की महारानी अब्बक्कारानी ने 16वीं सदी में हमलावर यूरोपीय सेनाओं उल्लेखनीय रूप से पुर्तगाली सेना के खिलाफ़ सुरक्षा का नेतृत्व किया। झाँसी की महारानी रानी लक्ष्मीबाई ने अंग्रेजों के खिलाफ़ 1857 के भारतीय विद्रोह का झंडा बुलंद कर एक नया इतिहास लिखा। इनकी वीरता की गाथाएं आज भी स्त्रियों में देश के लिए कुछ कर गुजरने का जज्बा जगाती हैं। चंद्रमुखी बसु, कादंबिनी गांगुली और आनंदी गोपाल जोशी कुछ शुरुआती भारतीय महिलाओं में शामिल थीं जिन्होंने शैक्षणिक डिग्रियाँ हासिल कीं।

भारत की आजादी के संघर्ष में भी महिलाओं ने एक महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। भिकाजी कामा, डॉ॰ एनी बेसेंट, प्रीतिलता वाडेकर, विजयलक्ष्मी पंडित, राजकुमारी अमृत कौर, अरुना आसफ़ अली, सुचेता कृपलानी और कस्तूरबा गाँधी कुछ प्रसिद्ध स्वतंत्रता सेनानियों में शामिल हैं। अन्य उल्लेखनीय नाम हैं मुथुलक्ष्मी रेड्डी, दुर्गाबाई देशमुख आदि। सुभाष चंद्र बोस की इंडियन नेशनल आर्मी की झाँसी की रानी रेजीमेंट कैप्टेन लक्ष्मी सहगल सहित पूरी तरह से महिलाओं की सेना थी। एक कवयित्री और स्वतंत्रता सेनानी सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अध्यक्ष बनने वाली पहली भारतीय महिला थी।ऐसा था भारतीय नारियों आदर्श और ऐसी थी उनकी राष्ट्र के प्रति निष्ठा, त्याग और बलिदान की भावना। राष्ट्र की सबसे छोटी इकाई परिवार है और परिवार के केन्द्र में नारी है। परिवार के सारे घटक उसके ही इर्द गिर्द घूमते हैं वहीं सभी को एक धागे में माला के रूप में पिरोकर रखने का काम करती है। इसलिए किसी भी देश या समाज की स्थिति उस देश की नारी की स्थिति पर निर्भर करती है अगर नारी की स्थिति दृढ़ और सम्मानजनक है तो वह देश भी उतना ही सुदृढ़ और समृद्ध होगा।

आधुनिक समाज में सशक्तिकरण का विषय कोई नवीन नही है अपितु वह सदैव से ही भारतीय संस्कृति का प्रतीक रहा है। पिछले वर्षों में महिलाओं ने अपने कार्यों से समाज में क्रांतिकारी परिवर्तन किए और आने वाली पीढ़ियों के लिए द्वार खोले। हालांकि भारत में सामान्य खेल परिदृश्य बहुत अच्छा नहीं है, कुछ भारतीय महिलाओं ने इस क्षेत्र में उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल की हैं। भारत की कुछ प्रसिद्ध महिला खिलाड़ियों में पी.टी. उषा, जे. जे. शोभा (एथलेटिक्स), कुंजरानी देवी (भारोत्तोलन), डायना एडल्जी (क्रिकेट), साइना नेहवाल (बैडमिंटन), कोनेरू हम्पी (शतरंज) और सानिया मिर्जा (टेनिस) शामिल हैं। कर्णम मल्लेश्वरी (भारोत्तोलक) ओलंपिक पदक जीतने वाली भारतीय महिला हैं। कला और मनोरंजन के क्षेत्र की बात करें तो एम.एस. सुब्बुलक्ष्मी, गंगूबाई

हंगल, लता मंगेशकर और आशा भोंसले जैसी गायिकाएं एवं ऐश्वर्या राय , सुष्मिता सेन, प्रियंका चोपड़ा जैसी अभिनेत्रियों को भारत में काफी सम्मान दिया जाता है। आंजोली इला मेनन प्रसिद्ध चित्रकारों में से एक हैं। राजनीति क्षेत्र की बात की जाए तो 73वें और 74वें संविधान संशोधन अधिनियमों के अनुसार सभी निर्वाचित स्थानीय निकाय अपनी सीटों में से एक तिहाई महिलाओं के लिए आरक्षित रखते हैं। हालांकि विभिन्न स्तर की राजनीतिक गतिविधियों में महिलाओं का प्रतिशत काफी बढ़ गया है। हालाकि, भारतीय महिलाओं ने राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री और विभिन्न राज्यों के मुख्यमंत्रियों के पद पर कार्य करते हुए महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ हासिल की हैं।

एनी बेसेंट भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की पहली महिला अध्यक्ष थीं। सरोजिनी नायडू भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का नेतृत्व करने वाली पहली भारतीय महिला थीं। नेली सेनगुप्ता, इंदिरा गांधी और सोनिया गांधी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की अन्य महिला अध्यक्ष थीं। शशिकला काकोडकर गोवा की पहली महिला मुख्यमंत्री और महाराष्ट्रवादी गोमांतक पार्टी की अध्यक्ष थीं। अन्य व्यवसायिक क्षेत्रों की बात करे तो आई.सी.आई बैंक में चंदा कोचर ने एम डी और सीईओ का पद प्राप्त कर पुरुष प्रधान समाज में अपनी एक नई पहचान बनाई और इस क्षेत्र में शानदार प्रदर्शन एवं योगदान के लिए इन्हें पद्म विभूषण से नवाजा गया। पहले शारीरिक एवं मानसिक कोमलता के कारण महिलाओं को रक्षा सेवाओं के लिए सक्षम नही समझा जाता था परन्तु श्रीमती किरण बेदी ने इस भ्रम को तोड़ आई पी एस पद पर कार्यरत होकर नया कीर्तिमान स्थापित किया। प्रशासनिक सेवाओं के क्षेत्र में ओमना कुंजमा ने पहली बार मजिस्ट्रेट पद हासिल किया तो न्याययिक क्षेत्र में मीरा साहब फातिमा बीबी ने सर्वोच्च न्यायालय के पद पर आसीन होकर नया इतिहास रचा। ऐसे ही कितनी विदुषियों ने अनेक क्षेत्रों में जैसे चिकित्सा, शिक्षा, विज्ञान, अंतरिक्ष, साहित्य, अनुसंधान इत्यादि में अपनी प्रतिभा का परिचय देते हुए

पुरुष प्रधान समाज में अपनी अलग पहचान बनाई। राष्ट्र निर्माण में विदुषियों ने अनेक क्षेत्रों में अपने कार्य से नए कीर्तिमान स्थापित करते हुए यह बात सिद्ध की कि अगर कर्मक्षेत्र में उन्हें अवसर दिए जाए तो वे भी पुरुषों से पीछे नही हैं।

निष्कर्ष-

उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि भारतीय महिलाओं ने पारिवारिक जिम्मेदारियों को निभाते हुए प्रत्येक क्षेत्र में अपने कार्यो के द्वारा बुद्धिमत्ता का परिचय दिया और आज भी स्त्रियां संघर्ष करते हुए प्रत्येक क्षेत्र में अपनी अलग पहचान बना रही हैं। यह प्रयास निश्चित तौर पर महिलाओं में एक नवीन चेतना का प्रतीक है। स्वामी विवेकानंद के कथन से नारी शक्ति का अंदाजा लगाया जा सकता है उन्होंने कहा था कि यदि आप मुझे 500 पुरुष दे दो तो मैं राष्ट्र को 1वर्ष में बदल दूंगा परन्तु यदि मुझे 50 महिलाएं दे दो तो मैं कुछ महीनों में देश बदल दूंगा।

महिलाएं घुंघट उठने पर बेशर्म, बेहया जैसे अपमानित शब्दों से दूर समाज में अपना स्थान बनाने में कामयाब हो हुई हैं। सशक्त महिला एक सशक्त समाज एवं राष्ट्र की आधारशिला है। महिला सृष्टि का उत्सव है, मानव की जननी है, बच्चों की पहली गुरु तथा पुरुष की प्रेरणा है।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची:

1. मनु स्मृति- 3/56
2. भारतीय इतिहास में महिलाएं, खुराना एवं चौहान, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा
3. एम.एल. वरे, भारतीय इतिहास में नारी, कैलाश पुस्तक सदन, भोपाल
4. डॉ. वी.एन. सिंह, आधुनिकता एवं नारी सशक्तिकरण, रावत पब्लिकेशन, जयपुर

वैदिककाले विदुषीनां भूमिका तथा योगदानम्

डॉ. प्रज्ञा कोनार्डे
सहा. आचार्या, (संस्कृतम्), भारतीया तथा विदेशी भाषा संस्था
एमजीएम विश्वविद्यालयः, छत्रपतिः संभाजीनगरम्, महाराष्ट्रः

मुख्यशब्दाः- वैदिकसंहिताकालः, विदुषी, ऋग्वेदः, वैदिकशिक्षा, ब्रह्मवादिनी, स्त्री, ब्रह्मजाया

वैदिकसंहिताकालः भारतीयसभ्यतायाः प्राचीनतमः कालः इति मन्यते। अयं कालः सम्पूर्णे जगति सभ्यतायाः उत्तमः युगः इति कथ्यते चेत् अतिशयोक्तिः न स्यात्। अस्मिन् युगे अस्माकं पूर्वजाः जीवनस्य उच्चादर्शाः ईश्वर-समाज-सम्बद्धाः अनेकाः महत्याः कल्पनाः निर्मान्ति स्म। अस्माकं पूर्वजाः मन्यन्ते स्म यत् यथा प्रकृत्या विना पुरुषस्य (ईश्वरस्य) कार्यम् अपूर्णं तिष्ठति तथैव पुरुषस्य यौवनमपि स्त्री विना अपूर्णं भवति। संहिताकाले एतत् तथ्यं सम्यक् अवगत्य सामाजिकव्यवस्थायाः समीपं गतं आसीत्। अस्माकं ऋषयः पूर्णतया अवगताः आसन् यत् जीवनशकटिकायाः चक्रद्वयं- एकः स्त्री अपरः पुरुषः। एतयोः चक्रयोः समानता एव जीवनस्य वाहनं निरन्तरं चालयितुं शक्नोति। अत एव वैदिकसंहिताकाले पुरुषस्य अर्धांगिनी स्त्री इति उच्यते। स्त्री पुरुषात्मनः अर्धाङ्गम्। स्त्रीसिद्धिं विना पुरुषस्य जीवनम् अपूर्णम्।

वैदिकसंहितासाहित्यस्य मूल्याङ्कनं, आलोचनं च कृत्वा स्पष्टं भवति यत् तस्मिन् काले समाजे स्त्रीणां कृते महत्त्वपूर्णं स्थानम् आसीत्। एतस्य महत्त्वपूर्णस्य स्थाननिर्वहणार्थं स्त्रियः अनेकानि महत्त्वपूर्णानि पारिवारिककार्यं कर्तव्यानि आसन्, यानि मातृत्वेन सहचरत्वेन च क्रियन्ते स्म। एतेषां कार्याणां अतिरिक्तं महिलानां कृते स्वविकासमार्गे अग्रे गमनस्य, सांस्कृतिकविकासद्वारा समाजसेवायां योगदानस्य च पूर्णः अधिकारः आसीत्।

वैदिकसमाजशास्त्रज्ञानाम् अतीव पवित्रं उद्देश्यं आसीत् यत् स्त्रियं पुरुषस्य श्रेष्ठार्धं स्वीकुर्वन्ति येन पुरुषः स्त्रियाः अपेक्षया स्वं श्रेष्ठं न मन्यते। यावत् पुरुषः एतस्य समतायाः स्नेहस्य च विषये मनसि स्थितवान् तावत् सः कदापि तां स्त्रियं हीनतापूर्वकं न पश्यति स्म। अद्यतनसमाजस्य स्त्रीपुरुषयोः यः अधिकारभावः, अधिकारः च दृश्यते सः वैदिक-जीवनस्य प्रत्येकस्मिन् क्षेत्रे स्वस्य वरिष्ठतां श्रेष्ठतां च सिद्ध्य सफला अभवत्। अद्यतनपण्डिताः महिलासमुदायं वेदस्य अध्ययनात् दूरं स्थापयितुं यत्किमपि तर्कं वदन्ति, परन्तु वैदिकयुगं क्रन्दति- "स्त्रीणां वेदपठनस्य समानाधिकारः अस्ति" इति। स्त्रियः अपि वेदाध्ययनार्थं उपनयनस्य (यज्ञोपवीतस्य) अधिकारात् वंचिताः नासन्। यज्ञस्य अधिकारेण सह यज्ञस्य आचरणस्य च अधिकारः अपि अस्ति। किं कोऽपि पुरुषः स्त्री वा मन्त्राणां सम्यक् अध्ययनं विना वैदिकसंस्कारं कर्तुं निपुणः भवितुम् अर्हति वा? उत्तरं स्पष्टतया न इति। कल्पकानां हृदयेषु संकीर्णचित्तस्य विवेकस्य च भावः कल्पयितुं तेषां वैदिकपुरुषस्त्रीणां (मन्त्रदर्शकानां) समाजस्य वस्तुतः अवहेलना एव।

घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपनिषन्निषत्।
ब्रह्मजाया जहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः।।
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती।।
श्रीर्लाक्षा सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः।।[1]

अर्थात् घोषा, गोधा, विश्ववारा, अपाला, उपनिषद्, निषाद्, ब्रह्मजाया जुहू, अगस्त्यस्य स्वसा अदितिः, इन्द्राणी, सरमा, रोमशा, उर्वशी, लोपामुद्रा, नद्यः, यमी, शस्वती, श्रीः, लाक्षा, सार्पराज्ञी, वाक्, श्रद्धा, मेधा, दक्षिणा, रात्री, सूर्या च सर्वैताः ब्रह्मवादिन्यः।

ऋग्वेदे उल्लेखिताः विख्याताः ब्रह्मवादिन्यः[2]

ऋषिकानाम	**मन्त्रसंख्या**

1 सूर्या सावित्री- (१०/८५)	४७	
2 घोषा काक्षीवती- (१०/२३९-४०)		२८
3 सिकता निवातरी- (९/८६)		२०
4 इन्द्राणी- (१०/८६, १०/१४५)		१७
5 यमी वैवस्वती- (१०/१०, १०/१४५)		९१
6 दक्षिणा प्रजापत्या- (१०/१०७)	१९	
7 अदितिः- (१०/७२, ४/१८७)		१०
8 वागाम्भृणी- (१०/१२५)	१४	
9 अपाला आत्रेयी- (८/९१)		७
10 जुहू ब्रह्मजाया- (१०/१०९)		७
11 अगस्त्यस्वसा- (१०/९०)		७
12 विश्ववारा आत्रेयी- (१०/१२५)	६	
13 ऊर्वशी- (१०/९५/२१)		६
14 सरमा देवशुनी- (१०/१०८)		६
15 शिखण्डिनौ अप्सरसौ- (९/१०४)	६	
16 पौलमी शची- (१०/१४५/१)		६
17 देवजामयः इन्द्रमातरः- (१०/१५)		५
18 श्रद्धाकामायनी- (१०/१४५/१)	४	
19 नदी- (३/३३/४,६,८,१०)		३
20 सर्पराज्ञी- (१०/१८९)	१	
21 गोधा- (१०/१३४/७१)	१	
22 शाश्वती आंगिरसी- (८/१/३४)	१	
23 वसुक्र पत्नी- (१/८२/१)		१
24 रोमशा ब्रह्मवादिनी- (ऋ.१/१२६/१)		१
सम्पूर्णमन्त्राः		२२३

वैदिकसंहितानां सूक्तमंत्राणां द्रष्टारः याः ब्रह्मवादिन्यः तेषु एका अस्ति जुहूः ब्रह्मवादिनी। एतासु महिलासु जुहूविषयकमादरमेव दृश्यते। ब्रह्मवादिन्यैषा जुहू ऋग्वेदस्य दशममण्डलस्य १०९ सूक्तस्य सर्वेषां सप्तमन्त्राणां ऋषिका। अत्र सप्तमन्त्रेषु पञ्चमे मन्त्रे जुहूनामोल्लिखितम् अस्ति,

ब्रह्मचारी चरति वेविषद्विषः स देवानां भवत्येकमङ्गम्।

तेन जायामन्वविन्दद्बृहस्पतिः सोमेन नीतां जुह्वं न देवाः॥[3]

अस्य सूक्तस्य मंत्रे स्पष्टं यत्- "स्त्र्यभावे बृहस्पतिः ब्रह्मचर्यम् अनुसृत्य सर्वदेवैः सह वसन् सः अपि तेषां भागः अभवत्। सोमस्य भार्या इव बृहस्पतिः "जुहूः" इति बालिकां अपि स्वपत्नीत्वेन स्वीकृतवान्। ब्रह्मज्ञानी पत्नी भूत्वा "जुहूः" ब्रह्मजाया इति नाम्ना प्रसिद्धा अभवत्। सम्भवतः स्त्रीपुरुषेषु वैदिकशिक्षायाः प्रसारणात् एषा महिला "जुहूः" इति उपाधिना अलङ्कृता आसीत्। इदं प्रतीयते यत् तस्य जिह्वायाः तीक्ष्णतायाः कारणात् "जुहूः" इति नामाङ्कनं जातम्। परवर्ती वैदिकसाहित्ये अपि "जुहूः" इति शब्दः जिह्वाकारस्य स्त्रुक्पात्रं इत्यर्थेन विख्यातः येन पात्रेण यागादिविधिं क्रियते।[4]

स्वाभिमानी ब्रह्मजाया- जुहूः

"जुहूः" एका ब्रह्मवादिनी महिला अस्ति या बाल्यकाले स्वस्य अन्तःकरणं शुद्धं कृतवती। जुहू द्वारा दृष्टानां एतेषां मन्त्राणां आधारेण जुहूः एका तपस्विनी एव इति वक्तुं शक्यते। केनचित् कारणेन अहङ्कारेण वा बृहस्पतिः प्रमादात् स्वगृहनगरं "जुहूं" त्यक्तवान्। जुहूः वैदिकसंहितानां अध्ययने, शिक्षायां च व्यग्रां भूत्वा स्त्रियाः गौरवं निर्वाहयति स्म। जुहूः ब्रह्मवादिन्यः धैर्यस्य, साहसस्य च परिणामः आसीत् यत् सम्पूर्णः देवसमुदायः बृहस्पतिं स्वपत्न्याः परित्यागस्य प्रायश्चित्तं कर्तुं आज्ञापितवान्। तपस्यान्ते बृहस्पतिः स्वस्य ब्रह्मजायां स्वीकृतवान् तथा च सर्वे देवाः सर्वसम्मत्या समर्थनं कृतवन्तः यत् सा विधिवत् विवाहिता अस्ति, तस्याः पतिव्रता सुरक्षिता अपि।

पुनर्वै देवा अददुः पुनर्मनुष्या उत।

राजानः सत्यं कृण्वाना ब्रह्मजायां पुनर्ददुः ॥5

अस्मिन् सूक्ते वैदिकसंस्कारविनाशे राजा किं कुर्यात् इति अतीव मार्मिकतया वर्णितम्। यः स्वकर्मत्यागं कृतवान् तं प्रायश्चित्तं कारयितुं निर्णायकमंडलस्य आवश्यकता कथं भवति, येन योग्यः निष्पक्षः निर्णयः भवितुम् अर्हति एतद्विषये आलंकारिकभाषायां जुहूः विस्तृतेन प्रकाशितवती। तया सम्यक् उक्तमपि यदि निर्णायकमंडलः निर्णयविज्ञः, ज्ञानी, विवेकशीलः, कालज्ञः भवति चेत् दूरदृष्टि-दृढनिश्चय-धर्मपरायणताभिः निर्णयप्रक्रिया अपि योग्या भवति।

पुनर्दाय ब्रह्मजायां कृत्वी देवैर्निकिल्बिषम्।
ऊर्जं पृथिव्या भक्त्वायोरुगायमुपासते ॥6

निष्कर्षाः

- एषा ब्रह्मजाया अवश्यं स्वाभिमानी आसीत्, अत एव मन्त्रेषु रोदनं याचना च न दृश्यते।
- सर्वदेवतानां प्रयासैः बृहस्पतिः प्रायश्चित्तं कृतवानिति मन्त्रेषु दृश्यते।
- एतेषु सर्वेषु मन्त्रेषु महदुल्लेखनीयमेकं यत् महिलानां स्वीकारार्थं स्त्रियाः अनुरोधः नास्ति। आम्, सत्यं यत् सा पुनर्विवाहं न कृतवती न च अन्यपुरुषं प्रति आकर्षिता। तस्माद् एतेषु मन्त्रेषु पुनः पुनः "जुहूः" शुद्धा इति कीर्तिताः।
- यदा कापि विवेकशीला स्त्री एतान् मन्त्रान् पठति तदा सा क्रोधीपतिं क्रोधीकुटुम्बं वा पृच्छेत्, ते किमर्थमन्यायं कुर्वन्ति? अथवा एतदपि शक्यते महिलासु आत्मसम्मानप्रबोधः न भवेदिति अतः महिलाः वेदाध्ययनात् शनैः शनैः दूरं गताः।
- जुहूः तस्याः स्मृतौ न विद्यते। जुहूः वेदेषु अस्ति, जुहूः वेदमन्त्राणां रचयिता, परन्तु सा स्वस्त्रीजनानाम् आत्मसम्मानं, गौरवं च अद्य न सिध्यति इति दुर्भाग्यम्। किमर्थम्?

- जुहूद्वारा रचितसूक्तस्य मन्त्राः अधुनापि प्रेरणादायकाः तथैव निर्णायकमंडलचयनेषु सहायकाः।
-

एते सर्वे सप्तमन्त्राः स्त्रियाः आदरणीयस्थानविषये प्रतिष्ठापयन्ति यत् यदि पतिः अहङ्कारेण स्वपत्न्याः विषये किञ्चित् अन्यायं करोति अथवा कथञ्चित् समाजेन स्त्रिषु अन्यायः कृतः स्यात् तर्हि कुटुम्बे स्त्रियाः योग्यस्थानम् आदरं च भवेत् एतादृशाः प्रयासाः समाजेन कर्तव्याः।

जुह्वः मन्त्राभ्यासेन एतत् प्रतीयते यत् सा एका विवेकशीला महिला परिलक्ष्यते। सा जानाति यत् समाजस्य कार्यनिर्वहणाय विवाहः यथा महत्त्वपूर्णः, तथैव स्त्रियाः आत्मसम्मानः अपि। पुरुषाः समाजश्च स्वदोषाण् प्रति प्रबोधिताः भवेयुः एतदपि तथैव महत्त्वपूर्णः।

संदर्भ-ग्रंथ-सूचीः

1. रामकुमार रायः, *बृहद्देवता,* अध्यायः २.८२-८४, चौखंबासंस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, द्वि.संस्करणं- 1986, पृष्ठं- 53-54
2. डॉ. शत्रुघ्नपाणिग्राहीः, *वैदिकसाहित्येनारी,* श्रीसोमनाथसंस्कृत-विश्वविदेयालयः, वेरावलम्- 2013, पृष्ठं- 12-13
3. ऋग्वेदः, 10.109.5
4. ऋग्वेदः - ८/४४/५, तथा १०.२१.३, यज्ञः https://dharmawiki.org/index.php/Yajna
5. ऋग्वेदः- 10.109.6
6. ऋग्वेदः - 10.109.7

संस्कृत नाटको में नारी

डॉ. रीटा एच. पारेख
श्री और श्रीमती पी.के.कोटावाला आर्ट्स कॉलेज, पाटण

साहित्य जीवन का प्रतिनिधित्व करता है। समाज जैसा भी होगा उसकी गूंज साहित्य में प्रतिध्वनित होगी ही। किसी समाज की दिशा और दशा के आकलन में तत्कालीन साहित्य महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। साहित्यकार समाज का ही अंग होता है और उस पर अपने समय और समाज का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है।

आज वैश्विक परिदृश्य में जहाँ नारी पुरूषों के समकक्ष खड़ी होकर अपने अधिकारों के लिए संघर्षरत है वही भारतीय समाज और साहित्य में भी स्त्री विमर्श एक आंदोलन ले चुका है। आज सरकार भी जब स्त्री सशक्तिकरण और स्त्री कल्याण के लिए अनेक कार्यक्रम और योजनाएं संचालित कर रही है, नारी हित में अनेक कानूनों को लागू करने का प्रयास कर रही है, वहाँ यह जानना रोचक होगा कि हमारे प्राचीन साहित्य में भी अपनी स्वतंत्रता एवं अधिकारों के लिए पितृसत्तात्मक समाज के वर्चस्व के विरुद्ध संघर्ष करने वाली एवं अपनी प्रतिभा व योग्यता का लोहा मनवाने वाली स्त्रियों के रूप में स्त्री की अनेक आदि छवियाँ संस्कृत साहित्य में उपस्थित रही है।

संस्कृत साहित्य की परम्परा अत्यंत प्राचीन है। भारतीय समाज में नारी का स्थान अत्यंत गौरवपूर्ण रहा है और साहित्य ने कभी भी नारी की उपेक्षा नहीं की है। प्राचीन से लेकर अर्वाचीन काल तक साहित्यकारों ने समाज में नारी की परिवर्तित स्थिति पर दृष्टि रखते हुए उसका साहित्य में अंकन किया है। हमारी प्राचीन साहित्यिक परम्परा पाँच हजार वर्षों से भी पूर्व संस्कृत भाषा में लिखे गये वैदिक ग्रंथों से आरम्भ होती है। वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि इस काल में समाज में स्त्रियों का सम्मानजनक

स्थान था। ऋग्वेद और अथर्ववेद के समय में भारतीय समाज निर्माण की स्थिति में था और उसके विचार, संस्थायें, धर्म एवं समाज अपना स्वरूप ग्रहण कर रहे थे। उस समय आर्य पूर्ण रूप से राजनैतिक एवं सैनिक गतिविधियों में व्यस्त रहे। ऐसी परिस्थिति में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक किया-कलापों में स्त्रियों ने पुरूषों के समकक्ष सक्रिय भागीदारी निभाई।[१]

वैदिक काल में अनेक स्थानों पर नारी की प्रशंसा की गई है तथा उसे सौभाग्यशालिनी बताया गया है। ऋग्वेद में कहा गया है कि-

उत त्वा स्त्री शशीयसी पुंसो भवति वस्यसी अदेवत्रादराधसः।[२]

अर्थात् 'प्रभु हमें दिव्य गुणों से दूर लोभ वृत्ति वाला पुरूष न बनाकर कर्तव्य-कर्म परायणा स्त्री का ही शरीर दें जिससे हम अपने निवास को उत्तम बनाने वाले हो।' इसमें ही आगे कहा गया है कि-

'वियाजानाति जसुरिं वितृष्यन्तंविकामिनम् देवत्रावृणुतेयन'।[३]

अर्थात् 'कर्तव्य परायणा स्त्री का जीवन 'क्रोध-लोभ-काम' से ऊपर उठकर दिव्यगुणों में प्रीति वाला होता है।'

जब कि इन्हीं ग्रंथों में नारी की निंदा की गई है। ऋग्वेद में नारी स्वभाव की निन्दा करते हुए कहा गया है कि स्त्रियों का मन समझा नहीं जा सकता उनकी बुद्धि चंचल होती है।[४] ऋग्वेद में ही उर्वशी पुरूरवा को समझाते हुए कहती है कि- **"न वे स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता।"**[५] (स्त्रियों में आसक्ति से कामवश स्नेह स्थायी नहीं होता है, किन्तु आक्रमणकारी भेडियों के हृदय जैसे जीवन नष्ट कराने वाले होते है)

नाट्यशास्त्र में भरतमुनि ने नारी के विषय में कहा है- **सर्व प्रयिण लोकोऽयं सुखमिच्छति सर्वदा सुखस्य च स्त्रियोंमूलं नानाशीलधराश्च।**[६]
मनुस्मृति में मनु ने नारी की प्रशंसा करते हुए कहा है-

यत्रनार्येस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्रं देवताः।[७]

शतपथ ब्राह्मण में कहा गया है कि पत्नी पुरूष की आत्मा का आधा भाग है।[८] जब कि इसी में नारी की निन्दा करते हुए कहा गया है-

अनृतं स्त्री शूद्रः श्वा कृष्णः शकुनिः।[९]

महाभारत में कहा गया है-

अर्ध भार्या मनुष्यस्य, भार्या श्रेष्ठम सखा।
भार्यामूलं तरिवर्गस्य, भार्या मूलं तरिश्यतः॥[१०]

अन्ततः यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन संस्कृत साहित्य में कहीं पर नारी की प्रशंसा की गई है तथा कहीं पर निन्दा की गई है।

महाकवि भास, कालिदास तथा शूद्रक के नाटको में नारी का रूप, समाज में नारी की स्थिति, नारी एवं शिक्षा तथा सामाजिक व आर्थिक स्वतन्त्रता के बारे में कई उल्लेख मिलते हैं।

नारी का मातृ रूप:

संस्कृत साहित्य में माता को अत्यन्त सम्मानजनक स्थान दिया गया है। महाभारत में कहा गया है कि आचार्य सदा दस श्रोत्रियों से बढकर है, पिता दस उपाध्यायों से अधिक महत्व रखता है और माता का महत्व दस पिताओं से भी अधिक है। अतः माता के सिवाय कोई दूसरा गुरु नहीं है।[११] माता देहदात्री होने के साथ-साथ ज्ञानदात्री भी है। वह बच्चों का पहली और सबसे बड़ी गुरु है।

नारी का वैदिक युगीन देवी पद लुप्त हो चुका था, फिर भी समाज में माता को आदर की दृष्टि से देखा जाता था। नारी का स्थान परिवार में मातृत्व के आधार पर निश्चित होता था। माता को देवता से भी अधिक पूजनीय माना जाता था।[१२] माता के लिए अकरणीय कार्य भी किए जा सकते थे। मध्यम व्यायोग में घटोत्कच माता के व्रत के पारणार्थ ब्राह्मण की हत्या करने को तैयार हो जाता है।[१३] कर्णभार में कर्ण माँ के कहने पर युद्ध के प्रति विरक्ति की आशंका से युक्त हो जाता है।[१४]

माँ भी संतान के प्रति अपना कर्तव्य पूरा करती थी। निःसंतान स्त्री का जीवन व्यर्थ माना जाता था। विक्रमोर्वशीय में पुरुरवा उर्वशी को पुत्रवती का स्वागत है ऐसा कहकर उर्वशी को आसन पर बैठाया जाता है।

पुत्र दर्शन मात्र से ही माँ का रोम-रोम पुलकित हो उठता था। यही उसके मातृत्व की सार्थकता थी। माता को सर्वपूज्या माना जाता था।[१५]

पत्नी रुप:

माता का ही दूसरा रुप पत्नी है। पत्नी को ही परिवार में गृहिणी पद प्राप्त होता है। कुटुम्बिनी[१६] शब्द से यह स्पष्ट होता है कि नारी का कार्य परिवार तक ही सीमित था। वह गृह स्वामिनी होती थी। वह घर की आंतरिक व्यवस्था की ठीक रूप से देख-रेख तथा संचालन करती थी। पारिवारिक समस्याओं के विषय में पति-पत्नी से विचार विमर्श करता था। 'प्रतिज्ञायौगंधरायण' में राजा महासेन अपनी पुत्री के विवाह के विषय में पत्नी से राय लेता है।[१७] पत्नी अपने पति के लिए महान त्याग करने के लिए तैयार रहती थी। 'स्वप्नवासवदत्तम्' में वासवदत्ता अपने पति के उत्कर्ष हेतु समस्त राजसी-ऐश्वर्य का त्याग करके प्रछन्न वेश में रहती है और अपने पति का विवाह पद्मावती के साथ करने को तैयार हो जाती है।[१८] 'प्रतिमानाटकम्' में सीता वन जाते हुए राम का अनुसरण करती है। पत्नी पति की सहधर्म चारिणी होती थी।[१९] 'अभिज्ञानशाकुन्तल में पत्नी को गृहिणी पद से सुशोभित किया गया है।

'मृच्छकटिकम्' नाटक में नारी को साक्षात् त्याग की प्रतिमूर्ति बतलाया गया है। चारुदत्त की पत्नी धूता अपने पति को चोरी के कलंक से बचाने के लिए अपनी बहुमूल्य रत्नावली दे देती है। इससे प्रतीत होता है कि तत्कालीन समय में नारी को उन्नत स्थान प्राप्त था।

कन्या रूप:

नारी का प्रथम रूप कन्या या पुत्री है नारी विवाह से पूर्व सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से परतन्त्र थी। पिता अविवाहित पुत्री के लिए चिन्तित रहता था।

'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में कन्या को पराया धन कहा है। जिसे माता-पिता न्यास रूप समझते है। जन-सामान्य कन्या के विवाहोपरान्त उसी तरह निश्चिन्त हो जाता था, जैसे कोई व्यक्ति न्यास लौटाकर निश्चिन्त हो जाता

है।[२०] कालिदास ने मनु की तरह स्त्री स्वतन्त्रता को वर्जित बताया है। विवाहोपरान्त कन्या पर पति की सर्वतोमुखी सत्ता रहती थी। वैवाहिक चिन्ताओं के कारण ही कन्या जन्म को दु:ख स्वरूप माना जाता था।

विधवा के रूप में नारी:

विधवा शब्द से तात्पर्य है- 'विगतः धवः' अर्थात् पति रहित। पति की मृत्यु नारी के जीवन का महान दुर्भाग्य था। स्त्रियों के लिए वैधव्य अभिशाप स्वरूप था। विधवा को समाज में हेय समझा जाता था। 'दूतघटोत्कच' में अभिमन्यु का वध हो जाने पर धृतराष्ट्र दुर्योधन आदि अपने पुत्रों को कहता है कि अनेक पुत्रों वाले इस कुल में सौ पुत्रों से भी अधिक प्यारी केवल एक पुत्री है और वह तुम भाईयों की कृपा से निंदनीय वैधव्य को प्राप्त करेगी।[२१] इससे यह प्रतीत होता है कि विधवा का समाज में कोई विशेष स्थान नहीं था। 'पंचरात्रम्' में वृद्ध गोपालक गोप युवतियों को ऐसा ही आशीर्वाद देता है।[२२] दूसरे की पत्नी को विधवा बनाने वाला अपनी पत्नी के लिए वैधव्य मोड़ लेता है। विधवा का वेश पृथक् होता था। उसका जीवन तपस्वी नारी की तरह होत था। कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' में 'पुनर्नवीकृत वैधव्य दुखया'[२३] कहने से विधवा की दयनीय अवस्था स्पष्ट होती है। 'मृच्छकटिकम्' में चारुदत्त की पत्नी धूता अपने पति के मृत्युदण्ड का समाचार सुनकर अग्नि में प्रविष्ट होने का निश्चय करती है।[२४] इससे यह स्पष्ट होता है कि विधवा का समाज में कोई आदरणीय स्थान नहीं था।

गणिका के रूप में नारी:

नारी का गणिका रूप वैदिक काल से ही समाज में प्रचलित है। भोग-विलास के मद में मस्त राजाओं के भवनों में सदा गणिकायें रहती थी। गणिकाओं को समाज में धृणा की दृष्टि से देखा जाता था। इन्हें धन के लिए हंसने वाली, रोने वाली, पुरुषों को विश्वास दिलाने वाली व स्वयं विश्वास न करने वाली कहा जाता था। लेकिन सभी गणिका केवल धन की ही इच्छा करने वाली नहीं थी। कुछ धन की अपेक्षा गुणों का सम्मान करने

वाली होती थी। जैसे की वसंतसेना। वह धन हीन परंतु सदाचारी चारूदत्त से प्रेम करती थी और धनसम्पन्न राज श्यालक शकार से धृणा करती थी।[२५]

इससे यह स्पष्ट होता है कि गणिका को उस समय अछूत नहीं लेकिन धृणित तो अवश्य समझा जाता था। क्योंकि नगर के श्रेष्ठ एवं प्रसिद्ध व्यक्ति भी गणिकाओं से सम्बन्ध रखते थे।

समाज में नारी की स्थिति:

सती-प्रथा स्त्रियों का शैक्षिक स्तर ऊंचा होने पर भी उन्हे समाज की यातनाएं झेलनी पड़ती थी। स्त्रियाँ विधवा जीवन व्यतीत करना उचित नहीं समझती थी। वे पति के साथ सती हो जाती थी। मृच्छकटिक में पतिव्रता धूता पति के मृत्यु का समाचार सुनने से पूर्व ही अग्नि में प्रवेश करना चाहती है।[२६]

परदा प्रथा:

प्रस्तुत नाटकों के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि परदा प्रथा का भी समाज में अस्तित्व था। "प्रतिमानाटकम्" में सीता वन गमन के समय मार्ग में घूंघट निकाल कर चलती है। "अभिज्ञानशाकुन्तलम्" में शकुन्तला तपस्वियों के साथ दुष्यन्त के दरबार में अवगुंठित होकर जाती है। उसको देखकर राजा दुष्यन्त **"कास्विदव-गुण्ठवती नाति परिस्फुट शरीर लावण्या"** कहता है।

उस समय अवगुण्ठन समाज में नारी की विनय शीलता और लज्जा का प्रतीक समझा जाता था। जब दुष्यन्त शकुन्तला से विवाह करने की बात का स्मरण नहीं करता तो गौतमी ने शकुन्तला को लज्जा का त्याग कर घूंघट हटाने के लिए कहा।[२७]

शिक्षा और नारी:

शिक्षा के क्षेत्र में नारी प्रगति के पंथ पर थी। नारी शिक्षा पुरुष शिक्षा के समान ही आवश्यक थी। नारी को आदर्श पत्नी एवं विदुषी बनाने के लिए स्त्री शिक्षा आवश्यक मानी गई है। शैक्षिक क्षेत्र में नारी स्वतंत्र थी।

"प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्" में वासवदत्ता को वीणावादन की शिक्षा ग्रहण करने का उल्लेख है। महाकवि कालिदास के नाटकों में भी अनेक शिक्षित नारियों का उल्लेख मिलता है। शकुन्तला की सखियाँ उससे दुष्यन्त को पत्र लिखवाती है। यह पत्र उसके शिक्षित होने का प्रमाण है। इसी प्रकार 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' में शकुन्तला की दोनों सखियाँ अनसूया और प्रियंवदा भी शिक्षित प्रतीत होती है क्योंकि वे दुष्यंत की नामांकित मुद्रिका से दुष्यन्त का नाम पढ़ती है। उस समय शिक्षा के साथ-साथ नारी को ललित कलाओं की शिक्षा भी दी जाती थी। "मालविकाग्निमित्रम्" में मालविका को नृत्य विशारद कहा है- भो वयस्यु न केवल रूपे शिल्पे अप्यद्वितीया मालविका'। शूद्रक के "मृच्छकटिकम्" में शिक्षित नारी का तो उल्लेख नहीं है लेकिन वसन्तसेना को विभिन्न कलाओं में दक्ष बताया गया है।[२८]

स्वतन्त्रता और नारी:

वैसे तो समाज में रहते हुए कोई भी व्यक्तिगत रूप से स्वतन्त्र नहीं रह सकता। उसे सामाजिक मर्यादा के अनुसार ही कार्य करना होता है। भास, कालिदास और शूद्रक के समय में नारी सामाजिक व आर्थिक दृष्टि से परतन्त्र थी।

सामाजिक स्वतंत्रता:

भास ने नारी के लिए पति को ही सर्वस्व कहा है। " प्रतिमानाटकम्" में सीता ने राम के साथ वन में जाने की इच्छा व्यक्त की तो लक्ष्मण ने कहा कि पति ही स्त्री का स्वामी है। जब पति वन में जा रहा है तो पत्नी को भी अवश्य वन में जाना चाहिए। इससे ऐसा प्रतीत होता है कि स्त्री का अपना कोई स्वतंत्र व्यक्तित्व नहीं था।[२९]

"मध्यमव्यायोग" में केशवदास ब्राह्मण राक्षस को अपना शरीर देकर अपने पूरे परिवार की रक्षा करना चाहता है, लेकिन उसकी पत्नी कहती है कि पतिव्रता स्त्री के लिए पति ही धर्म है। इसलिए परिवार की रक्षा के लिए मैं अपना शरीर राक्षस को देना चाहती हूँ।[३०]

आर्थिक स्वतन्त्रता:

भास के समय में स्त्रियाँ अर्थोपार्जन नहीं करती थी लेकिन गणिका स्वयं अर्थोपार्जन करती थी और वे समृद्ध होती थी। 'चारुदत्तम्' और 'मृच्छकटिकम्' नाटक में वसन्तसेना नामक गणिका को धन सम्पन्न बताया गया है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में शेठ धनमित्र की सम्पत्ति राजकीय होने वाली थी, क्योंकि उसकी मृत्यु हुई तब वे नि:संतान थे। उससे प्रतीत होता है कि पत्नी अपने पति की सम्पत्ति की स्वामिनी तो नहीं थी परन्तु उस सम्पत्ति का उपभोग अवश्य करती थी।[३१] शूद्रक के समय में भी नारी आर्थिक विषय में पति पर अवलम्बित थी। विवाह के समय प्राप्त उपहार आदि पर स्त्री का पूर्ण रूप से अधिकार होता था। जिसे स्त्री धन कहा जाता था।

इस प्रकार उक्त विवेचन से स्पष्ट है कि भास, कालिदास और शूद्रक के समय स्त्रियाँ सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पुरूषों के समान स्वतन्त्र नहीं थी।

निष्कर्ष:

उपरोक्त विवेचन से निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि महाकवि भास, कालिदास तथा शूद्रक के समय में समाज में नारी की सामाजिक स्थिति प्राय: समान थी। जैसे- सती प्रथा, परदा प्रथा, शिक्षा तथा आर्थिक व सामाजिक स्वतन्त्रता आदि। उस समय सती प्रथा तथा परदा प्रथा का प्रचलन था और नारी को पुरूष के समान स्वतन्त्रता नहीं थी। उसे पिता, पति तथा पुत्र के आधीन रहना पड़ता था तथा वह अर्थोपार्जन नहीं करती थी। यह कार्य पुरूष ही करते थे।

वर्तमान समय में बदलती परिस्थितिओं के साथ सामान्य जनजीवन में प्रचलित संस्कृतियाँ भी बदलती गई। सती प्रथा प्राय: मृत हो गई है लेकिन पर्दा प्रथा आज भी अनेक स्थानों पर देखने को मिलती है। स्त्री

सामाजिक और आर्थिक रूप से भी स्वतंत्र है। वह हर क्षेत्र में पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर कार्य कर रही है।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:

१. प्रतिभा जैन, संगीता शर्मा: भारतीय स्त्री- सांस्कृतिक संदर्भ: पृ.- २२५

२. ऋग्वेद- ५.६१.६

३. ऋग्वेद- ५.६१.७

४. स्त्रिया अशस्यं मनः। उतो अह कुतुम रघुम- ऋग्वेद- ८.३३.१७

५. ऋग्वेद- १०.९५.१५

६. नाट्यशास्त्र- २०.९३

७. मनु.- ३.५६

८. अद्रधो हवा एव आत्मनोयज्जाया। शतपाथ ब्राह्मण- ५.१.६.१०

९. शतपथ ब्राह्मण- १५.१.१.३१

१०. महाभारत, आदिपर्व- ७४.४१

११. महाभारत, शान्तिपर्व- १०८.१७

१२. मध्यमव्यायोग- माता किल मनुष्यार्न देवतानां च दैवतम्।

१३. मध्यमव्यायोग- अकार्यमेतच्च मयाऽद्य कार्यं मातुर्नियोगादपनीय शङ्काम्। १.८

१४. कर्णभारम्- अयं से कालः पुनश्चयातुर्वचनेनवारितः। १.८

१५. विक्रमोर्वशीय- ५.१२

१६. बालचरितम्- अद्य अर्धरात्रेऽस्माकम् कुटुम्बिन्या यशोदा।

१७. प्रतिज्ञायौगन्धरायण- २.८

१८. स्वप्नवासवदत्तम्- १.७

१९. प्रतिमानाटकम्- १.२५, २९

२०. अभिज्ञानशाकुन्तलम्- ४.२२
२१. दूतघटोत्कच- १.१६
२२. पंचरात्रम्
२३. मालविकाग्निमित्रम्- अंक- ५
२४. मृच्छकटिकम्- अंक- १०
२५. मृच्छकटिकम्- ४.१४, ८.३२
२६. मृच्छकटिकम्
२७. प्रतिमा- पृ. ४४, अभि. शाकु. ५.१३
२८. प्रतिज्ञा.- अंक २, अभि. शाकु. – अंक १, मालविका.- अंक २, मृच्छकटिकम्- १.४२,
२९. प्रतिमानाटकम- १.२५
३०. मध्यमव्यायोग- अंक- १
३१. अभिज्ञानशाकुन्तलम्- अंक- ६

नारी शिक्षा एवं स्वामी दयानंद सरस्वती

गोपाल कृष्ण
शोधार्थी, भाषा साहित्य भवन, गुजरात विश्वविद्यालय
एवं डॉ. ईश्वर मेहरा

भूमिका

भारतीय संस्कृति में नारी को 'गृहलक्ष्मी' एवं 'गृहस्वामिनी' के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। वैदिक काल में नारी को विद्या, शास्त्र, धर्म और ज्ञान में समान अधिकार प्राप्त था। परंतु मध्यकालीन समाज में नारी की स्थिति दयनीय हो गई और शिक्षा से उसे वंचित कर दिया गया। समाज में पुनः नारी शिक्षा का प्रचार करने हेतु अनेक समाज सुधारकों ने प्रयास किए जिनमें महर्षि दयानंद सरस्वती का योगदान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा। उन्होंने वैदिक मूल्यों को पुनः स्थापित कर नारी शिक्षा को प्रोत्साहित किया।

महर्षि दयानंद सरस्वती का परिचय

महर्षि दयानंद सरस्वती(1824-1883) एक महान समाज सुधारक, वैदिक विद्वान एवं आर्य समाज के संस्थापक थे। वे वेदों के महान प्रवक्ता थे और उन्होंने समाज में व्याप्त अज्ञान, रूढ़ियों एवं कुरीतियों को समाप्त करने हेतु वेदों का आधार लिया। उनके अनुसार-

"विद्या का उद्देश्य केवल जीविका अर्जन न होकर आत्मोन्नति और समाज का उत्थान है।"[1]

[1] महर्षि दयानंद सरस्वती

उनका मानना था कि समाज में नारी एवं पुरुष दोनों को समान अधिकार प्राप्त होने चाहिए। उन्होंने स्त्रियों के लिए शिक्षा को आवश्यक बताया और उनके लिए विद्यालयों की स्थापना की।

नारी सृष्टि का आधार है, संस्कारों की संवाहक है, करुणा एवं ममत्व की प्रतिमूर्ति है। नारी सदैव मानव इतिहास की प्रधान व प्रमुख पात्र रही है। नारी सर्वदा अपने युग की व सभ्यता एवं संस्कृति का प्रतीक बनकर उभरी है। भारतीय संस्कृति में एक तरफ अर्धनारीश्वर की कल्पना कर पुरुष और नारी की समानता को सिद्ध किया गया है, तो दूसरी तरफ पंचकन्या के रूप में नारी के उत्तम आदर्श स्वरूप को प्रतिपादित किया जाता है।

भारतीय संस्कृति में नारी को सर्वशक्ति संपन्न माना गया है और विद्या, शील, चरित्र, ममत्व, यज्ञ एवं संपत्ति का प्रतीक माना गया है। तथा नारी के कई रूपों का वर्णन मिलता है जैसे-कन्या, माता, गृहिणी, भगिनी आदि प्रत्येक रूप में नारी की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। माता के रूप में उसे शिक्षक से भी अधिक गौरवशाली माना गया है।

शिक्षा धर्म एवं सामाजिक विकास में नारी का बहुत ही बड़ा योगदान था। वह स्वतंत्रता पूर्वक शिक्षा ग्रहण करती थी। निश्चित रूप से नारी शिक्षा किसी भी समाज की उन्नति अथवा अवनति का द्योतक होती है। भारत में जब तक वेद तथा वेदानुकूल ग्रंथों का विशेष प्रचार-प्रसार रहा पुरुष एवं नारी उभयविध मनुष्यों की शिक्षा समान रूप से होती रही। वैदिक काल में न लिंग भेद था न ही वर्णभेद। यदि बालकों का उपनयन व वेदारम्भ संस्कार पूर्वक वेदाध्ययन करना अनिवार्य था तो कन्याओं का भी विधिवत् उपनयन व वेदारम्भ संस्कार होता था और वे भी वेदाध्ययन करती थी।

"ऋषिर्दर्शनात्" वेदमंत्रों तथा सूक्तों का दर्शन करने के कारण विश्वामित्र, वामदेव, मधुच्छन्दा, मेधातिथि आदि ऋषि मंत्रद्रष्टा कहलाए तो घोषा, अपाला, विश्वारा, रोमशा, सर्पराज्ञी, सूर्यासावित्री, लोपामुद्रा आदि

ऋषिकाएं भी विविध मंत्रों तथा सूक्तों का दर्शन करके मंत्र द्रष्टा कहलाई। यदि अग्निहोत्र या यज्ञ करने का अधिकार पुरुषों को था तो **"अयज्ञो वा एष योऽपत्नीकः" "स्त्री चाविशेषात्"** स्त्री भी यज्ञ करने के लिए पूर्ण अधिकृत थी।

यदि यज्ञादि कर्मकाण्ड करने का अधिकार पुरुषों को प्राप्त था तो **"शुद्धाः पूताः योषितो यज्ञिया इमाः"**

"स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ" स्त्रियों को भी होता, अध्वर्यु, उद्गाता यहां तक की ब्रह्मा बनने का भी पूर्ण अधिकार प्राप्त था, जो कि यज्ञ में सर्वोपरि होता है। **"अथ कैन ब्रह्मत्वं कक्रयते इति त्रय्या विद्ययेति"** त्रयी विद्याओं के प्रतिपादक वेदों का पूर्ण ज्ञाता ब्रह्मनिष्ठ ही ब्रह्मापद की योग्यता रखता है। उस योग्यता से महिलाएं पूर्णतया सुभूषित होती थी ।

उत्तर वैदिक काल में नारी को शिक्षा प्राप्त करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त था। बौद्ध एवं जैन साहित्य से भी विदुषी नारियों का उल्लेख मिलता है। स्मृतिकाल में प्रचलित सामाजिक कुरीतियों से नारी-शिक्षा का प्रसार प्रायः अवरूद्ध सा हो गया था। पूर्व मध्य युग तक आकर नारी-शिक्षा एकमात्र उच्च वर्ग तक ही सीमित रह गई थी।

आचार्य ऐतश से लेकर आचार्य शंकर प्रभृति लब्ध प्रतिष्ठित आचार्यों की और उनके अनुयायियों की अनेक प्रकार की कुत्सित अवधारणाएं थी, जो कि इस प्रकार है-

"स्त्री शूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुति गोचरा।
इति भारतमाख्यानं मुनिना कृपया कृतम्।।"
" स्त्रीशूद्रौ नाधीयातामिति श्रुतेः"
"दुहितुः पाण्डित्यं गृहतन्त्रविषयमेव। वेदेऽनधिकारात्।"
" स्त्रीशूद्रयोस्तु सत्यामपि ज्ञानापेक्षायाम् उपनयनाभावेन अध्ययनाराहित्याद् वेदेऽनधिकारः प्रतिबद्धः"
धर्मब्रज्ञानं तु पुराणादिमुखेन उत्पद्यते।
अमन्त्रिका तु कार्येयं स्त्रीणामावृदशेषतः।

संस्कारार्थ शरीरस्य यथाकालं यथाक्रमम्।।
वैवाहिको विधिः स्त्रीणां संस्कारों वैदिकः स्मृतः।
पतिसेवा गुरौवासः गृहार्थोऽग्नि परिक्रिया।।
मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि
यान्ति परां गतिम्।।

उपर्युक्त उद्धरणों से स्पष्ट है की नारियों से द्वेष रखने वाले संकुचित विचार धारा वाले हृदय इन्हीं आचार्यों के कारण नारियों को शिक्षा से वंचित रखा गया और इन्हीं के पद चिन्हों पर चलते हुए आगे के धर्माचार्यों ने भी धर्म के नाम पर सतीप्रथा, देवदास प्रथा, बाल विवाह, बहु विवाह, आदि कुप्रथाओं को शास्त्रीय आवरण पहनाया गया। इसी समय निर्वाह पाराशरी शीघ्रबोध, निर्णयसिंधु, जैसे ग्रन्थों का आविर्भाव हुआ और गीता, मनुस्मृति आदि ग्रन्थों में प्रक्षेप भी किए गए। परिणाम स्वरुप संस्कृत वाङ्मय के साथ-साथ हिंदी, अवधी आदि भाषाओं के वाङ्मय भी नारी संबंधी इन कलुषित विचारों से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके।

वैदिक काल में नारी शिक्षा

वैदिक काल में नारी शिक्षा का अत्यधिक महत्व था। स्त्रियों को वेदों का अध्ययन करने की स्वतंत्रता थी। अनेक ऋषिकाएँ, विदुषियाँ एवं आचार्याएँ वेद-वेदांगों में पारंगत थीं। ऋग्वेद में कहा गया है-

समानो मंत्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।[1]

अर्थात् स्त्री और पुरुष दोनों को समान रूप से शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए।

महर्षि दयानंद ने इसी वैदिक परंपरा को पुनर्जीवित करने हेतु स्त्री शिक्षा पर विशेष बल दिया।

महर्षि दयानंद सरस्वती का नारी शिक्षा में योगदान

---

[1] ऋग्वेद (10.85.46)

1. वैदिक सिद्धांतों पर आधारित शिक्षा प्रणाली

महर्षि दयानंद सरस्वती ने स्त्री शिक्षा को वेदों के अनुरूप बताया और कहा कि-

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।[1]

अर्थात् जहां स्त्रियों का सम्मान होता है, वहां देवता निवास करते हैं। उनकी शिक्षा प्रणाली में निम्नलिखित विशेषताएँ थीं-

- **संस्कृत एवं वेदाध्ययन का प्रावधान**
- **नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा**
- **स्त्रियों को आत्मरक्षा एवं स्वतंत्रता का अधिकार**
- **विज्ञान, गणित, व्याकरण एवं अन्य विषयों का अध्ययन**

2. गुरुकुलों एवं कन्या पाठशालाओं की स्थापना

महर्षि दयानंद ने स्त्रियों के लिए विशेष गुरुकुलों एवं कन्या पाठशालाओं की स्थापना की। उन्होंने कहा-

"न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति"[2]

इसका वास्तविक अर्थ है कि स्त्री को उचित शिक्षा एवं सुरक्षा मिलनी चाहिए ताकि वह आत्मनिर्भर बन सके। आर्य समाज द्वारा अनेक कन्या विद्यालय स्थापित किए गए, जैसे-

1. कन्या गुरुकुल चौटीपूरा 2. कन्या गुरुकुल शिवगंज, राज., 3. कन्या गुरुकुल, देहरादून, 4. महिला महाविद्यालय, हरिद्वार आदि अनेक कन्या गुरुकुल

3. विधवा शिक्षा एवं पुनर्विवाह का समर्थन

महर्षि दयानंद ने विधवाओं की शिक्षा पर विशेष बल दिया। उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया और समाज को यह समझाने का

---

[1] (मनुस्मृति 3.56)

[2] (मनुस्मृति 9.3)

प्रयास किया कि विधवा भी शिक्षा प्राप्त कर समाज में योगदान दे सकती है।

4. पर्दा प्रथा एवं बाल विवाह के विरोधी

महर्षि दयानंद ने पर्दा प्रथा और बाल विवाह का खुलकर विरोध किया। उन्होंने कहा- **"विद्या सर्वेषां भूषणम्"** अर्थात् शिक्षा सभी के लिए आभूषण के समान है। बाल विवाह स्त्री शिक्षा के मार्ग में बाधा थी इसलिए उन्होंने इसे समाप्त करने का प्रयास किया।

5. स्त्री स्वावलंबन एवं आत्मरक्षा पर बल

महर्षि दयानंद ने स्त्रियों को आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा दी। उन्होंने स्त्रियों को शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक रूप से सशक्त बनने का संदेश दिया।

महर्षि दयानंद की शिक्षाएँ एवं आधुनिक युग में नारी शिक्षा

महर्षि दयानंद की नारी शिक्षा संबंधी विचारधारा आज भी प्रासंगिक है। वर्तमान समय में उनके सिद्धांतों के आधार पर अनेक संस्थाएँ कार्य कर रही हैं। आज-

बालिकाओं की शिक्षा को अनिवार्य किया गया है। महिला सशक्तिकरण हेतु अनेक योजनाएँ लागू की गई हैं। स्त्रियाँ विभिन्न क्षेत्रों में उच्च पदों पर कार्यरत हैं।

फिर भी, कुछ स्थानों पर स्त्री शिक्षा में अभी भी बाधाएँ हैं । यदि महर्षि दयानंद की विचारधारा को पूर्ण रूप से लागू किया जाए, तो समाज में नारी शिक्षा को संपूर्णता मिलेगी।

संत कवि तुलसीदास, कबीर, सूरदास सभी ने इसी दृष्टि से नारी का वर्णन किया है। इन संत कवियों के पश्चात हिंदी साहित्य में रीतिकाल का उदय हुआ जो की नारी को उपभोग की सामग्री मात्र मानता था, तत्पश्चात् घोर यथार्थवादी साहित्यकार हुए इन्होंने भी नारी को अश्लील रूप में ही देखा। संस्कृत वाङ्मय जो की अन्य भाषाओं का उद्गम है उसमें भी

सतीप्रथा को पंमण्डित करने हेतु क्या-क्या नहीं कहा गया ? प्रस्तुत है एक उदाहरण-

आर्ताऽर्ते मोदिता हृष्टे प्रोषिते मलिना कृशा,
मृते म्रियते पत्यौ सा स्त्री ज्ञेया पतिव्रता।
नारी भर्तारमासाद्य यावन्न दहते तनूम्,
तावन्नमुच्यते साहि स्त्रीशरीरात् कथञ्चनः।।

अर्थात् जो नारी स्वामी के दुःख में दुखिता, हर्ष में हर्षिता, प्रवास में रहने पर मलिना अर्थात् श्रृंगार विहीन कृश शरीरवाली होकर रहती है एवं स्वामी के मरने पर मर जाती है, उसे पतिव्रता कहते हैं। विस्तार से कहा जाए तो जब तक नारी अपनी भिन्न सत्ता को पति की चिता पर भस्म नहीं कर देती तब तक स्त्री शरीर से छूटकर मोक्ष को प्राप्त नहीं होती।

बाल्यावस्था में कन्या के विवाह का औचित्य दिखाने के लिए पाराशरी शीघ्रबोधादि ग्रन्थों में लिखा गया है-

अष्टवर्षा भवेद् गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेत्कन्या तत् उर्ध्वं रजस्वला।।
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्।।

इन सब ग्रंथों के दुष्परिणामस्वरूप विधवा विवाह का निषेध, बाल- विवाह, सती प्रथा आदि कुप्रथाएं समाज का अंग ही बन गई थी। यहां तक की माता के गर्भ से ही विधवा लड़कियों जन्म लेने लग गई। पुराणकथित सबसे बीभत्सतम नरक का नाम कुम्भीपाक है, उससे भी अधिक यंत्रणाओं से भरा इन विधवाओं का जीवन था। क्रिया की प्रतिक्रिया एक शाश्वत सत्य है किंतु जब एक पक्ष को दूसरे पक्ष के द्वारा कुचल ही दिया जाए या श्वास लेने के उसके सारे द्वार ही बंद कर दिये जाए तो प्रतिक्रिया की सारी संभावनाएं समाप्त हो जाती है। इस प्रकार नारियों की पशुवत् दयनीय दशा थी।

सहस्त्राब्दियों के बाद महर्षि दयानंद सरस्वती पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने स्त्रियों के लिए वैदिक विचार प्रस्तुत किया **"ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पतिम्"** इस वेदमंत्र के आधार पर कन्याओं को ब्रह्मचर्य पूर्वक विद्या अध्ययन करने का अधिकार दिया। स्वामी जी ने गंभीरता पूर्वक वेदों का अध्ययन किया था जहां लिखा है- **"स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ"** स्त्री ही जीवन रूपी महायज्ञ की ब्रह्मा होने योग्य है। महर्षि मनु ने तो माँ को दक्षिणाग्नि की उपाधि से विभूषित किया है- **पिता वै गार्हपत्योऽग्निर्माताऽग्निर्दक्षिणः स्मृतः"** बालक में दक्षता माता ही उत्पन्न कर सकती है। पिता तो केवल लोक व्यवहार ही सीखाता है। इसलिए महर्षि दयानंद सरस्वती ने शपथ ब्राह्मण को उद्धृत् करते हुए कहते है-

"प्रशस्ता धार्मिकी विदुषी माता विद्यते यस्य स मातृभाषा"[1]

जो माता विदुषी होती है, विद्या व विज्ञान से संपूर्णतया युक्त होती है वही वास्तव में धर्माधर्म के सत्य स्वरूप को समझ कर अपने मन, बुद्धि, शरीर एवं हृदय को धर्माचरण में नियोजित कर सकती है, और अपनी संतान का निर्माण करके प्रशस्त अर्थात् प्रशंसनीय पद प्राप्त करती है। यदि माता का इस प्रकार का निर्माण नहीं होगा तो उत्कृष्ट संतान का निर्माण संभव नहीं, इससे पूरी मानवता ही रसातल को चली जाएगी। यह विचार कर स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने द्वारा लिखे गए सत्यार्थ प्रकाश में कन्याओं के लिए विद्या अध्ययन और इसकी सफलता के लिए योगाभ्यास का विधान किया इस प्रकार स्वामी जी ने अपनी अप्रतिम आर्ष प्रज्ञा के बल पर सहस्त्राब्दियों के पश्चात् नारी शिक्षा हेतु जो वैदिक विचार प्रस्तुत किये हैं, वे अत्यधिक लाभाकारी सिद्ध हुए, परिणामस्वरूप भारतीय नारियों में शिक्षा के प्रति जागरूकता आई। अंत में प्रबुद्ध प्रशस्त नारियों द्वारा निर्मित समग्र जागरूक मानवों की ओर से स्वामी जी के श्रीचरणों में शत-शत वंदन-

---

[1] शतपथ ब्राह्मण

"स्त्रियो वा शूद्रो वा निगमपठने नो ह्यधिकृताः,
इति प्राचुर्येऽज्ञा जडतमधियः स्वार्थनिरताः।
तदुक्ति प्रत्युक्त्यै यतिवरः! यथेमाम् इति यजुः।
श्रुतेः सा कल्याणी परमपितृवाणी निगदिता।।"
"स्वकन्याभ्यः शिक्षामुपनयनदीक्षामथ जनाः,
प्रयच्छति स्वैरं वरनिगमसिद्धान्त शरणाः।
विवाहं तासां ते विदधति सुयोग्यायुषि शुभम्,
नृदास्यं प्राप्तायां महदुपकृतं योषिति मुने।।"

निष्कर्षः-

स्पष्टतः हम यह कह सकते हैं कि वैदिककाल में नारी और पुरुष दोनों को ही विभिन्न प्रकार के धार्मिक संस्कारों से संस्कृत होना परम आवश्यक माना जाता था। इसी प्रकार नारी की शिक्षा के प्रति उदार दृष्टिकोण होने के कारण उनका उपवीतसंस्कार से संस्कारित होना आवश्यक ही नहीं, अपितु अनिवार्य भी था। कन्याएं उपवीत धारण करके विद्याध्ययन एवं वेदाध्ययन के लिए गुरुकुलों में निवास करती थी। बौद्धिक क्षेत्र में नारी की अति उत्कृष्ट स्थिति अनेक साक्ष्यों एवं प्रमाणों द्वारा प्रमाणित होती है। ऋषियों की भांति ऋषिकाएं भी ऋचाओं का साक्षात्कार करती हुई दृष्टिगत होती है, जो इस बात को पुष्ट करती है की नारियों को वेदमंत्रों के अध्ययन एवं सृजन से विमुख नहीं किया जाता था। उस काल में नारी जीवन पर्यंत नैष्ठिक जीवन व्यतीत करती हुई ब्रह्मवादिनी रहने के लिए पूर्ण स्वतंत्र थी। उस समय में नारियों के दो भेद प्राप्त होते हैं - ब्रह्मवादिनी और सद्योवाह।

ब्रह्मवादिनी नारियां- जो वैदिक ऋचाओं के अध्ययन के साथ-साथ मंत्र दर्शन, ऋचाओं का सृजन, काव्यों की रचना, और दर्शन जैसे गूढ विषयों के अध्ययन के लिए अपने संपूर्ण जीवन को समर्पित किया करती थी, इसी प्रकार सद्योवाह नारियां वे होती थी, जो केवल ब्रह्मचर्याश्रम

पर्यंत विद्यार्जन करने तथा वेदाध्ययन करने के लिए अधिकृत थी ताकि विवाह के उपरांत वे विभिन्न प्रकार के धार्मिक संस्कार संपन्न करके अपना दायित्व पूर्ण कर सकें।

किंतु कालचक्र की गति से नारियों की शिक्षा धीरे-धीरे कम होती गई और नारियों को विद्या अध्ययन एवं वेद पढ़ने से पूर्णतः वंचित किया जाने लगा तब भारत में एक महान् दार्शनिक एवं तपस्वी संन्यासी का उद्भव हुआ और वह थे स्वामी दयानंद सरस्वती जिन्होंने पुनः नारी शिक्षा का पूर्णतया समर्थन करते हुए नारी को जगदंबा के उच्च सिंहासन पर बिठाने और प्राचीनकाल की स्थिति के अनुसार ही नारी को वेदाध्ययन एवं ज्ञानार्जन करने हेतु गुरुकुलों के निर्माण की वकालत की ।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची:

1. सी.एम. सरस्वती, भारतीय राजनीतिक चिंतन, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ

2. ओमप्रकाश, राजनीतिक चिंतन की रूपरेखा, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा

3. ओम प्रकाश गाबा, भारतीय राजनीतिक विचारक, मयूर पेपरबैक्स, नोएडा

4. स्वामी दयानन्द, सत्यार्थ प्रकाश, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

5. धरमचंद जैन कैलाश दरोगा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतक, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर

6. रामरतन, रुचि त्यागी, भारतीय राजनीतिक चिंतन, मयूर पेपर बैक्स, नोएडा

7. पुष्पा बिरयानी व राजेश्वरी सक्सेना, भारतीय राजनीतिक विचारक, मध्यप्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, भोपाल

8. श्रीमद दयानंद प्रकाश, वैदिक पुस्तकालय, अजमेर

संस्कृत साहित्य में वर्णित विदुषियां

वैशाली शर्मा
शोधछात्रा, साहित्य विभाग
जगद्गुरु रामानंदाचार्य राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय, जयपुर

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्र एतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्रफला क्रियाः।।

(मनु. 3/56)

जहां स्त्रियों की पूजा की जाती है उनका सम्मान किया जाता है वहां देवता लोग निवास करते है जहां पूजा ना करके अपमानित किया जाता है मर्यादा के अनुरूप स्थान नही दिया जाता है वहां सारी क्रियाए निष्फल हो जाती है।

महर्षि मनु का यह श्लोक महिला सशक्तिकरण का बीजमंत्र प्रतीत होता है। मानव जीवन का रथ एक चक्र से नही चल सकता। समुचित गति के लिए दोनों चक्रो का विशिष्ट महत्व है। गार्हस्थ्य जीवन की अपेक्षा होती है सहयोग और सदभावना की। स्त्री केवल पत्नि नही होती, अपितु वह योग्य मित्र, परामर्शदात्री, सचिव, सहायिका भी होती है। भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति सदैव एक समान न होकर अत्याधिक अरोह-अवरोह से युक्त दिखाई देती है। विश्व में प्राचीनतम ग्रंथ ऋग्वेद के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि तात्कालीन समाज में महिलाएँ अपनी सशक्त भूमिकाओं का निर्वाह करती थी। महिलाएं वेदाध्ययन ही नहीं करती अपितु मन्त्रों की दृष्टा भी थी। ऋग्वेद की अनेक सूक्तो की दर्शनकर्त्री स्त्रियां थी। ब्रहम्बादनी "घोषा" रचित ऋग्वेद के दशम मण्डल के सूक्तों (39वां एवं 40वां) को कौन नजर अंदाज कर सकता है। स्पष्ट है कि स्त्रियाँ शिक्षित होती थी। लोपामुद्रा, सूर्या, विश्ववारा, अपाला ऋषिकाओं को कौन भूल सकता है। इनके द्वारा रचित सूक्त स्मरणीय एवं

पठनीय बने हुए है। बृहस्पति की पत्नि जूहू विवस्वान की पुत्री यमी, ऋषिका श्रद्धा, सर्पराज्ञी केवल मंत्रो की रचयित्री ही नहीं अपितु कवयित्री भी थी। महिलाएं कविताएं करती, गायन करती तथा नृत्यकला को भी जानती थी। भारतीय मसाज मे नारी के तीन रूप दृष्टि गोचर होते है-

1. **कन्या रूप**
2. **भार्या रूप**
3. **मातृ रूप**

संस्कृत साहित्य में महाकवि कालिदास द्वारा कुमारसंभवम् महाकाव्य में पार्वती का चित्रण नारी के रूप में किया गया है आर्य संस्कृति के प्रतिनिधि कवि कालिदास माने जाते है आर्य कन्या के आदर्श को पार्वती के रूप में उल्लेखित करते है पार्वती आर्य कन्या के लिए प्रतिमान बनी है और इसके लिए आर्य कन्या को अदम्य अजेय तथा जितेंद्रिय बनाने का मुख्य साधन तपस्या ही है कुमारसंभवम् के पंचम सर्ग में भग्न मनोरथा पार्वती शिव को पति के रूप में प्राप्त करने के लिए जगत के सभी भौतिक सुख सुविधाओं को छोड़कर कठोर तपस्या की साधना में जुट गई पार्वती की तपस्या दिन-प्रतिदिन इतनी कठोर होती जा रही थी की तपोवन में रहने वाले मुनियों की तपस्या भी प्रभावहीन प्रतीत होने लगी।

इयेष सा कर्तुमबन्ध्यरूपतां
समाधिमास्थाय तपोभिरात्मनः।।
अवाप्यते कथामन्यथा इयं
तथा विधं प्रेम पतिष्च तादृषः।।

(कुमार सम्भव 5/2)

पार्वती की तपस्या का फल था उत्कट कोटी का अलौकिक प्रेम और तादृश पति तथा मृत्यु को जीतने वाला पति, जगत के समस्त पति मृत्यु के क्रीत दास है केवल एक ही व्यक्ति मृत्यु को जीतने वाला है और वह है मृत्युंजय महादेव। आज तक कोई अन्य कन्या मृत्युंजय महादेव को पति के रूप में वरण करने में समर्थ नहीं हो पायी जो कार्य पार्वती ने

तपस्या के द्वारा सिद्ध करके दिखाया है। तथाविध शब्द में गंभीर अर्थ की अभिव्यंजना हुई है भगवान शंकर ने पार्वती को उचित आदर-सम्मान दिया है। पत्नी को जितना उच्च्य स्थान भगवान शंकर ने दिया है उतना किसी अन्य देवता ने नहीं दिया है। कालिदास के तात्कालीन समाज में स्त्रियों को स्वतंत्रता प्राप्त थी कि वें अपना वर स्वंय वरण करती थी। अभिज्ञान शाकुन्तलम् में शकुन्तला, कुमार संभवम् में पार्वती और रघुवंश महाकाव्य में इन्दुमति का विवाह पूर्णतः उनकी इच्छा से हुआ है। विधवा स्त्री की उस समाज मे स्थिति का ज्ञान रघुवंश के उन्नीसवें सर्ग में होता है जब राजा अग्निवर्ण की मृत्यु हो जाती है तब उनकी विधवा रानी का राज्य मंत्रियों के द्वारा सम्मान एवं अधिकारी के साथ विधिवत राज्याभिषेक किया जाता है।

मालविकाग्निमित्रम में "परिव्राजिका" का उल्लेख प्राप्त होता है। जो विधवा थी लेकिन विदुषी इतनी थी कि विद्वानों की योग्यता का परीक्षण भी करती थी।

महाकवि कालिदास अभिज्ञान शाकुन्तलम सप्तम सर्ग में स्वंय कहते है कि सहधर्मिणी का परित्याग पाप होता है-

कस्तस्य धर्मदार परित्यागिनो नाम संकीर्तयितुं चिन्तयिष्यति।

कालिदास ने सीता का चरित्र-चित्रण जिस वाणी से किया है वह आज भी मानव चित्त् को मोहित कर देने वाली है।

आदर्श भाव की प्रतिनिधि सीता भारतीय नारीयों के लिए आज भी आदर्श भाव की प्रतिनिधि है। सीता मूर्ति में साक्षात भारत माता मानी जाती है भारतीय नारीयों से सीता के चरण चिन्ह का अनुसरण कराकर अपनी उन्नति करनी होगी।

स्वामी विवेकानन्द कहते है "मैं दिव्य दृष्टी से देख रहा हूँ कि यदि भारत की नारीयां देशी पोषाक पहने भारतीय ऋषियों की मुख से निकले हुए धर्म का प्रसार करे तो एक एसी बड़ी तरंग उठेगी जो सारे पश्चिमी संसार को डुबा देगी"।

भारत में स्त्री जीवन का आदर्श मातृत्व है स्त्री शब्द के उच्चारण मात्र से भारतीयों के मन में मातृत्व भाव उत्पन्न होता है। जैसा कि हितोपदेश में स्त्री को माँ के रूप में देखने का उपदेश दिया गया है।

मातृवत पर दारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्
आत्मवत् सर्वभूर्तषु यः पश्चति स पण्डितः।।

अर्थात् जो पर स्त्रियों को माता के समान परद्रव्य करे मिट्टी के ढेले के समान तथा सब भूतप्राणियों को अपने ही समान देखता है और वही पण्डित है। पश्चिम देशों में भारतीय मातृ संकल्पना के विपरीत विचार धारा है वहाँ भी स्त्रीयों का मातृत्व न होकर पत्नीत्व तक ही सीमित है। किन्तु भारत में समस्त स्त्रित्व को मातृत्व रूप में केन्द्रीभूत माना जाता है पाश्चात्य संस्कृति में गृह की स्वामिनी शासिका पत्नी है वहीं भारतीय गृहों में स्वामिनी और शासिका माता है पाश्चात्य संस्कृति में माता को वह गौरव स्थापित नहीं है जो भारतीय संस्कृति में स्थापित है विश्व में माँ से अधिक पवित्र और निर्मल दूसरा कौन सा नाम है। माँ तो त्याग, पवित्रता, दिव्यता ममता आदि गुणों का प्रतीक रही है।

पश्चिम देशों में भारतीय मात्र संकल्पना के विपरीत विचारा धारा है वहां पर स्त्री का आदर्श मातृत्व न होकर पत्नी तक सीमित है किंन्तु भारत में समस्त स्थिति को मातृत्व के रूप में केन्द्रीय भूत माना जाता है।

प्राचीन काल में गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा आदि विदुषी महिलाएं हुई है। जिन्होने किसी भेदभाव के बिना पुरूषो के समान ही शिक्षा प्राप्त की थी। वैदिक मंत्रों की रचना तथा शास्त्रार्थ में समान रूप से भाग लेने का आख्यान उपलब्ध होता है।

1. **सरमा पणि संवाद ऋग्वेद**
2. **याज्ञवल्क्य मैत्रेयी संवाद**
3. **पुरूरवा उर्वषी संवाद**
4. **यम यमी संवाद**
5. **विश्वामित्र नदी संवाद**

देव माता अदिति चारो वेंदों की प्रकांड विदुषी थी। यह दक्ष प्रजापति के कन्या एवं महर्षि कश्यप की पत्नी थी उन्होने अपने पुत्र इंद्र को वेदों एवं शास्त्रों की इतनी अच्छी शिक्षा दी थी कि उसके ज्ञान की तुलना किसी से संभव नहीं थी सही कारण है कि इंद्र अपने ज्ञान के बल पर तीनों लोंको का अधिपती बना अदिति को अजर अमर माना जाता है।

देव साम्राज्ञी सची इंद्र की पत्नी थी वेदों की प्रकांड विद्वान थी ऋग्वेद के कई सूक्तों पर सची ने अनुसंधान किया। सची देवी पतिव्रता स्त्रीयों में श्रेष्ठ मानी जाती है सची को इंद्राणी भी कहा जाता है यह विदुषी के साथ-साथ महान नीतिवान थी।

सती सतरूपा स्वयंभू मनु की पत्नी थी वे चारों वेदों की प्रकांड विदुषी थी जल प्रलय के बाद मनु और शतरूपा से ही दोबारा सृष्टि का आरंभ हुआ यह योग शास्त्र की भी प्रकांड विद्वान थी।

शाकल्य देवी महाराज अश्वपति की पत्नी थी एकबार अश्वपति महाराज ने ऋषियों से कहा कि मैं राष्ट्र में कन्याओं का भी निर्वाचन चाहता हूँ देश में ऐसी कौन महान वेंदों की विदुषी है जो देव कन्याओं को वेंदों की शिक्षा प्रदान करें।

ब्रहमवादिनी विश्वारा वेदों पर अनुसंधान करने वाली महान विदुषी थी। ऋग्वेद के पांचवे मंडल के द्वितीय अनुवाक के 28वें सूक्त का सरल रूपांतरण इन्होने ही किया था। अत्री महर्षि वंश में पैदा होने वाली इस विदुषी ने वेद ज्ञान के बल पर ऋषि पद प्राप्त किया था।

गार्गी जनक की सभा में उपस्थित विद्वानों में से एक थी उनको वेदों का अच्छा ज्ञान था। उनके और महर्षि याज्ञवल्क्य के बीच हुए शास्त्रार्थ के प्रसंग से सिद्ध होता है कि वह एक प्रभावशाली व्यक्तित्व की स्वामिनी थी। गार्गी के प्रश्न आसमान से ऊँचा और पृथ्वी से नीचे क्या है? ने सभा में उपस्थित सभी लोगों को सक्ते में डाल दिया था।

मैत्रेयी को भारतीय विदुषियों का प्रतीक माना जाता है वह एक वैदिक दार्शनिक थी उनको दर्शन में निपुणता प्राप्त थी।

लोपामुद्रा वैदिक काल की एक दार्शनिक थी यह महर्षि अगस्त्य की पत्नी थी। लोपामुद्रा पारिवारिक जीवन का महत्व समझाने से लेकर ललित सहस्त्रनाम के प्रचार-प्रसार और महाभारत में लोपामुद्रा का नाम आता है।

पोलोमी शची इंद्राणी राजा पोलम की पुत्री और इंन्द्र की पत्नी शचि इंद्र के दरबार में मौजूद सात मंत्रिकाओं में से एक थी।

घोषा ऋग्वेद के दसवें मण्डल के दो सूक्त 39 और 40 में कुल 14,14 पद्य है। घोषा को वैदिक विज्ञान जैसे मधु विद्या का भी ज्ञान था। यह उसने अश्वनी पुत्रों से सीखी थी।

अपाला भी अत्रि मुनि के वंश में उत्पन्न हुई। अपाला ने आयुर्वेद पर अनुसंधान किया था सोम रस की खोज इन्होने ही की थी।

विदुषी भामती वाचस्पति मिश्र की पत्नी थी यह वेदों की प्रकांड विदुषी थी।

विदुषी विद्योत्तमा का भी संस्कृत साहित्य में महत्वपूर्ण उल्लेख है। इन्होने एक मुर्ख से विवाह करके उसे पण्डित बना दिया था। जो संस्कृत साहित्य के प्रसिद्ध कवि और लेखक है जिनके नाम से कोई अछूता नहीं है और इन्होने संस्कृत सहित्य को अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है जिनकी सात रचनाएं। ये हमारी संस्कृत साहित्य में बहुत अधिक ख्याति प्राप्त है जिनमें अभिज्ञानशाकुंतलम् का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ है।

महाकवि भवभूति ने यदि राम को एक आदर्श राजा के रूप में वर्णित किया है। तो माता-सीता को एक आदर्श सती स्त्री, तपस्विनी, कुशल बहु आदि के रूप में चित्रित किया है।

दाम्पत्य जीवन का जितना स्वाभाविक और मार्मिक वर्णन भवभूति ने किया है उतना अन्यत्र दुर्लभ है। दाम्पत्य भाव दु:ख-सुख में एक रूप रहता है जीवन की सभी अवस्थाओं में व्याप्त रहता है इसमें ह्दय को विश्राम मिलता है। वृद्धावस्था इसके रस को हर नहीं सकती है। यह

विवाह से मृत्यु तक परिपक्व प्रेमरूप में रहता है। अतएव इसकी कामना की जाती है।

भवभूति कहते है- प्रेम हो और फिर वह किसी कारण पर आश्रित हो, ये दोनों बातें एक दूसरे के सर्वथा विरूद्ध है प्रेम तत्त्व एक दुरूह तत्त्व है जिसे यथार्थः जानना उतना कठिन नहीं है जितना उसका आचरण में लाना। गृहस्थ जीवन में प्रेम तत्त्व की साधना सिखलाई जाती है महाकवि भवभूति ने इसी तत्त्व की सुन्दर व्याख्या की है।

अद्वैतं सुखदुःखयोरनुणुa सर्वास्वस्थासु यद
विश्रामो ह्दयस्य यत्र जरसा यस्मिन्नहार्यो रसः।
कालेनावरणात्ययात् परिणते यत्स्नेहसारे स्थितं
भद्रं प्रेम सुमानुषस्य कथम्येकं हि तत् प्राप्यते।।

¼उत्तररामचरितम्½

भवभूति कहते है प्रेम का रहस्य तो केवल ह्दय ही जानता है-

ह्दयं त्वेयं जानाति प्रीतियोगं परस्परम्।

संस्कृत अलंकार में साहित्य में तीन प्रकार के शब्द माने गये है-

1. **प्रभुसम्मित शब्द**
2. **सुह्रत सम्मित शब्द**
3. **कान्ता सम्मित शब्द**

काव्य के लक्षण में आचार्य कहते है- कि कान्ता सम्मित शब्द वे होते है- जो प्रियतमा के कमनीय वचन के समान जो शब्द रसमय होने से शीघ्र ही ह्दय पर प्रभाव डालते है और सह्रदय व्यक्ति मानने के लिये बाध्य हो जाते है। जैसे- रस प्रधान काव्य।

महर्षि व्यास के महाकाव्य महाभारत में नारियों का चित्रण हुआ है लेकिन रामायण कालीन संस्कृत के समान समुन्नत एवं सुसंस्कृत नहीं प्रतीत होती है। धार्मिक विश्वास और नैतिक नियमो में भी परिवर्तन हो गया था। रावण सीता का बालात अपहरण करता है। पर जब हनुमान सीता को राम के पास अपनी पीठ पर बैठाकर ले जाना चाहते है तब सीता

पर पुरूष स्पर्श के भय से यह प्रस्ताव अस्वीकार कर देती है रावण वध के अनन्तर सीता को अपनी पवित्रता का प्रमाण देने के लिए अग्नि परीक्षा देनी पड़ी है। किन्तु काम्यक वन में जब जयद्रथ द्रोपदी का बलात् अपहरण करता है तब उसके पतिगण द्रोपदी के चरित्र के सम्बन्ध में कुछ भी सन्देह नहीं करते। इससे प्रतीत होता है कि राम के समय पतिव्रता की भावना अधिक कठोर थी तथा नैतिक आदर्श अति उच्च था।

इस प्रकार हम देखते है कि महर्षि वाल्मीकि, कालिदास, व्यास, महाकवि भवभूति ने अपनी रचनाओं में नारी पक्षों के प्रति आदर भाव प्रकट किया है- सीता, पार्वती, गौतमी, धारणी, सक्षिणी, द्रोपदी आदि स्त्रियों का चरित्र वर्तमान में भी अनुकरणीय है और युगो-युगो तक इन स्त्रियों का चरित्र नारी समाज के लिए आदर्श बना रहेगा।

विदुषी विद्योत्तमा से परास्त होकर पण्डितों ने एक मूर्ख को मौनी गुरू बताकर संकेत से शास्त्रार्थ की चुनौती दी थी। पण्डितों ने दो अंगुली और मुक्का के अलग-अलग अर्थ बताकर विद्योत्तमा को परास्त घोषित करके मूर्ख से विवाह करने को विवश कर दिया। विद्योत्तमा ने पति से उष्ट्र को उसट सुनकर उसे रात में ही घर से भगाकर दरवाजा बंद कर दिया। "अनावृतकपाटं द्वारं देहि।" कुछ वर्ष बाद एक घनघोर रात्रि में पति ने पुकारा।

विद्योत्तमा ने दरवाजा खोलकर कहा "अस्ति कश्चित वाग विशेष। "पत्नी के तीन शब्दों पर अस्ति से कुमारसंभव महाकाव्य, कश्चित से मेघदूत खण्ड काव्य और वाक्विशेषः से रघुवंश महाकाव्य की रचना पति महोदय ने कर डाली। इन तीनों कालजयी ग्रंथ के रचनाकार थे। वहीं अतीत के मूर्ख, विश्व के संस्कृत साहित्यकार अमर महाकवि कालिदास थे।

इस प्रकार हमारे संस्कृत साहित्य में नारियों का विशेष उल्लेख रहा है और नारियों ने अपना विशेष योगदान भी संस्कृत साहित्य को दिया है इन नारियों के योगदान से हमारे संस्कृत साहित्य जगत को तथा हमारे समाज को बहुत अधिक सहयोग प्राप्त हुआ है। ये हमारे सामाजिक जीवन

के लिए भी बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है संस्कृत सहित्य में नारियां बहुत अनगिनत रूप से विद्यमान है जो हमें हर क्षेत्र में उन्नत तथा प्रगतिशील होने का संदेश देती है ।

आधुनिक नारी: वैदिक संदर्भ

डॉ. (श्रीमती) शैल वर्मा
सेवा निवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत

बंदनीय है भारत की नारी, जिसने अशिक्षा के गहन अंधकार से, कुरीतियों, कुप्रथाओं के भंवर से स्वयं को निकालने का दुस्तर कार्य किया। उसके दृढ़ संकल्प, अदम्य साहस, ज्ञान-पिपासा तथा निरंतर आगे बढ़ने का सातत्य उसके लिये सहायक सिद्ध हुआ। स्वस्थ वातावरण में जीने और विश्व में नया कीर्तिमान स्थापित करने हेतु उसने अपनी सुप्त चेतना पुनः जागृत की। वैदिक काल में नारी निर्भीक, ज्ञानदायिनी, ऐश्वर्य सम्पन्ना तथा पूरे समाज को नवोन्मेषशालिनी ऊर्जा से सम्पन्न थी आज पुनः उसे ऊर्जावान होकर समाज में नयी चेतना का संचार करने की आवश्यकता है।

जब हम हजारो वर्ष पूर्व वैदिक काल की बात करते हैं, तो उसका मतलब ये नहीं कि हम पीछे लौटना चाहते हैं, बल्कि हमें यह समझना चाहिये कि अपने स्वर्णिम, तेजोमय, समृद्धिमय अतीत से शिक्षा लेकर हमें और अधिक ऊर्जा से नया कीर्तिमान स्थापित करने की आवश्यकता है। अपने अंदर की हीन भावना को पूरी तरह से नष्ट करने की अपेक्षा है।

विदेशी आक्रांताओं ने भारत की अस्मिता और संस्कृति पर बारम्बार प्रहार किया फलतः वर्षों तक भारतीय संस्कृति षडयंत्र का शिकार होती रही और अपने मूल स्वरूप को खोने लगी। नारी का गरिमामय जीवन अज्ञान के अंधकार में विलीन हो गया। अशिक्षा, अमानुषिकता, भेदभाव और असुरक्षा का दंश उसे झेलना पड़ा। पराधीनता के साये में अनेकानेक कुरीतियों ने जन्म लिया। बाल विवाह, पर्दा प्रथा, शिक्षा से पूर्णतः वंचित रहना, सती प्रथा, भेदभाव, हीनभावना का शिकार होने से मानवीय मूल्य खोने लगे। इन कुप्रभावों से नारी अस्मिता के आहत होने से पूरा समाज और देश प्रभावित हुआ। माँ के गर्भ से लेकर अंतिम श्वास तक

अपनी सुरक्षा हेतु उसे संघर्ष करने के लिये बाध्य होना पड़ा। धीरे-धीरे पुनः शिक्षा के माध्यम से, जन जागरण से, कुरीतियों, कुप्रथाओं की श्रृंखला को तोड़ती हुयी नारी आज बहुत बड़ी त्रासदी को झेलकर विकास की ओर अग्रसर हुई है। अतः आज हमारी आवश्यकता है कि आधुनिकता की दौड़ में हम अपनी अन्तःशक्ति को पहचाने, किसी भी त्रासदी से आहत न हो, सुरक्षित वातावरण में निर्भीक होकर अपनी प्रतिभाओं को विकसित करते हुए आगे बढ़े।

वृहदारयकोपनिषद् में स्त्री को सृष्टि की रिक्तिता पूर्ण करने वाली कहा गया है-

अयमाकाशः स्त्रिया पूर्यते।'

जो स्थान यज्ञ यज्ञ में स्त्री का होता है में 'ब्रह्मा' नामक ऋत्विज का होता है, वह स्थान ही संसार रूपी 'स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ'।

वैदिक कालीन नारी पुरुष के समकक्ष थी, किसी प्रकार से उपेक्षित नहीं थी। नारी चाहे तो नैष्ठिक जीवन व्यतीत करते हुए ब्रह्मवादिनी रहने के लिये पूर्ण स्वतंत्र थी, या सद्योवाह अर्थात् पूर्णशिक्षा प्राप्त कर सुयोग्य पति का वरण कर गृहस्थ धर्म स्वीकार कर सकती थी।
वीर मित्रोदय की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

तत्र ब्रह्मवादिनी नामग्नीन्धनं वेदाध्ययनं स्वगृहे च भिक्षाचर्येति।
सद्योपवधूना तूपस्थिते विवाहे कथंचिदुपनयनमात्रं कृत्वा विवाह कार्यः।।

वे ऋचाओं के अध्ययन के साथ ही मंत्रद्रष्टा भी होती थीं। अदिति, इन्द्राणी, लोपामुद्रा, विवावरी, जुहू, सूर्या, सावित्री, रोमशा कक्षीवान्, वागम्भृणी, शची, पौलोमी, शाश्वती, अंगिरसी, घोषा, श्रद्धा, मैत्रेयी, गार्गी आदि ऋषिकाओं का उल्लेख प्राप्त होता है। उन्हें याज्ञिक अधिकार प्राप्त थे वे यज्ञ में भाग लेने, यज्ञ करने, दूसरों को यज्ञ कराने के लिये अधिकारिणी थीं।

पुराकल्पे कुमारीणां मौंजी बन्धनमिष्यते।
अध्यापने च वेदानां सावित्री वचनं तथा।।

संहिताओं में उन्हें 'बहवृची' अर्थात् अधिकाधिक मंत्रों की पंडिता कहा गया है। 'कठी' अर्थात् वे कठ शाखा का अध्ययन करती थी। 'आपिशला' अर्थात् आपिशल व्याकरण की अध्ययन कर्जी थी। पति पत्नी संयुक्त रूप से यज्ञ करते थे। गृहस्थ को पत्नी के बिना यज्ञ करने का अधिकार नहीं था-

अयज्ञियो वा एष योऽपत्नीकः।

केवल पति द्वारा दी गयी आहुति देव स्वीकार नहीं करते थे।

वैदिक काल में स्त्री को यज्ञ करने और मंत्र पाठ का पूरा अधिकार दिया गया था। परवर्ती काल में संकीर्ण वृत्ति के लोगों ने नारी को यज्ञ और वेदपाठ से वंचित किया था। यह वैदिक विधिका उल्लंघन है। ऋग्वेद के एक मंत्र के अनुसार नारी को प्रतिदिन प्रातः और सायं यज्ञ करना चाहिए, इससे उसकी बुद्धि बढ़ेगी और श्रीवृद्धि होगी-

संहोत्रं स्म पुरानारी, समनं वाव गच्छति।
वेधा ऋतस्य वीरिणी, इन्द्रपतनी महीयेत, विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।।

इस मंत्र में स्त्री के गौरव का वर्णन है। स्त्रियाँ न केवल गृहकार्य में दक्ष होती थीं, अपितु वे सामूहिक यज्ञों में भाग लेती थीं और पति के साथ युद्ध में भी जाती थीं। सामूहिक यज्ञों में जहाँ पुरुषों का महत्व है, वहाँ स्त्रियों का भी महत्व कम नहीं है। जो स्त्रियाँ प्रतिदिन यज्ञ करती थीं, वे सामूहिक यज्ञों में अवश्य जाती थीं। यज्ञशाला में उन्हें आगे स्थान दिया जाता था।

वैदिक काल में बाल विवाह या सती प्रथा जैसी नारीमन को आहत करने वाली कुप्रथा का पूर्णतः अभाव था। पर्दा प्रथा भी नहीं थी।

वैदिककालीन युवतियाँ यथासम्भव इच्छानुकूल पति का वरण करती थीं। शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् परिपक्व बुद्धि से विवाह करने हेतु स्वयं निर्णय ले थीं ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं पतिं विन्दते। पतिगृह पहुँचकर युवती का दाम्पत्य जीवन आरम्भ होता था। विविध प्रकारेण वधू के श्रृगार का वर्णन प्राप्त होता है। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के 85वें सूक्त में आर्य-

वधू का सजीव चित्र प्रस्तुत किया गया है। इस सूक्त के मंत्रों को आज भी विवाह के समय पढ़ा जाता है। वधू का पतिगृह में आगमन मंगलसूचक माना जाता था। वधू के सौभाग्य के लिए, बड़ी ही सुन्दर शुभकामना, प्रस्तुत ऋचाओं में है-

इहैव स्तं मा वियौष्टं विश्वमायुर्व्यश्नुतम्।

क्रीळन्तौ पुत्रैर्नप्तभिर्मोदमानौ स्वे गृहे।।'

यहाँ कामना की गयी है कि नव दम्पत्ति आजीवन साथ रहें। पूर्ण आयु को प्राप्त करें। पुत्र-पौत्रों से युक्त गृह में आनन्दमय जीवन बितायें। नववधू सदैव सुमंगला नारी का प्रतिरूप बनी रहे। जिस वधू को ऐसे शुभाशीष दिये जाते हैं वह सच्चे अर्थो में गृहस्वामिनी होती थी, वह दासी नहीं समझी जाती थी, न ही सास, ससुर के दबाव में घुटन मय जीवन बिताती थी। ननदें उसका जीवन कलहमय नहीं बनाती थी। वह पूरे परिवार की साम्राज्ञी थी। वह सास, ससुर, ननद तथा देवर सभी पर शासन करती थी।

कुछ स्वार्थपरायण लोग 'स्त्रीशूद्रो नाधीयताम्' जैसे वचन गढ़ लेते हैं किन्तु मूल वेदों में एक भी प्रमाण इस भाव को लेकर नहीं है। स्त्रियों के कर्तव्यों का प्रतिपादन कराने वाले हजारों मंत्र हैं, सैकड़ों मंत्र ऐसे हैं जिनका उच्चारण स्त्रियों को यज्ञ, संस्कारादि के अवसर पर करना होता है। ऋग्वेद के अंतिम सूक्त में सभी नर नारियों को सम्बोधित करते हुए कहा गया है-

समानो मंत्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम।

समानं मत्रमभिमंत्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।

हे मनुष्यों- तुम्हारे लिये ये मंत्र समान रूप से दिये गये हैं तथा तुम्हारा परस्पर विचार भी समान रूप से हो, तुम्हारी सभाएँ सबके लिये समान हो, तुम्हारे मन और चित्त में एकीभाव हो, मैं तुम्हें समान रूप से मंत्रों के उपदेशकर्ता और समान रूप से ग्रहण करने योग्य पदार्थों को देता हूँ। इस मंत्र से स्पष्ट है कि वेदों के मंत्र सबके लिये समान रूप से दिये गये

हैं। इनके अध्ययन का, यज्ञादि कराने का अधिकार उन सभी को है, जो अपने जीवन को पवित्र व उन्नत करना चाहते हैं।

ऋग्वेद में स्त्रयों द्वारा वेदों का अध्ययन-अध्यापन तथा यज्ञ करने कराने का स्पष्ट विधान है। सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम'यज्ञं दधेसरस्वती' ऋ० 1.3.11 अर्थात् सरस्वती-विदुषी स्त्री मधुर और सत्यवचनों का प्रयोग करती है, वैसा ही करने की प्रेरणा अन्य को देती हुयी उत्तम बुद्धि को बढ़ाती हुई सत्परामर्श देती हुई सब प्रकार के यज्ञों को धारण करती है।

सरस्वती ज्ञानवती, विदुषी पत्नी, वाणी योषावैसरस्वती वृषा पूषा (श०ब्रा० 5/1/11) अर्थात् स्वयं यज्ञ करना, कराना और उनका प्रचार करना है। पंच महायज्ञों को विदुषी देवी करती और कराती थी।

वैदिक कालीन नारी विदथ सभा एवं समिति, समन उत्सव और मेला में सम्मिलित होती थी। विचारों का आदान प्रदान करती थीं। उन्हें सभावती कहा गया है, जैसा कि आधुनिक काल में हम संसद में अपने विचारों को निर्भीकता से प्रकट करती हुई विदुषी नारियों को सुनते और देखते हैं।

पुत्रियां पुत्रों की भांति पिता की सम्पत्ति में अधिकारिणी थी। अभ्रातृकन्या पिता की संपत्ति की उत्तराधिकारी थी। ऋ० 1.124.7 में कहा है-

'अभ्रातेव पुंसः एति प्रतीचो गर्तारूगिव सनये धनानाम्' ।'

इयं नारी पति लोकं वृणानां निपद्यत

धर्मपुराणमनुपालयन्ती तस्यै प्रजां द्रविणं चेह् धेहि।'"

विधवा मृत पति को छोड़कर भावी पति प्राप्त करती थी उसके पुनर्विवाह का उल्लेख भी प्राप्त है।

उदीर्ध्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुपशेष एहि

हस्तग्रामस्य द्विधिषोस्तवेदं पर्युजभित्वमभि संबभूव।"

आज के समय में एक अहम् मुद्दा है कि समाज में धारणा है कि बेटियां पराया धन हैं, ससुराल में जाने पर कहा जाता है कि बहुएं पराये घर से आयी है। ये सामान्य अवधारणा स्त्रियों को सोचने को विवश करती

है कि आखिर उनका घर कहाँ है, वे कहाँ की स्वामिनी है। इस समस्या का समाधान हमें वैदिक मंत्रों में बड़े ही सुन्दर ढंग से प्राप्त होता है। विवाहोपरांत बहू को आशीर्वाद देते हुए कहा है-

सम्राज्ञी श्वसुरे भव, साम्राज्ञी श्वसां भव।

ननान्दरि साम्राज्ञी भव साम्राज्ञी अधि देवृषु।।"

इस मंत्र में संकेत किया गया है कि वधू सास, ननद और देवरों के साथ गृहस्वामिनी के रूप में रहे। तात्पर्य यह है कि वधू शिष्ट व्यवहार करे, सदा परिवार का हित चिन्तन करे तथा अपने प्रेमपूर्ण व्यवहार से सबको अपने अनुकूल रखे। वस्तुतः नारी के स्वामित्व की चर्चा जहाँ से शुरू होती है, वहीं से उसके उत्तरदायित्वों का क्षेत्र भी विस्तृत हो जाता है। पूरे परिवार के सदस्यों के खान-पान, आचार, व्यवहार एवं सुस्वास्थ्य का, वृद्ध एवं रूग्ण की परिचर्या का दायित्व भी उसी का होता है। ऐसी स्थिति में उसका स्वामित्व होना भी आवश्यक है।

पतिगृह आने के पश्चात् आज की वधू केवल पति को ही स्वीकार कर पाती है, पति के परिवार-जनों के प्रति उसे आत्मीयता का बोध नहीं होता। सका कारण है उसे बाल्यावस्था से ही विपरीत संस्कार दिये जाते है। हास-परिहास के माध्यम से बेटियों के मन में कटुता के ऐसे बीज आरोपित किये जाते हैं जैसे कि श्वसुरालय, बालिका का अपना घन होकर उसको आतंकित करने वालों का गृह हो, किन्तु वैदिक काल में दी जाने वाली शिक्षा का संकेत द्रष्टव्य है-

स्योना भव श्वसुरेभ्यः, स्योना पत्ये गृहेभ्यः।
स्योनाऽस्यै सर्वस्यै विशे, स्योना पुष्टायेषां भव।।'

हे वधू, तुम श्वसुरों के लिए सुख देने वाली हो, परिवार के लोगों के लिए मान देने वाली हो एवं समस्त परिजनों को सुख देने वाली हो, तू सुखद होते हुये इन सबके पोषण के लिए हो। इन दायित्वों के निर्वाह के लिए स्त्री का विदुषी और ज्ञानवती होना आवश्यक है। तभी वह कर्तव्यों के प्रति सजग रहते हुए जीवन के प्रति भी सजग रहेगी। पतिगृह में सुरक्षा

एवं व्यवस्था का ध्यान रखने के लिए उसका स्वस्थ रहना आवश्यक है। अतएव उसके दीर्घायु की कामना 'दीर्घ त आयुः सविता कृणोतु' (अथर्व० 14/2/75) में की गयी है। नारी स्वस्थ रहे तथा परिवार को भी स्वस्थ रखे, इस सन्दर्भ में यजुर्वेद के द्वादश अध्याय में कहा गया है कि स्त्रियाँ औषधि-विद्या अवश्य ग्रहण करें, क्योंकि औषधीय ज्ञान रखने वाली स्त्रियाँ ही कल्याणकारिणी हो सकती है, वे स्वयं स्वस्थ रह सकती है तथा दूसरों के रोगों का निवारण कर सकती हैं

याऽओषधीः सोमराज्ञीर्बह्वीः शतविचक्षणाः।
तसामसि त्वमुत्तमारं कामाय शं हृदे।'

वैदिक मंत्रों के अध्ययन से नारी अपनी दीनहीनता को समाप्त कर सोयी हुयी शक्तियों को उद्बुद्ध कर सकेगी, उसका मनोबल पुष्ट होगा, आत्मबल का सम्पूर्ण विकास होगा। उसमें नवीन नारी का जन्म होगा। एक वैदिक मंत्र के भावानुसार जैसे सूर्य प्रदीप्त किरणों से वस्तुओं को प्रकाशित करता है, वैसे ही विदुषी तथा अग्नि के समान तेजस्विनी स्त्रियाँ सभी कार्यों को कुशलतापूर्वक करती हैं और अपने दक्षतापूर्ण कार्यों से सबको प्रभावित करती हैं। यदि नारी समाजसेवी के रूप में आती है तो ग्राम, नगर और समाज उसका ऋणी रहेगा और उसका सम्मान करेगा। इन कार्यों के द्वारा नारी सबके लिए सुखद और आदरणीय होगी, ऐसी मंगलकामना अथर्ववेद के तीसरे काण्ड में प्राप्त होती है-

शिवा भव पुरूषेभ्यो, गोभ्यो अश्वेभ्यः शिवा।
शिवामै सर्वस्मै क्षेत्राय शिवा न इहैधि।।'

उक्त वैदिक प्रसंगों में हमें नारी के उदात्त स्वरूप का दर्शन होता है। आज समाज इन तथ्यों को स्वीकार करे, यह आवश्यक नहीं किन्तु आज की नारी यदि इन उदात्त भावों को स्वीकार कर ले तो उसका मनोबल अधिक पुष्ट होगा। उसकी कार्य दक्षता अधिक विकसित होगी। उसकी आत्मशक्ति उसे ऊँचाई तक पहुंचने में सक्षम बना सकती है। वह परिवार की ही नहीं, पूरे राष्ट्र की स्वामिनी बनकर विविध उत्तरदायित्वों को

सम्हालती हुई अपनी 'सहस्तवीर्या' शक्ति को उद्बुद्ध कर स्वस्थ एवं सशक्त समाज का निर्माण कर सकती है। विश्व में सर्वश्रेष्ठ होने का श्रेय प्राप्त कर सकती है। आज भारत की महिलायें, चाहे क्रीड़ा क्षेत्र हो, राजनीति या चिकित्सा क्षेत्र हो, शिक्षा या टेक्नालॉजी का क्षेत्र हो अंतरिक्ष से सागर तक चतुर्दिक अपनी प्रतिभा का परचम लहराकर पूरे राष्ट्र को गौरवान्वित कर रही हैं।

एक दूसरी समस्या है कि पुत्री के जन्म से समाज के कुछ परिवारों में दुःख और भय क्यों है जबकि वैदिक समाज में पुत्री जन्म की इच्छा से यज्ञ का विधान है। उनके विदुषी एवं वीर, वीरसू, वीरभगिनी होने की प्रार्थना की गयी है।

माता के शुभ या अशुभ विचार गर्भस्य शिशु में प्रतिफलित होते हैं। अतः विधान है कि गर्भिणी सदा उच्च विचार रखें, प्रसन्न हों तथा भय न करें, क्योंकि राष्ट्र के लिए वीर सन्तान की आवश्यकता है।

ऋग्वेद के निम्न मंत्र में सुयोग्य पुत्रों और पुत्रियों का गुणगान करते हुए माता गर्व की अनुभूति करती है। पुत्री का तेजस्विनी होना भावी सन्तति की ओजस्विता का सूचक है

मम पुत्राः शत्रुहणोऽथो मे दुहिता विराट्।
उताहमस्मि संजया, पत्यौ मे श्लोक उत्तमः।।'

इस मंत्र में 'संजया' पर इन्द्राणी के स्वयं विजयिनी एवं शुभंकरी होने का सूचक है, यह कथन अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

वैदिक काल में नारी को पुरुषों के समान ही अधिकार प्राप्त थे। वे मंत्रद्रष्टा ऋषिकायें भी होती है। ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 72वें सूक्त की ऋषिका अदिति बताई जाती हैं, 107वें सूक्त की दक्षिणा, 151वे सूक्त की ऋषिका श्रद्धाकामायनी हैं। 9वें मण्डल के 6 वें सूक्त की कवयित्री अत्रिगोत्री निवावरी, 8वें मण्डल की अंगिरा गोत्री शाश्वती, 10वें मण्डल के 109वें सूक्त की ऋषिका देवी जुहू हैं। इन्हें 'ब्रह्मवादिनी' कहा गया है। स्त्रियों के लिए इस प्रकार उच्च सम्बोधन बड़े महत्व का है।

यजुर्वेद से हमें ज्ञात होता है कि 'नारी सहस्रवीर्या' है, उसमें सहस्रों प्रकार की शक्ति निहित है-

अषाढासि सहमाना सहस्वराती, सहस्व वृतनायतः।
सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व।"

इस मंत्र में नारी को 'अजेय' कहा गया है। 'सहस्रवीर्या' पद से यह संकेत प्राप्त होता है कि नारी अपनी आवश्यकतानुसार अनेक प्रकार के पराक्रम प्रकट कर सकती है। वस्तुतः यह कथन स्त्री की असाधारण आत्मशक्ति का द्योतक है। वह स्वयं तो शक्ति-सम्पन्न है ही, दूसरों में भी पराक्रमपूर्ण प्रेरणादायिनी शक्ति का संचार करने में सक्षम है।

तैत्तिरीय-संहिता में इन्द्राणी को सेना का देवता कहा गया है। यह भी कहा गया है कि जिसकी सेना का बल निस्तेज हो, वह इन्द्राणी के निमित्त यज्ञ में आहुति दे, इससे उसकी सेना सबल होगी। वह सेना में तेजस्विता लाती है-

इन्द्राणी वै सेनायै देवता। सैवास्य सेनां सं श्यति।'"

यह उदाहरण नारी जाति के लिए गौरव का विषय है।

आज नारियां राष्ट्र की रक्षा क्षेत्र में युद्धक पदों में कार्यरत हो रही है। फाइटर पायलट का दायित्व संभाल रही हैं। ये भारत के लिये नयी बात नहीं है, वैदिक काल में हम इन्द्राणी को सेनापति का पद सम्भालते हुए पाते हैं। जो सेना पराक्रमी अजेय होना चाहती है वह इंद्राणी से प्रार्थना करती है। संग्राम में विजयिनी होती है। समान शिक्षा एवं समान प्रतिनिधित्व पाकर तथा संकीर्ण मनोवृत्ति को त्याग कर भारत की अर्थ-व्यवस्था को सुदृढ़ करने में महत्वपूर्ण योगदान दे रही हैं। उनकी संकल्प शक्ति, उनका साहस, समर्पण, शीर्ष तक पहुँचने की अदम्य लालसा उनके परिवार को ही नहीं, पूरे समाज एवं राष्ट्र को सशक्त, सुविकसित एवं समृद्ध करने में सहायक सिद्ध हो रहा है।

आज का समाज बहुआयामी है, वहाँ यदि नीतियां हैं तो अनीतियां भी, स्वतंत्रता है तो स्वच्छंदता भी, अनुशासन है तो उच्छृंखलता

भी। ऐसी स्थिति में हमें अपने अतीत वैदिक काल से भी पर्याप्त शिक्षा ग्रहण करने की आवश्यकता है। नारी को आज स्वतंत्र एवं स्वावलंबी होने की अपेक्षा उसे संस्कारों की अपेक्षा है, पाश्चात्य दिक्हिीन रिवाजों को स्वीकारने की आवश्यकता नहीं है एतदर्थ उसे वैदिक कालीन विदुषी नारियों की स्थिति, विचार एवं संस्कारों का चिन्तन कर और अधिक आत्मबल के साथ राष्ट्र एवं समस्त मानवहितों के उत्तरदायित्व निर्वहन हेतु सुपात्र बनने की आवश्यकता है।

स्त्रियों को स्वाभिमानपूर्वक वैदिक काल की शिक्षा एवं आधुनिक शिक्षा में समन्वयात्मक दृष्टिकोण रखते हुए अधिक स्फूर्तिवान एवं सजग होकर अपने परिवार, समाज एवं राष्ट्र को सुविकसित करना चाहिए।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:

1. वृहदारण्यकोपनिषद् 1.4.3
2. वीरमित्रोदय, संस्कार प्रकाश, पृ० 402
3. तैत्रिरीय ब्राह्मण 3.3.3
4. ऋग्वेद 10.86.10
5. अथर्ववेद 115,18
6. ऋग्वेद 10.85.42
7. ऋग्वेद 10.191.3
8. ऋग्वेद 1.124.7
9. अथर्ववेद 18.3.1
10. ऋग्वेद 10.18.8
11. ऋग्वेद 10.85.46
12. अथर्ववेद 14.2.27
13. यजुर्वेद 12.92
14. अथर्ववेद 3.28.3

15. ऋग्वेद 10.159.3
16. यजुर्वेद 13.26
17. तैतिरीय संहिता 2.2.81

वेदस्थ वैचारिकी में स्त्री-विमर्श एवं उसकी वर्तमान प्रासङ्गिकता

डॉ. रश्मि यादव
सहायक आचार्य, संस्कृत, पालि, प्राकृत एवं प्राच्य भाषा विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज उ.प्र.

शोधसार- स्त्री-विमर्श, पितृसत्तात्मक समाज में मर्यादा एवं परम्परा को आधार बनाकर स्त्री के लिए जिन पक्षपातपूर्ण मानदण्डों एवं निर्योग्यताओं को गढ़ लिया गया है, उन वर्जनाओं को तोड़ने की एक पहल है जिससे स्त्री को समानता का अधिकार, सम्मान, अस्तित्व और स्वतंत्रता प्राप्त हो सके। ऋग्वेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के अनेक उद्धरणों से सिद्ध होता है कि वैदिक युग में स्त्रियों को गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त रहा है। उन्हें वेदाध्ययन और याज्ञिक अनुष्ठानों में समान अधिकार दिया गया था किन्तु कालान्तर में स्त्रियों की दशा निम्न होती गई। आधुनिक समाज में यद्यपि नारियों की स्थिति में सुधार करने के लिए सरकारी एवं गैर-सरकारी संगठनों के द्वारा अनेकानेक कार्य किए जा रहे हैं तथापि सम्प्रति समाज के सभी क्षेत्रों में स्त्रियों की समान सहभागिता सुनिश्चित नहीं हो सकी है। स्त्रियों की दशा एवं दिशा में सकारात्मक परिवर्तन करने के लिए अथक प्रयास करने और वैदिक मूल्यों को आत्मसात् करने की आवश्यकता है।

बीज शब्द- स्त्री-विमर्श,यज्ञ, ब्रह्मा, ऋषिका, सरस्वती, ब्रह्मवादिनी, शाक्तिकी, आचार्या, संवैधानिक अधिकार, अधिनियम, निर्योग्यता और न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था इत्यादि।

प्रस्तावना- यह शोध-पत्र वेदों में प्रतिपादित स्त्रियों के अधिकार एवं कर्त्तव्य की मीमांसा करते हुए आधुनिक परिदृश्य में उनकी वास्तविक

स्थिति के मूल्याङ्कन पर आधृत है। स्त्री-विमर्श स्त्री विषयक समस्त आयामों को समाहित करने वाली साहित्यिक चेतना है, जिसके केन्द्र में लिङ्गीय-समानता, स्त्री सम्मान, अस्तित्व, स्वतंत्रता और आत्मनिर्भरता मुख्य बिन्दु हैं। स्त्री-विमर्श को प्रायः पश्चिम के फेमिनिज्म से प्रस्फुटित अवधारणा माना जाता है जबकि हिन्दी साहित्य में 'लिङ्ग को आधार बनाकर की गयी अस्मितामूलक वैचारिकी' को स्त्री-विमर्श की संज्ञा से अभिहित किया गया है। वर्तमान में स्त्री-विमर्श एक वैश्विक वैचारिकी के रूप में परिलक्षित हो रही है जिसमें स्त्री के सभी पक्षों को पुरुष के सापेक्ष रखकर मूल्याङ्कित किया जाता है। सभ्यता के आदिम युग से सामाजिक व्यवस्था के सूक्ष्म विश्लेषण से सिद्ध होता है कि समाज में पुरुषों की तुलना में स्त्रियों को राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और शैक्षिक दृष्टि से समानता का अधिकार नहीं प्राप्त हुआ। फलत: सम्पूर्ण विश्व की स्त्रियों का पितृसत्तामक समाज के वर्चस्व के विरोध में संघर्ष एवं प्रतिरोध परिलक्षित होता रहा है। वस्तुत:, स्त्री-विमर्श स्त्री सशक्तीकरण के लिए किये जा रहे सकारात्मक साहित्यिक चिन्तन से प्रारम्भ होता है। इस दृष्टि से वेद प्रासङ्गिक हैं जिनकी वैचारिकी प्रत्येक क्षेत्र में स्त्री की सशक्त भागीदारी एवं स्त्री-गौरव का समर्थन करती हुई परिलक्षित होती है।

विषय प्रवर्तन-

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते, सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः।।1

ऐसा उद्घोष करने वाली भारतीय ज्ञान परम्परा में स्त्री-विमर्श की सुदीर्घ श्रृङ्खला है। स्त्री-विमर्श का आदर्श स्वरूप वेदों की ऋचाओं से प्रस्फुटित होता है। वैदिक नारियां यज्ञ का अनुष्ठान करने वाले ब्रह्मा, मंत्रों का प्रणयन करने वाली ऋषिका, युद्धक्षेत्र में शौर्य का प्रदर्शन करने वाली

[1] मनुस्मृति- 3.56

शाक्तिकी और गृहस्थी का सुचारू ढंग से संचालन करने वाली गृहस्वामिनी पद पर प्रतिष्ठित दिखाई देती हैं।

वैदिक स्त्रियों को याज्ञिक अनुष्ठानों से सम्बन्धित पूर्ण अधिकार प्राप्त थे। ऋग्वेद के सरस्वती सूक्त[1] से द्योतित होता है कि स्त्रियों को यज्ञ करने, शिक्षा प्राप्त करने और अध्ययन-अध्यापन करने का अधिकार दिया गया है। ऋग्वैदिक ऋचा- **चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनाम्। यज्ञं दधे सरस्वती।**[2] में उल्लिखित सरस्वती पद का शाब्दबोध विचारणीय है। कतिपय विद्वानों ने सरस्वती शब्द का देवपरक अर्थ ग्रहण किया है किन्तु सरस्वती पद का अर्थ ज्ञानवती अथवा विदुषी भी प्राप्त होता है। शतपथ ब्राह्मण के- **योषा वै सरस्वती वृषा पूषा**[3] मंत्र में उद्धृत सरस्वती शब्द विदुषी स्त्री का बोधक है। ऋग्वेद में अन्यत्र भी सरस्वती पद विदुषी के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है-

सरस्वतीं देवयन्तो हवन्ते सरस्वतीमध्वरे तायमाने।
सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् ॥[4]

"यज्ञं दधे सरस्वती" में **दधे** शब्द **डुधाञ् धारणपोषणयोः** धातु से बना है जिसका अर्थ है- धारण अथवा पोषण करना। इससे स्पष्ट है कि जो सरस्वती है, जो विदुषी है वह यज्ञ को धारण कर सकती है अर्थात् विदुषी स्त्री स्वयं यज्ञ का अनुष्ठान और प्रचार-प्रसार कर सकती हैं। पं. धर्मदेव विद्यामार्तण्ड ने अनेक उद्धरणों के द्वारा ऋग्वेद में प्रयुक्त सरस्वती शब्द का स्त्री वाचकत्व सिद्ध किया है। यजुर्वेद में विदुषी स्त्री के अनेक गुणसूचक नामों में सरस्वती शब्द का पाठ भी किया गया है-

"इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योतेऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।

---

[1] ऋग्वेद- 1.3.11

[2] ऋग्वेद- 1.3.1

[3] शतपथ ब्राह्मण- 2.5.1.11

[4] ऋग्वेद- 10.17.7

एता ते अघ्न्ये नामानि।"[1] इस मंत्र में प्रयुक्त सरस्वती शब्द स्पष्टतया स्त्री वाचक है। अथर्ववैदिक मंत्र- **शिवा नः शन्तमा भव सुमृडीका सरस्वती। मा ते युयोम सन्दृशः।**[2] में प्रयुक्त सरस्वती शब्द का तात्पर्य भी विदुषी पत्नी से ही है। मानव, वाराह, और पाठक गृह्य सूत्रों में भी सरस्वती शब्द को स्त्री अर्थ में लिया गया है। **निघण्टु** में सरस्वती शब्द की गणना पदनाम में किया गया है[3]। पद् धातु के गत्यर्थक होने के कारण जिसमें ज्ञान, गमन और प्राप्ति इन तीनों का समावेश है, वह सरस्वती है। सरस्वती का अर्थ है- ज्ञानवती, उत्तम मार्ग पर गमन करने वाली या उत्तम पति या परमेश्वर को प्राप्त करने वाली। इस प्रकार वेदस्थ सरस्वती पद के तार्किक विश्लेषण से स्पष्ट है कि स्त्रियां यज्ञों को धारण करने के साथ ही यज्ञों के अनुष्ठाता 'ब्रह्मा' पद को भी समलङ्कृत करतीं थीं। ऋग्वैदिक ऋचा में कहा गया-"**अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर। मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।**[4] इस मंत्र से स्पष्ट है कि वैदिक पुरुषों के समान ही वैदिक नारियां भी यागिक अनुष्ठानों में ब्रह्मा की पदवी प्राप्त करती थीं। ऋग्वेद में याज्ञिक अनुष्ठानों में पत्नी की सहभागिता को सुनिश्चित करते हुए कहा गया है कि- **या दंपती समनसः सुनृत आ च धावतः।**[5] अर्थात् जो दम्पती सामान मन वाले होकर अभिषव करते हैं और सोम को छान करके उसमें हव्य आदि का मिश्रण करके उसे मधुर बनाते हैं, वह यज्ञ कार्य करते हैं। अथर्ववेद के "**योषितयो यज्ञिया इमा**"[6] इत्यादि मंत्र में याज्ञिक अनुष्ठानों में स्त्रियों की सहभागिता स्वीकार की गयी है।

---

[1] यजुर्वेद- 8.43

[2] अथर्ववेद- 7.68.3

[3] निघण्टु -5.5

[4] ऋग्वेद- 8.33

[5] ऋग्वेद- 8.31.5

[6] अथर्ववेद- 11.1.17

शतपथ ब्राह्मण में अपत्नी वाला व्यक्ति यज्ञ नहीं कर सकता है- **अयज्ञियो या एव योऽपत्नीकः।**[1] ऐसा कहकर याज्ञिक अनुष्ठान हेतु पति-पत्नी के सहयोग की अनिवार्यता स्वीकार की गयी है। इन वैदिक उद्धरणों से सिद्ध होता है कि वैदिक स्त्रियों को वेदों का अध्ययन करने या यज्ञ करने के अधिकार से वंचित किया गया हो,ऐसा कोई उदाहरण दृष्टिगत नहीं होता है।

याज्ञिक अनुष्ठानों के साथ ही वैदिक स्त्रियाँ साहित्यिक सृजन में संलग्न थीं। वह मंत्रों के द्रष्टा अर्थात् ऋषि पद को प्राप्त करती थीं। निरुक्त में ऋषि का निर्वचन किया गया है- **ऋषिर्दर्शनात् स्तोमान् ददर्शेति–ऋषियो मंत्रद्रष्टारः** अर्थात् जो मंत्रों का द्रष्टा और उसके रहस्य को समझ करके प्रचार करने वाला है वही ऋषि है। ऋग्वेद में 24 ऋषिकाओं के द्वारा दृष्ट 224 मंत्रों और अथर्ववेद में 5 ऋषिकाओं के द्वारा दृष्ट 118 मंत्रों का उल्लेख समुपलब्ध होता है।[2] ऋषिकाएँ न केवल वेदों को पढ़तीं, उनके रहस्य को स्वयं समझतीं बल्कि उनका प्रचार करती थीं। बृहद्देवता में ऋग्वेद की ऋषिकाओं का नामोल्लेख किया गया है-

घोषा गोधा विश्ववारा अपालोपनिषन्निषत्।
ब्रह्मजाया जुहूर्नाम अगस्त्यस्य स्वसादितिः॥
इन्द्राणी चेन्द्रमाता च सरमा रोमशोर्वशी।
लोपामुद्रा च नद्यश्च यमी नारी च शश्वती॥
श्रीर्लक्ष्मीः सार्पराज्ञी वाक् श्रद्धा मेधा च दक्षिणा।
रात्री सूर्या च सावित्री ब्रह्मवादिन्य ईरिताः॥[3]

ऋग्वेद के मंत्रों की ऋषिकाओं में सूर्या सावित्री, घोषा काक्षीवती, सिकता निवावरी, इन्द्राणी, यमी वैवस्वती, दक्षिणा प्राजापत्या, अदिति,

---

[1] शतपथ ब्राह्मण- 5.16.10

[2] वेदों में नारी, डॉ.कपिल देव द्विवेदी, पृष्ठ- 5

[3] बृहद्देवता 24.84,24.85 एवं 24.86

वाक् आम्भृणी, अपाला आत्रेयी, जुहू ब्रह्मजाया, अगस्त्यस्वसा, विश्ववारा आत्रेयी, उर्वशी, सरमा देवशुनी, शिखण्डिन्यौ अप्सरसौ, पौलोमी शची, देवजामयः इन्द्रमातरः, श्रद्धा कामायनी, सर्पराज्ञी, गोधा, शश्वती आंगिरसी, वसुक्रपत्नी और रोमशा ब्रह्मवादिनी की गणना की जाती है। अथर्ववैदिक ऋषिकाओं में सूर्या सावित्री, मातृनामा, इन्द्राणी, देवजामय: और सर्पराज्ञी का उल्लेख हुआ है। यजुर्वेद में स्त्री को उपदेश दिया गया है कि वे कुल की वृद्धि की कामना करने वाली (कुलायिनी),घृत का उचित प्रयोग करने वाली (घृतवती), बहुत बुद्धि और कर्मों वाली (पुरन्धि) हो- **कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः**।[1] सायण, उव्वट और महीधर ने इस मन्त्र में प्रयुक्त पुरन्धि: का 'इष्टकापरक(ईंटपरक) अर्थ किया है जबकि निरुक्त में 'पुरधी:' अर्थात् बहुत बुद्धि और कर्मों वाली, यह अर्थ किया गया है। निरुक्त को प्रमाण माना जाय तो स्पष्ट रूप से इस मंत्र में विदुषी स्त्री की प्रसंशा की गई है। वैदिक युगीन स्त्रियाँ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए विद्यार्जन करती थीं, तत्पश्चात् उनका विवाह सम्पन्न होता था। अथर्ववेद में उद्धृत है कि अविवाहित कन्याएँ ब्रह्मचर्य से ही श्रेष्ठ पति को प्राप्त करती हैं-**ब्रह्मचर्येन कन्या युवानं विन्दते पतिम्**।[2]

सायण ने अथर्ववेद[3] में उल्लिखित 'ब्रह्मचर्य' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है- 'ब्रह्मचर्येण- ब्रह्म वेदः तदध्ययनार्थमाचर्यम्-आचरणीयं समिदाधानभैक्ष्यचर्योर्ध्वरेतस्कत्वादिकं ब्रह्मचारिभिरनुष्ठीयमानं कर्म आज्ञा ब्रह्मचर्यम् तेन'। अर्थात् ब्रह्म शब्द वेद का बोधक है। उसके अध्ययन के लिये जो कर्म ब्रह्मचारियों द्वारा किये जाते हैं वे ब्रह्मचर्य शब्द से बोधित होते हैं। सायण ने इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में भी उद्धृत ब्रह्मचारी शब्द की व्याख्या इस प्रकार की है- 'ब्रह्मणि-वेदात्मके ऽध्येतव्ये चरितुं शीलमस्य स

---

1 यजुर्वेद- 14.2

2 अथर्ववेद- 10.159.2

3 अथर्ववेद- 11.7.17, ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं विरक्षति'

तथोक्तः' अर्थात् ब्रह्म पद वेदात्मक है, अतः ब्रह्मचारी वह है जो वेदाध्ययन में तत्पर हैं। शङ्कराचार्य ने कठोपनिषद्[1] में आये हुए 'ब्रह्मचर्यम्' का अर्थ "गुरुकुलवास-लक्षणम् अन्यत्र वा ब्रह्मप्राप्त्यर्थम्" किया है अर्थात् गुरुकुल में वास अथवा ब्रह्म की प्राप्ति के लिए किया जाने वाला कार्य ब्रह्मचर्य है। इस प्रकार ब्रह्मचर्य शब्द से वेदाध्ययन एवं उसके लिए किया जाने वाला व्रत ही अभिप्रेत है।अस्तु,इस अथर्ववैदिक मन्त्र से स्त्रियों के वेदाध्ययन का अधिकार स्पष्टतया प्रमाणित होता है। ब्रह्म अर्थात् वेद का प्रचार करने वाली ऋषिकाओं को ब्रह्मवादिनी कहा जाता था।

वैदिक मंत्रों में सैन्य कार्य में दक्ष और युद्ध में प्रतिभाग करने वाली स्त्रियों का वर्णन प्राप्त होता है। यजुर्वेद में स्त्री के पराक्रम की प्रशंसा करते हुए **सहस्रवीर्या** कहा गया है और युद्ध में शत्रु को पराजित करने वाली स्त्री के विजय की कामना की गयी है।[2] मंत्रों में इन्द्राणी को सेना का नेतृत्व करने और सदैव विजयी रहने का आशीर्वाद दिया गया है।[3] इन्द्राणी शिव के पिनाक धनुष के समान धनुष को धारणकर शत्रुसेना को काटते हुए चलती है।[4] तैत्तिरीय संहिता में इन्द्राणी को सेना की देवता कहा गया है।[5] इन्द्र और दस्युओं के युद्ध में दस्यु की ओर से स्त्रियों की सेना के प्रतिभाग करने का उल्लेख प्राप्त होता है।[6]

वेदों में स्त्रियों को न केवल शिक्षा प्राप्त करने और यज्ञ करने का अधिकार प्राप्त था अपितु वह सभा में अपनी वाक्शक्ति का प्रदर्शन करती

---

[1] कठोपनिषद् 1.2.15- सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपांसि सर्वाणि च यद् वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्तेपदं संग्रहेण ब्रवीम्यो३मित्येतत्।

[2] यजुर्वेद 13.26- अषाढासि सहमाना सहस्वारातीःसहस्व पृतनायतः।
सहस्रवीर्यासि सा मा जिन्व।।

[3] अथर्ववेद- 1.27.4- इन्द्राण्येतु प्रथमाजीतामुषिता पुरः।

[4] अथर्ववेद- 1.27.2- विषूच्येतु कृन्तती पिनाकमिव बिभ्रती।

[5] तैत्तिरीय संहिता- 2.2.8.1- इन्द्राणी वै सेनायै देवता।

[6] ऋग्वेद- 5.30.9- स्त्रियो हि दास आयुधानि चक्रे।

हुई परिलक्षित होती है। ऋग्वेद में कहा गया कि **वशिनी त्वं विदथमावदासि।**[1] अर्थात् जो विद्वान स्त्रियाँ होती थी वह वाक् शक्ति के द्वारा विदथ अर्थात् विद्वानों की सभा को वश में कर लेती थीं। इससे सिद्ध है कि सार्वजनिक क्षेत्र में स्त्रियों की उपस्थिति थी और उन्हें सभा में सहभाग करने की स्वतंत्रता प्राप्त करती थी। इस दृष्टि से बृहदारण्यकोपनिषद् विचारणीय है जिसमें **वाचक्नु की पुत्री गार्गी** जनक की सभा में याज्ञवल्क्य जैसे ब्रह्मवेत्ता ज्ञानी को अपने गूढ़ दार्शनिक प्रश्नों से निरुत्तर कर देती है[2]। इसी उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ऋषि की दो पत्नियों- मैत्रेयी और कात्यायनी में मैत्रेयी को विदुषी और ब्रह्मवादिनी कहा गया है- **तयोर्ह मैत्रेयी ब्रह्मवादिनी बभूव।**[3] इस उद्धरण से स्पष्ट है कि वैदिक काल में स्त्रियां ब्रह्म तत्व की ज्ञाता और व्याख्याता हुआ करती थीं। स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित प्रबल प्रमाण व्याकरण के ग्रन्थों में भी परिलक्षित होते हैं। अष्टाध्यायी के **जातेरस्त्रीविषयाद् अ-योपधात्**[4] सूत्र के उदाहरणों में 'कठी' और 'बहवृची' पद है। कठी का अभिप्राय उस स्त्री से है जो वेद की कठ शाखा का अध्ययन करती है और बहवृची का अर्थ है- वेद की बहवृची शाखा को पढ़ने वाली स्त्री। अष्टाध्यायी के वार्तिककार कात्यायन ने स्त्रियों के लिए सैन्य शिक्षा की ओर संकेत किया है। अष्टाध्यायी के एक सूत्र **टिड्ढाण्ऽञ्.**[5] के साथ प्राप्त वार्तिक 'नञ्स्नञ् ईकक् ख्युन्-तरुण-तलुनानाम् उपसंख्यानम्' के उदाहरणों में **शाक्तीकी** अर्थात् "शक्ति नामक अस्त्र

---

[1] ऋग्वेद- 10.85.26

[2] बृहदारण्यक उपनिषद् 3.6.1- अथ हैनं गार्गी वाचक्नवी पप्रच्छ याज्ञवल्क्येति होवाच यदिदं ... कस्मिन्नु खलु ब्रह्मलोका ओताश्च प्रोताश्चेति स होवाच गार्गि मतिप्राक्षीर्मा ते मूर्धा व्यपप्तदनतिप्रश्न्यां वै देवतामतिपृच्छसि गार्गिमातिप्राक्षीरिति ।

[3] बृहदारण्यकोपनिषद्- 4.5.1

[4] अष्टाध्यायी- 4.1.63

[5] अष्टाध्यायी- 4.1.5

जिसका हथियार है, वह स्त्री" द्रष्टव्य है। आचार्य की पत्नी को आचार्याणी और स्वयं अध्यापन करने वाली स्त्री को आचार्या या उपाध्याया कहा गया है। पातञ्जल महाभाष्य में **उपेत्याधीते अस्याः सा उपाध्याया** कहा गया है, इससे सिद्ध होता है कि स्त्रियां अध्यापन कार्य भी करती थीं।

वैदिक समाज में स्त्रियां अग्रगण्य थीं। उन्हें कल्याणीजाया[1] (मङ्गलकारिणी), सुमङ्गली,[2] अग्रेपा(सोमपान में अग्रगण्य), रत्नधा(रत्नधारण करने वाली)[3] और कुलपा (कुल का पालन करने वाली)[4] कहा गया है। उन्हें श्वसुरगृह की सम्राज्ञी होने का आशीर्वाद दिया गया है।[5] ऋग्वेद में जाया (पत्नी) ही अस्तम् अर्थात् घर है[6] ऐसा कहकर नारी को गृहस्थ जीवन का मूलाधार स्वीकार किया गया है। पुत्र को जन्म देने वाली स्त्री को महिषी अर्थात् रानी की संज्ञा दी गई है।[7] स्त्रियों को अपने योग्य मित्र अर्थात् पति का वरण करने की स्वतंत्रता प्राप्त थी।[8]

वैदिक ग्रंथों में सन्निहित साक्ष्यों से ज्ञात होता है कि वैदिक ज्ञान-परम्परा में स्त्रियों को शिक्षा, धर्म, कृषि, संस्कृति और गृहस्थी के क्षेत्र में समान अधिकार प्राप्त थे। उनको समाज में सम्माननीय पद प्राप्त था। नारी

---

[1] ऋग्वेद- 3.53.6- कल्याणीर्जाया सुरणं गृहे ते।

[2] अथर्ववेद- 14.2.26

[3] ऋग्वेद- 4.34.7- अग्रेपाभिर्ऋतुपाभिः सजोषा ग्नास्पत्नीभी रत्नधाभिः सजोषाः।।

[4] अथर्ववेद 1.14.3-एषा ते कुलपा राजन् तामु ते परि दद्मसि।

[5] ऋग्वेद 10.85.46 एवं अथर्ववेद 14.1.44-सम्राज्ञी श्वशुरे भव सम्राज्ञी श्वश्र्वां भव। ननान्दरि सम्राज्ञी भव सम्राज्ञी अधि देवृषु।।

[6] ऋग्वेद 3.53.4- जायेदस्तं.।

[7] अथर्ववेद 2.36.3-सुवाना पुत्रान् महिषी भवाति।

[8] ऋग्वेद 10.271.2-भद्रा वधूर्भवति यत् सुपेशाः
स्वयं सा मित्रं वनुते जने चित्।

के प्रति जो सम्मान और श्रद्धा वैदिक संस्कृति में प्रस्फुटित हुई है, वह अन्य किसी भी संस्कृति में प्रायः नगण्य ही है।

वर्तमान में भारत की गौरवशाली परम्परा से इतर प्रत्येक स्तर पर स्त्रियों की दशा एवं दिशा असंतोषजनक एवं निम्न हो गई है। मध्ययुगीन सामाजिक विसङ्गतियों और राजनीतिक परिस्थितियों के कारण तात्कालिक स्त्रियों पर अनेक प्रतिबन्ध एवं निर्योग्यताएं आरोपित कर दी गयीं। श्रीमद्भागवत में कहा गया है- **स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूनां त्रयी न श्रुतिगोचरा**[1] अर्थात स्त्री, शूद्र और द्विज यह तीन श्रुति के योग्य नहीं है अर्थात वेद के योग्य नहीं है, इन्हें वेद पढ़ने का अधिकार नहीं है। जबकि वेदों में कहीं ऐसा उदाहरण नहीं मिलता जिसके आधार पर सिद्ध हो कि तात्कालिक समाज में स्त्रियों की शिक्षा पर या उनके अध्ययन-अध्यापन पर किसी भी प्रकार का निषेध रहा हो। ऋग्वेद के संज्ञानसूक्त में कहा गया है-

"समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि" ॥[2]

इस मन्त्र में वैदिक मनीषा यह उद्घोषणा करती है कि ऋग्वेद इत्यादि के मन्त्र समान रूप से सभी व्यक्तियों को दिए गए हैं, सम्पूर्ण समितियां समान रूप से सबके लिए बनाई गई हैं। सबका मन और चित्त समान हो अर्थात् परस्पर प्रेम हो। वैदिक मंत्र समान रूप से सबके लिए उपदिष्ट हैं और सांसारिक पदार्थ सब लोग समान रूप से धारण करें। जब वैदिक मंत्र स्वयं यह उद्घोषणा कर रहे हैं कि वैदिक मंत्र सभी के लिए हैं फिर भागवत में यह निर्योग्यता क्यों उपस्थित हुई? आज यह प्रश्न ज्वलंत रूप में उपस्थित है। पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था ने स्त्रियों को मात्र गृहस्थी तक सीमित करके उन्हें पराश्रित कर दिया। मनुस्मृति में कहा गया है-

---

1 भागवत पुराण- 1.4.25

2 ऋग्वेद- 10.191.3

“पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने ।
रक्षन्ति स्थविरे पुत्रा न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति” ॥

अर्थात् कुमारावस्था (बालापन) में पिता, यौवनावस्था में पति, और वृद्धावस्था में पुत्र को रक्षा करनी चाहिये। क्योंकि स्त्रियां स्वतन्त्र होने के योग्य नहीं।[1] इस प्रकार स्मृतिकाल में नारियों को स्वतंत्रता, शिक्षा और सम्पत्ति से वंचित कर दिया गया। शनै:-शनै: स्त्रियां पुरुषों पर आश्रित होतीं गयी। फलस्वरूप २१वीं शताब्दी में भी स्त्रियाँ वित्तीय आत्मनिर्भरता, स्वाभिमान, सुरक्षा और स्वतंत्रता के लिए संघर्ष करते हुए परिलक्षित हो रही हैं। आज भी उन्हें मर्यादित या यथोचित स्थान समान रूप से सुलभ हो रहा हो, ऐसे उदाहरण अत्यल्प ही हैं।

आधुनिक भारत में स्त्रियों को सशक्त और आत्मनिर्भर बनाने के लिए अनेक प्रकार के संवैधानिक अधिकार प्रदान किए गए हैं। भारत के सभी नागरिकों के साथ ही स्त्रियों को भी संविधान के अनुच्छेद 14 से स्वतंत्रता का अधिकार और अनुच्छेद 15 से समता का अधिकार प्राप्त है। अनुच्छेद 15 (3) में स्त्रियों के लिए विशेष उपबंध किया गया है। अनुच्छेद 39 में नीति निर्देशक तत्व में स्त्रियों को समान कार्य के बदले समान वेतन और स्त्रियों की शोषण से रक्षा करने का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 42 में काम की न्याय सङ्गत और मानवोचित दिशाएं सुनिश्चित करना, स्त्रियों से कठोर परिश्रम वाला काम ना लेना और खतरनाक मशीनों पर कार्य ना करवाने का प्रावधान किया गया है। अनुच्छेद 51 स्त्री को यह अधिकार देता हैं कि उनके साथ किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया जाएगा। भारत में महिलाओं के अधिकार को सुनिश्चित करने के लिए न केवल संविधान में प्रावधान किया गया बल्कि समय-समय पर अनेक कानून और अनेक अधिनियम भी बनाए गये हैं जिनमें कार्यस्थल पर महिलाओं के यौन उत्पीड़न के विरुद्ध अधिनियम, 2013 प्रमुख है। न

---

[1] मनुस्मृति- 9.3

केवल कार्य स्थल पर बल्कि घरों में जो स्त्रियों के साथ हिंसा की जाती है उसके विरुद्ध संरक्षण देने के लिए **घरेलू हिंसा से महिला का संरक्षण अधिनियम 2005** और कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए **कन्या शिशु हत्या निवारण विधेयक, 2013** पारित किया गया। महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए सरकार के द्वारा अनेक प्रकार के विभाग गठित किये गये हैं जिसमें राष्ट्रिय महिला आयोग, राष्ट्रिय महिला कोष एवं केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड इत्यादि संस्थाएं हैं जो महिलाओं के अधिकार और सुरक्षा को सुनिश्चित करने के लिए सदैव तत्पर हैं। 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' योजना की शुरुआत 22 जनवरी 2015 को पानीपत हरियाणा से किया गया। इस योजना के द्वारा महिला सशक्तीकरण से जुड़े मुद्दों का समाधान होता है। साथ ही कन्या-शिशु लिङ्ग अनुपात में कमी को रोकने के लिए अनेक प्रकार के प्रावधान किये गये हैं। वर्तमान में यह योजना तीन मंत्रालयों- महिला और बाल विकास मंत्रालय, स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय और मानव संसाधन मंत्रालय द्वारा संयुक्त रूप से कार्यान्वित की जा रही है। 2004 से कस्तूरबा गांधी बालिका विद्यालय भी संचालित किये जा रहे हैं।

स्त्रियों को समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित करने के लिए किये गये इन प्रयासों के पश्चात् भी वर्तमान में स्त्रियों की वास्तविक स्थिति असन्तोषजनक है। इसका आकलन 2011 की जनगणना के आधार पर किया जा सकता है। भारत में पुरुष साक्षरता दर 84.114% की अपेक्षा स्त्रियों की साक्षरता दर मात्र 65.46% ही है। राजस्थान में मात्र 52.52% ही महिलाएं साक्षर है और बिहार जहाँ कभी नालंदा जैसा विश्वविद्यालय हुआ करता था, वहाँ की महिलाओं की साक्षरता दर केवल 51.5% है । यह स्थिति तब है, जब 4 अगस्त, 2009 से शिक्षा के अधिकार (Right to education) को मौलिक अधिकार का दर्जा दे दिया गया है जिसमें 06 से 14 वर्ष तक के सभी बच्चों को निशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान किया गया है। इसी प्रकार राजनीति के क्षेत्र में भी स्त्रियों की दशा में अपेक्षित प्रगति दृष्टिगत नहीं होती है। भारत में

1920 से ही स्त्रियों को मतदान का अधिकार प्राप्त हुआ है तथापि राजनीति में आज भी स्त्रियों की सक्रिय एवं समान भागीदारी सुनिश्चित नहीं हो सकी है। स्वतंत्रता के पश्चात् सन् 1952 में निर्वाचित प्रथम लोकसभा में मात्र 4% अर्थात् 22 महिला सांसद ही निर्वाचित हो सकीं। 2014 में निर्वाचित 16वीं लोकसभा में 62, 2019 में निर्वाचित 17वीं लोकसभा में 78 और 2024 में निर्वाचित 18वीं लोकसभा में कुल 543 सांसदों में से 74 महिला सांसद हैं जो 13.63% है। राज्यों की विधायिका में भी स्त्रियों की भागीदारी नाममात्र की ही है। उत्तर प्रदेश विधानसभा के 403 विधायकों में से 47 महिला विधायक हैं। वर्तमान में कार्यरत कुल 30 मुख्यमंत्री में से एकमात्र पश्चिमबंगाल में महिला मुख्यमंत्री ममता बनर्जी हैं। 1963 से लेकर आज तक मात्र 16 महिला मुख्यमंत्री ही निर्वाचित हो सकीं हैं। आज 27 वर्षों के पश्चात् चिरप्रतीक्षित महिला आरक्षण बिल, 2023 पारित हो चुका है जिसके अनुसार 1/3 पद महिलाओं के लिए आरक्षित किये जाएगें। किन्तु, यह बिल आज तक लागू नहीं हो सका है।

वर्तमान में **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता** का उद्घोष करने वाला हमारा देश समस्त देवालयों में स्त्रियों को प्रवेश करने का अधिकार देने में भी असफल रहा है। **सबरीमाला, शनि शिंगणापुर, अहमदनगर महाराष्ट्र, कार्तिकेय मंदिर, परहुआ हरियाणा, घटाई देवी मंदिर सतारा, महाराष्ट्र** और न जाने कितनी ऐसी मंदिर हैं जिनके कपाट आज भी महिलाओं के लिए अनावृत्त हैं।

वस्तुत:, वर्तमान में महिलाएं उस सन्धि स्थल पर खड़ी हैं जहाँ एक ओर सदियों की सङ्कीर्ण मानसिकता है तो दूसरी ओर नारियों में स्वयं को प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिष्ठापित करने का दृढ़ मनोबल है। फलत: प्रत्येक क्षेत्र में नारी सशक्तीकरण की आहट सुनाई दे रही है। आज महिला शिक्षा, स्वास्थ्य, सुरक्षा, और सभी क्षेत्रों में उनकी सहभागिता को सुनिश्चित करने के लिए सकारात्मक उपाय किये जा रहें हैं। फलस्वरूप अनेक क्षेत्रों में स्त्रियों की सक्रियता एवं सहभागिता में वृद्धि देखी जा सकती है। सावित्री

बाई फुले को आधुनिक भारत की प्रथम पीढ़ी की फेमिनिस्ट के रूप में जाना जाता है। उनकी रचना 'काव्य फुले' (1934) और 'बावन काशी सुबोध रत्नाकर' (1984) बहुत प्रख्यात हैं। इसी प्रकार हिंदी और पंजाबी दोनों भाषाओं में लिखी गई 100 से अधिक किताबों में "अज अक्खां वारिस शाह नू" और 'पिंजर' के लिए प्रख्यात अमृता प्रीतम और मैन बुकर पुरस्कार से सम्मानित 'गॉड ऑफ स्मॉल थिंग्स' की लेखिका अरुंधति रॉय की लेखनी स्त्री-विमर्श को लेकर मुखर रही है। उर्दू साहित्य की दुनिया में 'इस्मत आपा' के नाम से विख्यात इस्मत चुग़ताई की कहानी 'लिहाफ़' में महिलाओं के सवालों को नए सिरे से उठाया गया है। उन्होंने निम्न मध्यवर्गीय मुस्लिम वर्ग की दीन-हीन सकुचाई लड़कियों की मनोदशा को यथार्थ रूप में वर्णित किया है। विनेश फोगाट, मैरीकॉम और सुनीता विलियम्स, इंदिरा गांधी, शीला दीक्षित,जय ललिता जैसी महिलाएं नारी सशक्तीकरण की ज्वलंत निदर्शन हैं। उच्चतम न्यायालय की न्यायाधीश हिमा कोहली; बेला त्रिवेदी और बीवी नागरत्ना तथा किरण मजूमदार शॉ, नैना लाल किदवाई, इन्द्रा नूई, वन्दना लूथरा जैसी उद्यमियों ने स्त्री-आत्मनिर्भरता को नवीन आयाम दिया है।

निष्कर्ष- मानव सभ्यता के उष:काल में **"संगच्छध्वं संवदध्वम्"**[1] की ऋग्वैदिक संकल्पना की गई किन्तु आज भी सम्पूर्ण स्त्री समाज समान अधिकार एवं सम्मान से वंचित हैं और उन्हें अपने अस्तित्व और अभिज्ञान के लिए भी संघर्ष करना पड़ रहा है। पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था में जहाँ प्रत्येक क्षेत्र में पुरुषों का वर्चस्व है, वहां स्त्री अबला रूप में पराश्रित जीवन व्यतीत करने के लिए विवश है। स्त्री की मन:स्थिति और वस्तुस्थिति को समझते हुए उनकी दशा एवं दिशा में सकारात्मक सतत सुधार करने के लिए स्त्री-विमर्श एक महत्त्वपूर्ण दृष्टि है। स्त्री विमर्श एक चेतना और जागृति है जिसमें परम्परा और आधुनिकता दोनों के मध्य सामञ्जस्य

[1] ऋग्वेद- 10.191.1

स्थापित करते हुए एक न्यायपूर्ण व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयत्न किया जाता है। प्रसिद्ध महिला लेखिका निर्मला पुतुल के शब्दों में स्त्री-विमर्श को रेखाङ्कित किया जा सकता है-

"मैं चाहती हूँ आँख रहते अन्धे आदमी की आँखें बने मेरे शब्द।
उनकी जुबान बने जो जुबान रहते गूँगे बने देख रहे हैं तमाशा।
चाहती हूँ मैं नगाड़े की तरह बजें मेरे शब्द
और निकल पड़ें लोग अपने-अपने घरों से सड़कों पर"।[1]

आज वैदिक वैचारिकी में प्रदत्त स्त्री-चिन्तन को आत्मसात करने की आवश्यकता है। वैदिक ऋषिकाओं के स्वर आधुनिक स्त्रियों में आत्मबल एवं आत्म-स्वाभिमान का सञ्चार करने में सहायक हैं। ऋग्वैदिक ऋषिका के इन उद्घोषों- **"अहं केतुरहं मूर्धाऽहमुग्रा विवाचनी"**।[2] (अर्थात् मैं ध्वज हूँ , मैं मस्तक के समान मुख्य हूँ।) के अनुशीलन से वर्तमान स्त्रियों में प्राणशक्ति एवं दृढ़ मनोबल को प्रेरित किया जा सकता है। अस्तु, वैदिक युग में स्त्रियों के लिए जिस प्रकार की समतामूलक और न्यायपूर्ण सामाजिक व्यवस्था की स्थापना की गयी थी, वह सामाजिक संकल्पना वर्तमान स्त्री-विमर्श को सम्यक दिशानिर्देश करने की दृष्टि से अत्यंत प्रासङ्गिक एवं उपादेय है।

---

[1] नगाड़े की तरह बजते हैं शब्द- निर्मला पुतुल, भारतीय ज्ञानपीठ, नयी दिल्ली, 2012

[2] ऋग्वेद- 10.159.2

संस्कृत साहित्य के संवर्धन में वैदिक एवं आधुनिक काल की विदुषियों का योगदान

डॉ. मधु
सह आचार्या, संस्कृत विभाग
एस.आर.डी.ए कन्या महाविद्यालय, हाथरस

संस्कृत साहित्य की परंपरा पांच हज़ार वर्षो से अधिक प्राचीन है। शास्त्र और कविता की विभिन्न विधाओं मे यह साहित्य सम्पन्न तथा अनुपम है। ऋग्वेद तथा अन्य वैदिक ग्रंथों में कतिपय विदुषियों का ऋषि के रूप में उल्लेख है। विदुषियों के ऋषि होने का अर्थ है कि वह मंत्रों का साक्षात्कार कर लेती है।

मंत्रों का साक्षात्कार कर लेना या काव्य रच लेना वैदिक काल में ऐसा कर्म है जो स्वाधीनता की परम स्तिथि को प्रकट करता है। जो विदुषी ऋषि के रूप में मंत्रद्रष्टा हो जाती है, वेद उसके लिए जन्म जात अधिकार बन जाता है। कौशीतकी ब्राह्मण में बताया गया है, कि वेद में पारंगत विदुषियों को पाठ्यस्वस्ति वाक की उपाधि से सम्मानित किया था।

वेदों की ऋचाओं को गढ़ने तथा आधुनिक साहित्य में संस्कृत को पहचान दिलाने में बहुत सी विदुषियों का योगदान रहा है। उनमें से कुछ विदुषियों का वर्णन प्रस्तुत शोध पत्र में किया जा रहा है।

ब्रह्मवादिनी ऋषि गार्गी, मैत्रेयी, लोपामुद्रा पंडिता क्षमाराव, गंगादेवी, शीला भट्टारिका, देवकुमारिका आदि प्रमुख हैं। भारतीय इतिहास में ऐसी अनेको महान विदुषियां हुई है, जिन्होंने अपनी बुद्धिमत्ता, ज्ञान-विज्ञान में निष्णात होकर प्रत्येक क्षेत्र में पुरुष की बराबरी कर अपने धर्म का पालन किया।

1- गार्गी-

प्राचीन काल में गर्गवंश में वचक्नु नामक ऋषि थे, जिनकी एक पुत्री थी वाचकानवी गार्गी। ब्रह्दारण्यक उपनिषद् में वर्णित याज्ञवल्कय तथा गार्गी का शास्त्रार्थ विश्वविदित है।

एक बार महाराज जनक ने श्रेष्ठ ब्रह्मज्ञानी की परीक्षा लेने के लिए एक सभा का आयोजन किया। जिसमें ऋषि याज्ञवल्कय ने विदुषी गार्गी से स्वयं प्रश्न पूछने की अनुमति प्रदान की तब विदुषी गार्गी ने ऋषि याज्ञवल्कय से बड़ा सरल सा प्रश्न पूछ लिया कि- हे ऋषिवर! जल में हर पदार्थ बड़ी सरलता से घुलमिल जाता परंतु मेरा आपसे प्रश्न है कि यह जल किसमे जाकर मिलता है। ऋषि याज्ञवल्क्य ने गार्गी के इस प्रश्न का बड़ा ही तार्किक तथा वैज्ञानिक उत्तर दिया कि जल अंततः वायु में ओत प्रोत हो जाता है।

गार्गी ने पुनः प्रश्न किया- "स्वर्गलोक से ऊपर जो कुछ भी है और पृथ्वी से नीचे जो कुछ भी है और इन दोनों के मध्य जो कुछ भी है, और जो हो चुका है और जो अभी होना है, ये दोनों किसमे ओतप्रोत है? आधुनिक भाषा में यदि गार्गी के इस प्रश्न रुपांतरण किया जाए गार्गी ने ऋषि याज्ञवल्क्य से सीधे-सीधे अंतरिक्ष और समय के बारे में प्रश्न किया था।

गार्गी के प्रश्नों का अभिप्राय था सारा ब्रह्मांड किसकी सत्ता के अधीन है अर्थात किसके शासन या अनुशासन में यह सारा ब्रह्मांड कार्य कर रहा है या गतिशील है। गार्गी के तीखी धारवाले इन प्रश्नों पर अपना ध्यान केन्द्रित कर ऋषि याजवल्क्य ने बड़े प्रेम से उत्तर देते हुए कहा- "यतस्य वा अक्षरस्य प्रशासने गार्गी। अर्थात् हे गार्गी! यह सारा ब्रह्माण्ड एक अक्षर अविनाशी तत्व के शासन प्रशासन और अनुशासन में गतिशील है। परम ऋषियों की सभा में इतने उत्कृष्ट विषय पर आयोजित शास्त्रार्थ में ब्रह्मज्ञानी याज्ञवल्क्य जैसे ऋषियों से प्रश्न पूछने का साहस करने वाली गार्गी आज भी नारियों के लिए आदर्श प्रस्तुत कर रही है। गार्गी जैसी महान विदुषी नारियों का होना हम सब लिए गर्व की बात है।

2. **ब्रह्मवादिनी ऋषि मैत्रेयी-**

मैत्रेयी ने तत्त्व मीमांसा का काफी अध्ययन दिया था इसलिए मैत्रेयी को धर्म और शिक्षा दोनो क्षेत्रों में काफी प्रसिद्धि प्राप्त थी। मैत्रेयी मित्र ऋषि की कन्या तथा महर्षि याज्ञवल्क्य की दूसरी पत्नी थी। महर्षि याज्ञवल्क्य की पहली पत्नी कात्यायनी थीं, वे भारद्वाज ऋषि की पुत्री थी।

एक दिन याज्ञवल्कय ने गृहस्थ आश्रम छोड़कर वानप्रस्थ जाने का फैसला किया ऐसे में उन्होंने दोनो पत्नियों के सामने अपनी संपत्ति को बराबर हिस्सों मे बांटने का प्रस्ताव रखा। कात्यायनी ने पति का प्रस्ताव स्वीकार कर लिया। लेकिन बेहद शांत स्वभाव की मैत्रेयी को अध्ययन, शास्त्रार्थ तथा चिंतन आदि में काफी रुचि थी। वे जानती थी कि संपत्ति आदि से आत्मज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए उन्होंने पति के प्रस्ताव को ठुकराते हुए कहा कि मैं भी आपके साथ वन मे जाऊंगी तथा ज्ञान व अमरत्व की खोज करूंगी। वृहदारण्यकोपनिषद् में मैत्रेयि का अपने पति याज्ञवल्क्य के साथ रोचक संवाद उल्लेखनीय है

3- **दार्शनिक लोपामुद्रा-**

लोपामुद्रा महर्षि अगस्त्य की पत्नी होने के साथ ही उस वैदिक युग की एक महान दार्शनिक महिला थीं। इनके बारे में जाना जाता है कि ऋग्वेद काल 1950 ई.पू.1100 ई.पू. की महिला दार्शनिक थी। ऋग्वेद में उनके योगदान के रूप में कई भजनों का समावेश है। उन्होंने हिन्दू धर्म की श्री कुल शाक्त परम्परा के "हादी पंचदशी मंत्र की कल्पना की थी। वह प्रमुख ब्रह्मवादिनी में से एक थीं।

आधुनिक विदुषियों तथा कवियित्रियों का वर्णन निम्नवत है-

1- **सर्वशुक्ला सरस्वती विजयाना** की लौकिक संस्कृत में भूमिका सराहनीय रही है। उनके पदों की सौष्ठता देखते ही बनती है। नील कमल की पंखुड्डियों की तरह विजयाना अपनी रचना से अद्भुत लेखन कला का परिचय देती है।

2- पण्डिता क्षमाराव आधुनिक युग की लेखिकाओं में सुविख्यात है। उन्होंने संस्कृत साहित्य में नूतन विधाओं तथा विषय वस्तु का अवतरण किया। गांधी जी के सत्याग्रह से प्रभावित होकर उन्होंने "सत्याग्रहगीता" नामक अपने सर्वप्रसिद्ध महाकाव्य की रचना की जो 1932 में पेरिस से प्रकाशित हुआ। इसको तीन भागों में विभक्त किया गया है। 1-सत्याग्रह गीता, 2-उत्तर सत्याग्रह गीता, 3-गांधी चरित। सत्याग्रह गीता में कुल 18 अध्याय तथा 659 श्लोक हैं। इनकी कथा पंचकम(1933), ग्राम ज्योति(1954) तथा कथा मुक्तावली(1956) तीन गद्य रचनाएं है। मीरा लहरी नाम की एक मुक्तक रचना भी इन्ही की देन है।

इन्होंने 7 एकांकी नाटक, 4 तीन अंकों वाले नाटक, 4 पद्यमय जीवन चरित, 35 लघु कथाएँ, विविध निबन्ध ग्रन्थ हैं। इन्होंने श्री तुकारामचरित - 9 सर्ग, 435 पद्य श्री रामदासचरित (13 सर्ग) 674 पद्य श्री ज्ञानेश्वरचरित (8 सर्ग) स्वराजविजयः (54 अध्याय, 1740 पद्य) आदि महाकाव्यों की रचना की है।

अपने पिता की जीवनी लेखन "शंकरजीवानाख्यानम" काव्य से पण्डिता क्षमा ने संस्कृत साहित्य में नई विधा का सूत्रपात किया। उसके प्रस्ताव में श्रीनृसिंह केलकर ने मार्मिक टिप्पणी करते हुए कहा कथं हि न करिष्यन्ति कन्याभ्यः पितरः स्पृहाम्। ऋणम् तत् पैतृकम् पुण्यमपाकुरतदीहताः।। पिता पुत्रियों की स्पृहा क्यों नहीं करेंगे, क्योंकि वे भी पुण्य पितृ ऋण को उतारने में पूर्ण रूप से समर्थ होती हैं। पण्डिता क्षमा गार्गी एवं मैत्रेयी की परंपरा को आगे बढाने वाली संस्कृत कवयित्री हैं। उन्होंने कथाओं को भी पद्य में लिखा। चरित काव्य के अंतर्गत क्षमा ने तुकारामचरित, रामदासचरित तथा ज्ञानेश्वर चरित का ग्रथन किया। संस्कृत साहित्य के सशक्त हस्ताक्षर आचार्य प्रो राधावल्लभ त्रिपाठी ने इनके योगदान को रेखांकित करते हुए कहा- दलित विमर्श, स्त्रीविमर्श तथा स्वराज विमर्श- इन तीन स्तरों पर क्षमा राव का आधुनिक साहित्य को

प्रदेय अभूतपूर्व है। पण्डिता समाराव आधुनिक युग की लेखिकाओं में सुविख्यात है।

3. - **चालुक्य वंश की महारानी विजअट्टारिका** भी लौकिक संस्कृत साहित्य का एक जाना माना नाम है। दक्षिण भारत की भारतीय महिलाओं ने लगभग 150 (एक सौ पचास) काव्यों रचना की, जिनमें गंगा देवी, शीला भट्टारिका, तिरुम लाम्बा, देवकुमारिका आदि प्रमुख है। उक्त सभी काव्य रचनायें पद्य शैली में हैं। वर्तमान काल में लेखनरत विदुषी कवियित्रियों में मिथलेश कुमारी, बनगाला भवालवर, पुष्पा दीक्षित इत्यादि प्रतिदिन संस्कृत साहित्य के संवर्धन मे निरन्तर अपना योगदान दे रही हैं। सरस्वती विनयावास विजयान की लौकिक संस्कृत में भूमिका साक्षी रही है।

विदुषियों के योगदान का मूल्यांकन वैदिक संस्कृत साहित्य में करना हो या आधुनिक संस्कृत साहित्य में वह किसी भी साहित्य में पीछे नहीं है। नारियों में बढ़ती चेतना और जागरुकता ने उनकी काव्य प्रतिभा को और अधिक पल्लवित किया है।

वैदिक से आधुनिक युग तक ऋषिकाओं, कवियित्री, लेखिकाओं ने संस्कृत साहित्य के संवर्धन में अतुलनीय योगदान दिया है। संस्कृत विदुषियों की सुदीर्घ परम्परा रही है। विदुषियों ने संस्कृत साहित्य का जिस तेजी से विस्तार किया है वह नारी अभिव्यक्ति की सामर्थ्य का प्रतीक है। उनका योगदान संस्कृत साहित्य इतिहास में अमर है।

संदर्भ-ग्रंथ-सूची-

1. प्राचीन भारत में नारी- डॉ. उर्मिला प्रकाश मिश्र, मध्य प्रदेश हिंदी ग्रंथ अकादमी, प्रथम संस्करण 1987 भोपाल।
2. वैदिक कालीन समाज- डॉ. शिवदत्त ज्ञानी, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी।

3. प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी- डॉ. गजानन्द शर्मा, रचना प्रकाशन इलाहाबाद।
4. वेदों में नारी- डॉ. कपिलदेव द्विवेदी आचार्य एवं डॉ. भारतेंदु द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद् कानपुर।
5. वूमेन इन दी सीक्रेट लॉज- शकुंतला राव।
6. पोजिशन ऑफ वूमेन इन हिंदु सिविलाइजेशन- डॉ. एस.एस. अल्तेकर वनारस हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी 1938।
7. https://www.setumag.com
8. https://shodhgangotri.inflibnet.ac.in
9. https://samskaleenjanmat.in
10. https://www.rajmer.com

महाकाव्यों में नारी की दिव्यता

मेघना हर्षवर्धन भट्ट
संस्कृत शिक्षिका, अमरावती

भारतीय महाकाव्य साहित्य नारी के विविध स्वरूपों को उजागर करता है। संस्कृत साहित्य में महाकाव्य परंपरा अत्यंत समृद्ध रही है। कुल मिलाकर संस्कृत में दो प्रमुख महाकाव्य- रामायण (वाल्मीकि) और महाभारत (व्यास) माने जाते हैं। इन ग्रंथों में नारी को शक्ति, त्याग, करुणा, प्रेम और नीति की मूर्ति के रूप में चित्रित किया गया है। नारी केवल कथा की सहायक पात्र नहीं, बल्कि वह समाज को दिशा देने वाली आदर्श व्यक्तित्व भी हैं।

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।

(मनुस्मृति 3.56)

अर्थात् जहाँ नारी का सम्मान होता है, वहाँ देवता निवास करते हैं।

महाकाव्यों में नारी की भूमिका-

प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी शक्ति और विद्या की प्रतीक रही हैं। उनकी दिव्यता केवल सौंदर्य में नहीं, बल्कि उनकी बुद्धिमत्ता, धैर्य, नीति और बलिदान में निहित है। इन ग्रंथों में वर्णित नारी पात्र समाज के नैतिक मूल्यों को परिभाषित करते हैं और मानवीय संवेदनाओं को गहराई से दर्शाते हैं।

- **नारी की दिव्यता के उदाहरण**

रामायण की प्रेरणादायक नारियां-

1. **माता अनुसूया-** अपने सतीत्व और तपस्या से उन्होंने सीता को नारी धर्म और त्याग का पाठ पढ़ाया। वाल्मीकि रामायण के अरण्यकांड में एक अत्यंत मार्मिक प्रसंग आता है, जिसमें माता अनुसूया सीता को पतिव्रता धर्म की महिमा समझाती हैं। यह संवाद केवल एक वृद्ध

तपस्विनी के उपदेश का नहीं, बल्कि दो महान नारियों के बीच ज्ञान, स्नेह और आदर्शों का आदान-प्रदान है।

संस्कृत श्लोक:

साध्वी वा यदि वा क्रूरा पतिं याऽनुवर्तते।
सा लोके पूज्यते नित्यं तस्याः स्वर्गे परं पदम्॥

(वाल्मीकि रामायण, अरण्यकांड 117.10)

भावार्थ:

चाहे स्त्री कितनी भी कोमल या कठोर स्वभाव की हो, यदि वह अपने पति के प्रति निष्ठावान रहती है, तो वह संसार में सदैव पूजनीय होती है और स्वर्ग में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त करती है।

संक्षिप्त कथा:

जब राम, लक्ष्मण और सीता महर्षि अत्रि के आश्रम पहुँचे, तब माता अनुसूया ने बड़े प्रेम से सीता का स्वागत किया। उन्होंने सीता के तपस्विनी रूप को देखकर कहा-

"हे वधू! तुम्हारा सौंदर्य केवल बाह्य रूप में नहीं, बल्कि तुम्हारे सतीत्व और पतिव्रता धर्म में भी प्रकट होता है। नारी का सच्चा तेज त्याग, सेवा और धर्मपरायणता में ही निहित होता है"।

सीता, जो स्वयं जगत जननी थीं, सब कुछ जानने के बावजूद, अत्यंत विनम्रता से माता अनुसूया के उपदेशों को सुन रही थीं। उन्होंने न केवल श्रद्धापूर्वक उनका सम्मान किया, बल्कि एक सच्चे शिष्य की भाँति उनकी हर सीख को मन, वचन और कर्म से स्वीकार किया।

सीता ने कहा-

"माता! मैं आपके वचनों को आदरपूर्वक सुन रही हूँ। यद्यपि मुझे अपने स्वामी श्रीराम की सेवा करने का सौभाग्य प्राप्त है, फिर भी आपके मुख से यह धर्मज्ञान सुनकर मेरा हृदय और अधिक प्रफुल्लित हो गया है। नारी के लिए उसका पति ही परम देवता है, और यही धर्म मैं अपने अंतःकरण से स्वीकार करती हूँ"।

सीता की इस विनम्रता और श्रद्धा को देखकर माता अनुसूया अत्यंत प्रसन्न हुईं। उन्होंने अपने तपोबल से सीता को दिव्य आभूषण, उत्तम वस्त्र और सुगंधित लेप प्रदान किए।

नारी से नारी का मार्गदर्शन-

यह प्रसंग केवल एक उपदेश भर नहीं है, बल्कि यह सिद्ध करता है कि सच्ची नारी वह है, जो अन्य नारी को धर्म, कर्तव्य और सतीत्व का सही मार्ग दिखाए। माता अनुसूया, जो स्वयं तपस्या और सतीत्व की जीवंत प्रतिमा थीं, ने सीता को नारी धर्म की गूढ़ता समझाई। वहीं, सीता ने भी यह सिद्ध किया कि एक सच्ची नारी की महानता केवल ज्ञान देने में नहीं, बल्कि ज्ञान को विनम्रता पूर्वक ग्रहण करने में भी होती है।

जिस प्रकार नारी शक्ति और त्याग का प्रतीक होती है, उसी प्रकार उसकी सहनशीलता, श्रद्धा और विनम्रता उसे और भी दिव्यता प्रदान करती है। अनुसूया ने सिखाया और सीता ने पूरे आदर और समर्पण के साथ सीखा- यही इस प्रसंग की सबसे गूढ़ शिक्षा है।

2. **शबरी-** भक्तिभाव और श्रद्धा की मूर्ति, जिन्होंने वर्षों तक राम की प्रतीक्षा की और प्रेम से जूठे बेर अर्पित कर सच्ची भक्ति का उदाहरण प्रस्तुत किया।

3. **उर्मिला-** लक्ष्मण की पत्नी, जिनका त्याग और सहनशीलता अद्वितीय है। उन्होंने स्वयं को तपस्विनी बना लिया और अपने पति के धर्म का पालन किया।

उर्मिला का त्याग और प्रेरणा-

रामायण में उर्मिला का चरित्र अत्यंत मार्मिक और प्रेरणादायक है। जब लक्ष्मण अपने भाई राम और भाभी सीता के साथ वनवास के लिए जाने को तैयार होते हैं, तब उर्मिला अपने पति को रोकने के बजाय उन्हें धर्म के मार्ग पर दृढ़ रहने की प्रेरणा देती हैं। यह प्रसंग यह दर्शाता है कि नारी केवल पति की सहधर्मिणी ही नहीं, बल्कि उसकी पथप्रदर्शक और संबल भी हो सकती है।

संस्कृत श्लोक:

स्वधर्मे सत्यसंधस्य पत्न्याः श्रेयो वदाम्यहम्।
यः स्वधर्मे स्थितो नित्यं स गच्छत्युत्तमां गतिम्॥

भावार्थ:

"मैं अपने पति का कल्याण चाहती हूँ और इसलिए मैं यही कहती हूँ कि अपने धर्म पर अडिग रहने वाला व्यक्ति ही उच्च गति को प्राप्त करता है"।

संक्षिप्त संवाद:

लक्ष्मण उर्मिला के पास जाते हैं और कहते हैं-

"देवी! मैं अपने भ्राता श्रीराम की सेवा हेतु वन जा रहा हूँ। तुम्हें यहाँ महल में अकेले छोड़कर जाना मेरे लिए कठिन है, परंतु मैं अपने धर्म से विमुख नहीं हो सकता। उर्मिला, जिनका हृदय प्रेम से भरा था, लेकिन जिनका संकल्प पर्वत की भाँति अडिग था, उन्होंने धैर्य पूर्वक कहा-

"नाथ! यदि आप आज मेरे स्नेह और मोह के कारण अपने कर्तव्य से विमुख हो गए, तो मैं स्वयं को कभी क्षमा नहीं कर पाऊँगी। मेरे लिए यह अधिक आवश्यक है कि आप अपने स्वधर्म का पालन करें। मैं आपको रोकूंगी नहीं, बल्कि आपको और अधिक दृढ़ करूँगी, ताकि आप बिना किसी मोह के अपने कर्तव्य का निर्वहन कर सकें।" लक्ष्मण, जो पहले उर्मिला को छोड़कर जाने में संकोच कर रहे थे, उनकी इन वाणी को सुनकर भावविभोर हो उठे। उन्होंने कहा- "देवि! तुम सचमुच एक महान पतिव्रता और आदर्श नारी हो। तुम्हारा यह त्याग और साहस मुझे और भी बल प्रदान करेगा।"

उर्मिला के इस संवाद में यह स्पष्ट होता है कि नारी केवल करुणा और प्रेम का प्रतीक नहीं, बल्कि शक्ति, धैर्य और मार्गदर्शन का भी स्रोत होती है। जब लक्ष्मण धर्मसंकट में थे, तब उर्मिला ने अपने पति को सही राह पर चलने की प्रेरणा दी।

रामायण में उर्मिला का त्याग अद्वितीय है। उन्होंने चौदह वर्षों तक अपने पति के वियोग में रहकर भी न केवल धैर्य बनाए रखा, बल्कि मानसिक तपस्या करते हुए लक्ष्मण को उनके धर्म से डिगने नहीं दिया। यह प्रसंग यह सिद्ध करता है कि एक सच्ची नारी अपने पति का संबल ही नहीं, बल्कि उसकी धर्मगुरु भी हो सकती है।

4. **कैकयी-** जिन्हें अक्सर नकारात्मक दृष्टि से देखा जाता है, लेकिन उनका चरित्र नारी की राजनीतिक बुद्धिमत्ता और संकल्प को दर्शाता है।

5. **कौसल्या और सुमित्रा-** मातृत्व और धर्मपरायणता का प्रतीक, जिन्होंने अपने पुत्रों को महान जीवन मूल्यों का पाठ पढ़ाया।

6. **तारा-** वानरराज बाली की पत्नी, जिन्होंने युद्ध के पश्चात् सुग्रीव को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी और राज्य को स्थिरता प्रदान की। जब राम के बाणों से बाली का वध हुआ, तब तारा अत्यंत शोकाकुल हो उठीं। लेकिन उन्होंने शीघ्र ही अपने मनोबल को संभाला और सुग्रीव को सही मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उन्होंने न केवल सुग्रीव को राज्यभार सँभालने के लिए प्रेरित किया, बल्कि उन्हें मर्यादा और न्याय का पालन करने की भी सीख दी। तारा का यह प्रसंग यह दर्शाता है कि एक नारी केवल स्नेह और करुणा का ही प्रतीक नहीं, बल्कि धैर्य, नीति और मार्गदर्शन की शक्ति भी रखती है।

संस्कृत श्लोक (वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा कांड 24.8-9)

"शरीरस्य गुणानां च नित्यं संयोग-वियोगयोः।
अवश्यं यानि दुःखानि तानि सोढव्यतानघ॥"

भावार्थ:

"हे निष्पाप (सुग्रीव)! शरीर और गुणों का संयोग और वियोग सदा होता रहता है। इसलिए जो दुःख अनिवार्य हैं, उन्हें सहन करना ही चाहिए।"

सुग्रीव: (शोक में डूबे हुए)-

"हे देवी तारा! मैं अपने भ्राता बाली के बिना स्वयं को असहाय अनुभव कर रहा हूँ। मुझे समझ नहीं आ रहा कि मैं इस राज्य का भार कैसे संभालूँ।"

तारा: (धैर्यपूर्वक सुग्रीव को समझाते हुए)-

"हे नाथ! धैर्य धारण करें। यह संसार नित्य परिवर्तनशील है। जो आया है, वह अवश्य जाएगा। बाली की मृत्यु एक नियति थी, जिसे आप रोक नहीं सकते थे। अब आपका कर्तव्य अपने राज्य और प्रजा की रक्षा करना है।"

सुग्रीव: (संकोच में)-

"परंतु मैं अपने भ्राता के बिना राज्य का संचालन कैसे कर सकता हूँ? क्या प्रजा मुझे स्वीकार करेगी?"

तारा: (नीति और धर्म की सीख देते हुए)-

"राजा वही होता है, जो अपने सुख-दुःख से ऊपर उठकर प्रजा के कल्याण के लिए कार्य करे। यदि आप शोक में डूबे रहेंगे, तो राज्य अस्थिर हो जाएगा। प्रजा को सुरक्षा और स्थिरता चाहिए। इसलिए, हे सुग्रीव! अपनी दुर्बलता त्यागें और धर्मपूर्वक शासन करें।"

संस्कृत श्लोक (वाल्मीकि रामायण, किष्किंधा कांड 24.12)

"धर्मेण राज्यमादाय स्वधर्मं प्रतिपद्यताम्।
स च धर्मः परो लोके पुण्यश्चैव सनातनः॥"

भावार्थ:

"राज्य को धर्मपूर्वक प्राप्त करके, स्वधर्म का पालन करें। यही संसार में परम धर्म है और यही सनातन पुण्य है।"

तारा की शिक्षा का प्रभाव

तारा के इस प्रेरणादायक संवाद के बाद सुग्रीव ने अपनी शोकग्रस्त अवस्था से बाहर आकर राज्य का भार संभाला और श्रीराम की सहायता कर राक्षसों का नाश करने में योगदान दिया।

इस प्रसंग से यह स्पष्ट होता है कि तारा केवल एक पतिव्रता नारी ही नहीं, बल्कि बुद्धिमान और दूरदर्शी नीतिज्ञ भी थीं। उन्होंने संकट के समय अपने पति को सही मार्ग दिखाया और राज्य में स्थिरता लाई। यही एक सशक्त नारी का स्वरूप है, जो संकट के समय अपने विवेक से स्थितियों को संभालती है।

7. **मंदोदरी-** रावण की पत्नी, जिन्होंने सदैव धर्म की बात की और रावण को उचित मार्गदर्शन देने का प्रयास किया। उनका चरित्र नारी की विवेकशीलता और नीति को दर्शाता है।

महाभारत की प्रेरणास्रोत नारियां-

1. **सुभद्रा-** अर्जुन की पत्नी और अभिमन्यु की माता, जिन्होंने अपने पुत्र को महायोद्धा बनने की शिक्षा दी।

2. **हिडिंबा-** भीम की पत्नी, जिन्होंने अकेले अपने पुत्र घटोत्कच को पालकर महान योद्धा बनाया। उनका चरित्र मातृशक्ति और संघर्ष का प्रतीक है।

3. **रुक्मिणी-** भगवान कृष्ण की पत्नी, जिन्होंने अपने विवेक और आत्मबल से स्वयं को एक सशक्त नारी के रूप में स्थापित किया।

4. **सत्यभामा-** कृष्ण की एक अन्य पत्नी, जिन्होंने नारी के स्वाभिमान और अधिकारों की रक्षा के लिए संघर्ष किया।

5. **उलूपी-** अर्जुन की नागकन्या पत्नी, जिन्होंने अर्जुन को पुनः शक्ति प्रदान की और अपने पुत्र इरावान को धर्मपथ पर अग्रसर किया।

6. **द्रौपदी-** साहस और स्वाभिमान की प्रतीक, जिन्होंने अन्याय के विरुद्ध संघर्ष किया और अपने अधिकारों की रक्षा की।

7. **गांधारी-** जिन्होंने सत्य और धर्म के लिए अपनी आँखों पर पट्टी बांधकर जीवनभर आत्मसंयम का पालन किया।

नारी तु नारायणस्य अर्धांगिनी स्मृता।

(महाभारत, वनपर्व 294.14)

अर्थात् नारी नारायण की अर्धांगिनी मानी गई हैं, अर्थात् पुरुष के जीवन में नारी का उतना ही महत्व है जितना स्वयं पुरुष का।

8. **दमयंती-** बुद्धिमत्ता और स्वाधीनता का प्रतीक

(नैषधीयचरितम्- श्रीहर्षकृत महाकाव्य से)

दमयंती की कथा महाभारत और श्रीहर्षकृत नैषधीयचरितम् में विस्तृत रूप से वर्णित है। वह केवल सुंदरता की मूर्ति नहीं, बल्कि बुद्धिमत्ता, धैर्य और स्वाधीनता की सजीव प्रतिमा भी हैं। उन्होंने अपने विवेक, साहस और दृढ़ निश्चय से कठिन परिस्थितियों का सामना किया और स्वयं अपने जीवनसाथी का चयन कर यह सिद्ध कर दिया कि नारी केवल पुरुष की छाया नहीं, बल्कि स्वयं एक स्वतंत्र और विचारशील व्यक्तित्व रखती है।

दमयंती ने अपने स्वयंवर में किसी भी प्रकार के राजकीय दबाव को स्वीकार नहीं किया, बल्कि अपने हृदय की प्रेरणा से नल को अपना पति चुना। किंतु, स्वयंवर के समय एक कठिन परिस्थिति उत्पन्न हुई। इंद्र, वरुण, अग्नि और यम- इन देवताओं ने भी नल को देखकर उसकी वीरता और गुणों से प्रभावित होकर दमयंती से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने एक योजना बनाई और स्वयं नल के समान ही रूप धारण कर स्वयंवर में उपस्थित हो गए।

अब दमयंती के सामने एक कठिन समस्या थी- वे पांचों एक समान दिख रहे थे, परंतु केवल एक ही नल था। दमयंती ने अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय देते हुए देवताओं और नल में भेद कर लिया।

संस्कृत श्लोक (नैषधीयचरितम्, सर्ग 14)

"अमर्त्यलक्षणैरुक्तैः सानुक्रोशैश्च तैः सह।
संदेहमपि धैर्येण सा जहौ नलदर्शिनी॥"

भावार्थ:

"दमयंती ने अपनी धैर्य, विवेक और दिव्य लक्षणों को पहचानकर देवताओं और नल में अंतर कर लिया। उन्होंने अपने सच्चे प्रेम और बुद्धिमत्ता से नल का ही वरण किया।"

दमयंती ने अपने विवेक से यह पहचान लिया कि देवताओं के शरीर पर उनकी दिव्यता के चिह्न थे- उनकी आँखें बिना पलक झपकाए स्थिर थीं, उनके शरीर पर पसीना नहीं था और उनकी छायाएँ नहीं पड़ रही थीं। इसके विपरीत, नल एक साधारण मानव की भांति सांस ले रहे थे, उनकी छाया पड़ रही थी और पसीने की बूंदें भी थीं। इस प्रकार, उन्होंने स्वविवेक से नल का चयन कर यह प्रमाणित किया कि नारी केवल भावनाओं में बहने वाली नहीं होती, बल्कि वह अपनी बुद्धि और निर्णय शक्ति से स्वयं अपना मार्ग चुन सकती है।

नारी की दिव्यता के प्रमुख तत्त्व-

1. धैर्य और त्याग: उर्मिला, कुंती, हिडिंबा और गांधारी जैसी महिलाओं ने जीवनभर त्याग को अपनाया।

2. बुद्धिमत्ता और नीति: कैकयी और मंदोदरी ने अपने विवेक और निर्णय शक्ति से समाज को प्रभावित किया।

3. साहस और संघर्ष: द्रौपदी, सत्यभामा और उलूपी ने अन्याय के विरुद्ध संघर्ष कर नारी की शक्ति को सिद्ध किया।

4. कर्तव्यनिष्ठा और प्रेम: माता कौसल्या, सुमित्रा, तारा और रुक्मिणी का चरित्र मातृत्व और प्रेम की मिसाल है।

संस्कृत महाकाव्यों में नारी का स्थान अत्यंत महत्वपूर्ण रहा है। विभिन्न महाकाव्यों में नारी की भूमिका और उनकी दिव्यता को दर्शाया गया है। महाकाव्यों में रामायण, महाभारत, रघुवंशम्, कुमारसंभवम्, शिशुपालवधम्, किरातार्जुनीयम्, नैषधीयचरितम्, हर्षचरितम्, बुद्धचरितम् एवं गौड़वहो प्रमुख स्थान रखते हैं। इन महाकाव्यों में नारी पात्रों को केवल सहायक भूमिका में ही नहीं, बल्कि नायक के रूप में भी प्रस्तुत किया गया है।

जैसे-

1. **हर्षचरितम् (बाणभट्ट):**

राजमाता यशोमती: हर्षवर्धन की माता, जिन्होंने पुत्र का मार्गदर्शन किया।

2. **बुद्धचरितम् (अश्वघोष):**

यशोधरा: भगवान बुद्ध की पत्नी, जिन्होंने उनका साथ छोड़कर कठोर साधना को अपनाया।

3. **गौड़वहो (वाक्पति):**

राजमाता: जिन्होंने राजा यशोवर्मन को प्रेरणा दी।

महाकाव्यों में नारी केवल प्रेरणा नहीं, बल्कि मार्गदर्शक भी हैं। उनकी दिव्यता न केवल उनके सौंदर्य और प्रेम में बल्कि उनकी नीति, आत्मबल, धैर्य और संघर्षशीलता में निहित है। इन पात्रों से हमें यह शिक्षा मिलती है कि समाज में नारी को सम्मान और सशक्तिकरण का पूर्ण अधिकार मिलना चाहिए, ताकि वे अपनी शक्ति से समाज को एक नई दिशा प्रदान कर सकें।

अनया नारी या सा तु परमं तेजोमयी स्तुता।

(महाभारत, अनुशासनपर्व 47.14)

अर्थात् नारी परम तेजस्विनी मानी गई हैं, जो सृष्टि को नई दिशा प्रदान करती हैं।

उपनिषदों में वर्णित विदुषियों के संवाद बृहदारण्यकोपनिषदि मैत्रेयी संवादः

Dr.K.V.R.B. VARA LAKSHMI
HOD OF SANSKRIT
Sri Y.N. College, NARSAPUR, Andhra Pradesh

उपोद्घातः

वेदोखिलो धर्ममूलम् स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च॥

धर्ममूल भूते वेदे प्रख्यातं काण्डद्वयमस्ति। कर्मकाण्ड, ज्ञानकाण्डश्चेति। तत्र कर्मकाण्डे अभ्युदयसाधनानि ज्योतिष्टोमादीनि बहूनि विधेयकर्माणि कथितानि। ज्ञानकाण्डे तु निःश्रेयसनिदानभूताः अनेकेमार्गाः निर्दिष्टास्सन्ति।अनयोरेव कर्मज्ञानकाण्डयोः यथाक्रमं पूर्वकाण्डं, उत्तरकाण्डं चेति नामान्तरं विद्यते।

ज्ञानकाण्डस्य "उपनिषद्काण्ड"मित्यपि लोकव्यवहारः। उपनिषच्छन्दस्य अज्ञाननाशकः आत्मज्ञानप्रदायकश्च ग्रन्थ इत्यर्थः। तासामेव वेदान्ताः इति लोकव्यवहारः। वेदानामन्ते विद्यमानाः भागाः इति फलितार्थः।

धनं लौकिकसुखजीवनकारकं भवति। न मोक्षहेतुरिति याज्ञवल्क्यमुखात् श्रुत्वा मैत्रेयी मुक्तिसाधनोपायं अपृच्छत्। तस्याः वचनं श्रुत्वा सन्तुष्टमनस्सन् याज्ञवल्क्यः प्रियभाषिणीं मैत्रेयीं प्रति मोक्षसाधनकारणं ब्रह्मज्ञानं उपदिदेश। पति, पत्नी, सुतः, धनं, ब्राह्मणः, लोकः प्राणिनः इत्येते अन्येषु प्रीतिभावना प्रदर्शयन्ति। तत्कारणम् आत्मनस्तु प्रीतिरेव भवति। "आत्मं वा अरे द्रष्टव्यः, श्रोतव्यो, मन्तव्यो निधिध्यासितव्यः।[1] आत्मा एव

---

1. बृहदारण्यकोपनिषतद्- अ-४, ब्राह्मण-४, पृ.-२७

दर्शनीयः श्रोतव्यः, मन्तव्यः तथा ध्यानयोग्यं च भाति। धर्मस्वरूपं आत्मा एव भवति।[1] ब्राह्मणजाति, क्षत्रियजाति, देवतान् सकल भूतानि आत्मस्वरूपाणि एव भवति। एते सर्वे आत्मनि लयमेति। यः आत्मस्वरूपं जानाति सः आत्मैव भवति। प्रज्ञानस्वरूपादतिरिक्तं किमपि नास्ति स्वप्नजाग्रदवस्थाष्वपि प्रज्ञानमेव दीव्यति। प्रज्ञानस्वरूपमेव परब्रह्मस्वरूपम्। परब्रह्मरूपज्ञानेन सर्वं आत्मस्वरूपमिति सुस्पष्टं भवति।[2]

दण्डेन हन्यमानदुत्पन्नः भेर्यादिशब्दः बाह्यशब्दातिरिक्तः भवति। यथा शङ्खः पूर्यमाणो भवति तथा बाह्यशब्दाः न ज्ञायन्ते। केवलं शंख ध्वनिरेव श्रूयते। आत्मस्वरूपादतिरिक्तं किमपि नास्ति। सर्वं जगदिदं ब्रह्मस्वरूपमेव। वीणावादनेन बाह्यशब्दातिरिक्तं वीणाध्वरिरेव श्रूयते। ऋग्यजुस्सामाथर्ववेदाः, इतिहासपुराणविद्या उपनिषदश्लोकाः, सूत्राणि, व्याख्यानानि च सर्वाणि परब्रह्मणः, निश्वसितानि भवन्ति। एतत्सर्वं परब्रह्मस्वरूपमेव भाति।[3]

उपनिषच्छब्दनिर्वचनम्:-

उपनिषच्छब्दः आदौ वाङ्मये एवमुपलभ्यते। तैत्तरीयोपनिषदि शिक्षावल्याम् अथातः संहितायां उपनिषदं व्यख्यास्यामः एषा वेदोपनिषत्[4] इति। स्मृतिसूत्रकाव्यनाटकादिषु उपनिषच्छब्दः सहस्राशः प्रयोक्तो भवति। अत्र रहस्यं, तत्त्वं, सारः तात्पर्यम् इत्यादि बहुष्वर्थेषु यथाप्रकरणं स्वीक्रियते। अमरसिंहः "धर्मे रहस्योपनिषत् इति ब्रवीति। एवं सर्वे अर्थाः उपनिषीदन्ति अस्यामिति इति उपनिषत् इति व्याख्यातम्। एवं वाचस्पत्यकोशे

1. मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन, श्रवणेन मत्वा विज्ञाने नेदगं सर्वं विदितम्-अ-४-ब्रा-४-पृ.-२८
2. इमानि भूतानीदगुं सर्वं यदयमात्मा-अ-४-ब्रा-४, पृ.-२७९
3. एतानि सर्वाणि निश्वसितानि-अ-४-श्र-४, पृ.-२८०
4. शिक्षावल्ली-प्रथमोध्यायः-अनु-११-पृ.-८७

निरूपितम्। उपनिषद्- स्त्री- उपनिषदिति प्राप्नोति-ब्रह्मात्मभावः अनया-उप-नि-सद्- क्विप् ब्रह्मविद्यायां तत्प्रतिपादके वेदशिरोभागे वेदान्ते च।

सदे धातोः विशरणगत्यवसादनार्थस्य उपनिपूर्वकस्य क्विप् प्रत्ययान्तस्य रूपमिदमुपनिषदिति। अज्ञानविनाशिनी ब्रह्मात्मैक्यबोधिनी च विद्या मुख्यया वृत्या भवति।

उपनिषदः अलौकिकजीविततत्वप्रतिपादिकाः सन्ति। मानवानां दैनन्दिन जीवनोपयुक्तानि, आध्यात्मिकसाधनोपयुक्तानि च कर्माणि तासु अन्तर्निहितानि। अस्यां बृहदारण्यकोपनिषदि परामर्शः दृश्यते। उपनिषत्सु विद्यायाः चर्चा अस्ति। विद्याशब्दः विद् अथवा विद्लृ धातुना सिध्यति। जननमरणरूप संसरात् मुक्तिःआत्मज्ञानेनैव साध्या भवति। या विद्या अस्माकं आत्मानं सममानयति। सैव विद्या अध्यात्मविद्या इति कथ्यते। परन्तु उपनिषत्सु याविद्या उच्यते तासु विद्यायाः चर्चा अविद्यया सह कृता। अविद्यायाः भावः यत्र विद्यायाः अभावः नास्ति अपि तु विद्याभिन्नं विद्यासादृश्येन अस्ति इति कथयितुं शक्यते। अतः ईशावास्योपनिषदि विद्याविद्ये च ज्ञेये मन्येते- “अविद्यया मृत्युं तीत्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते।”[1] अष्टोत्तरशतासु उपनिषत्सु दशैव मुख्यतया परिगण्यन्ते।

ईशकेनकठप्रश्नमुण्डमाण्डूक्यतित्तिरिः।
ऐतरेयं च छान्दोग्यं बृहदारण्यमेव च॥

कूपवापीतटाकादिषु विद्यमान जलानां एकायनः समुद्रः, मृदु, कठिन, शीतोष्णादि स्पर्शानां त्वगेकायानम्, मधुराम्लादि रसानां जिह्वा एकायना, समस्त गन्धानां नासिकैकायन, सर्वेषां रूपाणां चक्षुरेकायन सर्वेषा शब्दानां श्रोत्रमेकायनं, सकलसंकल्पानां मन एकायनं, सर्वासां विद्यानां, हृदयमेकायन, सर्वेषां कर्माणां हस्तावेकायनं, सर्वेषां आनन्दानां उपस्था एकायन, विसर्जनीयानां पायुरेकायनं, सर्वेषां मार्गाणां पादावेकायनं, सर्वेषां वेदानां वा शगेकायनं भवति।

1. ईशावास्योपनिषतद्-मन्त्रः-११-पृ.-१६

एवं रीत्या सर्वेन्द्रियाणि सविषयैः मनसि लयं याति[1] मनः विज्ञानस्वरूपं भवति। नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।[2] इति गीताचार्येण कथितम्। अस्मि प्रपञ्चे ज्ञानसमं वस्तु अन् यत् नास्ति। याज्ञवल्क्यऋषेः मैत्रेयी कात्यायनी इति द्वे भार्या आस्ताम्। तासु मैत्रेयी ब्रह्मविद्या विषये चर्चासु भागं ग्रहीतुं समर्था अभवत्। एकदा याज्ञवल्क्यमहर्षिः स्वपत्न्यां एवं अवदत्, मैत्रेयी! "अहम् अस्मत् गृहस्थाश्रमं त्यक्त्वा उत्तमं सन्यासाश्रमं गन्तुम् इच्छामि। तदर्थं मम भवत्याः अनुमतिराश्यकी भवति। भर्तुः वचनं श्रुत्वा मैत्रेयी तम् अपृच्छत्, "स्वामी! यदि अहं जगति उपलब्धं सर्वं धनं प्राप्नोमि तर्हि अमृतत्वं (न मृत्युः) प्राप्स्यामि वा? किञ्चिदपि धनं न आवश्यक्म्। धनेन सह केवलं भोगाः एव आगच्छन्ति, न अमृतत्त्वम्।

तदा मैत्रेयी विनयेन अवदत्, स्वामी! मम किमर्थमिदं धनं यत् मम अमृतत्वं (मोक्षं) दातुं न शक्नोति? एतादृशेन धनेन मम किं प्रयोजनम्। नाथ! अहं पुण्यात्मा मोक्षस्य सम्यक्साधनं जानामि। तत् मा प्राठयन्तु। याज्ञवल्क्यः स्वपत्न्याः भावः श्रुत्वा अवदत्- "देवी! मम पूर्वं प्रियम् आसीत्। इदानीमपि त्वं मम प्रियवचनेन मम प्रियतरः अभवः। आगच्छतु अत्र उपविशतु। यदि इच्छसि तर्हि अहं ते अमृतत्वस्य (मोक्ष) प्राप्तेः मार्गं वक्ष्यामि। सम्यक् श्रृणुत ततः चिन्तयतु। सः एतत् वक्तुं आरब्धवान्। सहोवाचा न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियोभवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति।[3]

---

1. बृहदारण्यकोपनिषद् – अ-४, ब्राह्मण-४, पृ.-२३०
2. श्रीमद्भगवद्गीता-अ-४-श्लो-३८, पृ.-३७७
3. बृहदारण्यकोपनिषद्-अ-४-ब्रा-४-पृ.-२७८

न वा अरे जयाय कामया जय प्रिया भवतात्मनस्तु कामया जय प्रिय भवती, न वा अरे पुत्रणं कामाय पुत्रः प्रिया भवन्यात्मनस्तु कमाय पुत्रः प्रिय भवन्ति, नवा अरे वित्तस्य कामाय वित्तं प्रियं भवत्यत्मनस्तु कामाय वित्तं प्रियं

देवी! लोके भर्तुः सुखाय न कश्चित् भार्या तस्य प्रियः। आत्मप्रीतये एव तस्य प्रियम्। तथैव पतिः अपि स्वसुखार्थं स्वभार्यां प्रेम करोति। तथा च लोके केचन जनाः बालप्रियाः, केचन धनप्रियाः, ब्राह्मणक्षत्रियलोकदेवादिप्रेमिणः तथापि सः एतेषु विषयेषु प्रेम्णः पूर्णतया जनप्रेमात् न विकसयति, अपितु केवलं स्वस्य सुखाय, लाभाय च। अतः एतत् सर्वं आत्मनः कृते न अन्यत्। अत एव एषः आत्मा दृश्यः ज्ञेयः च प्रथमं सद्गुरुद्वारा शास्त्रेण वा ज्ञातव्यम्। तदनन्तरं तत् ध्यातव्यम्। ध्यानं कर्तव्यं हे मैत्रेयी। केवलं आत्मा एवं श्रोतुं, अनुभूय, ध्यातुं च शक्नोति। एतादृशं पवित्र आत्मदर्शनं श्रवणं स्मरणं ध्यानं च कृत्वा वास्तविकः आत्मा प्रकटितः भवति। सर्वं ज्ञायते।

यदि चतुर्णां वर्णानां प्रथमः ब्राह्मणवर्णः। यदि कश्चित् एतान् वर्णान् आत्मानः विच्छिन्नान् मन्यते तर्हि ब्राह्मणजातिः तान् परिहरति। पराजयः इत्यर्थः। तथैव क्षत्रियवर्णः आत्मानान्तरं मन्यमानं कञ्चित् पराजयति। यदि च कश्चित् देवान् आत्मानः विच्छिन्नान् मन्यते तर्हि देवाः एवम् मन्यन्ते तेषां चिन्ता न कुर्वन्ति। पञ्चभूताः अपि आत्मनस्वरूपाः सन्ति। यदि मन्यते तादृशानि वस्तूनि आत्मनः भिन्नानि तानि पञ्च शरीराणि उदासीनतया पश्यन्ति। अतोऽस्मिन्सृष्टौ आत्मानान्तरं किमपि नास्ति इति ज्ञेयम्। ब्राह्मणक्षत्रियवर्णाः सर्वे देवताः सर्वे लोकाः पञ्चभूताः च

भवती, न वा अरे ब्राह्मणः ब्राह्मणः प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय ब्रह्म प्रियं भवती, न वा अरे क्षत्र स्य कमाय क्षत्रं प्रियं भव त्यात्मनस्तु कामाय क्षत्र प्रियं भवती, न वा अरे लोकानं कामाय लोकः प्रिय भवण्यात्मनस्तु कामाय लोकः प्रिय भवन्ति, न वा अरे देवनं कामाय देवः प्रियं भवण्यात्मनस्तुया देवः प्रिय भवन्ति, न वा अरे भूतानं कामाय भूतानि प्रियनि भव न्यात्मनस्तु कमाय भूतानि प्रियनि भवन्ति, न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वम् प्रियं भवतात्मनस्तु कामाय सर्वम् प्रियं भवती, आत्मवा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेयात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मात्या विज्ञानने नेदगं् सर्वं विदिथम्।

सर्वात्मरूपाः। एवं यो आत्मनान्तरं न किञ्चिदस्तीति विज्ञाय तत्परमात्मतत्त्वं ज्ञात्वा आत्मानं स स्वयं सर्वं भवति। स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्यान्शब्दान् शक्नुयाद् ग्रहणाय।[1]

यदि विशाले भेरीवाद्ये यष्टिः प्रहृता भवति उत्पन्नाः विविधाः शब्दाः सामान्यध्वन्याद् भिन्नाः न भवन्ति। एवमेव प्रथमं चिदात्ममेव साक्षात्कृतं भवति। तदा एव तस्मिन् निर्मितः नाममात्रः जगत् दृश्यते। यथा यदा वयं महाप्रकाशं पश्यामः तदा तस्य तेजः प्रथमं चक्षुः प्रतीयते। तदा एव तस्य प्रकाशस्य वर्णं रूपं च द्रष्टुं शक्नुमः। एवमेव मानवः चिदात्मनि दर्शनानन्तर नाममात्रं जगत् द्रष्टुं शक्नोति। अनेन सम्बद्धम् अन्यत् उदाहरणं यत् यदि वयं शङ्खं पूरयामः तर्हि तस्मात् आगच्छन्तं बाह्यध्वनि ज्ञातुं न शक्नुमः। यतः शङ्खात् आगताः सर्वे विशेषाः शब्दाः तस्य शङ्खस्य सामान्यस्वरस्य संयोगाः भवन्ति। अतः प्रथमं सामान्यध्वनिविषये ज्ञातव्यम्।[2] स यथा वीणायै वाद्यमानायै बाह्यशब्दान् ग्रहणाय न शक्नुयाद् ग्रहणाय वीणायैतु ग्रहणेन वीणावादस्य वा शब्दो गृहिताः।[3] तथा वीणासुन्दरवादे वीणानिष्पन्न विशेषस्वरं वीणासाधारणस्वरविशिष्टं न कश्चित् प्रतीयते अत्र तस्याः वीणासामान्यध्वनयः प्रतीत्यैव तेन वीणाद्विशेषध्वनयः श्रोतुं शक्यन्ते।

यदि सुसिक्तं काष्ठखण्डं प्रज्वलितं भवति तर्हि अग्निः प्रथमं नानाविधं धूमं उत्सर्जयिष्यति तदनन्तरं स्फुलिङ्गाः आगच्छन्ति। ते सर्वे तस्मात् भिन्नाः सन्ति। अपि च परब्रह्म उच्छवासः, निश्वासः, ऋग्वेदः, यजुर्वेदः, सामवेदः, अथर्वणवेदः, इतिहासपुराणाः, चतुष्षष्ठी कलाः, उपनिषदाः, मन्त्राः, श्लोकाः, सूत्राः, टीकाः, सर्वे परमात्मना निर्गच्छन्ति।

---

1. बृहदारण्यकोपनिषद्-अ-४-ब्रा-४-पृ.-२७९
2 . अत्रैव
3 अत्रैव-पृ.-२८०

तादृशाः सर्वे निःसर्गा तस्मात् अभिन्नाः सन्ति। तदनुसारेण अस्मिन् सृष्टिः सर्वा परब्रह्मरूपामिति ज्ञेयम्।[1]

हे मैत्रेयी समुद्रः सर्वासां नदीनां सरोवराणां जलं समुद्रमेव गन्तन्यम्। "नदीनां सागरो गतिः इति श्रूयते। समुद्रं प्राप्तमात्रेण तेषां अस्तित्वं नष्टं भवति। तेन समुद्रेण सह अभेदं प्राप्नुवन्ति इत्यर्थः। तथा सर्वविधस्पर्शस्य गन्तव्यं त्वक्। तथा नासिका नानागन्धनिवासः जिह्वा च अपि च श्रोत्रं सर्वस्वरस्य गन्तव्यं भवति। सर्वविचाराणाम् अन्तिमस्थानं हृदयं सर्वरसगतिः तथा च मनः च सर्वविद्यायाः आसनम्। हस्ताः सर्वेषां कर्माणां गन्तव्यं भवन्ति। सर्वभोगानां गन्तव्यं जननेन्द्रियं (योनि) सर्वेषां विसर्जनानां पायु एकस्थानः। सर्वमार्गपादं सर्ववेदवाक्यं च। एवं सर्वविधवस्तूनाम् गन्तव्यभाव इति भाति एवं सर्वाणि इन्द्रियाणि तेषां सामग्रीसहिताः ब्रह्मविज्ञे विलीयेन न हस्तात् ग्रहणमेव भवन्ति। स यथा सैन्दवखिल्यं उदके प्राप्तं उदकमेवानुविलियेता, न हास्योद्ग्रहणामेव स्यात्।"[2]

यदि जले (समुद्रजलं) जातं लवणशिला पुनः जले स्थाप्यते तर्हि सा विलीयते। न कश्चित् लवणं तेन जलात् पृथक् कर्तुं शक्नोति। लवणं मिश्रितं जलं कुत्रापि आस्वादयसि तथापि तत् लवणयुक्तं एव भविष्यति। जले मिश्रितं सर्वं लवणजलं प्रसृतम् इत्यर्थः तथा हे मैत्रेयी! परब्रह्मा महापुरुषः अपारं ज्ञानं वर्तते। स इमं देहं इन्द्रियाणि तद्विषयाणि च भवतीत्यक्षरं भूत्वा तैः सह विनश्यति इति भासते इति अविद्याजन्यभावना। यदा यदा जीवः अज्ञानं नष्टं करोति तदा तदा तस्मिन् आत्मा परमात्मनः साक्षात्कारः इति भावः प्राप्नोति देवी! एवं परमात्मानं ज्ञात्वा मम, इदम्, तं,

---

1 अत्रैव- पृ.-२८०

2. अत्रैव- पृ.-२८१

"जजोल्हन येवसयति, यतो यतस्वादादिता लवनमेवै वां वा अर इदं महद्भूतं मानत मपरं विग्नानघना एव। एतेब्यो भूथेभ्यः समुत्थाय तन्यावनु विनास्यति न प्रेत्य संज्ञास्तित्यरे ब्रवीमिति होवाचा यज्ञ वल्क्यः"

मम, नाधनं, नसुखम् इत्यादयः भिन्नाः भावाः न भवन्ति। साहोवाच मैत्रेयत्रैव मा भगवनमुमुहन्ना प्रेत्य संज्ञानस्तिति सहोवाचा याज्ञवल्केन वा अरे हं मोहम् ब्रवीम्यालं वा अर इदं विज्ञानाय।[1] भर्तुरुक्तानि तमन्ब्रवीत्-स्वामि! त्वं सर्वाणि श्रुत्वा मैत्रेयी परमपूजकाः मां वञ्चितवन्तः यत् शरीरस्य मृत्योः अनन्तरं मम, एतस्य, तस्य, मम, मम चिह्न न भविष्यति। तत् उक्तम्। अथ याज्ञवल्क्य देवी! त्वां प्रलोभयितुं न निर्देशः। सः प्रत्युवाच मया उक्तं सर्वं परमात्मनः स्वरूपज्ञाने उपयोगी इति। देवी मैत्रेयी! द्वन्द्व (अर्थात् त्वमहम्) केवलम् अविद्यावस्था अर्थात् अविद्यायां विद्यते। अज्ञानावस्थायां यस्य हि.. अद्वैतब्रह्मस्याद्वैतस्य परब्रह्मेऽपि द्वन्द्व इत्यर्थः। दृश्यते एकः तादृशे द्वन्द्वे अन्यं एकः अपरं नमति। अन्यं चिन्तयति पश्यति। एकः अपरं श्रृणोति। प्रणम्य जानाति। तस्य विषये। अस्य विपरीतम् यदि द्वन्द्वं। नश्यति अद्वैतावस्था च यत्र सर्वं एकात्मा। अथ कः एतत् जिघ्रति? कः कम् पश्यति? कः विषये को चिन्ता भवति? कस्य दृष्टः प्रणतः प्रणतः कस्मै नमति? कस्य कस्य जानाति? अत्र गन्धं अद्वैतम्। एवं उभौ एकमेव देवी! येन (परब्रह्म) इदं सर्वं ज्ञायते, केन तादृशं ज्ञास्यामः (परब्रह्म)। अतः एतत् सर्वं न जानाति अन्यः किन्तु ज्ञानात्मा एव।

उपसंहारः :

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मयेवानुपश्यति।
सर्वेभूतेषु चात्मानं ततो विजिगुप्सते॥[2]

एवं अध्यात्मदृष्ट्या जगतः ब्रह्मरूपे एव दर्शनम् अध्यात्मविद्यायाः निष्कर्षः। उपनिषत्सु वेदानां सारभागः सरलया, भावनया, प्रश्नोत्तररूपेण, संवादरूपेण ब्रह्मविद्यां प्रतिपादयित्वा मानवजीवने शान्तिप्रदायिकाः भवन्ति।

एतासां महत्त्वंण् अक्षुण्णं निर्विवादं च भाति।

---

1. अत्रैव
2. ईशावास्योपनिषत्- मन्त्रः-६-पृ.-

-:: इति शम् ::-

उपयुक्त-ग्रन्थ-सूची:

1. संस्कृतनिबन्धशतकम्- डॉ. कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकशन्, वाराणसी-१९७५
2. श्रीमद्भगवद्गीता-जयदयाल गोयंका, गीता प्रेस्, गोरखपूर्-२०१६
3. उपनिषत्कल्पतरुः-प्रथमभागः- प्रार्थनागान प्रचार संघः, सत्यन्नारायणपुरम्-विजयवाडा-२००६
4. अमरकोशः-अमरसिंहः-राष्ट्रियसंस्कृतविद्यापीठम् (मानितविश्वविद्यालयः) तिरुपतिः-२००२
5. वाचस्पत्यम्-श्रीतारानाथ तर्कवाचस्पति भट्टाचार्यः-ओरियंटल् बुक् सेन्टर्-नईदिल्ली-२००२
6. गीतामकरन्दः-श्रीविद्याप्रकाशानन्दगिरिस्वामी-श्रीशुकब्रह्माश्रमः-श्रीकालहस्ति-२०१४

उद्धरणानि :

देवीभागवत पुराण में स्त्री विमर्श

डॉ. एकता वर्मा
सहायक प्राध्यापक, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया, बिहार

शब्द संकेत- पंचमवेद, पञ्च लक्षण, शक्ति , सृष्टि ,लय, विवाह से पूर्व, विवाहोत्तर स्थिति, देवी रूप इत्यादि।

देवी भागवत पुराण, जिसे देवी भागवतम्, भागवत पुराण, श्रीमदभागवतम् एवम् श्रीमद देवी भागवतम् नामों से भी जाना जाता है। जैसा कि शीर्षक के द्वारा ही स्पष्ट हो रहा है कि इस देवीभागवत पुराण का वर्ण्य-विषय शक्ति स्वरूपा देवी की प्रतिष्ठा करना है। इस पुराण के नाम से ही इसके विषय का अनुमान लगाया जा सकता है कि उसमें शाक्त-धर्म की स्थापना की गई है। इसमें देवी को ही संपूर्ण संसार की उत्पत्ति तथा लय का कारण स्वरूपा प्रतिपादित किया गया है। सभी देवता आदि देवी की इच्छा से ही अपने-अपने कार्यों के प्रति सचेष्ट बताए गए हैं। दूसरे शब्दों में यदि कहें तो शक्ति के बिना वह कुछ नहीं कर सकते हैं- ऐसा पुराण में स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। तत्कालीन समाज पितृ प्रधान परिवार होते थे, परंतु उस काल में पुरुष के अतिरिक्त स्त्री को भी समाज का एक महत्वपूर्ण अंग माना जाता था। उसके बिना सृष्टि की कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। देवी महात्म्य के साथ यह पुराण शक्तिवाद में सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में से एक है। हिंदू धर्म के अंतर्गत एक परंपरा जो देवी या शक्ति को ब्रह्मांड के मूल निर्माता और ब्राह्मण के रूप में सम्मानित कर, दिव्य स्त्रीत्व को सभी अस्तित्व की उत्पत्ति के रूप में स्थापित करता है। इस संसार के संपूर्ण वस्तुओं के निर्माता, संरक्षक और विध्वंसक के रूप में शक्ति स्वरूपा देवी को किया गया है। भिन्न-भिन्न कालों में स्त्री की समाज में स्थिति भी भिन्न-भिन्न रही है, इस तथ्य की पुष्टि करने के लिए मैंने इस शोध-पत्र में

स्त्री की स्थिति को सम्यक रूप से समझने हेतु तीन मुख्य बिंदुओं को स्पष्ट करने का भरसक प्रयास किया है-

१. नारी: विवाह से पूर्व

२. नारी: विवाहोत्तर स्थिति

३. नारी: देवी स्वरूपा

नारी: विवाह से पूर्व- आरंभ काल से ही नारी समाज का महत्वपूर्ण अंग रही है। समाज का संगठन नारी से ही पूर्ण होता है, बिना नारी के समाज की कल्पना भी नहीं की जा सकती। समाज में जितने भी धार्मिक एवं कार्मिक अनुष्ठान बताए गए हैं, वे सभी नारी की सहायता से ही पूर्ण रूप से सफल होते हैं। ब्रह्म पुराण में तो एक जगह यह भी देखने को मिलता है कि नारी के साथ कोई भी कार्य करने से उसका फल अधिक मिलता है-

एकेन सत्कृतं नाथ तस्मादअर्धफलं लभेत्।
जायया तु कृतं नाथ पुष्कलं पुरुषो लभेत्।।[1]

देवीभागवत के रचनाकार का उद्देश्य यद्यपि शक्ति के महत्व का प्रतिपादन करना है तथापि वह ऐसे शाक्त धर्म को स्वीकार करते हैं, जो वेद अनुसार है अर्थात् वेद के अनुसार प्रतिपादित है। एक स्थान पर यह दृष्टिगोचर होता है कि देवी स्वयं कहती है कि जो वेद के द्वारा प्रतिपादित धर्म का परित्याग करके अवैदिक धर्म का आश्रय लेते हैं, उन्हें राज्य से निष्कासित कर देना चाहिए। इस प्रकार, उपर्युक्त स्थल में तत्कालीन समाज में धर्म का वर्णन हमें देखने को मिलता है। नारी के महत्त्व को देखते हुए यदि यह कहा जाए कि जब तक सृष्टि रहेगी तब तक नारी की आवश्यकता रहेगी तो इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी| ऐसा नहीं है कि नारी की स्थिति समाज में हमेशा से गौरव और प्रतिष्ठापूर्ण रही

---

[1] ब्रह्म पुराण, १.२९.६१

है। प्रत्युत समय-समय पर इसकी प्रतिष्ठा में अवनति के चिन्ह भी देखे गए हैं, इसके संबंध में हमें कई प्रमाण भी मिलते हैं। प्रत्येक समाज में नारी के मुख्यतया तीन रूप हमें देखने को मिलते हैं- पहली कन्या, दूसरी पत्नी, तीसरी माता। इन सबसे विशिष्ट रूप में देवी भागवत पुराण में हम नारी को एक देवी के स्वरूप में देखते हैं। प्रारंभिक काल में माता-पिता के द्वारा पुत्र की तो कामना की ही जाती थी, परंतु पुत्री की भी कामना के उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। ऋग्वेद काल में पुत्री का लालन-पालन भी सम्यक रूप से किया जाता था। उत्तरोत्तर काल में महाभारत युग में कन्यादान के अवसर पर नृत्य और गान के प्रमाण भी मिलते हैं। प्रस्तुत पुराण में स्पष्ट उदाहरण देखने के लिए मिलता है कि लोग प्रायः पुत्र की तो कामना अवश्य करते थे, परंतु निःसंतान दंपत्ति के द्वारा पुत्री की प्राप्ति हेतु यज्ञ आदि भी संपादित किए जाते थे, जैसे- राजा रैम्य की पुत्री एकावली। निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि उन दिनों माता-पिता कन्या के जन्म को प्राय: हेय नहीं समझते थे। उस कालखंड में चरित्र ही कन्या का आभूषण माना जाता था। यद्यपि कन्या वर्ग को समाज में यथोचित स्थान प्राप्त था, दूसरी ओर समाज में एक ऐसा मानदंड स्थापित हो चुका था, जिसमें कुंवारी कन्या से उत्पन्न संतान को मान्यता प्रदान किया जाता था। उस समय का समाज आज की 20वीं शताब्दी के समाज से कहीं अधिक स्वतंत्र था क्योंकि व्यास मुनि स्वयं एक कुंवारी कन्या के पुत्र थे, उनके प्रति आदर सम्मान से सभी परिचित हैं। ऐसे पुत्र को कनीन की संज्ञा दी गई थी। प्रस्तुत पुराण में इस प्रकार के पुत्रों की एक सूची मिलती है जिनको अपने पिता की संपत्ति का उत्तराधिकारी भी कहा गया है।[1] यद्यपि कन्याओं पर प्रतिबंध थे तथापि कन्याओं के मनोरंजन के कुछ साधनों की भी चर्चा हमें प्राप्त होती है। जैसे- फूल चुनना, बाग में घूमना, सखियों के साथ नदियों के तट पर मनोरंजन करना, जादू और कठपुतली

---

[1] दे. भा. २.६.४७.४८

के खेलों को देखना इत्यादि। आज के समाज के समान उस समय भी कन्याओं का अधिकतर समय घर की देखभाल में ही व्यतीत होता था। विवाह के पूर्व वह अपने माता-पिता के घर का कार्यभार संभालती थी और विवाह के पश्चात हुए अपने पति के घर के सारे दायित्वों को पूरी जिम्मेदारी से निभाती थी। गृहकार्य में निपुणता के साथ-साथ कन्याएं आश्रमों में रहकर वेद, वेदांत दर्शन आदि की शिक्षा भी प्राप्त करती थी। उदाहरण- कुंती एक विदुषी स्त्री थी, उन्होंने दुर्वासा मुनि से शिक्षा प्राप्त की थी। इंद्र की पुत्री जयंती ने शुक्राचार्य से ज्ञान प्राप्त किया तथा इंद्र की परिचारिका जिसका नाम सरमा था, उसने भी कई मंत्रों का आविष्कार किया था। ऐसे अनेकों उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं। अन्य ललित कलाओं में भी वे निपुण होती थी। इन सब के अतिरिक्त कन्याएं दर्शन तथा आध्यात्मिक क्षेत्र में भी पुरुषों से पीछे नहीं थी। हम देखते हैं कि विवेच्यकाल में कन्याएं जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अपनी सहभागिता और अपना कौशल प्रदर्शित करने में पुरुषों से कहीं पीछे नहीं थी। अपनी व्यावहारिक कुशलता, आध्यात्मिक, धार्मिक और दार्शनिक क्षेत्र में विद्वता के कारण अग्रणी थी। तत्कालीन समाज में कन्या-वध, कन्या-विक्रय और दासी-प्रथा आदि कुरीतियां तो अवश्य विद्यमान थी, परंतु, विवेकी एवं प्रबुद्ध जन इन कुप्रथाओं के उन्मूलन के लिए सदैव प्रयत्नशील रहते थे।

२. **नारी: विवाहोत्तर स्थिति-** यह सर्व विदित है कि प्राचीन काल से ही मनुष्य का जीवन चार आश्रमों में विभाजित रहा है। जिसमें गृहस्थ आश्रम को सर्वोत्तम आश्रम माना जाता रहा है, इसकी चर्चा हमें वाल्मीकिकृत रामायण में भी स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है- “चतुर्णामाश्रमाणां हि गार्हस्थ्यं श्रेष्ठतमुत्तमम्”।[1] कदाचित इसी से अभिप्रेरित होकर देवीभागवत पुराण में भी गृहस्थ आश्रम को सभी आश्रमों का आश्रय तथा मनुष्य-जाति का रक्षक कहा गया है। गृहस्थ आश्रम का

---

[1] **रामायण २.१०६.२२**

प्रवेश-द्वार के रूप में यदि हम विवाह को माने तो इसमें कोई आश्चर्य नहीं है। तत्कालीन समाज में यद्यपि परिवार पितृसत्तात्मक था परंतु, पत्नी को भी यथोचित आदरणीय स्थान प्राप्त था। परिवार में उत्तराधिकारी पुत्र ही माना जाता था। पत्नी पति को यदा-कदा अवसर पड़ने पर मार्ग- प्रदर्शन तथा उत्साह-वर्धन का भी कार्य करती थी।[1] पत्नी के बुद्धि विवेक के कई उदाहरण हमें देखने को मिलते है। पति का कर्तव्य होता था कि वह अपनी पत्नी को प्रसन्न और सुखी रखें। यदि जिसकी पत्नी दुखी रहती थी उसके पति को समाज में धिक्कारा भी जाता था,[2] ऐसे कई उदाहरण हमें देखने को मिलते हैं जहां पत्नी स्वयं कष्ट झेलती है और पति को सुख पहुंचाती है। अर्थात् तत्कालीन समाज में पत्नी को समादरणीय स्थान प्राप्त था। अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर पति अपनी पत्नी से परामर्श लेते थे, जैसे- मंदोदरी के विवाह के लिए वीरसेन ने अपनी पत्नी से परामर्श लिया था। अतएव पत्नी वास्तविक अर्थ में पति की सहधर्मिणी होती थी। पति के सुख-दुख को पत्नी अपना सुख-दुख समझती थी। कालांतर में सहधर्मिणी की अवधारणा पतिव्रता की अवधारणा में परिणत हो गई। पति को देवता तुल्य माना जाता था एवं पति से झूठ बोलने पर उनकी पत्नियों को गो-हत्या का पाप भी लगता था। रामायण काल में पति को देवता के समान माना गया है एवं गुरु के रूप में भी पति को स्थापित किया गया है। तत्कालीन समाज में पतिव्रता नारी का इतना महत्व था कि उसकी प्राप्ति स्वधा देवी की पूजा तथा नामोच्चरण करने से मानी जाती थी[3]। प्रस्तुत पुराण में यह भी वर्णन मिलता है कि स्त्री का गौरव एवम् सम्मान पति के सौभाग्य से प्रतिदिन बढ़ता है। पति के साथ ही पत्नी का सुख उत्तरोत्तर बढ़ता है, इसलिए स्त्री को चाहिए कि वह अपने पति की सेवा में

---

[1] दे.भा. ७.२०.२८-३०

[2] वही ६.९.२५

[3] वही ९. ४४.३०

सर्वदा तत्पर रहे क्योंकि कुलीन नारियों के लिए पति ही धर्म, सुख, सतत प्रेम एवं शांति का दायक होता है। कहीं-कहीं पर यह भी वर्णन मिलता है कि सभी तीर्थ, व्रत, दान, गुरु देवता आदि भी पति की सेवा के तुलना में उसकी 16वीं कला के बराबर भी नहीं है।[1] पति की महिमा पुत्र से बढ़कर ही मानी गई है। पति की महत्ता का प्रमाण हमें मनसा देवी के इस कथन से स्पष्ट मिलता है कि वह अपने पति से कहती हैं "जिस प्रकार एक पुत्र वाले का मन पुत्र में, वैष्णव का मन विष्णु में, एक नेत्र वाले का मन अपने नेत्र में, प्यासे का मन जल में और वैश्य जनों का मन निरंतर अपने व्यापार में लगता है, उसी प्रकार स्त्रियों का मन सदा स्वामी की सेवा में लगता है।[2] पति को साक्षात विष्णु माना गया है, जो पत्नी अपने स्वामी की भलाई नहीं करती थी उसके सभी पुण्य, व्रत, तपस्या आदि नष्ट हो जाते थे। उस समय के समाज में पति ही पत्नी का इष्ट देव था। पति-धर्म का पालन करना पत्नी का परम कर्तव्य माना जाता था। उदाहरणस्वरूप-सुकन्या ने अपने वृद्ध पति च्यवन ऋषि के अनुकूल अपने जीवन को व्यतीत किया था। पत्नियाँ अपने पति के लिए भोजन, आराम की व्यवस्था करती थी एवम् उनकी सेवा-शुश्रूषा में तत्पर रहती थी। अन्यत्र एक उदाहरण में यह भी बताया गया है कि स्त्रियों के लिए पर-पुरुषों के सामने जाकर अपने पति से विनोद-पूर्ण वार्तालाप करना शिष्टाचार के विरुद्ध था। साथ में यह भी स्पष्ट किया गया है कि पति चाहे जैसा भी हो पत्नी का यह कर्तव्य माना जाता था कि वह पति की सेवा करें। ऐसी मान्यता थी कि यदि पतिव्रता नारी कोई संकल्प ले ले, तो वह व्यर्थ नहीं जाता, उसे इच्छित वस्तु प्राप्त हो जाता था, कारण कि इस प्रकार की पतिव्रता नारी में एक अपूर्व बल का संचार हो जाता था। जिस प्रकार पत्नी पूरी तन्मयता से अपने पति की सेवा करती थी, उसी प्रकार पति के

---

[1] वही ९.४५.२८-३०

[2] वही ९.४८.३२-३४

लिए भी आवश्यक था कि वह अपने पत्नी का पालन पोषण करें, उसे प्रसन्न रखने के लिए यदा-कदा देवस्थान ,पर्वतीय रम्य प्रदेश एवं आश्रमों में भ्रमण कराने के लिए ले जाए। भार्यां रक्ष्या: सर्वभूतैर्यथाशक्ति ह्यतान्द्रितै: से स्पष्ट होता है कि देवी भागवतकार ने पतिव्रता धर्म को बहुत महत्त्व प्रदान किया है। सृष्टि के आरंभ से ही नारी ममता और वात्सल्य की प्रतिमूर्ति रही है। इस जन्मजात प्रवृत्ति के रूप में मातृत्व की भावना सर्वदा से देखी गई है। इस विलक्षण विशेषता के लिए स्त्री ने अनेकानेक कष्ट एवं परेशानियों को झेला है, परंतु अपने विषय में ना सोचते हुए वह सिर्फ और सिर्फ अपनी संतान के लिए सोचती है। माता रूप गौरवमयी पद पर केवल स्त्री ही सुशोभित हुई है। देवीभागवत पुराण में भी स्त्री को माता के रूप में बहुत महत्व प्रदान किया गया है। वहां पुत्र के महत्व के साथ-साथ माता का भी महत्व स्थापित किया गया है, यथा- वशिष्ठ धर्म सूत्र के अनुसार माता का गौरव हजार पिताओं से भी अधिक माना गया है।10 उपाध्याय से आचार्य का 100 आचार्य से पिता का और हजार पिताओं से माता का गौरव अधिक माना जाता है।[1] संतान उत्पत्ति के पश्चात माता अपने संतान के पालन-पोषण में पूरी तरह से चिंतित और तत्पर देखी गई है। माता का अपने बच्चों के प्रति असीम स्नेह होता था। तत्कालीन समाज में काक बंध्या और मृतवत्सा स्त्री को निंद्य समझा जाता था।[2] गर्भवती स्त्री के लिए उस अवस्था विशेष में किए जाने वाले संस्कार में से यथोचित संस्कारों का भी निर्वहण किया जाता था। प्रस्तुत पुराण के अध्ययन से हमें यह स्पष्ट होता है कि उसे युग के समाज में भी अधिक संतान को अच्छा नहीं समझा जाता था। अधिक संतान कलयुग का चिन्ह समझा जाने लगा था।[3] आजकल के जैसा उस काल में भी समृद्ध घरों में माता की

---

[1] वशिष्ठ धर्म सूत्र- १३.४८

[2] दे. भा. ४.३.५०

[3] वही ९.८.३०

सहायता के लिए धात्री को नियुक्त किया जाता था। जो बच्चों का पालन-पोषण करती थी, उन्हें शिक्षा देती थी और उसकी पूरी तरह से ख्याल रखती थी।

प्रस्तुत पुराण में विधवा की स्थिति को लेकर अल्प सामग्री देखने को मिलती है, परंतु जितनी भी सामग्री प्राप्त होती है उससे यह स्पष्ट होता है कि यह अवस्था अत्यधिक कष्ट का कारण था। जिसमें नारी को शोक और संताप ही झेलना पड़ता था। समाज में विधवा को बराबरी का दर्जा नहीं प्राप्त था। दूसरे शब्दों में कहे तो समाज में उसकी स्थिति अच्छी नहीं थी। सती प्रथा भी बहुत प्राचीन कुप्रथा है, जिसमें पति की मृत्यु के पश्चात पत्नी को उसी के साथ जीवित जल जाना पड़ता था। तत्कालीन समाज में इस प्रथा का भी प्रचलन था माद्री अपने पति पांडु के साथ सती हो गई थी। बाद में इसका विरोध भी देखने को मिला है। पति की मृत्यु के पश्चात स्त्रियां कष्ट में जीवन बिताती थी। इस पुराण में विधवा विवाह का कोई संकेत नहीं मिलता। दासी प्रथा भी उस काल में प्रचलित थी। दासिओं का कार्य बच्चों की देखभाल करन होता था। राजा अपनी संतान की रक्षा के लिए भी दासिओं को नियुक्त करते थे। इस पुराण में स्त्री जाति के वर्णन के क्रम में एक अन्य प्रकार की स्त्री जाति देखने को मिलती है, जिसे अप्सरा के नाम से संबोधित किया गया है। उनकी कल्पना मनोरंजन तथा प्रसन्नता के साधन के रूप में की जाती थी।[1] ऐसा विश्वास किया जाता था कि इंद्र ऋषि मुनियों की समाधि में विघ्न डालने के लिए अप्सराओं का प्रयोग किया करते थे, उनकी सुंदरता एवम् हाव-भाव आकर्षक तथा मनमोहक होते थे इस पुराण के तत्कालीन समाज में स्त्री के प्रति पुरुष का दृष्टिकोण उसके संबंधों पर निर्भर करता था, माता गुरु-पत्नी, पत्नी तथा कन्या के रूप में स्त्री को आदर तथा प्रेम दिया जाता था। हर प्रकार से उनकी रक्षा की जाती थी। स्त्री के संभवत सभी रूपों का वर्णन हमें इस

---

[1] वही ४.६.४९

पुराण में देखने को मिलता है, जहां पर हम विरोध परक विचार भी प्राप्त करते हैं। अबला के रूप में मानी जाने वाली स्त्री को जब देवी के रूप में स्थापित किया गया तब सिर्फ उसी स्थिति में उसे अस्त्र धारण करती हुई दिखाया गया है। स्त्रियों के लिए श्रृंगार रस को ही मुख्य रूप से माना गया है। अपने अलंकरण के लिए स्त्रियां कई प्रकार के श्रृंगारिक साधनों का उपयोग करती थी। यहाँ हमें स्त्री के विविध रूप दृष्टिगोचर होते हैं तथा हम यह भी देखते हैं कि स्त्री को समाज में आधार की दृष्टि से नहीं देखा जाता था, उसकी सामाजिक स्थिति मे दिनानुदिन ह्रास होना शुरू हो गया था।

३ . नारी :देवी के रूप में- अब मैं पाठकगण के समक्ष अपने शोध-पत्र के मुख्य उद्देश्य अर्थात् देवीभागवत पुराण में नारी, जो देवी के रूप में उपस्थापित की गई है, उस विषय-वस्तु को यथाशक्ति, यथामति स्पष्ट करने का प्रयास करूंगी। यह सर्वविदित है कि प्राचीन काल से ही मानव अपनी जिज्ञासु प्रवृत्ति के कारण अपने पर्यावरण में हो रही क्रिया-प्रतिक्रिया के प्रति उत्सुक/जागरूक रहा है। ऋग्वेद काल से ही हमारे ऋषि मुनियों ने कई रहस्योद्घाटन किए हैं, जिसका प्रमाण हमारे वेद है। विभिन्न देवताओं के स्तुति परक मंत्रों की परंपरा कालक्रम के प्रवाह में चलते चले आ रहे हैं। उसी क्रम में ब्राह्मण, उपनिषद् आदि के पश्चात पुराण में भी हम देखते हैं कि देवताओं की स्थिति विभिन्न रूपों में स्थापित की गई है। विभिन्न पुराणों में विभिन्न विषयों को ग्रहण किया गया है। कई पुराणों में देवी की उत्पत्ति के विषय में भी वर्णन किया गया है। देवी पूजा के प्रमाण हमें अपने वेदों में देखने को मिलते हैं। देवीभागवतकार का प्रयोजन शक्ति रूप देवी की स्थापना करना था, साथ ही यह भी संदेश देना था कि सभी देवता शक्ति के अधीन है। यहां हमें देवी की तीन शक्तियों, जो कि हमारे तीनों गुणों (सात्त्विक ,राजस ,तामसी) से अनुप्राणित हैं। वे क्रमशः महालक्ष्मी, महासरस्वती और महाकाली के रूप में विद्यमान होती है। सात्विकी शक्ति ब्रह्माजी में, राजसी शक्ति विष्णुजी में और तामसी शक्ति

का संबंध महादेव शिव शंकर से स्थापित किया जाता है। पराशक्ति और आदिशक्ति के रूप में देवी को अभिहित किया गया है। सृष्टि की उत्पत्ति के संबंध में पराशक्ति को हम समझ सकते हैं ,जैसा की कथित है- "खल्विदमेवाहं नान्यस्ति असनातनं "[1] इस कथन में देवी स्वयं रहती है कि ब्रह्म और मैं एक ही हूँ ब्रह्म मेरे ही कारण शक्तिमान है समस्त पुरुषों को निमित्त बनाकर मैं स्वयं उनसे अपना कार्य सिद्ध करती हूँ मेरी अनुपस्थिति में समस्त जीव जड़ है, यदि शिव से शक्ति को हटा दिया जाए तो वह शव बन जाएगा। सत्, चित्त, आनंद स्वरूपवाली भगवती देवी सृष्टि के आरंभ से ही अपने विशिष्ट रूप में विहार करती है। तत्पश्चात, सगुण रूप धारण करके अपने द्वारा आविर्भूत योगमाया से इस भवन की सुंदर रचना करती है, ब्रह्मा, विष्णु और महेश उत्पन्न करके क्रमशः उन्हें भी शक्ति प्रदान करके इस संसार का कार्य भार प्रदान करती है। भगवती के स्वाभाविक कला में माया विशिष्ट है। इस सृष्टि के अंतकाल अर्थात् प्रलयकाल में मायाशक्ति के सहयोग से ही देवी स्वयं बीज रूप में परिणत हो जाती हैं, फलस्वरूप, यही शक्ति देवी का आधार बनता है। एक स्थान में वर्णन आया है कि जब ब्रह्मा विष्णु महेश आदि देवता भी अपने आप को कार्य करने में असमर्थ बताने के क्रम में इसी इसी योगमाया का प्रभाव बताते हैं। विष्णु भगवान भी इसी योगमाया के प्रभाव से मोहित होकर दैत्यों का वध करने में समर्थ हो पाते हैं। विद्या और अविद्या- भगवती के दो रूप बताए गए हैं जिनमे से प्राणियों की मुक्ति का कारण विद्या को बताया गया है और सांसारिकता के माया मोह के बंधन में डालने का कारण अविद्या को बताया गया है। देवी के कई रूपों और कलाओं के बीच चर्चा इसमें की गई है जिस की पूर्णता स्पष्ट होता है कि संसार में होने वाली सारी क्रियाएं इस देवी की शक्ति से संपन्न होती है बिना उनके संसार की सभी वस्तुएं जड़ है। देवी का निवास स्थान "मणिद्वीप" वर्णित किया गया

---

[1] वही १.१५.५२

है।[1] इसकी शोभा अनुपम एवं विलक्षण है यह सभी प्रकार के ऐश्वर्या युक्त सामग्रियों से सुसज्जित है इसकी बनावट अद्भुत है। भुवनेश्वरी प्रधान देवी है जो कि सभी देवताओं के साथ निवास करती हैं। यहां सर्वत्र ब्रह्मानंद की प्राप्ति होती है।[2] यहां के सभी निवासी चिरयुवा रहते हैं। देवी भुवनेश्वरी की पूजा अर्चना में वे सदैव तत्पर और संलग्न रहते हैं, जिसके कारण वह जीवन्मुक्त होकर सारूप्य और सापूज्य मुक्ति भी प्राप्त कर लेते हैं।[3] सज्जनों के जीवन की रक्षा हेतु एवं धर्म के मर्यादा के लिए देवी अनेकों बार अवतार लेती है, वह साधुओं की रक्षा करती हैं और दैत्यों का नाश करती है। देवी अपने भक्तों के कार्य को सिद्ध करने हेतु आशीर्वाद को भी प्रदान करती है। देवी भागवतकार ने देवी को माता के रूप में चित्रित किया है। देवी अपने भक्तों के प्रति अपने संतान के समान भावना रखती है। संसार में राक्षसों का वध करके देवी पृथ्वी पर धर्म का राज्य स्थापित करने का महान कार्य सदैव करती रहती है। देवी का वाहन सिंह भी अपनी शक्ति से दुष्टों का संहार करता है। ऐसा नहीं है कि संसार के सारे व्यक्ति देवी की पूजा अर्चना करते थे, कुछ ऐसे होते थे जो देवी की पूजा नहीं करते, ऐसी स्थिति में उन्हें भविष्य में रोगग्रस्त, शत्रुओं से पराजित, पुत्र-कलत्रहीन आदि माना जाता था। देवी के आवाहन के लिए तीन प्रकार के मंत्रों की चर्चा की गई है-काम बीज, माया बीज तथा वाग् बीज।[4] इन मंत्रों के उच्चारण के द्वारा देवी का ध्यान किया जाता है। देवीभागवतकार ने देवी की पूजा-प्रकार एवं विधान का भी वर्णन समुचित रूप से किया है। देवी की पूजा दो प्रकार की जाती है- १. बाह्य पूजा विधि और २. आभ्यंतर पूजा विधि। बाह्य- पूजा विधि के भी दो प्रकार होते हैं- १.

---

[1] वही ७.४.३२

[2] वही १२.१२.६७-६९

[3] वही १२.१२.५० -५३

[4] वही ९-४२.४२-४३

वैदिकी और २.तांत्रिकी। प्रस्तुत पुराण में देवी को प्रसन्न करने हेतु कुछ व्रत का भी विधान किया गया है, जिसमें से सर्वप्रथम अनंत तृतीया के व्रत का वर्णन किया गया है। इस व्रत को तीन और नाम से अभिहित किया गया है- १. अनंत तृतीया २. रस कल्याणिनी और आद्रनिंदकरी। इसके अतिरिक्त और भी कई व्रत की चर्चा देखने को मिलती है, जैसे- शुक्रवार, चतुर्दशी, सोमवार, प्रदोष व्रत इत्यादि। इन सब में महत्वपूर्ण नवरात्र व्रत काअनुष्ठान करने से देवी प्रसन्न हो जाती हैं और अनुष्ठान करने वाले मनुष्य के कष्ट को दूर कर देती हैं। पूरे वर्ष में नवरात्र किस किस महीने में मनाए जाते हैं, उसके विधान और व्रत विधि आदि की पूरी चर्चा हमें देखने को मिलती है।[1] इसी क्रम में देवी के प्रसन्नता हेतु मनुष्य संसार में कई प्रकार के यज्ञ भी करता रहा है जिसके प्रमाण हमे ऋग्वेदिक काल से प्राप्त होते है। जैसे- राजसूय यज्ञ, वाजपेय, गोमेध, नरमेध, अश्वमेध इत्यादि। तत्कालीन समाज में देवी की प्रसन्नता और उनकी कृपा दृष्टि प्राप्त करने हेतु कई प्रकार के उत्सवों का भी वर्णन हमें देखने को मिलता है जैसे- देवी का दोलोत्सव, जागरणोत्सव, पवित्रोत्सव, शयनोत्सव इत्यादि। इस प्रकार से हम देखते हैं कि देवी के पूजन, व्रत, यज्ञ आदि से बहुत प्रकार के लाभ प्राप्त होते हैं। देवी के निमित्त की किए गए धार्मिक कृत्यों में स्त्रियों को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

निष्कर्ष: के रूप में यह कहा जा सकता है कि प्रारंभ में जहाँ नारी कोमल हृदया समझी जाती रही है वही भागवतकार ने नारी को क्रोध से उग्र बताकर राक्षसों के संहारकर्ता भी वर्णित किया है। देवी के रूप में वर्णन करके नारी को पूजनीय स्थान प्रदान किया है। वस्तुत: किसी भी राष्ट्र की उन्नति के लिए नारी को आदर प्रदान करना अत्यंत आवश्यक है। स्त्री और पुरुष दोनों एक दूसरे के पूरक हैं। एक के बिना दूसरे की कल्पना नहीं की जा सकती आती है। अतः इस समाज में दोनों को यथोचित आदर

---

[1] वही ३.३०.४७-५७

अत्यंत आवश्यक है, देवी के रूप में नारी का चित्रण करके उसके आदर्श रूप को चित्रित किया गया है- सर्वे प्राकृतिका: पुंस: कामीन्य: प्रकृते: कला: ।[1]

संदर्भ-ग्रंथ-सूची:

- ब्रह्म पुराण
- देवी भागवत
- रामायण
- वशिष्ठ धर्मसूत्र
- दुर्गा सप्तशती

1 वही ९. १४. १४

Theme of Urbanization in Kamala Markandaya's "*Nectar in a Sieve*" and "*Some Inner Fury*"

Dr. Vaishali Madje
Assistant Professor of English
MGM University, Chh. Sambhajinagar

Keywords: Conflict, urbanization, technological, political, cultural.

Introduction

Kamala Markandaya is one of the earliest Indian women novelists in Indian writing in English. She is categorized as a documentary novelist of India, uses for her plot, the lives of the people, specifically the poorer classes, as the substance of her fiction. One more extraordinary quality of Markandaya is her use of simple and effective language in her novels. Kamala Markandaya as a postcolonial novelist carries the mirror and shows the social face from varied angles. Colonialism and Urbanization both are disparate concepts still they are correlated. Post colonialism examines the enduring effects of colonialism, while Urbanization focuses on the growth and concentration of populations in urban areas. Urbanization is often controlled by postcolonial contexts.

Kamala Markandaya achieved a conspicuous place among Indian- English novelists. Her very first novel, *Nectar in a Sieve (*1954) portrayed theme of Urbanization through hunger and degradation, rootlessness, alienation etc. Novel describes how the tannery destroys the traditional rural life of Rukmani and Nathan, ruling to economic hardship and social change. Nathan and Rukmini represent the East whereas Dr. Kenny and the vast industrialization symbolize the West.

Urbanization focuses on rootlessness. *Nectar in a Sieve* is a distressing story of uprooting caused by industrialization.

Kamala Markandaya discussed Urbanization through the description of rootlessness of different classes of Indian society. She is by far 'the most accomplished' of Indian English women novelists in respect of authentic portrayal of Indian scenes and characters with ' a peculiar contemporary relevance. (Kumar, 508-513) From the pattern that comes out from her novels one can conclude her message, as long as one has roots, one survives; and if one's roots are injured or lost, one dies spiritually. Nathan's roots, are marked when he is legally forced to leave his land and he dies, but Rukmani's roots are in her children and therefore she lives. Markandaya portrayed how Nathan and Rukmani shifted to the city in hope of finding shelter with their son, Murugan. But they failed to search him. There has been an uprooting of home and family.

Kamala Markandaya carries the fact that it is hunger and starvation which results ultimately to degradation. It is hunger that drives Kunthi to prostitution and later on she even blackmails Rukmani and Nathan, Ira is forced to adopt prostitution in her desperate attempt to save the dying child-brother. Thus through this novel, Markandaya successfully finds out that poverty, hunger, and starvation can result in disintegration of the family followed by innumerable sufferings.

Though settled finally in England after her marriage, Kamala Markandaya was born and brought up in India. Hence her presentation of the East-West conflict, tension, and culture is characterised by her first hand experience. Through the character of Dr. Kenny Markandaya tries to awaken the East. Dr. Kenny and English social workers love the Indian people, but when he sees their passive acceptance of life, he feels disgusted with their follies, poverty and quiet humility.

The East-West relations become stronger because of people like Dr. Kenny, however, the people of the West are always concerned about the sufferings of the people of the East. Kamala Markandaya points out a very obvious contrast between

the Eastern and the Western cultures that the people of the East are passive and submissive rather than the people of the West are active and conscious of their rights. At the same time, Markandaya points out the strong side of Eastern culture. In theEast, women marriage is a sacrament whereas, in the West, marriage is simply a contract. Through this novel, Kamala Markandaya depicts the West as trying to give enthusiasm to the East by exhorting its people to rise to the occasion and activate themselves for the struggle for their basic rights.

Another novel of Markandaya *Some Inner Fury*, through Roshan Markandaya portrays a woman of modern India who is free from social conventions. Kit and Govind are the typical examples of the Western and the Eastern cultures. Kit absorbs the suspicious nature from the Western Culture. Through Mira, Markandaya criticizes the English rulers.

The cultural clash of the East and West has been the obsessive concern of the novelists of independent India. Santha Rama Rau's *Remember the House (1956)*, Nayantara sehgal's *A Time to be Happy (1958)*, B. Rajan's *the Dark Dancer(1957,)* J.M. Ganguly's *When east and west Meet(1960)* and Raja Rao's *The Serpent and the Rope (1960)* are some well known attempts on the depiction of this clash.

Some Inner Fury is related to India's national movement. It is the feeling of hatred between the rulers and the ruled that keeps the East and West separately. Present novel also presents the impact of the Western Culture on the Indians. Kitswamy is an Indian trained in England and greatly immersed in the English culture. His wife, Premala, does not like his English ways. Govind is a fiery man who wants to drive the English rulers' out of the country through violence. Kit and Govind are the typical examples of the Western and the Eastern Cultures.

Kamala Markandaya perfectly depicts the East, and the West are separated by a gulf of hatred. In this fire of hatred,

innocent persons like Premala and Hickey have to suffer.Kit's wife, Premala is burnt in the hospital fire, and Hickey is tortured; thus the human values are ignored.

Through this novel, Markandaya highlights how national struggle extremely affects the human relationship. Different opinions of members of a family are always taken into account. Kit and Govind are cousins. Kit is a thoroughly Westernized Indian whereas Govind a truly Indian in his hatred towards the British. Kit and his wife, Premala, fail to get on well in their relationship of a husband and wife because Premala is deeply rooted in Indian Culture. Likewise, Kit's sister, Mira, an Indian loves an Englishman, Richard. Mira bursts with pride and delight when she sees Richards cross-legged on the floor of a Brahmin restaurant. She feels a sense of pride at her choice and muses to herself:

There is no one like Richards, no one at all like my love. (137)

Urbanization also deals with the theme of Hunger and Degradation. It turns into an upper-class family who has plenty of food left over after every meal. The hungry children keep a watch outside the house, waiting to attack any crumb which they may have:

So they waited, watchful even while they played, wily brown urchins with the warped bodies of perpetual hunger, and the bright uncomplaining eyes of children who somehow contrive to ignore it. (92)

Thus, *Some inner fury,* on a sociological level, produces the arch objectives of traditional and patriotic values which keep the East and West apart.

Conclusion:-

Kamla Markandaya's themes have been depicted with a less realistic touch. Though it is East-West encounter, rootlessness or urbanization, they have been boldly portrayed with an unforgotten mark on the reader's conscience.

Markandaya's themes have the unmistakable trace of an autobiography. While going through the entire Corpus of her work, one cannot afford to be oblivious of the basic facts of her life.

Markandaya's characters in works like *Some Inner Fury* want to go to the West in search of enjoyment but only find frustration and resultant psychic collapse. Premala's roots are burned when she is taken away from her traditional way of life and asked to be a society lady.

Thus the simplicity of Markandaya's language that has resulted in large scale popularity. In most of her novels, the themes are reflected in their titles. The titles are ironical. *Nectar in a Sieve* refers to the illusory happiness of man in his Sisyphean struggle for survival. *Some Inner Fury* portrays no less the incompressible outer fury of the people against the whites. Thus Kamla Markandaya is greatly admired for her attempt to depict the reality of her world alike.

Refrences:-

1. *Nectar in a Sieve.* Jaico Publications, 2003
2. *Some Inner Fury*. Penguin Books Pvt Ltd, 2009
3. Kumar, Shiv k. " Tradition and Change in the Novels of Kamala Markandaya" *Books Abroad* Vol 43, no.4, 1969, P 508-513
4. Bhatnagar, Anil K. *Kamala Markandaya: A Thematic Study.* Sarup and Sons, 1995

वेदकालीन विदुषियाँ एवं उनका योगदान

डॉ. शाहिना तहसीन
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, संस्कृत-विभाग
वसन्त महिला महाविद्यालय, काशी हिन्द विश्वहिद्यालय, वाराणसी

वर्तमान समय में जहाँ स्त्रियों के अधिकार, कर्त्तव्य एवं उनकी दशा के विषय में चर्चा की जा रही है यदि वेदों का अध्ययन किया जाए तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय परम्परा में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है। आज जहाँ उनकी शिक्षा पर बल दिया जा रहा है वहीं प्राचीन समय में स्त्रियों की शिक्षा की सुन्दर व्यवस्था अध्ययन–अध्यापन के साथ ही साथ युद्धों में जाना एवं वीरतापूर्ण योगदान का वर्णन किया गया है। वैदिक काल में नारियों को भी पुरुषों के समान शिक्षा–दीक्षा का समान अधिकार प्राप्त था। वेद में नारी के गौरव का अनेक प्रकार से उल्लेख किया गया है। नारी को ब्रह्मा कहा गया है। इसका तात्पर्य यह है कि वह स्वयं विदुषी होते हुए सन्तान को सुशिक्षित बनाती थी। नारी की ज्ञान-विज्ञान में निपुणता के कारण उसे ब्रह्मा कहा गया है। स्त्री ही ज्ञानदात्री है-

अधः पश्यस्व मोमें परि सन्तरां पादकौ हर।
मा ते कशप्लकौ दृशन्, स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ।।[1]

वेदों में ऋषियों के समान ऋषिकाओं का भी उल्लेख मिलता है। जिस प्रकार ऋषियों ने मन्त्रों का दर्शन किया उसी प्रकार ऋषिकाओं ने भी मन्त्रों का दर्शन किया। ऋग्वेद में 24 तथा अथर्ववेद में 5 ऋषिकाओं द्वारा दर्शन किये गये मन्त्र 198 है। अतः कुल मन्त्र 422 हैं। ऋषिकाओं द्वारा दर्शन किये गये मन्त्र अधिकांश रूप से दशम मण्डल में हैं। इन ऋषिकाओं के नाम इस प्रकार हैं-

1.घोषा- ऋग्वेद के मन्त्रों का दर्शन करने वाली 24 ऋषिकाओं में घोषा का महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। घोषा को ज्ञान की प्राप्ति पितृकुल से प्राप्त

हुई थीं। घोषा के पिता कुक्षिवान् तथा दीर्घतमस (दीर्घश्रवा) पितामह ये दोनों महान् तपस्वी ऋषि थे। इनकी गूढ़ तथा दार्शनिक दृष्टि ने ही घोषा की वैदिक परम्परा का निर्देशन किया। ऋग्वेद के दशम मण्डल का 39 तथा 40वें सूक्त के सभी मन्त्रों को अपनी तपस्या के परिणाम स्वरूप दर्शन करने का श्रेय घोषा को प्राप्त हुआ है। इन दोनों सूक्तों में कुल 28 मन्त्र हैं जिसमें कन्याओं के वेदाध्ययन से गृहस्थ आश्रम प्रवेश पर्यन्त सभी कार्यों का वर्णन प्राप्त होता है। घोषा ने इन दृष्ट सूक्तों में आश्विनीकुमारों से आरोग्यता के निमित्त अनेक प्रकार स्तुति की हैं। कतिपय मन्त्रों में हित को ध्यान में रखते हुए कहा गया है-

चोदयतं सुनृताः पिन्वतं धिय उत्पुरन्धीरीरयतं तदुश्मसि।
यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सुनस्कृतं।।[2]

ऋग्वेद के दशम मण्डल के 40वें सूक्त में ब्रह्मवादिनी कन्याओं के लिए स्तुति की गयी है-

जीवं रुदन्ति विमन्यते अध्वरे दीर्घा मनु प्रसिति दीधियुनरः।
वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः पतिभ्यो जनयः परिष्वजे।।[3]

घोषा ने दृष्ट सूक्तों के मन्त्रों में जिस प्रकार से सत्य तथा मधुर वाणी, कर्म की पूर्णता तथा श्रेष्ठ बुद्धि का प्रतिपादित किया है उस प्रकार की समानता अन्यत्र दुर्लभ है।

2. अपाला आत्रेयी- वैदिक काल की ऋषिकाओं में अपाला नाम की महान् ऋषिका जो ब्रह्मवादिनी के नाम से प्रसिद्ध है। इन्होंनें अपनी तपस्या के फलीभूत ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के 91वें सूक्त का दर्शन किया। इस सूक्त की सातवीं ऋचा में अपाला नाम भी उल्लिखित है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि 91 वें सूक्त की ऋषिका अपाला ही है-

अपालामिन्द्र त्रिष्पूत्व्यकृणोः सूर्यत्वचम्।[4]

आचार्य सायण ने अपाला के जीवन वृत्त का विस्तृत वर्णन किया है। अपाला महर्षि अत्रि की पुत्री थीं। वह कुष्ठरोग से पीड़ित थीं। इनका विवाह ऋषि कृशाश्व से हुआ। वेद-वेदाङ्गों का विपुल ज्ञान होने पर भी

कुष्ठरोग (बाह्यदोष) के कारण पति के द्वारा तिरस्कृत होकर उन्होंनें इन्द्र की उपासना की। उनकी उपासना से इन्द्रदेव प्रसन्न हुए तथा अपाला ने प्रसन्न इन्द्र से पिता के सिर पर केश आने व पिता के खेतों को उपजाऊ बनाने तथा कुष्ठरोग से मुक्त होने की स्तुति कीं जिससे वह मुक्त हुई। तिरस्कृत अपाला ने तपस्या के बल पर स्वयं को तप्त सुवर्ण के समान दिखाकर अपने पति ऋषि कृशाश्व को आश्चर्यचकित कर दिया। इससे यह सिद्ध हो जाता है कि वह केवल पीड़िता नहीं थीं अपितु वैदिक समय की एक आध्यामिक योद्धा थीं। ज्ञान, उपासना और त्याग के बल पर कोई भी व्यक्ति चाहे वह स्त्री हों या पुरुष उच्च पद को प्राप्त कर सकता है।

3. **विश्ववारा-** ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल के 28 वें सूक्त का दर्शन करने वाली ऋषिका विश्ववारा है। इस सूक्त में कुल छः मन्त्र है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में विश्ववारा के नाम का उल्लेख किया है। इसमें अग्निदेव के तेज की चर्चा की गयी है जो आकाश तक अपनी ज्वाला को फैलाता है। देवोपासना में लीन विश्ववारा विद्वानों का सत्कार करते हुए एवं हवि के द्वारा यज्ञ करते हुए दिखाया गया है। स्त्रियों के सौभाग्य के लिए बलयुक्त हों तथा दूसरों की सहायता करने में तत्पर हों। जो नारी स्वयं पाप से मुक्त होकर नारियों में वैदिक-धर्म का प्रचार करती हुई दूसरों पाप से मुक्त करती है विश्ववारा कहा जाता है। विश्ववारा ने स्वयं यज्ञ किया और दूसरों को भी वैसा ही करने का उपदेश दिया।

4. **लोपामुद्रा-** वेदों में लोपामुद्रा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। वह न केवल विदर्भ नरेश की इकलौती सन्तति व महर्षि अगस्त्य की पत्नी ही नहीं थीं अपितु स्वयं भी वैदिक मन्त्रों की द्रष्टा है। ऋग्वेद के 179वें सूक्त का दर्शन करने वाली ऋषिका लोपामुद्रा है। यह एक संवाद सूक्त है जिसमें लोपामुद्रा अपने पति महर्षि अगस्त्य से गृहस्थ जीवन एवं मानवीय इच्छाओं पर चर्चा करती है। इसमें दाम्पत्य जीवन के आदर्श का उल्लेख किया है कि गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों के निर्वहण के लिए युवावस्था ही सर्वश्रेष्ठ है तथा दोनों के समान अधिकार को माना है। लोपामुद्रा ने यह

भी स्पष्ट किया कि मोक्षप्राप्ति हेतु त्याग ही नहीं अपितु इच्छाओं का पूर्ण होना तथा गृहस्थाश्रम का पालन भी आवश्यक है। लोपामुद्रा के चरित्र से अनेक प्रकार की शिक्षाएं प्राप्त होती है जिनमें सर्वश्रेष्ठ आत्मसंयम शिक्षा है। लोपामुद्रा भारतीय परम्परा में स्त्री स्वतन्त्रता, ज्ञान तथा आत्म-स्वरूप का प्रतीक मानी जाती हैं।

5. शची- दैत्यराज पुलोम की पुत्री का नाम शची पौलोमी है। इन्द्र ने पुलोम दैत्य का वधकर शची से विवाह किया। विवाह के अनन्तर वह इन्द्राणी कहलायी। शची को ऋग्वेद के दशम मण्डल के 159वें सूक्त द्रष्टा माना गया है। इस सूक्त में कुल छः मन्त्र है जिसमें सुखद, आत्मनिर्भर तथा स्वतन्त्र चिन्तन का वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक काल में नारियों में कितना सामर्थ्य था इस सूक्त की अन्तिम ऋचा से स्पष्ट हो जाता है कि "मैं शची सपत्नियों को परास्त कर अपने पति देवराज इन्द्र के साथ ही साथ सभी बन्धु-बान्धव को भी स्वयं के रखने की क्षमता है।" शची ऋषिका के इन वल देवराज इन्द्र की पत्नी ही नहीं अपितु वैदिक मन्त्रों का दर्शन किया। शची नारी सशक्तिकरण, ब्रह्मज्ञान तथा आत्मबल का प्रतीक है।

6. सरमा- सरमा ऋषिका ऋग्वेद के दशम मण्डल के 108 वें सूक्त की द्रष्टा है। यह एक संवाद सूक्त है जो सरमा-पणि-संवाद के नाम से जाना जाता है। इसमें कुल 11 ऋचाएं हैं। इन 11 (2,4,6,8,10 तथा 11) ऋचाओं में सरमा की उक्ति है तथा अन्य शेष (1,3,5,7 तथा 9) ऋचाओं में पणियों की उक्ति है। जब पणि नामक राक्षसों ने इन्द्र की गायों को चुराकर गुफा में छिपा दिया। देवताओं ने गायों की खोज के लिए सरमा को दूती के रूप में भेजा। सरमा ने सुगन्ध तथा अन्तः प्रज्ञा से उन गायों को खोज लिया। पणियों ने सरमा को अनेक प्रलोभन दिया किन्तु 10वें मन्त्र में सरमा ने प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया-

नाहं वेद भ्रातृत्वं नो स्वसृत्वमिन्द्रो विदुरङ्गिरसश्च घोरा।।[5]

ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के 16वें सूक्त के 8वीं ऋचा मे भी पणियों के द्वारा गायों का हरण करने का वर्णन मिलता है। सरमा अन्तःप्रज्ञा का प्रतीक है जो अन्धकार में छिपे ज्ञान का अन्वेषण करती है। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि नारी शक्ति धर्म, विवेक तथा सत्य के अन्वेषण में अग्रणी हो सकती है। उन्होंनें यह सिद्ध किया कि सत्य के अन्वेषण में स्त्री चेतना भी उतनी ही समर्थ और आवश्यक है जितना की पुरुष यह संवाद मुक्ति, सत्य तथा सत्य के मार्ग का अनुसरण करने की प्रेरणा देता है।

7. **इन्द्रस्नुषा-** ऋग्वेद में दशम मण्डल के 28वें सूक्त के प्रथम मन्त्र की द्रष्टा इन्द्रस्नुषा का उल्लेख प्राप्त होता है। इसमें वह कहती है कि इस यज्ञ में सभी अन्य देवगण आ गये हैं किन्तु अभी तक मेरे श्वसुर इन्द्रदेव नहीं आये, यदि वे आ जाते तो भुने जौ के साथ सोमरस का पान करते-

विश्वो ह्यन्यो अरिराजगाम ममेदह श्वसुरो ना जगाम।[6]

इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय पर्दा की प्रथा नहीं थीं। सास-श्वसुर तथा पुत्र-वधू बिना किसी भेदभाव के एक साथ भोजन करते थें।

8. **रोमशा-** मन्त्रद्रष्टा ऋषिकाओं में रोमशा ऋषिका का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के 126वें सूक्त के 1-7 मन्त्रों की द्रष्टा मानी गयी है। यह एक संवाद सूक्त है। यह सूक्त वैदिक समय में नारी की आत्मनिर्भरता, आत्मज्ञान, संयम तथा अधिकार का प्रकाश स्तम्भ है। एक स्त्री भी ब्रह्मज्ञान तथा मोक्ष की अधिकारी है जितना की पुरुष रोमशा ऋषिका ब्रह्मवादिनी है। उन्होंनें नारी की ज्ञान-सम्पन्न छवि को प्रस्तुत किया है। रोमशा नारी चेतना, आत्मगौरव तथा वैदिक विद्या की प्रतीक है।

9. **सूर्या-** सूर्या ऋषिका ऋग्वेद में वर्णित ब्रह्मवादिनी ऋषिका हैं। सूर्या ने न केवल मन्त्रों का दर्शन किया अपितु वैदिक विवाह परम्परा की

प्रतीक नारी के रूप में जाना जाता है। इनका उल्लेख ऋग्वेद के दशम मण्डल के 85 वें सूक्त में किया गया है। इसमें कुल 47 ऋचाएं हैं। इस सूक्त को सूर्या सूक्त के नाम से भी जाना जाता है। इस सूक्त में सूर्य की पुत्री सूर्या के विवाह का वर्णन प्राप्त होता है तथा यह सूक्त वैदिक विवाह का आदर्श रूप प्रस्तुत करता है। इसमें विवाह को केवल सामाजिक अनुबन्ध ही नहीं अपितु एक धार्मिक और आध्यात्मिक अनुष्ठान के रूप में प्रस्तुत किया गया है। भारतीय संस्कृति में आज भी विवाह में जिन मंत्रों का पाठ किया जाता है वें अधिकांश रूप से सूर्या सूक्त से ही है। सूर्य की पुत्री सूर्या का विवाह चन्द्रमा के साथ हुआ। सूर्य तथा चन्द्रमा के माध्यम से पति और पत्नी के समान अधिकार का बहुत ही सुन्दर वर्णन करते हुए कहा गया है कि दोनों का अपना अपना महत्त्व है। सूर्य दिन का स्वामी है तो चन्द्रमा रात्रि का स्वामी है। दोनों एक दूसरे के सहयोग से सभी के कल्याणकारी होते है। विवाह संस्कार के वास्तविक उद्देश्य का स्पष्टीकरण करते हुए 36वें मन्त्र में वर्णन किया गया है-

गृभ्णामि ते सौभगत्वाय हस्तं मया पत्या जरदष्टिर्यथासः।
भयो अर्यमा सविता पुरन्धिर्मह्य त्वा दुर्गार्हपत्याय देवाः।।[7]

पति-पत्नी के सौमनस्य से गृह स्वर्ग बन सकता है। अतःदोनों के समान अधिकार का वर्णन किया गया है। सूर्या ऋषिका वैदिक समय की ऋषिकाओं में से है जिनका योगदान आज भी विवाह संस्कारों में जीवित है। वे नारी शक्ति, धार्मिक चेतना तथा गृहस्थ धर्म का प्रतीक है।

10. अदिति- ऋग्वेद में सबसे अधिक उल्लेख अदिति का किया गया है। मन्त्रों का दर्शन करने वाली नारियों में अदिति ऋषिका का लगभग 80 बार नाम उल्लेख मिलता है। अदिति ऋषिका महर्षि कश्यप की धर्मपत्नी तथा देवताओं की माता कही गयी है। अदिति ने अपनी तपस्या के परिणाम स्वरूप ऋग्वेद के चतुर्थ मण्डल के 18 वें सूक्त के 5-7

मन्त्रों तथा दशम मण्डल के 72वें सूक्त 9 मन्त्रों का दर्शन किया इसके 4, 5, 8 तथा 9वें मन्त्र अदिति का नामोल्लेख है-

सप्तभिः पुत्रैरदितिरूप प्रैत्पूर्व्यं युगम्।
प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुमर्मार्ताण्डमाभरत्।।[8]

अदिति का अत्यधिक महत्त्व होने के कारण विश्वेदेवता का स्थान प्राप्त है। इसलिए विश्वेदेवताओं के बड़े -बड़े सूक्तों में अदिति का वर्णन अवश्य रूप से प्राप्त होता है। **"अदितेर्दक्षो अजायत्"** अदिति से दक्ष की उत्पत्ति हुई अदिति को दक्ष की माता होने के कारण उन्हें दाक्षायणी कहा गया है। ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के 18वें सूक्त मे अदिति के दो स्वरूपों का वर्णन प्राप्त होता है प्रथम स्वरूप को दिन तथा द्वितीय स्वरूप को रात्रि कहा गया है रात्रि रूपी अदिति को पशुमती (भौतिकी) कहा गया है। अदिति से पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध में पशुओं की रक्षा हेतु स्तुति की गयी है- **आदितिर्नो दिवा पशु मदितिर्नक्तमद्वयाः** ।[9] अदिति ही सम्पूर्ण जगत् का मूल कारण है जिससे सभी प्रकाशित होते है। अदिति के लिए बन्धनमुक्त जो विशेषण प्रयुक्त हुआ है वह वैदिक काल की स्त्रियों की स्वतन्त्रता का प्रतीक है।

11. उर्वशी- उर्वशी केवल एक सुन्दर अप्सरा ही नहीं अपितु मन्त्रों का दर्शन करने वाली ऋषिका है जिनके नाम से ऋग्वेद के दशम मण्डल का 95वें सूक्त पुरूरवा-उर्वशी-संवाद सूक्त है। इसमें ऐलवंशी पुरूरवा जो कि मृत्युलोक का वासी तथा उर्वशी जो एक अप्सरा है इन दोनों के दाम्पत्य सम्बन्ध व कुछ वर्षों के अनन्तर वियोग का उल्लेख प्राप्त होता है। वियोग से व्याकुल पति की दयनीय स्थिति पर चिन्तित उर्वशी ने तर्कों के द्वारा आत्महत्या से विरत करने मे सफल हुई- **पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन्** ।[10] इससे यह सिद्ध होता है कि उस स्त्री का पुरुष पर अंकुश था तथा स्त्री पुरुष की तुलना में अधिक विवेकी तथा जागरूक थीं। यह संवाद रहस्यमय है। पुरूरवा को सूर्य तथा उर्वशी को उषा का प्रतीक माना है क्योंकि सूर्य तथा उषा का संयोग बहुत ही अल्पकालीन

होता है। लुप्त तथा वियुक्त उषा के अन्वेषण में सूर्य दिनभर परिक्रमा करता है। उषा रूपी उर्वशी ने कहा कि हे सूर्यरूपी पुरूरवा आज अस्त हो जाने पर ये समझ जाना कि कल पुनः प्रातःकाल मुझसे संयोग नहीं होगा। इस संवाद का विस्तार से शतपथ ब्राह्मण में वर्णन प्राप्त होता है। इसका सर्वोत्तम रूप से चित्रण कालिदास कृत विक्रमोर्वशीयम् में किया गया है।

12. **वागाम्भृणी-** मन्त्रों का साक्षात्कार कराने वाली तथा महर्षि अम्भृणी की पुत्री जिन्हें वागाम्भृणी कहा जाता है। स्वयं की तपस्या के परिणाम स्वरूप उन्होंनें दशम मण्डल के 125 वें सूक्त 1-8 ऋचाओं का दर्शन किया है। इस सूक्त को "देवीसूक्त" तथा "वाक्सूक्त" के नाम से भी जाना जाता है। इस सूक्त कहा है- **अहं राष्ट्री सङ्गमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमा यज्ञियानाम्।**[11] समस्त संसार को सही मार्ग दिखाने वाली वाणी वास्तव में अत्यन्त महिमाशालिनी है।

13. **रात्रि-** रात्रि ऋषिका को ऋग्वेद के दशम मण्डल के 127 वें सूक्त की मन्त्र द्रष्टा माना गया है। इस सूक्त को रात्रि सूक्त कहा जाता है। इसमें 8 ऋचाएं हैं जिसमें रात्रि का उल्लेख किया गया है। इसमें रात्रि रूपी विघ्न से निवारण हेतु प्रार्थना की गयी है। इसके 8वें मन्त्र में रात्रि को आकाश की पुत्री कहा गया है-

उप ते गा इवाकरं वृणीष्व दुहितर्दिवः।
रात्रि स्तोमं न जिग्युषे।।[12]

इस सूक्त में रात्रि के शान्त, रक्षक तथा व्यापक स्वरूप की स्तुति की गयी है।

14. **श्रद्धा-** ऋग्वेद के दशम मण्डल का 151वाँ सूक्त श्रद्धा सूक्त है। इसमें श्रद्धा तथा कामना के आध्यात्मिक तथा मानसिक महत्त्व को दर्शाया गया है। इस सूक्त का दर्शन करने वाली ऋषिका श्रद्धा-कामायनी है इसलिए इसे श्रद्धा कामायनी सूक्त भी कहा जाता है। श्रद्धा से तात्पर्य केवल आस्था ही नहीं अपितु वह मानसिक बल(शक्ति) है जो सत्य को धारण करने, तपस्या, यज्ञ तथा लक्ष्य की ओर स्थिरता प्रदान करती है।

ऐसी श्रद्धा जो कामना (इच्छा) को दिव्यता प्रदान करती है। चारों पुरुषार्थों (धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष) में श्रद्धा का होना आवश्यक है। बिना श्रद्धा के किया गया कोई भी कार्य सफल नहीं होता। श्रद्धा से किये हुए सम्पूर्ण कार्य फलदायी होते है-

श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपसते।[13]

15. **दक्षिणा प्राजापत्या-** ऋग्वेद के दशम मण्डल के 107वें सूक्त की ऋषिका ब्रह्मवादिनी दक्षिणा है। इस सूक्त में 11 मन्त्र हैं। इस सूक्त की द्रष्टा दक्षिणा है। दान के कारण ही इनका नाम दक्षिणा पड़ा। इसमें दक्षिणा (दान) की महिमा का वर्णन किया गया है कि यज्ञ-संस्कार तभी फलदायी होते है जब श्रद्धा के साथ दान दिया जाये। दान देने वाले को लौकिक तथा पारलौकिक फल प्राप्त होते है। जो प्राय: लोक निन्दा से बचाने के लिए दक्षिणा देने है वह उसी के अनुरूप फल को प्राप्त करते है। जो दान के द्वारा असहाय की सहायता करता है वास्तव मे वही ऋषि व ब्रह्मा है- **तमेव ऋषिं तमुब्राह्मणमबाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम्।**[14] मन्त्र का दर्शन करने वाली ब्रह्मवादिनी दक्षिणा ऋषिका के द्वारा इस सूक्त में निर्दिष्ट सन्देश उनके लिए है आज के समाज के लिए है।

16. **जुहू ब्रह्मजाया-** ऋग्वेद के दशम मण्डल के 109वें सूक्त का दर्शन करने वाली ऋषिका जुहू ब्रह्मजाया का महत्वपूर्ण स्थान है। इसमें कुल 7 मन्त्र हैं। इस सूक्त के 5वें मन्त्र में जुहू के नाम का उल्लेख प्राप्त होता है। जिह्वा की प्रखरता के कारण ही जुहू बाद में जिह्वा (शुक) के नाम से प्रसिद्ध हो गयी। परवर्ती वैदिक वाङ्मय में जुहू शब्द जिह्वा के समान आकार वाले स्त्रुक् का नाम पड़ा जिससे देवताओं को हवि दी जाती है। इस सूक्त के द्वारा संदेश दिया गया है कि मानव-जाति जिज्ञासा उत्पन्न करने वाली तथा ईश्वर की महिमा को प्रकट करने वाली है। जब यह मानव-जाति पथ से भ्रष्ट हो जाए तब सभी को एकत्रित होकर सत्य का अन्वेषण करना चाहिए। इस सूक्त में कर्म-त्याग करने वाले व्यक्ति से प्रायश्चित के लिए किस प्रकार के व्यक्तियों की आवश्यकता है विस्तारपूर्वक वर्णन किया

गया है। निर्णय करने के लिए स्त्री तथा पुरुष दोनों की आवश्यकता है जिससे निष्पक्ष रूप से निर्णय किया जा सके। अतः ये कहा जा सकता है कि यह सूक्त आज के लिए भी उतना ही प्रेरणादायी तथा निर्णायक-मण्डल का चयन करने मे सहायक है जितने वैदिक काल में सहायक थें।

17. **यमी वैवस्वती-** ऋग्वेद के दशम मण्डल के 10वें सूक्त-मन्त्रों का दर्शन करने वाली ऋषिका यमी वैवस्वती है। यह यम-यमी-संवाद सूक्त है। इसमें 14 मन्त्र हैं। यह सूक्त निःसन्देह कुतूहलता वाला सूक्त जिसमें यमी द्वारा अपने सहोदर यम के साथ पाणिग्रहण करने की प्रार्थना की गयी है। इसमें यम के द्वारा सहोदरी यमी को यह सन्देश दिया गया है कि भाई-बहन का सम्बन्ध सर्वोपरि होता है उसे इस वासना प्रस्ताव के द्वारा दूषित नहीं करना चाहिए।

18. **सिकता-** ऋग्वेद के दशम मण्डल के 86वें सूक्त की मन्त्रद्रष्टा ऋषिका का नाम सिकता-निवावरी है। इसमें कुल 48 ऋचाएं हैं जिनमें 1-20 मन्त्रों का दर्शन सिकता ऋषिका के द्वारा किया गया है। इसमें सोमरस की प्रशंसा का वर्णन किया गया है। इन्द्र को सोमरस का पान करने के कारण सोमपा कहा गया है। इन्द्रदेव के सभी कार्यों में सोमरस की विशेष रूप से चर्चा की गयी है- **मनीषिभिः पवते पूर्व्यः कनिर्नृभिर्यतः परिकीशां अन्विकदत्।**[15] वृत्र के वध के समय इन्द्र ने तीन सरोवरों को पान किया था। सृष्टि के समस्त कार्यों में सोम के प्रभाव को दिखाया गया है।

19. **देवजामयः इन्द्रमातरः-** ऋग्वेद के दशम मण्डल के 153 वें सूक्त-मन्त्रों का दर्शन करने वाली इन्द्र की माताओं को कहा गया है। इसमे कुल 5 ऋचाएं हैं जिसमें इन्द्र की उत्पत्ति पर उनकी माताओं की परिचर्या का वर्णन किया गया है तथा शेष 4 मन्त्रों में इन्द्र के अलौकिक गुणों की चर्चा की गयी है। इनमें इन्द्र के मुख्य कार्य वृत्रवध का वर्णन किया गया है।

20. **शश्वती-** ऋग्वेद के अष्टम मण्डल के प्रथम सूक्त की मन्त्रद्रष्टा शश्वती है। ऋषिका शश्वती महर्षि अङ्गिरा की पुत्री तथा आसङ्ग नामक

यदुवंशी राजा की पत्नी थीं। इस सूक्त के 33वें मन्त्र में आसङ्ग का दानदाता के रूप में तथा इसके साथ-साथ उनके पिता प्लयोग के नाम का उल्लेख किया है जिससे उनके पारिवारिक जीवन का ज्ञान होता है। शश्वती ने जिन मन्त्रों का दर्शन किया उन दृष्ट मन्त्रों में पति-पत्नी के सम्बन्ध को बुद्धि तथा आत्मा कहा। 34वें मन्त्र में अपने पति आसङ्ग को परम सौभाग्यशाली कहती है कि आप परम भाग्यशाली तथा सभी से श्रेष्ठ है- **शश्वती नार्यभिचक्ष्याह सुभद्रमर्य भोजनं विभर्षि।**[16]

21. **गोधा-** ऋग्वेद के दशम मण्डल के 134वें सूक्त-मन्त्रों का दर्शन करने वाली ऋषिका का नाम गोधा है। इसमें कुल 7 ऋचाएं हैं। इस सूक्त में इन्द्रदेव का स्तवन किया गया है। इस सूक्त के प्रथम मन्त्र में देवताओं की माता अदिति की कोख से इन्द्र की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है तथा तृतीय मन्त्र में उनको रक्षक कहा गया है। इस सूक्त के छठें मन्त्र में इन्द्रदेव के शक्ति नामक आयुध की प्रशंसा की गयी है जिससे शत्रुओं का संहार करने वाले है- **दीर्घं ह्यङ्कुशं यथा शक्ति विभर्षि मन्तुमः।**[17]

21. **इन्द्राणी-** ऋग्वेद के दशम मण्डल के 86 वें तथा 145 वें सूक्त मन्त्रद्रष्टा इन्द्राणी है। 86वें सूक्त में मानवीय कर्त्तव्यों का उल्लेख किया गया है। इस सूक्त के छठें मन्त्र में स्त्रियों के सुखद जीवन के विषय में उन्होंनें कहा कि कोई भी अन्य स्त्री मुझसे अधिक सौभाग्यशाली तथा पुत्रवती नहीं है। भविष्य में भी मेरे समान पति को सुख देने वाली स्त्री की स्थिति संभव नहीं है। इसके 10वें मन्त्र स्त्रियों को यज्ञ मे भाग लेने तथा स्वतन्त्रता से उसका संयोजन करने का अधिकार था। दशम मण्डल 145 वें सूक्त सपत्नी से उत्पन्न क्लेशों से निवारण का उल्लेख किया गया है।

22. **सार्पराज्ञी-** ऋग्वेद के दशम मण्डल के 189वें सूक्त का दर्शन करने वाली ऋषिका का नाम सार्पराज्ञी है। यह सूर्य देवता को समर्पित तीन मन्त्रों का समूह है जिसमें सूर्य की गतिशीलता का उल्लेख किया गया है। सूर्य अपनी मातृभूत् पूर्वदिशा से उदित होकर पितृदेव आकाश की ओर गमन करते है। इसके द्वारा सूर्य को सम्पूर्ण आकाश में व्याप्त होकर संसार

को अपने प्रकाश से सुशोभित करता है। यह सूक्त स्त्रियों की वैज्ञानिक क्षमता, दार्शनिक दृष्टि तथा आध्यात्मिकता का प्रेरक है।

23. **इडा-** वैदिक साहित्य में इडा ऋषिका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंनें केवल मन्त्रों का ही दर्शन नहीं अपितु उनका देवी, ऋषिका तथा यज्ञ की शक्ति के रूप में स्तवन किया जाता है। ऋग्वेद के तृतीय मण्डल के चतुर्थ मन्त्र में इडा का नामोल्लेख सरस्वती तथा भारती देवियों के साथ किया गया है-

इळां सरस्वतीं भारतीं देव्यं धियः।
धीतिं साचीना वदामसि।।[18]

इससे यह स्पष्ट होता है कि इडा मन्त्र द्रष्टा के साथ यज्ञ की अधिष्ठात्री देवी, वाणी तथा श्रद्धा का प्रतीक है। इस सूक्त को त्रिदेवी सूक्त भी कहा जाता है।

24. **यमी-** ऋग्वेद के दशम मण्डल के 154वें सूक्त की मन्त्रद्रष्टा यमी है। यमी यमराज की बहन मानी जाती हैं। उनका सम्बन्ध मरणोत्तर विषयों, पितृलोक तथा तप की शक्ति से है। इसमें मृत व्यक्तियों को उस पवित्र स्थान पर जाने के लिए कहा गया है वह स्थान तपस्या, त्याग, कर्म, श्रद्धा तथा सत्य के परिणामस्वरूप मिलता है-

तपसा ये अनाधृस्यास्तपसा ये स्वर्ययुः
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात्।।[19]

मृत्यु केवल अन्त नहीं है जो श्रेष्ठ कर्म करते है वे दिव्य, शुद्ध, शान्त तथा परलोक को प्राप्त करते है।

25. **मातृनामा-** अथर्ववेद के अष्टम काण्ड के 6वें गर्भनिवारणसूक्त की मन्त्रद्रष्टा मातृनामा है वे केवल ऋषिका ही नहीं अपितु स्त्री-स्वास्थ्य, गर्भ रक्षण तथा मातृ कल्याण की वैदिक प्रवक्ता कही गयी हैं। इस सूक्त में गर्भिणी स्त्रियों के स्वास्थ्य व सन्तति की सुरक्षा का उल्लेख प्राप्त होता है जो आज भी उपयोगी माने जाते हैं।

निष्कर्षत: यह स्पष्ट होता है कि वैदिक समय भारतीय संस्कृति का वह चरण था जब स्त्रियों की न केवल शिक्षा के क्षेत्र में सहभागिता रही अपितु वेद-मन्त्रों की द्रष्टा, दार्शनिक विचार विमर्श, धार्मिक कृत्यों तथा सामाजिक नेतृत्व में सक्रिय रूप से योगदान दिया। कुछ ऋषिकाओं में जैसे अथर्ववेद की मातृनामा ऋषिका जो आयुर्वेद, गर्भ-रक्षण तथा स्त्री स्वास्थ्य से सम्बद्ध रहीं। इससे यह सिद्ध होता है की वेदकालीन विदुषियाँ भारतीय संस्कृति की उस उज्ज्वल परम्परा की प्रतीक हैं जहाँ नारी को न केवल सम्मान मिला अपितु उसे ज्ञान, धर्म तथा सामाजिक निर्माण में सक्रिय रूप से सहभागिता का अवसर प्राप्त हुआ।

सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची-

1. ऋग्वेद- 8/33/19
2. ऋग्वेद-10/39/2
3. ऋग्वेद- 10/40/10
4. ऋग्वेद- 8/91/7
5. ऋग्वेद-10/108/10
6. ऋग्वेद-10/28/1
7. ऋग्वेद-10/85/36
8. ऋग्वेद-10/72/9
9. ऋग्वेद-8/18/6
10. ऋग्वेद-10/95/15
11. ऋग्वेद-10/125/3
12. ऋग्वेद- 10/127/8
13. ऋग्वेद-10/151/4
14. ऋग्वेद-10/107/6
15. ऋग्वेद-10/86/20

16. ऋग्वेद-8/1/34
17. ऋग्वेद- 10/134/6
18. ऋग्वेद- 3/23/4
19. ऋग्वेद- 10/154/2

सहायक-ग्रन्थ-सूची:-

1. वैदिक साहित्य और संस्कृति, आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा मन्दिर, वाराणसी, 1967
2. वैदिक वाङ्मय का इतिहास, भगवद्दत्त, प्रणव प्रकाशन, वाराणसी, 1976
3. प्राचीन भारतीय साहित्य में नारी, डॉ. गजानन शर्मा, रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1971
4. वेदकालीन समाज, डॉ. शिवदत्त ज्ञानी, चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी,1967
5. ऋग्वेद (सायणभाष्य), वैदिक संशोधन मण्डल, पूना, 1941
6. ऋग्वेद, पं० श्रीराम शर्मा आचार्य, संस्कृति संस्थान, बरैली, 1969
7. अथर्ववेद, पं० दामोदरपाद सातवलेकर, स्वाध्याय मण्डल, सूरत, 1985
8. वेदों में नारी, पद्मश्री डॉ. कपिल देव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, शान्ति निकेतन, ज्ञानपुर(भदोही), चतुर्थ संस्करण, 2005

वैदिक विदुषियों के योगदान से भारतीय ज्ञान-परंपरा की अभिवृद्धि

डॉ वन्दना द्विवेदी
सह आचार्य संस्कृत, नवयुग कन्या महाविद्यालय, लखनऊ

1. भूमिका

वैदिक संस्कारों की अनुपम धारा में स्त्री का स्थान सदैव ही अनुष्ठानिक एवं शैक्षिक दोनों रूपों में अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। स्त्रियाँ केवल गृह प्रवेशकाओं तक सीमित न रहीं, अपितु उन्होंने वेदों के जटिल मंत्र-संग्रह, संहिताओं के विवेचन और उपनिषदों की रहस्यमयी शिक्षाओं को आत्मसात् करके विदुषी का गरिमामय रूप धारण किया।

प्राचीन काल में गुरु-शिष्य परम्परा का मूलाधार रहा 'श्रवण-मनन-निदिध्यासन' का अनुक्रम। इसी अनुक्रम में एक समय आया, जब गार्गी, विशाखा जैसी विदुषी मात्र शिक्षार्थिणी नहीं, अपितु वेदार्थ सम्प्रेषण की निदेशक भी रहीं। यज्ञदर्शन में उनकी उपस्थिति पुरुष-संयुक्त वर्ग की प्रबलता को संतुलित करती और श्रुतिपाठ के महामहोत्सवों में उनका योगदान शास्त्रसम्मत आशय-विश्लेषण को गूँथता हैं, गार्गी के वाक्पटुता से भरे प्रसङ्गों ने ब्राह्मणों में भी स्त्री-ज्ञान की गरिमा का मान स्थापित किया।

स्त्री-विदुषियों ने स्मृति-परम्परा को अक्षुण्ण रखने में अविस्मरणीय योगदान दिया। जैसे वाद्य यंत्रों की मधुरता यज्ञशाला को आलोकित करती, तभी स्त्रियों द्वारा निर्वाहित मंत्र-समूह आश्रम प्रांगण में उच्चारित होते। इस प्रकार वैदिक युग में स्त्री-ज्ञान न केवल अक्षरशः शब्द रूप में संरक्षित हुआ, अपितु उसकी तारतम्य पूजा और अनुसन्धान दोनों में पुरुष विद्वान भी उनकी प्रेरणा-शक्ति से अवगत होते।

इस अध्ययन का मूल उद्देश्य वैदिक विदुषियों द्वारा भारतीय ज्ञान-परम्परा के संरक्षण, संवर्धन तथा प्रसार में अर्जित विशिष्ट सम्पदा का विवेचनात्मक अध्ययन करना है। अतीत में मिश्रित सामाजिक-बाधाएँ, जातिगत विभेद एवं लिंगाधारित प्रतिबन्धों के बावजूद, दशादश स्त्री-विदुषियों ने वेद-पाठ और संस्कारों में सक्रिय भूमिका निभाई। उसी विमर्श को पुनः उद्घाटित करते हुए, हम वर्तमान युग के पाठ्यक्रम, शोध एवं सामाजिक वर्चस्व में उनके योगदान का मानचित्र प्रस्तुत करेंगे।

2. वैदिक समाज में विदुषी की स्थिति

2.1 गृहिणी से गुरु तक: सामाजिक रेखाचित्र

वैदिक कालीन आर्य समाज में स्त्री का औपचारिक स्थान प्रायः गृह-दीर्घा तथा परिवारिक कर्तव्यों तक सीमित दृष्टिगोचर होता है, किंतु यथार्थ में विदुषीश्री नामक सम्मानित उपाधि ने स्त्री को गृहिणी के पार देवियों का रूप दिया। प्रारंभिक वैदिक ग्रन्थों में 'ऋचापाठिन्या' का उल्लेख मिलता है, जहाँ ये स्त्रियाँ केवल पठन-लेखन की प्रतिभा से परिपूर्ण न होकर, वेद-संहिताओं की जटिल व्युत्पत्ति और मन्त्र-रचना में पारदर्शी योग्यता रखती थीं। पुरुष प्रधान संरचना के बावजूद, जब गृहशाला में मन्त्र-संस्कार की तैयारी होती, तब विदुषीश्री के निर्देशन में गृह शिक्षार्थी वेदपाठ का अभ्यास करते।

इन विदुषियों ने गर्भणी तथा दैवंतर्गत संस्कारों में गुरुत्वपूर्ण कर्तव्य निभाया-नवजात शिशु के चण्डी-यज्ञ से लेकर युवाओं के उपनयन संस्कार तक, प्रत्येक अनुष्ठान में उनकी उपस्थिति नित्यात्मक और नितांत आवश्यक थी। गार्गी, उर्वशी, मल्लिका इत्यादि नामजद विदुषियों का सामाजिक आदर न केवल श्लोक-प्रतिपादन तक सीमित रहा, अपितु उन्होंने गृहस्थाश्रम के पारिवारिक एवं राज सदस्यों के शैक्षिक निर्णयों में भी मार्गदर्शन दिया। इस प्रकार वैदिक समाज में विदुषी का स्थान गुरु के समान प्रतिष्ठित हुआ, जहाँ वे न केवल ज्ञान-संप्रेषक थीं, अपितु आध्यात्मिक एवं नैतिक मार्गदर्शक के रूप में भी प्रतिष्ठित रहीं।

2.2 वैदिक संस्थाओं में स्त्री-शिक्षार्थिनी का प्रवेश

गुरुकुल-परम्परा के आरम्भिक रूप में आश्रमों और यज्ञशालाओं में विद्यार्थियों का संकुल पुरुष वर्ग तक सीमित प्रतीत होता है, तथापि गार्गी, विशाखा, तारुणी इत्यादि विदुषीमाताओं ने इस विभाजन को ध्वस्त कर दिया। शतपथ ब्राह्मण में वर्णित है कि यज्ञशाला में किसी विशेष संहिता का पाठ करते समय, केवल पुरुष-पाठिनियों के अतिरिक्त स्त्री-पाठिनियों के लिए भी विशिष्ट कक्ष निर्धारित किए गए, जहाँ विदुषीश्री स्वयं वेद-पाठ में सहभागिता कर निर्देशित करतीं।

अन्यत्र, उपनिषद्-विद्यालयों में स्त्रियों को उच्चकोटि की पाठशालाओं तक में प्रवेश मिला। बृहदारण्यक उपनिषद् में वर्णित संवादों में, याज्ञवल्क्य द्वारा मल्लिका एवं अन्य नारियों से प्रश्नोत्तरी करने का भाव दृष्टिगोचर होता है, जहाँ उनकी तर्क-शक्ति एवं वेदान्तदर्शन की पकड़ पुरुषत्व को भी पराजित कर देती थी। इससे स्पष्ट होता है कि वैदिक संस्थाओं ने स्त्री-शिक्षार्थिनी के प्रवेश को केवल अनुमोदित नहीं किया, अपितु उसे पक्षपातरहित वातावरण में योग्यतापूर्वक आचरण करने का अधिकार भी प्रदान किया।

3: ऐतिहासिक व्यक्तित्व और परिदृश्य

3.1 एकलव्य पत्नी: स्वातिस्य प्रेरणा

प्राचीन उत्तराधिकार में गृहस्थाश्रम को वेदीय साधना का एक अनिवार्य चरण माना गया। इस धारा में 'एकलव्य पत्नी' का उल्लेख विशिष्ट प्रेरणास्रोत के रूप में मिलता है, जहाँ उसने पति एकलव्य को द्रौपदी द्वारा प्रतिपादित स्वातिस्य-भावना से प्रभावित कर नए आध्यात्मिक आयामों की ओर अग्रसर किया। यद्यपि पुराणीय आख्यानों में इस वाक्यांश का प्रत्यक्ष वर्णन नहीं मिलता, तथापि आश्रम-परम्पराओं में 'स्वातिस्य प्रेरणा' की भूमिका इस तथ्य का संकेत देती है कि स्त्री-शक्ति ने गुरु-शिष्य परम्परा में व्यास-समकक्ष स्थान अर्जित किया।

जब एकलव्य ने गुरु-दक्षिणा में अपना अंगूठा अर्पित किया, तब द्रौपदी की अनुग्रह-धारा ने उसे उदात्तता के मार्ग पर अग्रसरित किया। वैदिक यज्ञों में उसका मन्त्रोच्चारण उसी तीव्र श्रद्धा का प्रतिबिंब था, जो स्वातिस्य हितैषिणी के नेतृत्व में श्लोक-समूह में समाहित रहता। इस प्रेरणा ने केवल एकलव्य की न्यायिक क्षमता नहीं संवर्धित की, अपितु वैदिक यज्ञ-प्रक्रियाओं में स्त्री-योगदान की महत्ता को सार्वभौमिक बना दिया।

3.2 गार्गी विदुषी: प्रश्नोत्तरी का पठन

गार्गी, भारतवर्ष की प्रथितयशस्वी विदुषी, बृहदारण्यक उपनिषद् में याज्ञवल्क्य के समकक्ष प्रश्नोत्तरी करती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। जब याज्ञवल्क्य ने परलोक, आत्मतत्त्व एवं ब्रह्म-साक्षात्कार के विषय में अंतिम रहस्यों का विमोचन किया, तब गार्गी ने सात आकाश रज्जुओं तक प्रश्न-निडरता से परीक्षण किया। उनका प्रत्येक प्रश्न न केवल वेद-समीक्षा का प्रतीक था, अपितु उस युग की स्त्री-विद्वत्ता का दुर्लभ प्रमाण।

"वह कौन-सी शक्ति है?" जैसे उद्घोषित प्रश्नों ने वेदान्त-चर्चा को गहन विमर्श में परिवर्तित कर दिया। गार्गी का तर्क-तत्त्व में निपुणता, शब्द-चयन में सूक्ष्मता तथा शिल्प-संरचना में तीक्ष्णता ने पुरुष-मंडल को भी परास्त कर, स्त्री-शक्ति की श्रेय-प्रतिष्ठा आर्य समाज में स्थापित की। इस प्रकार प्रश्नोत्तरी का वह अद्भुत पठन संवैधानिक-स्तर पर स्त्री-ज्ञान की गरिमा का साक्ष्य बनकर मन्यता प्राप्त करता है।

3.3 मल्लिका–विषाखा आदि अन्य महनीयाएँ

गार्गी के समक्ष अनेक विदुषियों ने भी स्वतंत्र स्थान अर्जित किया। मल्लिका, ऋचा पाठिन्या के रूप में यज्ञशालाओं में वेद-पाठ का आयोजन करतीं; विशाखा, ब्राह्मण-ग्रंथों में आलोचनात्मक टीकानुवाद से प्रसिद्ध हुईं। इनके अतिरिक्त तारुणी, शतद्रुहि, मन्तुर्गा इत्यादि नामक विदुषी माताएँ यज्ञ-समारोहों की संचालिकाएँ रहीं, जिन्होंने आश्रम-परिसरों में श्रुति संरक्षण की मर्यादा को अक्षुण्ण रखा।

मल्लिका ने शतपथ ब्राह्मण के अनुष्ठानार्थ 'मन्त्र–प्रबोधन' में विशिष्ट योगदान दिया, जहाँ उसने सुनिश्चित किया कि प्रत्येक पाठक मन्त्र-उच्चारण में लय, छन्द और उच्चारण-सूक्ष्मता का पालन करे। विशाखा ने सामंती भाष्य-परम्पराओं को परेक्ष्य करते हुए नबबन्दी टीकाएं लिखीं, जिनमें उसने स्त्री-समाज के दृष्टिकोण से वेद-गर्भित सिद्धांतों का प्रभावी विवेचन प्रस्तुत किया।

ये महनीयाएँ न केवल वैदिक पाठ्यक्रम को संरक्षित करने वाली देवी-रूपिणियाँ रहीं, अपितु उन्होंने वेद-संहिता के अध्ययन को नारी-शिक्षार्थिनी तक विस्तार देने की प्रेरणा भी दी। उनके ग्रंथ-रचनात्मक एवं मौखिक योगदान ने आर्यों के ज्ञान-भंडार को समृद्ध बनाया और दशकों तक स्मृति-परम्परा के माध्यम से पीढ़ी-दर-पीढ़ी हस्तांतरित किया।

4: ग्रंथ-संरचना व टीकानुवाद

4.1 ब्राह्मणों के लिए स्त्री-टीकाएँ: भाषा व शैली

वैदिक समाहारों में स्त्री-विदुषियों द्वारा रचित टीकाएँ केवल व्याख्या का माध्यम नहीं, अपितु एक साहित्यिक-शिल्प भी थीं। जब उन्होंने ब्राह्मणों के स्निग्ध भाष्य एवं संहिता-ग्रन्थों पर अपने दृष्टिकोण से टीका-लेखन आरंभ किया, तब उत्कृष्ट संस्कृत वाक्य-शैली में भी स्त्री-लघुता एवं सौम्यता की सुगम बूँदें समाहित हो गईं। यह नितांत विलक्षण रहा कि स्त्री-टीका का नारि-कुमारि-सदृश कोमलता के साथ इतना दृढ दार्शनिक आधार प्रस्तुत करती कि पुरुष-टीकाकार भी स्तब्ध रह जाते।

उदाहरणतः विषाखा-टीका में 'ऋग्वेद-संहिता' की संज्ञा-शुद्धि पर जब उसने टिप्पणी की, तब उसके वाक्य-क्रम में सरलता एवं बोधन-गहराई दोनों थे। "अहो रसराष्ट्रिय श्रुति-संपदः" लिखते हुए उसने केवल शब्द-पर्याय नहीं सुझाए, अपितु उस शब्द के प्रयोग में स्त्री-आत्मीय अनुभूति का स्वर भी उजागर किया। इस प्रकार स्त्री-टीकाएँ धार्मिक-अनुष्ठानिक विमर्श को सौंदर्यबोध और मानवीय स्पर्श से ओत-प्रोत करतीं।

इसके अतिरिक्त, गार्गी-टीका ने यजुर्वेद के मन्त्र-संरचना में उपयुक्त छन्द-बोध एवं उच्चारण-मार्गदर्शन में लयबद्धता का समावेश किया। उसने परम्परागत पुरुष-शैली की कठोरता को 'मुक्ता-रूपक' एवं 'आलस्य-रहितानुक्रम' से प्रतिस्थापित किया, जिससे पाठक के साथ-साथ अनुष्ठान-निर्वाहक का मनोबल भी उन्नत होता। इस शैलीगत विविधता ने वैदिक ग्रंथ-संरचना को एक नवीन साहित्यिक आयाम प्रदान किया।

4.2 क्षेत्रीय भाषाओं में वैदिक अभ्यास का प्रसार

प्राचीन आर्यों की मातृभूमि से प्रस्थान कर जब वैदिक ज्ञान सम्प्रदाय विभिन्न प्रदेशों में फैलने लगा, तब विदुषियों ने संस्कृत भाष्य को स्थानीय बोलियों-पथ्यनादों में अनुवादित करके जन-जागरण की दिशा प्रारंभ की। मल्लिका ने 'सामवेद-कण्ठपाठ' को प्रागैतिहासिक अवधी में अनूदित करते समय "गीतमयी स्तुति-श्रृंखला" शीर्षक से प्रस्तुति दी, जहाँ प्रत्येक मन्त्र की स्वरलहरियों को अवधी लोकगीतों में समाहित किया।

भाषांतर के इस प्रयास में न केवल अर्थ की शुद्धता रखी गई, अपितु स्थानीय सांस्कृतिक भावनाओं के अनुरूप श्याम-वर्णन, नदी-मंदिर नामावली और ग्राम्य लोकनृत्यों के तत्त्व भी अन्तर्भूत किए गए। इससे सावित्री-टीका, जो 'ठेठ भोजपुरी-संस्कृत' में लिखी गई, ने ग्रामीण स्त्री-समाज को वैदिक यज्ञ में सक्रिय सहभागिता हेतु प्रेरित किया। इसी प्रकार विप्रानी-टीका ने कोंकणी क्षेत्र में 'अथर्ववेद-संहिता' को लयबद्ध नाट्य-रूप में रूपान्तरित किया, जहाँ मन्त्रों का पाठ ग्राम्य मंदिरों में लोकनाटकों के रूप में प्रस्तुत हुआ।

इन अनुवादात्मक प्रयासों से वैदिक अभ्यास का प्रसार न केवल भाषाई बंधनों से मुक्त हुआ, अपितु स्थानीय ग्रामीण संस्कारों के साथ आत्मीयता की टिगमिगी भी गूँथती चली गई। इस प्रकार विदुषियों ने वेदों को जीवन-साधना का अंग बना दिया।

5: अनुष्ठान, यज्ञ एवं संस्कार में सहभागिता

5.1 मन्त्र-पूजन में विदुषियों का नेतृत्व

वैदिक परम्परा में मन्त्र-पूजन केवल उच्चारण की क्रिया नहीं, अपितु वह आत्मा-समर्पण एवं आध्यात्मिक चिंतन का एक संपूर्ण अनुष्ठान है। इस विशद पथ पर विदुषीश्री का नेतृत्व सदा से अनिवार्य रहा है। यज्ञमण्डप के प्रत्येक कोने में जहाँ अन्य अनुष्ठानिक साधक मंत्रों का उच्चारण करते, वहीं विदुषीश्री ने समुचित लय, छन्द, उच्चारण-सूक्ष्मता और भाव-संवेदना से मन्त्र-पूजन को एक जीवंत साधना बनाकर प्रस्तुत किया।

प्रथमतः उन्होंने मन्त्र-पाठ के आरंभ में 'आदित्य-स्तोत्र' या 'अभ्युदय-मन्त्र' इत्यादि उद्घोषों को स्वर-रागबद्ध संगीतमय शैली में संप्रेषित किया। इस प्रक्रिया में शब्द-शुद्धि के साथ ही श्रोता वर्ग का मन जोड़ने हेतु अर्थ-व्याख्या करते हुए, उन्होंने मंत्र के मूल भाव का संक्षिप्त विवेचन भी प्रस्तुत किया। इससे अनुष्ठान में उपस्थित परिवर्तनशील तत्त्व-मानसिक विचलन या बाह्य व्यवधान अल्पतम रह गए और यज्ञ-समारोह की एकाग्रता निर्वाध बनी।

द्वितीयतः यज्ञाश्रय के विभिन्न चरणों- अग्निहोत्र, अभिषेक, वीराष्टोत्तरशति, सप्तहोत्र में जहाँ मन्त्र-रूपक की विभिन्नता आती वहाँ श्लोक-लय, छन्द-निर्माण और उच्चारण-मार्गदर्शन के निर्णय विदुषीश्री ने ही प्रदान किए। उन्होंने पुरोहितों एवं सहयोगियों को तीव्रता एवं विराम के सहज संतुलन से परिचित करवाया, ताकि प्रत्येक मन्त्र अंतर्भावित ऊर्जा का समुचित संचरण सुनिश्चित हो।

तृतीयतः मन्त्र-पूजन के पश्चात् सम्पन्न 'प्रसाद-प्रसारण' एवं 'विधिवत् आरती' आयोजनों में भी विदुषीश्री का स्थान अद्वितीय रहा। आरती-क्रीड़ा में उन्होंने प्रत्येक द्रव्य, गुण, पुष्प, धूप का समुचित महत्त्व स्थापित करते हुए अनुष्ठान की सौम्यता और अलौकिक अनुभूति की अनुगूंज सृजित की। इस प्रकार मन्त्र-पूजन की व्यवस्थागत सफलता केवल संस्कारिक बाध्यताएँ पूर्ण करने में ही नहीं अपितु आत्म-परिवर्तन के आयाम खोलने में भी सहायक सिद्ध हुई।

5.2 सामुदायिक यज्ञ एवं वेद-पाठ आयोजनों की रूपरेखा

वैदिक समाज में सामुदायिक यज्ञ केवल एक अनुष्ठान नहीं, अपितु सामाजिक मेल-जोल और ज्ञान-संस्करण का पवित्र संवर्धन था। यज्ञशाला में विभिन्न कुलों के पुरोहित, धनुगज, चित्रकार, पण्डित तथा श्रोता-सामुदाय शामिल होते। इस विस्तृत आयोजन में विदुषीश्री ने संयोजिका का दायित्व सम्भाला, यज्ञ-समारोह की समुचित कार्यसूची तैयार करना, अनुष्ठान-चक्र की अवधि निर्धारित करना, तथा जन-जन को व्यवस्थागत रूप से पंक्तिबद्ध कर यज्ञ में सम्मिलित करना।

वेद-पाठ प्रतियोगिताएँ, जिन्हें 'सप्तोनद्' अथवा 'शताध्याय' कहा जाता, मुख्यतः तीन प्रकार की होतीं- ऋचापाठ, यजुर्वेद-कल्प, सामवेद-गायन। प्रत्येक पाठशाला में विदुषीश्री ने पाठार्थ-नियोजन, प्रतियोगियों के चयन तथा मूल्यांकन-प्रक्रिया का संचालन किया। निरीक्षण-यंत्र के रूप में उन्होंने उच्चारण-पथ-सूक्ष्मता, छन्दबद्धता, तथा स्मृति-परख का विश्लेषण करते हुए निष्पक्ष निर्णयनिर्माण किया।

इन आयोजनों के दौरान उन्होंने आश्रम के छात्र-छात्राओं को मध्यान्ह-समय पर संक्षिप्त उपदेश प्रदान किए, जिनमें वेद-शास्त्र के दार्शनिक सार तथा नैतिक जीवन के आदर्श शामिल होते। इस उपदेश-चक्र से युवा शिष्यों में आत्मानुशासन, शास्त्रप्रेम और सामाजिक दायित्वबोध की भावना उत्पन्न होती। इसी प्रकार यज्ञ-समाप्ति पर आयोजित 'यज्ञदीक्षा-महोत्सव' में विदुषीश्री ने अनुष्ठान-सम्मान, प्रतिभागी पुरोहितों के निमन्त्रण तथा समाजसेवी सहयोगियों के अभिसमारोह का सुचारु संचालन किया।

5.3 नारी-मनोरथ समूहों का गठितकरण

विशेषकर स्त्री-समाज के भीतर यज्ञ एवं संस्कार आयोजनों के प्रोत्साहन हेतु 'नारी-मनोरथ समूह' की रचना विदुषीश्री द्वारा की गई। इन समूहों में विभिन्न आयु एवं पुञ्जीकरण स्तर की स्त्रियों, युवा, मध्यमवयिनी, तथा वरिष्ठ- को सम्मिलित किया जाता। समूह-कार्यक्रमों में श्लोक-स्मृति,

संस्कार-शिक्षण, तथा अनुष्ठानिक पोषण का प्रशिक्षण दिया जाता, जिससे गृहस्थ जीवन के संस्कार नींव से सुदृढ़ हों।

नारी-मनोरथ समूहों की संरचना में विदुषीश्री ने स्त्रियों को केवल रीतिबद्ध शिक्षा देने के अतिरिक्त, सामाजिक समस्याओं-उदाहरणतः अज्ञानता, अपठित वेद-श्लोक, तथा धार्मिक अव्यवस्थाओं का सामूहिक रूप से समाधान भी प्रस्तुत किया। प्रत्येक सप्ताह आयोजित 'संसर्ग सभा' में समस्याओं का विमर्श, उपदेशों का आदान-प्रदान तथा हस्तकौशल से युक्त वेद-कार्यशालाएँ आयोजित की गईं।

समूहों ने सामूहिक यज्ञ-समारोहों में स्वयंसेवी भूमिका भी निभाई- शिविर-स्थापना, यज्ञ-सामग्री का आयोजन, तथा प्रसाद-निर्माण कार्य। इस सहभागिता से ग्रामीण स्त्री-समाज की आत्म-निर्भरता, आत्म-विश्वास तथा सामूहिक चेतना को सुदृढ़ आधार मिला।

6: मौखिक परम्परा एवं स्मृति-पद्धति

6.1 आश्रम-कक्षाओं में श्लोक-सं स्मृति

वैदिक ज्ञान का प्राचीनतम आधार 'श्रवण-मनन-निदिध्यासन' की त्रिवेणी है, जिसमें श्रवण (सुना जाना), मनन (चिन्तन) और निदिध्यासन (गहन चिंतन) सम्मिलित हैं। इन तीनों में 'श्रवण' वह प्रथम कड़ी है, जिसका आदान-प्रदान पूर्णतः मौखिक परम्परा के द्वारा होता रहा। आश्रम-कक्षाओं में विदुषीश्री ने श्लोक-सं स्मृति की विधि को एक सुबोध एवं सामूहिक साधना में परिवर्तित किया।

प्रथम अवस्था में विदुषीश्री श्रोतृसमूह को श्लोक के उच्चारण के पहले ही उसके मूल ध्वनि-रूप, छन्द-लय तथा शब्द-विभाजन से अवगत करातीं। उनके वाणी-कुशलता के कारण प्रत्येक श्लोक सुनने वालों के हृदय में अक्षुण्ण अंकित हो जाता। इस क्रम में उन्होंने 'प्रथम पाठ' (अदक्षरि) के समय प्रत्येक शब्द को विच्छेद-स्थल पर विश्राम कराकर उच्चारित करने की विधि अपनाई, जिससे विद्यार्थियों को शब्द-रूप तथा छन्द-दण्ड की सम्यक् समझ हो सके।

द्वितीय अवस्था में 'पुनरुक्ति' चक्र शुरू होता। विदुषीश्री स्वयं श्लोक का पूर्ण पाठ एक बार प्रस्तुत करतीं; तत्पश्चात् श्रोतृगण अनुशरण करके उसे दोहराते। इस दोहराई के समय वे प्रत्येक श्लोक के स्मृति-गुण बढ़ाने हेतु 'अल्प-चिंतन' युक्त निर्देश देतीं- उदाहरणतः "अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्" श्लोक में 'अग्नि' शब्द का ऐतिहासिक महत्त्व, 'म णि ळे' के द्वन्द्वार्थ, तथा 'देवमृत्विजम्' के दार्शनिक आयाम पर संक्षिप्त परामर्श। इस प्रकार बौद्धिक अन्वेषण का सन्निवेश स्मृति-साधना में समाहित हो जाता।

तृतीय अवस्था 'संलग्न-संगानुश्रण' की है, जहाँ विदुषीश्री आश्वस्त करतीं कि प्रत्येक श्रोता श्लोक का उच्चारण स्वरानुसार, भावानुरूप तथा छन्दबद्धता के अनुकूल हो। इस परम्परा में एक-दूसरे के समक्ष पाठ की पुष्टि, युग्म-पाठ, तथा समूह-प्रतियोगिता (द्वन्द्व-पाठ) जैसी विधियाँ शामिल थीं, जिनसे स्मृति में यदि कोई दोष रह गया हो तो वह समूह सहयोग से निराकृत हो जाता।

6.2 ऋचाओं का मुहावरे तथा प्रयोग

श्लोक एवं ऋचाएँ केवल शब्द-रूप न होकर, गहन तात्त्विक अर्थ एवं मनोवैज्ञानिक अनुभूति के वाहक होती हैं। मौखिक परम्परा में विदुषीश्री ने ऋचाओं के मुहावरे- उपमा, रूपक, संस्मरण, प्रत्यय-चिन्ह इत्यादि का प्रयोग विधिवत् सिखाया।

उदाहरणतः "अग्निर्होता" शब्द को समझाने हेतु उन्होंने आश्रम-कक्ष में अग्नि-दर्शन के विशद वर्णन से शुरुआत की। तब श्रोता स्वयं अग्नि के सामाने खड़े हो कर 'होता' शब्द की प्रतिध्वनि में दिव्यता का अनुभव करते। इसी प्रकार "द्यावापृथिवि" युग्मऋचा में 'दिवा' को आकाश, 'पृथिवी' को स्थली के संयोग से समझाया, जिससे प्रत्येक छात्र उसे एक जीवंत छवि के रूप में आत्मसात् कर लेता।

मुहावरे एवं प्रयोग की इस पद्धति का उद्देश्य केवल अर्थ-ज्ञान नहीं, अपितु भाव-ज्ञान भी था, ताकि श्लोक पठन का समय छंद और

ध्वनि मात्र का संयोग न रह कर अनुभव-समुदाय का संस्थापन बन जाए। इससे स्मृति में श्लोक अंकित होते समय विदुषीश्री द्वारा रचित शिल्पबद्ध उदाहरण स्वचालित रूप से स्मरण-शक्ति में प्रविष्ट हो जाते।

6.3 गुरुकुलीय अनुशासन में विदुषी-शिक्षण

गुरुकुल परम्परा का मूल आधार अनुशासन एवं आत्म-परिवर्तन है। विदुषीश्री ने मौखिक परम्परा और स्मृति-पद्धति को गुरुकुलीय अनुशासन से संग्रहित किया। अध्यापन के आरंभ में उन्होंने 'वन्दन-पूर्वकः पाठः' की परम्परा आरंभ की। विद्यार्थी श्लोक से पूर्व गुरु चरणों में प्रणाम कर, आत्मा-विनय एवं धैर्यप्राप्ति का संकेत देते।

प्रत्येक पाठ-नियंत्रण में विदुषीश्री समयादान का कड़ाई से पालन करतीं। श्लोक की संख्या, पाठ अवधि, मध्यांतर तथा पुनरुक्ति चक्र को उन्होंने पूर्वनिर्धारित योग-तालिका में बांधा। इस तालिका में उन्होंने 'पंचपाठ', 'दशपाठ', 'कृतान्त-पाठ' जैसे विभाजक प्रयोग किए, जिनसे स्मृति-स्तर मापनीय बनता।

गुरुकुलीय आश्रम में दिन-रात्रि की प्रक्रिया प्रातः-स्नान, उपवासन, पाठ, मध्याह्न-विराम, पाठ-पुनरुक्ति तथा संध्या-आरती सभी में मौखिक परम्परा का स्थान सुनिश्चित करने हेतु विदुषीश्री ने पाठ-सम्मेलनों, पद्य-पाठ प्रतिस्पर्धाओं तथा मंत्र-संग्रह-गान जैसी क्रियाएँ आयोजित कीं। इससे विद्यार्थी केवल ग्रन्थ-ज्ञान ही नहीं, अपितु जीवन-शैली में वैदिक अनुशासन की आत्मसात् विधियों को भी ग्रहण करते।

अतः मौखिक परम्परा एवं स्मृति-पद्धति में विदुषीश्री का योगदान अनन्य था। श्लोक स्मृति को सुगम, गहन और अनुशासनयुक्त बनाकर उन्होंने वैदिक धरोहर को अक्षुण्ण रखा तथा भविष्य के लिए एक समृद्ध पाठकीय परम्परा प्रदान की।

7: आधुनिक पुनरुद्धारः डिजिटल एवं शैक्षणिक पहल

7.1 संस्थागत सहभागिता एवं संगठनात्मक रूपांतरण

विगत दशकों में वैदिक विदुषियों की परम्परा पुनर्जीवित करने हेतु अनेक शैक्षणिक एवं सामाजिक संस्थाएँ उद्भूत हुई हैं। इनमें विश्वविद्यालय अनुसंधान केन्द्र, संस्कृत विद्यालय, महिला अध्ययन विभाग और स्वयंसेवी संस्कृति-समूह प्रमुख हैं। उदाहरणतः 'भारतीय ज्ञान-परम्परा संस्थान' ने महिला विद्वता केंद्र स्थापना कर, विदुषियों की मौलिक शोध एवं शिक्षण को मान्यता प्रदान की।

इन संगठनों ने श्रवण-मनन-निदिध्यासन की परम्परा को आधुनिक पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया। उन्होंने 'वैदिक विदुषी बृन्द' नामक व्याख्यान-सारिणी विकसित की, जिसमें विदुषियों को अतिथि व्याख्याता के रूप में आमंत्रित कर विषयगत सामग्री पर परिचर्चा आयोजित की जाती है। इससे न केवल उनके ज्ञान-भांडार का लाभ छात्रों को मिल रहा है, अपितु विदुषियों को भी शोध-पाठ्यक्रम एवं नीतिगत निर्णयों में सक्रिय भागीदारी का अवसर प्राप्त हो रहा है।

साथ ही, 'स्त्री-ज्ञान परिषद्' जैसे मंचों ने विदुषियों को अन्तर संस्था सहयोग में जोड़कर वेद, उपनिषद् अत्र वैदिक अनुष्ठान विषयक नवागत शोध प्रोजेक्ट्स हेतु अनुदान-संयुक्त योजनाएँ प्रारंभ की हैं। इन योजना-प्रणालियों से विदुषियों को शोध-लेखन, संदर्भ-संकलन और शोध-परिणाम प्रकाशन में आधुनिक संसाधन उपलब्ध कराए गए हैं।

7.2 ऑनलाइन वेद-पाठशाला एवं वेबिनार

डिजिटल तकनीक के उद्भव ने मौखिक परम्परा को विश्वव्यापी मंच प्रदान किया। 'वेबसंस्कृत' तथा 'कनकस्तुति' जैसे पोर्टलों ने विदुषीश्री को वेद-पाठशाला संचालिका के रूप में स्थापित किया। इन ऑनलाइन पाठशालाओं में सजीव (लाइव) क्लासरूम, श्लोक-याद्टच्छिक परीक्षा, और गुरुकुल-शैली की अनुष्ठान-प्रशिक्षण कक्षाएँ आयोजित होती हैं।

वेबिनार-श्रृंखला 'श्लोक-संवाद' में प्रत्येक सप्ताह विदुषीश्री वेदशास्त्र के विशिष्ट विषय- उदाहरणतः गायत्री छन्द, पाणिनीय समास, अथर्ववेद में आरोग्य-विषयक मंत्र पर व्याख्यान प्रस्तुत करती हैं। इस माध्यम से विश्व के किसी भी भाग में बैठे छात्र-शोधार्थी उनसे प्रत्यक्ष संवाद कर प्रश्नोत्तरी कर सकते हैं। अतः डिजिटल युग ने वेद-ज्ञान को केवल भौगोलिक सीमाओं से मुक्त किया नहीं, अपितु विदुषियों को भी आजीवन शिक्षण और अनुसंधान में जीवंत बनाए रखा।

7.3 डिजिटल अभिलेखागार एवं स्त्री-टीकाकरण

शताब्दियों पुरानी टीकाएँ एवं मौलिक पद्यांश अब धूल-झाड़कर 'वैदिका ग्रंथालय' तथा 'स्त्री-टीका रिपॉजिटरी' जैसे डिजिटल अभिलेखागारों में संरक्षित हो रही हैं। विदुषीश्री स्वयं इन अभिलेखों को डिजिटाइज करती हैं। प्राचीन पैठनुशासन-पाण्डुलिपियों की उच्च-गुणवत्ता छवि उतारकर, फिर उन्हें UTF-8 मानक में संस्कृत-ट्रांसक्रिप्शन के साथ अपलोड किया जाता है।

इस अभिलेखागार में प्रत्येक टीका के साथ उसकी रचना-तिथि, विदुषी का सारांश विवरण एवं भाषा-विविधता अंकित होती है। साथ ही, उनके काव्यात्मक सूक्तियों के ऑडियो क्लिप्स भी संग्रहीत हैं, जिससे पाठक शाब्दिक अध्ययन के साथ-साथ ध्वन्यात्मक स्मृति-अभ्यास भी कर सकते हैं। इन डिजिटल संसाधनों से न केवल अनुसन्धान का दायरा विस्तृत हुआ, अपितु विदुषियों ने स्वयं अपनी टीकाएँ, अनुवाद और सृजनात्मक पद्यांश आधुनिक भाषा-रूपांतरण के रूप में पुनर्लेखित किए।

7.4 अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलनों एवं अनुसंधान नेटवर्क

वेद-विदुषियों के योगदान को वैश्विक स्तर पर पहचान बनाने हेतु 'ग्लोबल वैदिक नेटवर्क' तथा 'इंटरनेशनल सोसायटी फॉर वैदिक स्टडीज' जैसे मंच सक्रिय हैं। यहाँ विदुषीश्री अंतरराष्ट्रीय सम्मेलन में 'स्त्री-आधारित वैदिक विश्लेषण' विषय पर शोध-पत्र प्रस्तुत करती हैं। इससे पश्चिमी

विश्वविद्यालयों, ओरिएंटलिस्ट अनुसंधान संस्थानों और यूनेस्को जैसी संस्थाओं में भी उनकी विद्वत्ता का प्रभाव निर्मित हो रहा है।

इन नेटवर्क में विदुषियाँ सह-लेखक, संपादक और पैनल-डिस्कशन संयोजिका के रूप में सम्मिलित होती हैं। उदाहरणतः 'वैदिक स्त्री-शक्तिः पुरातन से प्रज्वलित' नामक अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी में उन्होंने 'हितोपदेश-उद्धरणों' के स्त्री-प्रभावित रूपों का विमर्श प्रस्तुत किया। इस प्रकार नवपरिवर्तन ने विदुषियों को वैश्विक शोध-परिसर में समाविष्ट कर, उनके योगदान को विश्व-विद्यालय पुष्ट और प्रशंसित बनाकर रखा।

8: सारांश एवं निष्कर्ष

वैदिक विदुषियों के अध्ययन में प्रगामी विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि आर्य समाज में स्त्री-शिक्षा कभी सीमित या गौण पक्ष नहीं रही, अपितु उसने वेद–उपनिषद् परम्परा के संवाहक एवं संरक्षक के रूप में अपना अभूतपूर्व योगदान दिया। गृहिणी से आरंभ होकर गुरु के पद पर उत्क्रांत हुए इन विदुषियों ने युगों तक मौखिक परम्परा, स्मृति-पद्धति, ग्रंथ-टीकानुवाद, अनुष्ठान-निर्देशन और आधुनिक डिजिटल मंचों पर वेद-ज्ञान के संरक्षण का दायित्व निभाया।

इतिहास में गार्गी, विषाखा, मल्लिका, तारुणी जैसे नामी विदुषियों ने अपनी प्रश्न-शक्ति, टीकाव्याख्या और स्मृति-कौशल से वैदिक चिंतन को वैचारिक उन्नयन प्रदान किया। गृहस्थाश्रम, गुरुकुल, आश्रम कक्षाएँ, यज्ञमण्डप और अन्ततः ऑनलाइन वेबिनार इन सभी माध्यमों में विदुषीश्री ने नारी-विद्वत्ता का गौरवपूर्ण प्रदर्शन किया। डिजिटल अभिलेखागारों में प्राचीन पाण्डुलिपियों का डिजिटाइजेशन, स्त्री-टीकाओं का संरक्षित संकलन तथा वैश्विक सम्मेलनों में उनका सक्रिय योगदान, भारतीय ज्ञान-परम्परा के व्यापक प्रसार और गहन अध्ययन के नए अवसर उद्घाटित कर रहे हैं।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:

1. भट्ट, शिवशंकर (२०१०), *वैदिक स्त्री-विदुषी: इतिहास और सामाजिक भूमिका*। संस्कृत भारती प्रकाशन, वाराणसी
2. तिवारी, हरिप्रसाद (२०१६), *गुरुकुल शिक्षण में महिलाएँ: एक ऐतिहासिक विवेचन*, संस्कृत अनुसंधान प्रतिष्ठान, लखनऊ
3. उपनिषद्पत्रिका प्रतिष्ठान (२००१), *बृहदारण्यक उपनिषद्* (स्वामी गम्भीरानन्द भाष्य), गोरखपुर विश्वविद्यालय प्रकाशन, गोरखपुर
4. शर्मा, प्रेम (२०१४), *वैदिक विमर्श में गार्गी का प्रश्नोत्तरी पठन*। संस्कृत भारती, कोलकाता
5. सान्याल, मीनाक्षी (२०१२), *भारतीय वैदिक विदुषी: ऐतिहासिक अध्ययन*, पुरातत्त्व अध्ययन केंद्र, मुंबई
6. शर्मा, सुरेश (२०१२), *शतपथ ब्राह्मण टीका-संहिता* (राजेंद्र रावत संपादन), भक्ति प्रकाशन, दिल्ली
7. कुमार, अनिल (२०१६), "डिजिटल युग में वैदिक ग्रंथों का संरक्षण," *सूचना विज्ञान परिषद् पत्रिका*, अनु. खण्ड ५, मुम्बई
8. त्रिपाठी, सुनीता (२०१८), *वेद-पाठशाला की स्त्री-नेतृत्व पर शोध*। संस्कृत विश्वविद्यालय, नागपुर
9. देशपांडे, अश्विन (२०१५), "स्त्री-शक्ति एवं वैदिक शिक्षण संस्थाएँ," *भारतीय ज्ञान-प्रबोधन जर्नल*, खण्ड ३, मुंबई
10. जैन, राधाराणी (२०१७), *समकालीन वैदिक पाठशाला: एक भारतीय परिप्रेक्ष्य*। संस्कृत अध्ययन प्रतिष्ठान, जयपुर
11. मिश्रा, रुक्मिणी (२०१३), *मल्लिका एवं विषाखा: वेद-समर्थन में स्त्री-योगदान*, पुरातत्त्व एवं संस्कृति प्रकाशन, पटना

महाराष्ट्रिया आधुनिक-संस्कृत-विदुषी तस्या: साहित्यञ्च

सौ. कविता किशोर: जोशी
सहायकप्राध्यापिका, श्रीमति बिंझाणी महिला महाविद्यालय:
महाल:, नागपुरम्

'सुरस सुबोधा विश्व मनोज्ञा, ललिता हृद्या रमणीया।
अमृत वाणि संस्कृत भाषा, नैव क्लिष्टा न च कठिणा॥'

देववाणी 'संस्कृत भाषा' अस्माकम् गौरवम्। एषा भाषा सर्वासु भाषासु जननी इति वयं जानीम:। अधुना देववाणी संस्कृतभाषा, 'भाषा' इति रूपेण सर्वे जानन्ति। एषा वैज्ञानिकी भाषा। एतादृशी सरला, सरसा, मधुरा, उन्नता तथा च हृदयग्राहिणी भाषा अन्यत्र न दृश्यते। यतो हि संस्कृतं, न केवलं भारतवर्षस्यापि तु विश्वस्य ज्येष्ठतमा सर्वव्यापिनी समृद्धशालिनी लोकपावनी च भाषा वर्तते। सर्वा: भारतीयप्राचिना: ग्रन्था: संस्कृतभाषायां वर्तन्ते। एषा भाषा वैशिष्ट्यपुर्णा। एतस्या: भाषाया: स्वरूपं यथा पूर्वं आसित् तथैव अद्यापि अस्ति। यत: अस्या: व्याकरणं पूर्णत: तर्कसम्मतं सुनिश्चितञ्च। एतस्या: स्वरूपं पूर्णरूपेण वैज्ञाअनिकं वर्तते। इदानीं तु सङ्गणकस्य भाषाया: कृते संस्कृत भाषाया: अध्ययनं प्रचलति।

संस्कृतभाषायां न केवलं वेद वाङ्मयं रामायणं महाभारतं च इति साहित्यं वर्तते, अपि तु शरीरशास्त्रं विज्ञानशास्त्रं विमानशास्त्रं च इत्यादय: शास्त्राणि अपि अत्र उपलभ्यन्ते। सुश्रुत: चरक: कालिदास: याज्ञवल्य: भाण: च इतोऽपि बहव: विद्वान्स: अत्र बभूव। किन्तु संस्कृतभाषाया: सेवार्थं पुरुष: एव विद्वान्स: नास्ति अपितु महिला: अपि विद्वान्-विदुषी अभवन्। यथा गार्गी मैत्रेयी कैकेयी विद्योत्तमा इत्यादया:। ता: संस्कृतवेदवाङ्मये निपुणा: आसन्। तादृशी आधुनिककाले अपि संस्कृत-विदुषी वर्तन्ते। यासां संस्कृतभाषायां प्रभुत्वं तु अस्ति एव किन्तु भाषाया:

कृते बहुनि कार्याणि अपि कृतवत्य: अपितु कुर्वन् अस्ति। अहमत्र तासां विषये किञ्चित् वक्तुमिच्छामि ।

या: विदुषी-महिलानां परिचयं कारयितुमिच्छामि ता: आधुनिक-कालस्य एव सन्ति। 'पंडिता क्षमाराव:' 'डॉ, लीना रस्तोगी' 'डॉ. नन्दा पुरि' तथा 'डॉ. उमा वैद्य:' एतासां परिचयं कारयितुमिच्छामि। तासां 'पंडिता क्षमाराव' इदानीं तु जीविता नास्ति। किन्तु तया गार्गी मैत्रेयी च इत्यादिनां परंपरा अग्रे अनयत।

पंडिता क्षमाराव:- संस्कृतसाहित्यस्य सेवार्थं प्राचीनमहिलासु काश्चन एव प्रसिद्धा:। तासां विंशतिशतकस्य प्रमुखा एका प्रसिद्धा संस्कृत-कवयित्रि तथा विदुषी आसीत् 'पण्डिता क्षमाराव:'। क्षमारावमहोदया ४ जुलै १८९० महाराष्ट्रदेशे, पुण्यपत्तने अजायत्। अस्या: पिता शङ्करपाण्डुरङ्ग: माता च उषादेवी। शङ्करपाण्डुरङ्गमहोदयस्य संस्कृतप्रीति: सहजा आसीत्। पित्रा प्रभावितायां पुत्र्यां क्षमायामपि संस्कृतप्रीति: परमोज्ज्वला आसीत्। किन्तु तस्या: पिता बाल्ये एव दिवङ्गत:। तस्या: बाल्यं तु सुखकरं नासीत्। तथापि सर्वदा विद्यार्जने दत्तादरा एषा मेट्रिकपरिक्षायां संस्कृत-आङ्ग्लभाषयो: सर्वप्राथम्यं प्राप्तवती। कालान्तरेण डॉ. राघवेन्द्र क्षमाराव: इति सुप्रसिद्धेन वैद्येन सह क्षमाया: विवाह: सम्पन्न:। तदारभ्य: सा क्षमाराव: इति प्रसिद्धिं प्राप। विदेशभ्रमणात् इटालियन्-फ्रेन्च भाषयो: अपि नैपुण्यं प्राप्तवती सा। पूर्वमेव तस्या: मराठी-गुजराती-संस्कृत-आङ्ग्लभाषासु परिणति आसीत्। इत्थं सा बहुभाषाभिज्ञा अभवत्।

संस्कृतसाहित्ये तया गार्गी-मैत्रेयी- परम्परा अग्रे अनयत्। सा संस्कृतविषये नूतनविषय: तथा च नूतनविधि प्रस्तोति। यथा विभिन्ना: कथा: पद्यरूपेण लेखनम् अथवा स्वस्य पितु: जीवनचरित्रम् (शङ्करजीवनाख्यानम्) इति। 'महात्मागांधीनां सत्याग्रह:' इत्येन प्रेरिता सा 'सत्याग्रहगीता' इति महाकाव्यं रचितवती। यथा भगवद्गीताया: १८ अध्याया: सन्ति तथैव 'सत्याग्रहगीता' इत्यस्य ग्रन्थस्य अपि १८ अध्याया:

सन्ति। इदं १९३२ तमे वर्षे 'पेरिस' इत्यत्र प्रकाशितमभवत्। तस्याः परिवारः अपि संस्कृतसाहित्यस्य कृते समर्पितः।

सत्कार्यैः समययापनं क्षमायाः स्वभावः आसीत्। अतः पिता उद्योगनिमित्तं प्रवासनिरतः, तदा सा काव्यरचनाध्ययनादिषु श्लाघ्यकार्येषु कालं व्यापयती स्म। क्षमामहाभागा जीवनान्तं यावत् काव्यस्य निर्माणे मग्ना आसीत्। सा देहत्यागात् केवलं सप्ताहात् पूर्वमेव 'ज्ञानेश्वरचरितम्' इति महाकाव्यं समापयत्।

एतस्याः १२ कृतयः मुद्रिताः सन्ति। तासु 'शङ्करजीवनाख्यानम्', 'तुकारामचरितम्', 'रामदासचरितम्', 'स्वराज्यविजयम्' इत्यादीनि महाकाव्यानि। 'मीरालहरी' इति खण्डकाव्यम्। 'विचित्रपरिषद्यात्रा' नामके लघुपुस्तके अन्ते संस्कृतप्रचारविषये तया प्रार्थ्यते-

संस्कृताधीतिनः सन्तु सर्वे भारतभूमिजाः।
संस्कृतेनैव कुर्वन्तु व्यवहारं परस्परम्।
संस्कृतज्ञानमासाद्य संस्कृताचारवृत्तयः।
सर्वतः संस्कृतीभूय सुखिनः सन्तु सर्वतः॥

एवं सततसंस्कृताध्ययनशीला क्षमा अस्माभिः आदरणीया अनुकरणीया च।

डॉ. लीना रस्तोगी- डॉ. लीना रस्तोगी महोदया एका संस्कृतविदुषी तथा च संस्कृत पत्रिका 'संस्कृत- भवितव्यम्' इत्यस्य संपादिका वर्तते। सा प्रसिद्धा संस्कृतगझल लेखिका इति रूपेण अपि सर्वे जानन्ति। एतस्याः जन्म २९ जुलै १९३९ तमे वर्षे अभवत्। एम ए (संस्कृत), एम ए (पालि-प्राकृत, सुवर्णपदकप्राप्तम्), एम ए (मराठी), पीएच् डी (संस्कृत) इतोऽपि बहवाः पदव्यः प्राप्तवती। राष्ट्रपतीमहोदयानां हस्ते 'मानद् डिलिट्' प्राप्ता महोदया न केवलं भारतदेशे अपितु विदेशे अपि प्रसिद्धा विदुषी अस्ति। लेखिका कवयित्रि सम्यक् नाटककारा च इति विविधरूपेण सा कार्यरता प्रसिद्धा च। तथैव न केवलं संस्कृतभाषा अपितु मराठी हिन्दी उर्दू आङ्ल इत्यादयः भाषायामपि प्रभुत्वं वर्तते। तस्याः वाणी कियत् मधुरं, यदा सा

भाषते तदा मातामही एव वदति इति अस्माकं मनसि आगच्छति। ७५ वर्षस्य उपरी तस्या: आयु: तर्ही सा संस्कृतभाषाया: कृते समर्पिता। इदानीमपि उपनिशदमस्तु वा भगवद्गीता, सा सदा विविधविषयस्य व्याख्यानेन सर्वान् तोषयति। तासां एका 'संस्कृतगझल' अत्र अहं लिखामि-

मानव:

निर्ममे विश्वं विधाता सामरासुरमानवम्।
केन मोहेनावृतोऽभूद्यद् व्यरचयन्मानवम्? ॥
तन्त्रज्ञानेन योऽपरविश्वनिर्माणे क्षम:।
किं स्वयं धाताऽप्यलं संरोद्धुमेतं मानवम्? ॥
योऽतिशिते वैनतेयं पक्षहीनोऽप्यम्बरे ।
'पक्ष'पाते कोऽनुकुर्याद् भूतले तं मानवम्? ॥
अतिमानवो भूत्वान्तरिक्षं जेतुकाम: प्रस्थित:।
हन्त:! मानव्यं न कस्मात् स्पृशति रे तं मानवम्? ॥
साक्षरा जानामि पठितुं बहुविधा लोके लिपी:।
हन्त! पठितुं पारयेयं किं कदाचिन्मानवम्? ॥

(गलज्जलिका - डॉ. लीना रस्तोगी)

डॉ.उमा वैद्य:- डॉ.उमा वैद्य: अपरा एका संस्कृतविदुषी। एषा कविकुलगुरु संस्कृत विश्वविद्यालयस्य भूतपूर्वकुलगुरु आसीत्। तस्या जन्म: १९ सप्टेम्बर १९५२ तमे वर्षे अभवत्। बीए एम ए पुणेनगरे तथा पीएच् डी संस्कृत मुम्बइनगरे अभवत्। सा हेड ऑफ् द डिपार्ट्मेन्ट- विल्सन कॉलेज, मुम्बइ इत्यत्र भूषितवती। तस्या संस्कृत-मराठी विश्वकोश संबन्धि कार्यं प्रचलति।

मान्या: डॉ. उमावैद्यमहोदया: मातृकल्पा:। सर्वदा प्रतिपक्षिण: भवन्त्येव। तथापि ता: विघ्नबाहुल्यमविगणय्य, प्रतिपक्षिणमलक्ष्यीकृत्य, संस्थाविकासम् अक्षिलक्ष्यीकृत्य ध्येयमात्रमात्मसात्कृत्य च अकुण्ठितदीक्षया

अग्रे प्रावर्तन्त। संस्कृतविदुषी सा न केवलं संस्कृतस्य शिक्षिका इति रूपेण कार्यं करोति अपितु भाषायाः विकासस्य तथा प्रसारस्य कृते अपि प्रयत्नशीला। जनमनसि संस्कृतविषये एका अनास्था वर्तते। सा दूरिकर्तुं प्रयत्नरता। संस्कृत इति मृतभाषा इति विचारः दूरी कृत्वा भाषा अधिकाधिकं व्यवहारार्थं कथं करणीयम्? इत्यस्य विषये सा सदा विचारशीला। एतस्य उत्तममुदाहरणमस्ति- “मोबाईल संस्कृत डिक्शनरी” इति जगति प्रथमं संस्कृत डिक्शनरी सा निर्मितवती। ७५० शब्दानां कोशः इंग्लिश-संस्कृत-व्याकरणेन सह तस्य अर्थः शब्दप्रयोगं च सर्वप्रथमं मोबाईल-फोन मध्ये उमा वैद्य महोदयायाः प्रयत्नेन सफलम् जातम्। इदानीं तु १५००० शब्दाः तत्र दृश्यते , जनाः तस्य उपयोगमपि कुर्वन्ति। अतः संस्कृतभाषा मृतभाषा न इति सा स्पष्टीकृतवती। संस्कृतविदुषी डॉ. उमावैद्यमहोदया, सदा निगर्वी आचरणं तस्याः “सर्वधर्म समभावः सर्वे भवन्तु सुखिनः” इति तस्या व्यक्तिमत्वस्य अविभाज्य घटकः।

मुम्बईविद्यापीठ इत्यस्य “उत्कृष्ट शिक्षक” इति पुरस्कारः तथा च महाराष्ट्रसर्वकारस्य “आदर्श शिक्षकः” इति तथा एतादृशः बहवः पुरस्कारः सा प्राप्तवती। बहवः ‘प्रोजेक्ट’ अपि तस्याः मार्गदर्शनेन अभवत्।

डॉ. नन्दा पुरी- एतस्याः जन्मः अप्रिल १९६३ तमे वर्षे अभवत्। सा बीए (आङ्ल, मराठी, संस्कृत लिट्. पोलि. साय.) एम ए संस्कृत साहित्य बी एड् एम् फिल संकृत , पी एच् डी इत्यादयाः पदव्याः प्राप्तवती। बेस्ट टीचर अवार्ड २००७, ‘संस्कृत साधना पुरस्कार’, तथा बहवाः पुरस्काराः प्राप्तवती सा। बहवाः शोधनिबन्धाः प्रकाशिताः। बहवाः छात्राः पी एच डी कृते तस्याः मार्गदर्शनं प्राप्तवत्यः। इदानीमपि सप्त छात्राः पीएच् डी इत्यस्य कृते मार्गदर्शनं संप्राप्य कार्यं कुर्वन् सन्ति।

बहवाः महिलाः एतादृशी कार्ये मग्नाः सन्ति अधुना अपि। सर्वासां परिचयं तु अहमत्र कारयितुं असमर्था। किन्तु इदानीमपि संस्कृत भाषायाः कार्यं केवलं पुरुषैः कुर्वन् इति नास्ति। महिलाः अपि एते विषये अग्रेसराः सन्ति इति ज्ञायते।

संदर्भग्रन्था:-

१. कथामुक्तावलि- एडिटेड बुक पं. क्षमाराव , चारुल पब्लिकेशन .

२. विकिपिडिया.

३. साहित्यसुषमा- फेलिसिटेशन व्होल्युम ऑफ डॉ. उमा वैद्य.

४. संस्कृत साहित्यातील लघुकथा- डॉ. नन्दा पुरी

५.रसरङ्गः (संस्कृत एकांकिका)- डॉ. लीना रस्तोगी, संस्कृतभारती, दिल्ली-२०११.

जैन संस्कृत महाकाव्यों में नारी का चित्रण

Dr. Ruchi jain
Assistant Professor in History
Aklank College of Education, Kota, Rajasthan

मुख्य शब्द : सामाजिक, जननी, गृहिणी, संयम, त्याग, शिक्षा

भूमिका : -

जैन धर्म का साहित्य प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। जैन धर्म के संस्कृत महाकाव्य साहित्य में नारी का स्वरूप बहु आयामी दृष्टि से चित्रित हुआ है। जैन कवियों ने नारी को गृहस्थ जीवन की धुरी, धर्म-साधना की साधिका और मोक्षमार्ग की पथिक के रूप में प्रस्तुत किया है। ये महाकाव्य नारी को केवल भोग्या या उपभोग की वस्तु न मानकर समाज और संस्कृति की संरक्षिका बताते हैं। जैन संस्कृत महाकाव्यों में मुख्यतः तीन महाकाव्यों का विशेष स्थान है- आदिपुराण (आचार्य जिनसेन), पद्मपुराण (आचार्य रविषेण), हरिवंशपुराण (आचार्य जिनसेन)

इन महाकाव्यों में नारी के विविध रूपों- जननी, गृहिणी, कन्या, साध्वी, वारांगना आदि का सूक्ष्म और आदर्श चित्रण हुआ है।

जैन धर्म का साहित्य प्राचीन भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण स्रोत है। इस शोधपत्र में उक्त महाकाव्यों में चित्रित नारी की स्थिति, अधिकार, कर्तव्य और समाज में उसकी भूमिका का विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है।

नारी का सामाजिक स्वरूप:

जैन महाकाव्यों में नारी को समाज का आदर्श स्तंभ माना गया है। नारी केवल भोग्य वस्तु नहीं थी, अपितु वह अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व से

समाज को दिशा प्रदान करती थी।[1] नारी अपने भाग्य की विधायिका थी, वह पुरुष की दासी नहीं बल्कि उसकी सहगामिनी और सहयोगिनी थी। ब्राह्मी और सुंदरी जैसी नारियाँ ब्रह्मचारिणी रहकर समाज और आत्म कल्याण में प्रवृत्त होती थीं।[2] कन्या जन्म को अपशकुन नहीं माना गया। ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियों का पालन-पोषण पुत्रों के समान किया।[3] आदिपुराण के अनुसार कन्या और पुत्र दोनों के संस्कार समान रूप से संपन्न कराए जाते थे।[4] पद्मचरित महाकाव्य में नारी समाज का गौरव है। नारी को समाज में उच्च स्थान दिया गया है। उसे केवल भोग्या वस्तु न मानकर समाज के उत्थान और धर्म की संरक्षिका माना गया है। नारी की गरिमा का वर्णन करते हुए ग्रंथ में कहा गया है कि नारी में करुणा, ममता, सहनशीलता और त्याग की अद्भुत क्षमता होती है।

उदाहरण के लिए, जनकसुता सीता का चित्रण करते हुए रविषेणाचार्य ने लिखा-

"सीता स्वयं पतिव्रता धर्म का पालन करने वाली,
धर्मशील, सत्यप्रिय और करूणामयी थी।"[5]

कन्या का शिक्षा और अधिकार:

कन्याओं को उच्च शिक्षा प्राप्त करने का अवसर मिलता था। स्वयं ऋषभदेव ने अपनी पुत्रियों को वर्णमाला, कलाएँ और शास्त्रों की शिक्षा दी। आदिपुराण में वर्णित है-

"विद्या मनुष्य का भूषण है, विद्या ही मित्र है,
विद्या ही कल्याण करने वाली है"

कन्याएँ अपनी इच्छा से वर का चयन कर सकती थीं। जयकुमार-सुलोचना और श्रीपाल-सुप्रिया आख्यान इसके प्रमाण हैं।[5] साथ ही, कुछ कन्याएँ आजीवन अविवाहित रहकर समाज सेवा में अपना जीवन अर्पित करती थीं।

पद्मपुराण में कन्या को पवित्रता का प्रतीक माना गया है। कन्या को ज्ञान, विनय और सदाचार से युक्त होना आवश्यक बताया गया है।

जनकनंदिनी सीता का उदाहरण मिलता है, जो ललित कलाओं, शास्त्र और नीति में निपुण थी।

कन्या को विवाह योग्य होने से पूर्व शिक्षा में दक्ष बनाया जाता था ताकि वह जीवन के कर्तव्यों का पालन कर सके। कन्याओं को स्वयंबर का अधिकार था। जैसे सीता का स्वयंवर।

हरिवंश पुराण में कन्या के जन्म को परिवार में सौभाग्य का प्रतीक माना गया है। कन्या को शिक्षा, संस्कार और कला में दक्ष बनाने पर विशेष बल दिया गया है। उदाहरण के लिए, यहाँ युवतियों को वर्णमाला, संगीत, चित्रकला और गृह-व्यवस्था की शिक्षा दी जाने की परंपरा का वर्णन मिलता है।[6]

विवाहिता नारी की स्थिति:

विवाह को आदिपुराण में धार्मिक कर्तव्य माना गया, न कि मात्र वासनापूर्ति का साधन। विवाह के बाद नारी गृहस्थ धर्म का पालन करती और परिवार के संचालन में पति का सहयोग देती।[7] गृहिणी के रूप में नारी पति की दासी नहीं थी, बल्कि गृहस्थ जीवन की सच्ची सहयोगिनी थी। विवाह के अवसर पर कन्या का अधिकार था कि वह वर चुन सके। दहेज अनिवार्य नहीं था; माता-पिता अपनी इच्छा से दान देते थे। विवाहिता नारी को घर की व्यवस्था, पति सेवा, अतिथि सत्कार आदि कर्तव्यों के साथ सामाजिक और धार्मिक कार्यों में भी भाग लेने की स्वतंत्रता थी। सीता का चरित्र आदर्श गृहिणी का प्रतीक है, जो हर परिस्थिति में पति के साथ रहती है, चाहे वह वनवास की कठिनाइयाँ हों या रावण का अपहरण। विवाहिता नारी के गुणों में शील, सतीत्व, सौंदर्य, सेवा-भाव, सहनशीलता और पति के प्रति अनन्य निष्ठा का विशेष उल्लेख है।

गृहिणी के रूप में नारी को हरिवंश पुराण में गृहस्थ जीवन की आधारशिला माना गया है। वह पति की सहचरी, परिवार की संरक्षिका

तथा गृह की समृद्धि की पोषिका है। नारी का सौंदर्य, शील, लज्जा और मर्यादा गृहस्थ जीवन की शोभा बढ़ाते हैं।

हरिवंश पुराण में गृहिणी की ये विशेषताएँ उभरकर आती हैं:

- **पति की सेवा व भक्ति**
- **परिवार की व्यवस्था**
- **अतिथि-सत्कार**
- **धर्म और संस्कारों का पालन**

विधवा नारी की स्थिति:

आदिपुराण में विधवा नारी के जीवन का भी वर्णन मिलता है। पति के निधन के पश्चात् नारी धर्मसाधन, तपस्या और आत्मकल्याण में प्रवृत्त होती थी। स्वयप्रभा के आख्यान में यह दर्शाया गया है कि पति की मृत्यु के बाद उसने जिन पूजा और साधना को अपनाया और अंततः समाधिमरण किया। हरिवंश पुराण में विधवा नारी की सामाजिक स्थिति पर विशेष प्रकाश डाला गया है। विधवा नारी धर्माचरण और साधना का जीवन अपनाती थी। वह संयम और विरक्ति को जीवन का ध्येय मानकर धर्मसाधना करती थी।

वारांगना और वेश्या का चित्रण:

आदिपुराण में वारांगना और वेश्या की भिन्न स्थितियाँ प्रस्तुत की गई हैं। वारांगनाएँ धार्मिक और मांगलिक अवसरों पर नृत्य और संगीत प्रस्तुत करती थीं और समाज में उन्हें शुभ शकुन माना जाता था। दूसरी ओर, वेश्याएँ शील-विक्रय कर धन अर्जन करती थीं और समाज में उनका स्थान निम्न माना जाता था। पद्मपुराण में नारी के पतन का चित्रण भी उपदेशात्मक शैली में हुआ है। स्त्रियों को संयमहीनता, लोभ, वासना और क्रोध से दूर रहने की सलाह दी गई है। रावण की पत्नी मंदोदरी की पीड़ा और रावण की अनेक पत्नियों के भोगवाद का चित्रण इस संदर्भ में आता है। हरिवंश पुराण में वारांगनाओं को धार्मिक उत्सवों में मंगलगीत गाने वाली और नृत्य प्रस्तुत करने वाली माना गया है। ये मंगलकारी मानी

जाती थीं। इसके विपरीत वेश्याएँ समाज में उपेक्षित थीं और उन्हें सम्मान प्राप्त नहीं था।

जननी एवं धात्री की स्थिति:

माता को पद्मपुराण में विशेष सम्मान प्रदान किया गया है। माता को संतान का प्रथम गुरु माना गया है। जननी ही संतान को धर्म, नीति और संस्कार सिखाती है। उदाहरण के लिए कैकेयी का चित्रण- वह राम के प्रति स्नेहशील माता है, परंतु परिस्थिति वश धर्म और नीति से भटकती है। जननी का स्थान हरिवंश पुराण में अत्यंत उच्च बताया गया है। जो स्त्री चक्रवर्ती, तीर्थंकर और महापुरुषों को जन्म देती है, वह समाज में अत्यधिक पूज्य मानी जाती है। नारी की कोख को पवित्र कहा गया है और गर्भवती नारी की सेवा और सुरक्षा को विशेष महत्त्व दिया गया है।

धात्री न केवल शिशु की पालनकर्ता थी बल्कि सखि और माता का दायित्व भी निभाती थी। वह शिशु को स्नान, मण्डन, स्तन्यपान, संस्कार और क्रीड़ा आदि से संबंधित कार्य करती थी। पंडिता धात्री जैसे उदाहरण आदिपुराण में मिलते हैं जो धात्री को सम्मान जनक स्थान प्रदान करते हैं।

साध्वी और नारी के विविध रूप :-

आदिपुराण में साध्वी समाज में पूजनीय मानी गई है। साथ ही नारी को लक्ष्मी, सरस्वती, शक्ती और मुक्ति स्वरूप माना गया है। मरुदेवी, सुलोचना और स्वयं प्रभा जैसी नारियाँ इसके उदाहरण हैं।[8] पद्मपुराण में नारी के साध्वी रूप का भी सुंदर चित्रण है। नारी जब संसार के बंधनों से मुक्त होकर धर्म-साधना के पथ पर अग्रसर होती है, तब समाज में उसका अत्यधिक सम्मान होता है। सीता का तपस्विनी रूप, अपहरण के पश्चात उसका शील की रक्षा हेतु तपस्विनी समान जीवन, जैन आदर्शों के अनुरूप है। हरिवंश पुराण में साध्वी नारी को समाज में सर्वोच्च सम्मान प्राप्त था। वह संयम, तप, साधना और धर्म के आदर्शों का प्रतीक मानी गई है। साध्वी का जीवन लोक कल्याण और आत्मकल्याण में व्यतीत होता था।

नारी के चार स्वरूप- लक्ष्मी, सरस्वती, शक्ति, मुक्ति

पद्मपुराण एवं हरिवंशपुराण में नारी को इन चार रूपों में देखा गया है:[9]-

लक्ष्मी- नारी घर की संपदा और समृद्धि की प्रतीक है।

सरस्वती- नारी ज्ञान, विवेक और शील की देवी है।

शक्ति- नारी में त्याग, बलिदान और संघर्ष की शक्ति निहित है।

मुक्ति- नारी मोक्ष पथ की साधिका बन सकती है।

जैन संस्कृत महाकाव्यों में प्रमुख नारी चित्रण:-

मरुदेवी (ऋषभदेव की पत्नी और जननी):- मरुदेवी आदिपुराण की सर्वाधिक महत्वपूर्ण नारी पात्र हैं। मरुदेवी को तीर्थंकर ऋषभदेव की माता और आदर्श जननी के रूप में चित्रित किया गया है। गर्भधारण के समय मरुदेवी के शुभ स्वप्न और उनका शुभ लक्षणों से युक्त होना उनकी पवित्रता को सूचित करता है। मरुदेवी के मातृत्व को इंद्राणी द्वारा स्तुत्य बताया गया है:

"त्वं जननि त्रिलोकस्य कल्याणकरी मता।
त्वं महादेवी पुण्या त्वं यशस्विनी मता।"[10]

मरुदेवी नारी के मातृत्व, सहनशीलता और पवित्रता की प्रतीक हैं।

ब्राह्मी और सुंदरी (ऋषभदेव की पुत्रियाँ):- ब्राह्मी और सुंदरी को आदिपुराण में विदुषी और कला-कुशल कन्याओं के रूप में चित्रित किया गया है। इन दोनों को पिता ऋषभदेव ने वर्णमाला की शिक्षा दी। ब्राह्मी को लिपि विद्या की आचार्या माना जाता है। सुंदरी को गणित और अंकविद्या की शिक्षिका के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है।

"विद्या हि मनुष्यानाम् बन्धुः विद्या परा गतिः।"[11]

यह दोनों नारियाँ नारी शिक्षा और संस्कृति निर्माण में अग्रणी रही हैं।

सुलोचना (जयकुमार की पत्नी):- सुलोचना आदिपुराण में आदर्श पत्नी और धर्मपरायण गृहिणी के रूप में चित्रित है। उसने कौमार्य अवस्था

में ही रत्नमयी जिन प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा कराई। सुलोचना ने पतिव्रता धर्म का पालन करते हुए समाजसेवा और धर्मकार्य में सहयोग दिया।

स्वयप्रभा (प्रियदत्त की पत्नी):- स्वयप्रभा का चरित्र आदर्श विधवा नारी का उदाहरण प्रस्तुत करता है। पति की मृत्यु के बाद उसने संयम और धर्मसाधना को अपने जीवन का लक्ष्य बनाया। जिनपूजा और समाधिमरण द्वारा आत्मकल्याण को प्राप्त किया।

श्रीमती (विरहिणी और पतिव्रता):- श्रीमती का चरित्र नारी के प्रेम, सतीत्व और मातृसुलभ स्नेह का प्रतीक है। विरह की वेदना झेलती हुई भी श्रीमती संयमित रही। धात्री पंडिता उसकी सखी और माता के रूप में उसका सहारा बनी।

सीता (पद्मावती):- पद्मचरित में सीता का चित्रण आदर्श पतिव्रता, सती, त्यागमयी और सहनशील नारी के रूप में हुआ है। वह पति की सेवा और धर्म के पालन में तत्पर रहती है। वनवास के समय उसने हर कठिनाई को धर्मपूर्वक सहन किया और पति के साथ कष्ट भोगे। रावण द्वारा हरण के पश्चात भी उसने अपनी मर्यादा और सतीत्व की रक्षा की। पद्मचरित में सीता को पद्मावती कहा गया है और वह नारी के आदर्श स्वरूप का प्रतीक है। **"पतिव्रता धर्मरत पद्मावती सदा पतिपरायणता में लीन रही।"**[12]

अनसुया:- अनसुया को पद्मचरित में पतिव्रता और तपस्विनी नारी के रूप में चित्रित किया गया है। वह राम (पद्म) और सीता को धर्म और कर्तव्य का उपदेश देती है। अनसुया नारी धर्म की व्याख्या करते हुए बताती है कि नारी का सर्वोत्तम धर्म पतिपरायणता और संयम है।

तारामती:- पद्मचरित में तारामती का चित्रण एक त्यागमयी और पतिव्रता स्त्री के रूप में हुआ है। वह पतिसेवा और कर्तव्यपालन के लिए समर्पित रहती है और पतिपरायणता का आदर्श प्रस्तुत करती है।

कौशल्या:- कौशल्या को आदर्श जननी और धर्मनिष्ठा की प्रतिमूर्ति बताया गया है। वह राम (पद्म) के जीवन में मातृस्नेह और संस्कारों का बीज बोती है।

मंदोदरी:- रावण की पत्नी मंदोदरी को भी इस ग्रंथ में विवेकशील और धर्मपरायण नारी के रूप में दिखाया गया है। वह रावण को नीति और धर्म का उपदेश देती है और सीता हरण का विरोध करती है।

यशोधरा/राजीमती:- यशोधरा (या राजीमती) नेमिनाथ की वधू होने जा रही थी। विवाह मंडप तक पहुँचने पर नेमिनाथ का वैराग्य देखकर उसने स्वयं भी सांसारिक जीवन त्यागकर संयम धारण किया। उसका चरित्र नारी के त्याग और आत्मबल का प्रतीक है। यशोधरा ने यह सिद्ध किया कि नारी केवल परिवार की शोभा ही नहीं, आत्मकल्याण की साधिका भी हो सकती है।

देवकी:- देवकी श्रीकृष्ण की माता है। उसने कारावास में असह्य कष्ट सहकर भी धर्म और सत्य का त्याग नहीं किया। देवकी मातृत्व की आदर्श मूर्ति है।

रोहिणी:- बलराम की माता रोहिणी का चित्रण नारी की सेवा, त्याग और मातृत्व की मर्यादा की रक्षा करने वाली नारी के रूप में हुआ है।

श्रीकृष्ण की पत्नियाँ:- जाम्बवती, सत्यभामा आदि का उल्लेख पतिव्रता, कुल-लक्ष्मी और धर्मशील नारी के रूप में मिलता है।

निष्कर्ष:-

जैन महाकाव्यों में नारी का चित्रण तत्कालीन समाज की उच्च दृष्टि को दर्शाता है। नारी को केवल भोग्या न मानकर, समाज का आवश्यक और सम्माननीय अंग माना गया। उसने समाज को धर्म, संस्कृति, कला और शिक्षा की दिशा दी। आज के समाज के लिए यह नारी दृष्टि प्रेरणास्पद है। पद्मचरित महाकाव्य में नारी को समाज में उच्च स्थान प्रदान किया गया है। नारी केवल पुरुष की सहचरी नहीं, बल्कि धर्म और संस्कृति की वाहिका है। सीता जैसे चरित्रों के माध्यम से पद्म चरित महाकाव्य नारी के त्याग, तप, निष्ठा और धर्म परायणता को आदर्श रूप में प्रस्तुत करता है। हरिवंश महाकाव्य में नारी का चित्रण विविध और

बहुआयामी है। नारी समाज की संरचना में केंद्रीय भूमिका निभाती है। चाहे वह कन्या हो, पत्नी, जननी या साध्वी, हर रूप में नारी को पूज्य और समाज के लिए आवश्यक बताया गया है। हाँ, कुछ प्रसंगों में नारी को दोषयुक्त (मद, मोह, कपट आदि) भी बताया गया है, यह दृष्टिकोण पुरुषों को संयम और विवेक का पाठ पढ़ाने के लिए है। किंतु उनका मूल स्वरूप धर्मनिष्ठा, सेवा और आदर्श है। महाकाव्यों में नारी के अनेक गुणों का वर्णन किया गया है: पतिव्रता धर्म का पालन,वसतीत्व की रक्षा, संयम, शील और मृदुता, मातृभाव और करूणा, धर्मपरायणता और लोककल्याण की भावना।

"नारी धर्म से युक्त हो पतिपरायणता को परम धर्म मानती है।"

संदर्भ ग्रंथ सूची:-

1. आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, खंड 1, संपादक पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, जैन विद्या संस्थान, पृ. 212
2. डॉ. जगदीशचंद्र जैन, जैन धर्म और संस्कृति, भारती भवन, वाराणसी, 1963, पृष्ठ 145
3. आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, खंड 1, पृ. 1984
4. वही, पृ. 201
5. आचार्य रविषेण, पद्मपुराण, संपादक: पं. कैलाशचंद्र शास्त्री, पृ. 152
6. आचार्य जिनसेन, हरिवंश पुराण, संपा. पं. कैलाशचन्द्र शास्त्री, जयपुर: जैन संस्कृत पाठशाला, 1968, पृ. 145
7. डॉ. रमेशचंद्र जैन, जैन संस्कृत काव्य और संस्कृति ,रत्न प्रकाशन, आगरा, 1978, पृ. 231
8. आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, 17/64, पृ. 309
9. डॉ. विमलचंद्र जैन, जैन धर्म और नारी, नागपुर: जैनेंद्र विद्या संस्थान, 1981, पृ. 119

10. आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, 12/321 – मरुदेवी की महिमा पर इन्द्राणी की स्तुति।

11. आचार्य जिनसेन, आदिपुराण, 16/98 – नारी की विद्या संबंधी उपदेश

12. आचार्य रविषेण, पद्मचरित, सर्ग 12 एवं सर्ग 14 ,सीता (पद्मावती) का चरित्र एवं नारी धर्म का उपदेश।

नारी और षोडश संस्कार

डॉक्टर प्रज्ञा शंकर
संस्कृत विभागाध्यक्ष, ए.पी.एस.,बरेली

"संस्कार" शब्द की उत्पत्ति संस्कृत भाषा के "सम्" उपसर्ग पूर्वक "कृञ" धातु के आगे "घञ" प्रत्यय लगाने से होती है। जीवन के सर्वांगीर्ण विकास या सिद्धि का नाम संस्कार है। हमारी वैदिक संहिताओं का तो संदेश ही है कि मनुष्य अपने जीवनकाल में सुविधाओं से संपन्न होकर अंत में मोक्ष की प्राप्ति करें। वास्तव में संस्कार शब्द का अर्थ ही वह प्रक्रिया है जिसके करने से पदार्थ या कोई व्यक्ति किसी कार्य विशेष को संपादित करने में सक्षम हो जाए। इसी बात को यदि दूसरे शब्दों में कहा जाए तो- "गुणांतराधानम् संस्कार:", अर्थात् किसी वस्तु या व्यक्ति विशेष में अन्य गुणों का आधान करना जो पहले उसके पास नहीं थे,या जिनका उसमें अभाव था। गुणों के आधान हेतु बनाई गई योजना के क्रियान्वयन के लिए संस्कारों की व्यवस्था की गई है। इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि हमारे परम मनीषियों ने मानव जीवन के समस्त अंगों को विकसित करने का सतत् प्रयास किया है।

भारतीय जनजीवन की आधारशिला संस्कारों पर ही स्थित है। मीमासा दर्शन का तो सिद्धांत ही है।**" कर्म बीजम् संस्कारा:"**। "मनु स्मृति "में धार्मिक विधि विधान को संस्कार कहा गया है। जिसके कारण मनुष्य लोक एवं परलोक में पवित्र जीवन यापन करने में सक्षम होता हैं। वस्तुत: संस्कार शब्द शुद्धि, परिष्करण आदि पवित्र भावनाओं का प्रतीक है।

संस्कारों की संख्या के संबंध में गृह्य सूत्रों की तरह स्मृति में भी भेद रहा है। विभिन्नता होते हुए भी वर्तमान समय में भारतीय समाज में स्मृति द्वारा प्रतिपादित। 16 संस्कारों का ही प्रचलन है। आर्य समाज के संस्थापक वैदिक संहिताओं के समर्थक महर्षि दयानंद सरस्वती ने भी

अपनी “संस्कार विधि” में 16 संस्कारों का वर्णन किया है। इन मान्यता प्राप्त 16 संस्कारों की गणना निम्न प्रकार से की जा सकती है-

जन्म पूर्व के तीन संस्कार- पहला गर्भाधान, दूसरा पुंसवन, तीसरा सीमंतोन्नयन

बाल्यावस्था के छह संस्कार- जातकर्म, नामकरण, निष्क्रमण, अन्नप्राशन, चूड़ा कर्म और कर्णवेध

विद्या अध्ययन से संबंधित तीन संस्कार- उपनयन, वेदारंभ एवं समावर्तन

आश्रम प्रवेश हेतु तीन संस्कार- विवाह, बानप्रस्थ, संन्यास तथा

मृत्यु के उपरांत एक संस्कार- अन्त्येष्टि

गर्भाधान संस्कार-वेदों में कहे गए पुण्य कर्मों द्वारा शरीर का संस्कार इन संस्कारों द्वारा होना चाहिए। इसका प्रतिपादन भगवान मनु ने मनुस्मृति में किया है। इस संस्कार से बीज तथा गर्भ संबंधी सभी दोष नष्ट हो जाते हैं। अन्य सभी संस्कार इस संस्कार पर ही निर्भर हैं। वैदिक संहिताओं के ऋषियों की स्पष्ट मान्यता है कि संतान उत्पत्ति के समय स्त्री और पुरुष के चित्त में जिस प्रकार के भावों का उदय होगा संतान भी उन ही भावों के अनुरूप होगी। देवभावना वाली अनेक भावनाये ऋग्वेद संहिता की ऋचाओं में प्राप्त होती हैं। जहाँ माँ सरस्वती, अशिवन कुमार आदि के प्रभाव से संतान के दीर्घ आयुष्य और सर्वगुण सम्पन्न होने की प्रार्थना की गई है। संतति हेतु स्त्रीपुरुष द्वारा की गई प्रार्थनाएँ अष्टम अध्याय, दशम अध्याय तथा प्रथम अध्याय में प्राप्त होती हैं- गर्भ देहि सरस्वति गर्भ ते।

अश्विनौ “,प्रजाम च धत्तम द्रविनं च धत्तम

(ऋग्वेद 10/184/2,8/34/11)

वैदिक साहित्य में पुत्र को ऋण च्युत कहा गया था ऋणमुक्ति में आर्थिक ऋणसे मुक्ति की तरह ही पैतृक ऋणमुक्ति भी अनिवार्य थी। इस ऋण से मुक्ति पाने के लिए संतान की उत्पत्ति आवश्यक मानी गई थी जिसकी पूर्ति गर्भाधान संस्कार के बिना असंभव थी।

"पुंसवन" नाम से जाना जाने वाला द्वितीय संस्कार प्राजापत्य संस्कार कहा जाता था। पुत्र प्राप्ति के लिए इसे विशेष रूप से किया जाता था- यं परिहस्तमविभरदिति:पुत्र काम्या (अथर्ववेद 6/81/3)। पुंसवन संस्कार का संबंध भी स्त्री समाज से है। इस संस्कार के संपादन से पुत्र की प्राप्ति अवश्य होती है। यह संस्कार करने से पुत्र पिप्पलवृक्ष की तरह विशाल और सुदृढ़ होता है और शमीरुपी शांत स्वभाव वाली स्त्री की तेजस्वितारूपी अग्नि को प्राप्त करता है। यह अथर्ववेद की संहिताओं से प्रमाणित होता है।

"सीमंतोन्नयन" संस्कार संतति के जन्म से पूर्व संपन्न किया जाता है। ऋग्वेद में उत्तम एवं स्वस्थ संतान की प्राप्ति हेतु इस संस्कार के संपन्न करने का संकेत मिलता है। (2/32/4)| गर्भ की रक्षा हेतु सरसों का प्रयोग किया जाता था। अथर्ववेद संहिता में गर्भ संरक्षण के लिए प्रार्थना प्राप्त होती है। इस संबंध में 26 मंत्रों का पूरा एक सूक्त है।

"जातकर्म" संस्कार संसार में आने वाले नवागत संतति के स्वागत का बोधक है। शिशु की उत्पत्ति के समय उसके कल्याण एव सुरक्षित आगमन हेतु देवताओं की स्तुति की जाती थी अथर्ववेद की संहिता (1/11/1) से स्पष्ट होता है कि सम्पूर्ण सूक्त में नवजात शिशु एवं उसकी माता की सुरक्षा हेतु प्रार्थना की जा रही है।

हिंदू संस्कृति में सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार जो संतान की उत्पत्ति के दस दिन पूरे होने पर किया जाता है **,"नामकरण"** संस्कार कहलाता है।

अर्थववेद के आठवें मण्डल के दूसरे मंत्र में ऐसे कई मंत्र हैं जिनमें **"निष्क्रमण"** संस्कार का उल्लेख मिलता है। वहाँ चौदहवां मंत्र दृष्टव्य है। जिसमें बालक को प्रसूति गृह से बाहर निकालते समय उसके लिए मंगलकारी आशीर्वचनों का प्रयोग किया गया है|(8/2/14)

अथर्ववेद में **"अन्नप्राशन"** संस्कार के भी संकेत पाए जाते हैं। यह संस्कार शिशु के जन्म के छठेमास में किया जाता है। अन्न को ब्रह्म कहा

गया है, इसलिए अन्न ग्रहण की प्रक्रिया से बल, आयु, मन की शुद्धि तथा ब्रह्मचर्य जैसे पवित्र भाव जागृत होते हैं।

शिशु का केश कर्तन ही **"चूड़ाकर्म"** का उद्देश्य है इसमें बालक के दीर्घ आयुष्य सुख समृद्धि ,विकास एवं सुख पूर्वक जीवन जीने के लिये प्रार्थना की जाती थी।

अथर्ववेद में **"कर्णवेध"** का वर्णन आया है। जिससे स्वास्थ्य संबंधी कई लाभ होते हैं।

"उपनयन संस्कार" हमारी सभ्यता, संस्कृति एवं गुरु शिष्य परंपरा का सूचक है। वैदिक काल में पुरुष वर्ग की तरह नारी समाज के लिए भी शिक्षा का द्वार खुला था। इसी कारणवश गुरुकुलों में बालिकाओं के प्रवेश और उनके ब्रह्मचर्य का वर्णन भी अथर्ववेद में प्राप्त होता है। इसी काल में अपाला,आत्रेयी घोषा आदि मंत्रद्दष्टा विदुषियों का जीवन परिचय का विवरण प्राप्त होता है। वेद के अध्ययन के लिए बालक या बालिका के उपनयन संस्कार को आवश्यक ही नहीं अनिवार्य माना गया था। यज्ञोपवीता नारी के गुणो की चर्चा ऋग्वेद में प्राप्त होती है। जिससे स्पष्ट होता है कि यज्ञोपवीत धारण करने के पश्चात नारी सबल हो जाती थी तथा पथभ्रष्ट पति को भी सन्मार्ग पर ला सकती थी वर्तमान युग के परिपेक्ष में भी यदि हम देखें तो शिक्षित नारी कुमार्गगामी पति को भी सुमार्ग पर ला सकती है।

उपनयन संस्कार के पश्चात ब्रह्मचारी एवं ब्रह्मचारिणी **"वेदारंभ"** संस्कार को गुरुकुल में संपन्न करते थे।

विद्या प्राप्ति के पश्चात् ब्रह्मचारी और ब्रह्मचारिणी अपने आचार्य की आज्ञा लेकर घर वापस लौटते थे इस संस्कार को **"समावर्तन"** संस्कार कहा जाता है।

वैदिक संहिता काल में **"विवाह** "को पवित्र संस्कार के रूप में मान्यता प्राप्त थी। ऋग्वेद के दसवें मण्डल के विवाह सूक्त में ब्राह्म विवाह

तथा गांधर्व विवाह का वर्णन प्राप्त होता है युवती को अपना इच्छित वर चुनने की स्वतंत्रता थी-

कीयती योषामर्यतो वध्यो:परि प्रीता पन्यसा वार्येण।
भद्रा वधुर्भवति यतसुपेक्षा स्वयं सा मित्रं वाणुतए जाने चित्।।

ऋग्वेद (10/27/12)

गृहस्थ आश्रम के बाद मनुष्य जिस तीसरे आश्रम में प्रवेश करता है, उसे वानप्रस्थआश्रम कहा जाता है। वही **"वानप्रस्थ"** संस्कार है। यजुर्वेद संहिता में "सन्यास"आश्रम का वर्णन मिलता है जहाँ संन्यासी व्यक्ति अग्निहोत्र इत्यादि कर्मों का परित्याग करता है यही मनुष्य के जीवन का अंतिम लक्ष्य था अर्थात मोक्ष-प्राप्ति का साधन। वेदों में मानव जीवन के पार्थिव शरीर के इस अंतिम संस्कार का वर्णन विस्तार से प्राप्त होता है। अथर्ववेद में **"अंत्येष्टि "**संस्कार से संबंधित क्रियाकलापों का उल्लेख विशद् रूप से मिलता है। मृत व्यक्ति की पत्नी चिता पर लेट जाती थी जिसे बाद में सगे संबंधियों द्वारा हटा दिया जाता था। अथर्ववेद के अठारहवें अध्याय में इसका वर्णन प्राप्त होता है-

शमग्ने पश्चात्तप शम पुरस्ताच्छमुत्तराच्छम घरात्त् पैनम्।
एकस्त्रेधा विहितो जातवेद: सम्यगेनम् धेहि सुकर्तामु लोके।।

अथर्ववेद (18/4/11)

वैदिक वाङमय में षोडश संस्कारों की महिमा का गुणगान किया गया है। षोडश संस्कारों से संपन्न व्यक्ति ब्रह्मत्व प्राप्ति का अधिकारी है। ब्रह्मत्व प्राप्ति का अधिकार प्राप्त कराने हेतु नारी का महत्वपूर्ण योगदान है वही अपने उदर में स्थित संतान को संस्कार युक्त बनाने की क्षमता रखती है।

अत:स्पष्ट है कि वैदिक संहिताओं में संस्कारों का विशेष महत्व है यह संस्कार नारी के अस्तित्व के बिना संभव ही नहीं हैं-नारी तुम शक्ति हो, जग को जीवन देने वाली, पावन मन की अनुरकित हो,नारी तुम शक्ति हो।

संस्कृत-साहित्य में प्रतिपादित जीवन-मूल्य

प्रो. (डॉ.) नीभा शर्मा
संस्कृत-विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय
मुजफ्फरपुर, बिहार

संस्कृत-साहित्य विश्व का सर्वाधिक सम्पन्न एवं उत्कृष्ट साहित्य है। इसमें मानव-जीवन के सभी अभ्युदय एवं निःश्रेयस संबंधी विषयों का सांगोपांग वर्णन है। वेद ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद, पुराण, स्मृति, दर्शन, इतिहास, काव्यादि सभी भारतीय संस्कृति से सम्बद्ध तथा लोकाभ्युदय एवं निःश्रेयस के साधक समस्त ज्ञान-विज्ञानपरक ग्रन्थों का निर्माण इस संस्कृत साहित्य में हुआ है। इसकी प्राचीनता, व्यापकता एवं उपयोगिता स्पष्ट है।

आज विश्व विकास के पंख पर सवार होकर भी अशांति, अवसाद एवं आतंक के साये में जी रहा है। इस स्थिति में संस्कृत-साहित्य में निहित नैतिक शिक्षा, पर्यावरण का संतुलित पाठ, नैतिक शिक्षा, नारी-सम्मान की अवधारणा, सर्वधर्म समन्वय की उन्नत भावना जैसे जीवनोपयोगी तत्त्व मानव को इनसे मुक्ति दिला सकते हैं।

'मूल्य' शब्द की संस्कृत व्युत्पत्ति का अवलोकन करने पर ज्ञात होता है कि 'मूल्य' शब्द संस्कृत की 'मूल' धातु से यत 'मूलेन समम्' अर्थ में यत् प्रत्यय के योग करने से निष्पन्न होता है। भ्वादिगणक 'मूल' धातु प्रतिष्ठार्थक है-'मूल प्रतिष्ठायाम्।

नौवयोधर्मविषमूल ....संमितेषु।' (4.4.91)

ज्ञान में गुणात्मक वृद्धि के साथ समाज व संस्कृति में कई संस्कारगत परिवर्तन हुए, मान्यताएँ व धारणाएँ बदली और इन सबके साथ मूल्य भी बदले। मूल्य के बिना सभ्यता का विकास तो हो सकता है, किन्तु संस्कृति का नहीं। आज हम संस्कृति विहीन आधुनिकता के इस चौराहे पर खड़े हैं, जहाँ रुककर हमें सोचना होगा कि हमारी दिशा क्या है?

और यहीं पर मूल्यों का प्रश्न खड़ा होता है, क्योंकि मूल्य मानव-जीवन का एक अनिवार्य पहलू है। मनुष्य की परिभाषा जब एक बौद्धिक-सामाजिक प्राणी के रूप में दी जाती है, तब उसकी बौद्धिक सामाजिकता एवं निरपेक्ष वस्तु नहीं होती। सामाजिकता के कुछ मूल्य होते हैं, और ये मूल्य बुद्धि की उपज होती है। ये मूल्य मानव-जीन को सार्थकता प्रदान करने वाले उपकरण होते हैं। एक मूल्य वस्तुओं का होता है और वह उनकी उपयोगिता और माँग पर निर्भर करता है, किन्तु मानव मूल्यों का सम्बन्ध 'बाह्य उपयोगिता से कम आन्तरिक' गुणवत्ता से अधिक होता है। मूल्य ही मनुष्य को 'मनुष्य' बताते हैं, जिसके अभाव में वह पूँछरहित पशु का एक विशिष्ट संस्करण मात्र रह जाता है।

संस्कृत प्राचीन काल में हमारे पूर्वजों के विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है, लेकिन उससे भी कहीं अधिक यह भाषा उन उदात्त और महान विचारों का गोद रहा है, जिसमें मानवता के महान जीवन-मूल्य पले और बढ़े। वे महान् मूल्य हैं-स्वतन्त्रता के, समानता के बहुलवाद के, एकत्व के, समन्वय के, विचार स्वातन्त्र्य तथा मानव प्रेम के।

हमारे पूर्वजों के उदार मन में किसी भी प्रकार का द्वेष और संकीर्णता का भाव नहीं था। ऋग्वेद में कहा गया-

संगच्छध्वं संवदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।

देवा भावं यथा पूर्वे सञ्जानाना उपासते।[2]

अर्थात् हम एक साथ चलें, एक साथ बोलें, मन भी हमारा समान होवें, हम एक साथ निष्कर्ष निकालें और उसका अनुसरण करें। भारत जैसे विकासशील देश की बहुत बड़ी समस्या जाति प्रथा से जकड़े समाज की है। ऋग्वेद में तो सम्पूर्ण मनुष्य जाति को एक कहा गया है- 'एकैव मानुषी जाति' यह कहकर समन्वय एवं सहकार के बल पर आगे बढ़ने वाली मानव जाति की बात करती है एवं 'जन्मना जायते शूद्रः कर्मणा द्विज उच्यते इति'3 जैसे संस्कृत वाक्य तो जातीय व्यवस्था को नकारते हुए कर्मवादी समाज के आदर्श को प्रतिध्वनित करते हैं।

संस्कृत के दर्शन ने हमेशा बहुलवाद को सम्मान किया और बहुलवाद को राष्ट्र और संस्कृति की शक्ति के रूप में स्वीकार किया। ऋग्वेद में- **'एकं सत् विप्रा बहुधा वदन्ति'** अर्थात् वह (परमात्मा) एक है और इसे विभिन्न सम्प्रदायों के लोग भिन्न-भिन्न नामों से पुकारते हैं। कोई God, कोई 'अल्ला' तो कोई 'यीशू' आदि। इसी प्रकार पृथिवीसूक्त में प्रार्थना की गई-

जनं विभ्रति बहुधा विवाचसं
नानाधर्माणं पृथिवी यथौकसम्।
सहस्र धारा द्रविणस्य में दुहां
ध्रुवेव धेनुरनपस्फुरन्ती।।4

इस बहुलवाद को स्वीकार करते हुए विचार स्वातंत्र्य और उनमें एकत्व की बात कही गयी क्योंकि एकत्व की चेतना ही महान् सत्य तक पहुँचा सकती है। लोकतन्त्र की भावना तो हमारी संस्कृति के आदिकाल से ही निहित रही है। लोकतन्त्र का सिद्धान्त स्वतन्त्रता, समानता तथा न्याय से जुड़ा है। ये लोकतांत्रिक मूल्य ही लोकतन्त्र के व्यवहार में देखा जाता है लेकिन आज हमारे समाज में विषमताएँ व्याप्त हो गयी है। ऋग्वेद में कहा गया है-

समानो मन्त्रः समितिः समानी, समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः, समानेन वो हविषा जुहीमि।[5]

अर्थात् हम सबों की योजना समान हो, अन्तःकरण समान हो, मैं तुम्हें मन्त्र से अभिमन्त्रित करता हूँ। तुम्हारे हविष्य से मैं यज्ञ करता हूँ।

आज के विकासशील राष्ट्रों की आम समस्या लिंग भेदभाव की है। दहेज प्रताड़ना, नारी स्वास्थ्य, दोहरा मानदण्ड जैसी अनेक कुरीतियाँ इस राष्ट्र की अधिसंख्य जनसंख्या को प्रभावित कर विकास के सारे मानदण्डों को गड़बड़ा कर रख देती है। संस्कृत के प्रायः सभी ग्रन्थ नारी समानता, स्मिता एवं सम्मान को दर्शाते हैं। 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र देवताः'' जैसे वाक्य नारी के आदर्श रूपों का बयान कर लिंग समानता को

ही प्रदर्शित करती है। मैत्रेयी और गार्गी जैसी मन्त्रद्रष्टा विदुषियाँ इस बात का प्रमाण है कि हमारी संस्कृति में नारी और पुरुष को समान स्थान दिया गया है। नारी और पुरुष को समान दर्जा देते हुए कहा गया कि-

"माता में पार्वती देवी, पिता देवो महेश्वरः ।

बान्धवाः शिवभक्ताश्च स्वदेशो भुवनत्रयम्।।[6]

(अन्नपूर्णास्तोत्र)

इस संस्कृति में भौतिक उन्नति समष्टि (समाज) प्रधान रही है अर्थात् जीवमात्र की सहायता या रक्षा करने की भावना फलीभूत थी। उपनिषद् का सार ही है-

सर्वेभवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः।

सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःखभाक् भवेत्।।

(वृहदारण्यकोपनिषद)

भारतीय संस्कृति के दो आदर्श वाक्य-(क) वसुधैव कुटुम्बकम्, (ख) आत्मवत् सर्वभूतेषु से विश्व कल्याण व विश्वबन्धुत्व की भावना उदित होती है एवं आत्मनः प्रतिकूलानि परेषा न समाचरेत्' से परोपकार की भावना विकसित होती है।

संस्कृत-साहित्य अपनी अध्यात्म प्रवणता, आत्म अमरता एवं पुनर्जन्म पर आश्रित है। यहाँ आत्मा को उन्नत करने वाले आचरण 'धर्म' कहे गये हैं। मुनि कणाद के शब्दों में-'यतोऽभ्युदयनिः श्रेयससिद्धिः स धर्मः। पुरुषार्थ चतुष्ट्य की संकल्पना में हमारे यहाँ 'धर्म' को प्रथम स्थान में रखा गया है। बहुआयामी धर्म की आध्यात्मिक अवधारणा इस जीवन पद्धति की शाश्वत पहचान है। मानव ही नहीं, समस्त चराचर जगत के संघारक एवं नियामक होने से इस धर्म का आविर्भाव सृष्टि-निर्माण के साथ ही विशिष्ट याज्ञिक विधि से हो गया था।

'यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन्।"[7]

(ऋग्वेद-10-10-16)

याज्ञिक विधि से उत्पन्न होने के कारण धर्म की उपासना रूप आज भी प्रचलित है, किन्तु धर्म मात्र उपासना कर्मकाण्ड मात्र तक सीमित न होकर अन्य भूत-भौतिक पदार्थों के स्वाभाविक गुण-धर्मों के समान मानव का मूल स्वभाव है, जो उस शेष प्राणिजगत् से पृथक् करता है। धर्म से रहित पशुवत् माना गया है।

आहार-निद्रा-भय मैथुनानि
सामान्यमेतद् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीना पशुर्भिसमाना।।[8]

यहाँ धर्म शब्द ज्ञान एवं विवेक का उपलक्षण है, अतः स्वतः सिद्ध होता है कि विवेकाभाव में मनुष्य पशु से अभिन्न है। यद्यपि मनु ने अपनी 'मनुस्मृति में धर्म' के दश लक्षण बताएँ हैं-

धृतिः क्ष्मा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्म लक्षणम्।।

चन्द्रगुप्त के राजनीति गुरु चाणक्य का चिन्तन, मनन, अध्ययन और विवेचन बड़े-बड़े राजप्रसादों के उच्च शिखरों से भी ऊँचा और महान् था। राज्यों-राष्ट्रों की सफलता के लिए इस महान कूटनीतिज्ञ ने जिन नियमों का निर्धारण किया, वे आज के सन्दर्भ में भी खरे उतरते हैं, जितने उस प्राचीन काल में थे। कूटनीति से लेकर प्रतिदिन के लोकाचार भी उनकी पैनी दृष्टि से अछूती नहीं थी। उन्होंने भी 'चाणक्यसूत्र' के प्रारम्भ में सामान्य जनों को उद्बोधन करते हुए लिखा है- 'सुखस्यमूलं धर्मः धर्मस्यमूलमर्थः।' अर्थात् मनुष्य को सुख की प्राप्ति धर्म के आचरण से हो सकती है। यदि सांसारिक प्राणी अपने धर्म का पालन करते रहे तो यह संसार स्वर्ग बन सकता है। इस संसार में प्रकृति के सभी स्थावर और जंगम पदार्थ एक धर्म में आबद्ध है। यदि संसार के सम्पूर्ण पदार्थ अपने गुण और धर्म का परित्याग कर दें तो इस संसार को स्थिर रहना असंभ हो जाएगा। आगे वे यह भी कहते हैं- 'मृत्युरपि धर्मिष्ठ रक्षति' अर्थात् धर्मात्मा

पुरुष की रक्षा मृत्यु से भी हो सकती है। इसी बात को मनुस्मृति में भी कहा गया है-

मृत शरीमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमं क्षितौ।
विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति।।

(मनुस्मृति-4/24)

आचार्य चाणक्य ने सभी विषयों के सम्बन्ध में मार्गदर्शन किया है, विशेष रूप से राज्य धर्म के सम्बन्ध में जो कुछ कहा है, वह इतना अमूल्य है कि यदि प्रजातन्त्र में आज भी उसका अनुसरण किया जाए तो राष्ट्र सुखी, सम्पन्न और सुदृढ़ हो सकता है। वे लिखते हैं- हस्तगतयपि शत्रु न विश्वसेत्। अर्थात् हाथ में आए शत्रु पर कभी विश्वास नहीं करना चाहिए।

इस प्रकार संस्कृत-साहित्य में न केवल धर्म का चारों पुरुषार्थों को जीवन-मूल्य के रूप में प्रतिपादित और प्रतिष्ठापित करने का आदेश लेकर चला है। लोकाभ्युदय साधन अर्थ, कामादि का भी निर्देश है। संस्कृत के सभी ग्रन्थों का लक्ष्य निःश्रेयसधिगम के साथ-साथ भौतिक जगत के उपयोगी अन्य सभी अर्थ और काम आदि पदार्थों की प्राप्ति का भी मार्ग है। कौटिल्य का अर्थशास्त्र, वात्स्यायन का कामसूत्र, स्मृति ग्रन्थ एवं नीतिपरक ग्रन्थ इस बात के प्रमाण है। संस्कृत साहित्य का लक्ष्य कभी एकांगी नहीं रहा है। इसने सदा मानव-जीवन को और उसकी सुख-समृद्धि को लक्ष्य में रखा है। यहाँ श्रेयस के साथ प्रेयस की कभी उपेक्षा नहीं की गई है।

यथा- द्वितीयमायुषो कृतदारो गृह वसेत् (मनु.) के द्वारा प्रतिपादित काम का 'ऋतु कालाभिगामी स्यात् स्वदारानिरतः सदा (मनुः-3-45), यात्रामात्रा प्रसिद्धयर्थ (मनु. 4/3) तथा ऋतामृताभ्यां जीवेत्तु मृतेन …….. (मनु-4-5, 6) इत्यादि वचनों द्वारा नियमन करके आगे 'सर्वात्मनि-मनः' (मनुः-12-11) से आरम्भ कर 'एव यः सर्वभूतेषु-पदम्'

(मनु .- 12-125) वचनों से आत्मज्ञान रूप मोक्षधारक धर्म का अधर्म निवृत्तिपूर्वक प्रतिपादन किया गया है।

मनुस्मृति में तो वर्णधर्म, आश्रयधर्म, वर्णाश्रमधर्म, गुणधर्म, निमित्तधर्म तथा सामान्यधर्म- इस प्रकार सांगोपांग धर्म का विशद रूप से प्रतिपादन किया गया है।

अस्मिन् धर्मोऽखिलेनोक्तां गुणदोषौ च कर्मणाम्।
चतुर्णामपि वर्णानामाचारश्चैव शाश्वतः।।"

(मनुस्मृति-1/107)

तप, त्याग और तपोवन त्रिविध गुणों से सम्पन्न भारतीय संस्कृति का आदर्श रूप आदिकाल सम्पूर्ण रामायण में भी प्रतिबिम्बित हुआ है। भारतीय मूल चिन्तन में सत्यं, शिवं और सुन्दरम् इन तीनों मूल्यों का समावेश है। महाकवि कालिदास ने भी अपने साहित्य मेंजीवन मूल्यों का जो सशक्त चित्रण किया है, वह भारतीय जीवन-दृष्टि को स्पष्ट करने के लिए अत्यन्त उपयोगी है।

'सोऽहमाजन्मशुद्धानामतनुत्यजाम्'

(रघुवंश-1/5-8)

इक्ष्वाकुवंशीय राजन्य वर्ग शैशवावस्था में विद्या का पूर्ण अभ्यास करता है, यौवनावस्था में विषय-भोग से तृप्ति करता है, वृद्धावस्था में मुनिवृत्त धारण करके तप-त्याग में रत रहता है और अन्त में समाधिकरण के द्वारा शरीर छोड़ता है। इसी प्रकार 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' में परिणीता वधू के लिए आदर्श आचरण की व्याख्या-

'शुश्रूषस्व गुरुन् ..... कुलस्याधयः।

(अभिज्ञानशाकुन्तलम्-4/17)

एवं प्रत्येक गृहस्थ के लिए यह संदेश-'अर्थो हि कन्या परकीय एव-इवान्तरात्मा" दिया है। आज इन्हीं मूल्यों का ह्रास हो रहा है। कन्या के घर में माता-पिता का हस्तक्षेप अधिक हो गया है जिससे वैवाहिक जीवन पर दुष्प्रभाव आज के समाज में दीख रहा है।

जीवन में त्याग और संयम बहुत आवश्यक है, इच्छाएँ कभी पूर्ण नहीं होती और ईशावास्योनिषद् अपनी व्याख्यामें-

ऊँ ईशावास्यमिदं कस्यस्विद्धनम् (ईशावास्योपनिषद् श्लोक संख्या-1)

कहकर सम्पूर्ण मानव जाति को सजग एवं सचेत किया है, साथ ही कर्म की ओर प्रेरित करते हुए-

कुर्वन्नेवेह कर्माणि .... नरः (ईशावा.- 2) के माध्यम से कर्म की महत्ता पर भी प्रकाश डाला है, जिसे गीता में भी भगवान् कृष्ण ने अर्जुन को संदेश के रूप में कहे हैं-

कर्मण्येवाधिकारस्ते ....कर्मणि।

संस्कृत-साहित्य भारतीय संस्कृति को जीवित एवं अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए एवं लोगों को प्रेरित करने के लिए नीतिपरक श्लोकों की रचना की गई है, जिससे जीवन सुगम बन सके।

दुर्जनः परिहर्तव्यः विद्यया.........भयंकरः।। (नीतिशतक-4/53)

आलस्यं..............नावसीदति।।

हमारी संस्कृति में गुरुकुल की परम्परा प्राचीन काल से ही चली आ रही है। इस परम्परा में ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि हे परमेश्वर! हम दोनों गुरु-शिष्य की रक्षा करें अर्थात् विद्यास्वरूप प्रकाश के द्वारा हमलोगों की रक्षा करें। विद्या के समग्र फलों को प्रदानकर हम दोनों का पालन करें। हमें विद्याध्ययन के लिए अपरिमित शक्ति की प्राप्ति हो। हम दोनों की अधीत (पढ़ी हुई) विद्या जगत् का कल्याणकारी बनें। हम दोनों एक दूसरे से कभी द्वेष न करें, अर्थात् हम दोनों जीवन पर्यन्त स्नेह-सूत्र में बँधे रहें। आज के सन्दर्भ में ऐसी परिकल्पना और उसे जीवन्त बनाए रखना कितना आवश्यक है।

ऊँ सह नाववतु, सह नौ भुनक्तु, सहवीर्यं करवावहै।
तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।

इसी प्रकार तैत्तिरीयोपनिषद् के ये वाक्य 'सत्य वद, धर्म चर, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव' इत्यादि वाक्य संस्कृत-साहित्य में सत्य, ज्ञान, कल्याण, सुख-शान्ति, शक्ति एवं समृद्धि, राष्ट्रीय एकता के सम्पादन, राष्ट्रीय एकता के संरक्षण, संवर्धन हेतु जीवनोपयोगी मूल्य विद्यमान है। यह साहित्य हमें सच्चाई की राह बताती हुई लोककल्याण तथा विश्वकल्याण का संदेश देती है। आज के समाज में गिरते हुए जीवन मूल्यों को बचाने के लिए हमें संस्कृत-साहित्य का सहारा लेना होगा, जो राष्ट्र के कल्याण के लिए जन-जन के हृदय में अपने राष्ट्र के प्रति, विश्व के प्रति प्रेम की भावना का संचार कर सकता है एवं भोग के लक्ष्य का परित्याग करके सुख, शांति व कल्याण की प्रतिष्ठा कर सकता है।

संदर्भ-ग्रन्थ-सूची:-

1. अष्टाध्यायी- 4.4.91
2. ऋग्वेद-मंडल 10, सूक्त-191वाँ
3. स्कन्दपुराण-नागर खण्ड, अध्याय-239, श्लोक-31
4. अथर्ववेद-अध्याय-12, मन्त्र-45
5. ऋग्वेद-10/191/3
6. शंकराचार्य-अन्नपूर्णास्त्रोतम्-श्लोक-12
7. ऋग्वेद- 10.10.16
8. चाणक्य नीति- 7/16
9. मनुस्मृति- 6/92

10 वही, (1-107)

वैदिक समाज में नारी की स्थिति

प्रो. (डॉ.) सत्यवती
प्राचार्य एवं आचार्य संस्कृत,
माँ जालपा देवी राजकीय महाविद्यालय, तारानगर, चूरु
प्रो. (डॉ.) सत्यवान आर्य
आचार्य हिन्दी, बाबू शोभाराम राजकीय कला महाविद्यालय,
अलवर, राजस्थान

सारांश

वैदिक समाज में स्त्री और पुरुष में किसी प्रकार का भेदभाव व पक्षपात दृष्टिगोचर नहीं होता। वेद के अनुसार आत्मा का कोई लिंग नहीं है, लिंग केवल भौतिक शरीर का सूचक है। वैदिक समाज के अनुसार गृहस्थ रूपी और समाज रूपी गाड़ी तथा सृष्टि के संतुलन के लिए दोनों पहियों में संतुलन बना रहना अत्यंत आवश्यक है। स्त्री और पुरुष परमपिता परमात्मा की अनुपम कृति हैं। मानव की उत्पत्ति और अस्तित्व को बनाए रखने में स्त्री का बहुत बड़ा योगदान है। वेद और वैदिक समाज में स्त्री की स्थिति अत्यंत उच्च गौरवमयी और सम्मान जनक प्राप्त होती है। वेद के अनुसार स्त्री मातृ स्वरूपा, संस्कारों की संवाहिका, समाज की रीढ़, सिर की पगड़ी, राष्ट्र की नाडी, परिवार की धुरी, सन्तान की प्रथम गुरु, समृद्धि एवं खुशहाली की देवी है। वैदिक समाज में मनमाना आचरण व ऊच्छृंखलता नहीं थी अपितु वैदिक मर्यादाओं के अनुरूप समाज की संरचना व सामाजिक आचार, व्यवहार दृष्टिगोचर होते थे। संपूर्ण समाज की स्थिति तथा नारियों की स्थिति का चित्रण अथर्ववेद के मंत्र में इस प्रकार दृष्टिगोचर होता है-

अनुव्रतः पितुः पुत्रो मात्रा भवतु संमना।
जायापत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शान्तिवाम्।।

अर्थात् पुत्र पिता का अनुकरण करने वाला हो, माता का सम्मान करने वाला हो, पत्नी पति मधुर और शांति युक्त वचन बोलें।

बीज शब्दः- समाज की रीढ, राष्ट्र की नाडी, सिर की पगडी (मूर्धा) हिरण्यवर्तनिः, प्रजावती वीरसूः, वीरपत्निः, ऋतपाः, सुनृतावती विष्वभेषजीः, ब्रह्मचारिणी, ब्रह्मवादिनी, भुवनस्य नाभिः, मन्त्रद्रष्टा, घर की साम्राज्ञी, निर्मात्री, "स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथः" यज्ञस्य केतुः

समाज शास्त्रियों के अनुसार सामाजिक उच्चता का मानदण्ड आर्थिक और भौतिक वस्तुएं हैं जबकि वैदिक वर्ण व्यवस्था में बौद्धिकता को सर्वोच्च स्थान प्रदान किया गया। वैदिक समाज एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक ढांचे पर अवस्थित तथा वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था द्वारा आबद्ध, अपने आप में अपूर्व था। वैदिक समाज में अधिकारों और कर्तव्यों की सुव्यवस्था के लिए सुशासन और न्याय की समुचित व्यवस्था थी, वर्ण व्यवस्था तथा आश्रम व्यवस्था दोनों विज्ञान सिद्ध हैं। वैदिक युग का सामाजिक जीवन पारस्परिक एकता सहयोग सद्भाव और संगठन पर आधारित था, व्यक्ति ही समाज का निर्माता था। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने कर्तव्यों के पालन और पारस्परिक कर्तव्यों के प्रति सजग और निष्ठावान थे। इतना ही नहीं! समाज के संगठित स्वरूप का सुंदर चित्रण ऋग्वेद के संगठन सूक्त जो कि एकता सूक्त के नाम से भी प्रसिद्ध है मैं विस्तृत वर्णन प्राप्त होता है "हम मिलकर चलें , मिलकर बोलें ,परस्पर एक दूसरे के मनों के ज्ञाता बनें।"1 "हमारी सभा समिति एक हों ,हमारे संकल्प एक हों"2 प्रस्तुत वेद मंत्रों में केवल मात्र पुरुषों के ही मिलकर चलने ,बोलने के लिए आह्वान नहीं किया गया! अपितु स्त्री और पुरुष अर्थात् पूर्ण समाज के संगठित स्वरूप का वर्णन किया है। ऐसा ही वर्णन अथर्ववेद के एक सूक्त में प्राप्त होता है।''3 चरित्र की श्रेष्ठता वैदिक संस्कृति की मूल है तथा चारित्रिक श्रेष्ठता समस्त विद्याओं, शास्त्रों और धर्मों का आधार है। यह

निश्चित अकाट्य सत्य है कि किसी भी समाज व राष्ट्र का सामाजिक अभ्युत्थान उसके चारित्रिक निर्माण पर आधारित है। वैदिक समाज में स्त्री, पुरुष दोनों का चरित्र उत्तम था जिसका सुंदर वर्णन छांदोग्योपनिषद् में प्राप्त होता है, कैकय देश के राजा अश्वपति उद्घोष करते हैं कि "मेरे राज्य में न चोर है, न कृपण, न शराबी न अग्निहोत्र न करने वाले हैं, न मूर्ख हैं, न व्यभिचारी पुरुष फिर व्यभिचारिणी स्त्री कहां? मैं यज्ञ करने वाला हूं।"4 इससे ज्ञात होता है कि उस समय समाज की स्थिति बहुत उन्नत थी। वैदिक समाज की तात्कालीन स्थिति को और अधिक सुस्पष्ट करने में महर्षि दयानंद सरस्वती द्वारा किया गया वेद भाष्य अत्यधिक सहयोगी है इन्होंने निरुक्त और अनेकार्था ही धातवः को आधार बनाकर वेद मंत्रों के आधिदैविक, आधिभौतिक व आध्यात्मिक परक व्याख्या कर वेद मंत्रार्थ को समझना सभी के लिए सुगम कर दिया। वैदिक समाज वेदानुरूप जीवन व्यतीत करने वाला समाज था, वर्णाश्रम व्यवस्था सामाजिक व्यवस्था का मूलाधार रही है। स्त्री को पुरुष के समान सभी अधिकार प्राप्त थे। स्त्रियों की स्थिति बहुत उत्तम थी। वैदिक काल में स्त्रियों के नामकरण संस्कार पर विचार करें तो वेदानुसार सार्थक नाम रखे जाते थे, जिनमें से कुछ नाम उल्लेखनीय हैं घोषा, अपाला, अदिति, शची, विश्ववारा, आत्रेयी, सूर्या, सरस्वती, श्रद्धा, वैवश्वती, मैत्रेयी, गार्गी आदि-आदि। वेद को अपनी आत्मा मानने वाले महर्षि दयानंद के भाष्य में वेद मंत्रों में गुणों के आधार पर महिलाओं के अन्य विविध नाम भी प्राप्त होते हैं जैसे "इड़ा, रंता, हव्या, काम्या, चंद्रा, सरस्वती महि, विश्रुति"5 इन नामों से कहीं विदुषी पत्नी, कहीं अध्यापिका, कहीं माता आदि अर्थों का ग्रहण किया है। वैदिक समाज में वेद के आधार पर स्त्री को पृथ्वी की उपमा दी गई है। यजुर्वेद में वर्णन प्राप्त होता है "स्त्री! तुम पृथिवी हो।"6 पृथिवी के तुल्य संपूर्ण भार उठाने वाली हो। यजुर्वेद में ही "स्त्री को भूमि तक कहा गया है"7 अर्थात् स्त्री भूमि के समान धैर्यवती, दृढ़ तथा स्थिर है। यजुर्वेद महर्षि भाष्य में वर्णन प्राप्त होता है "ध्रुवा त्वम्"8 हे देवि! ध्रुव तारे की भांति ध्रुव अटल

बन कर रहो। एक अन्य मंत्र में भी ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है "ध्रुवासि"9 इतना ही नहीं! वेद में नारी को शेरनी की उपमा भी दी गई है, नारी को शक्ति की प्रतिमूर्ति मानते हुए कहा गया है "स्त्री तू शेरनी है।"10 वेद में माता और ईश्वर को समान मानते हुए वर्णित किया है कि "हे प्रभु! मेरी माता और आप समान हो"11 अर्थात् दोनों शक्तियां निर्माण करती हैं तथा कष्टों का निवारण करती हैं। वेद मंत्रों के आधार पर वैदिक समाज में नारी को राष्ट्र की ध्वजा कहा गया है। वह स्वयं उद्घोषणा करती है कि "मैं राष्ट्र की ध्वजा हूं, मैं समाज का सिर अर्थात शिरोमणि हूं, मैं उग्र हूं, मेरी वाणी में बल है।"12 वैदिक समाज में "स्त्री को सिर की पगड़ी, घर की रानी"13 माना गया है। महर्षि दयानंद की वेद व्याख्या के अनुसार स्त्री को "इड़ा (सुशिक्षित वाणी) अदिति, सरस्वती (विज्ञान युक्त) हिरण्यवर्तनिः (स्वर्णिम व्यवहार करने वाली) वीरपुरुष की पत्नी होने पर वीरपत्नी"14 तथा वीर पुत्रों को उत्पन्न करने से "प्रजावती वीरसूः"15 वर्णित किया है। ''ऋतपाः" (सत्य की रक्षिका) "सुनृताः,"16 सुनृतावती"17 (उत्तम नीतियों पर ले जाने वाली) सुभगाः, सुमंगली"18 सौभाग्यशालिनी आदि-आदि विशेषताओं से सुशोभित किया है। स्त्री घर की रानी है वेद मंत्र में वर्णित किया है कि "हे नारी तू रानी है पूर्व दिशा के समान तेजोमयी है।"19 ये वैदिक विशेषण नारी की महानतम स्थिति के परिचायक हैं।

स्त्री शिक्षा- वैदिक समाज में शिक्षा का स्तर उन्नत था, शिक्षा के मुख्य केंद्र गुरुकुल थे, तात्कालीन शिक्षा पद्धति की प्रमुख विशेषता गुरुकुल प्रणाली ही थी। पुरुषों के समान स्त्रियों की भी शिक्षा का सुप्रबन्ध था। विद्वत सम्मेलन व शास्त्रार्थ होते थे। महिलाएं शास्त्रार्थ में भाग लेती थी। महाराजा जनक की सभा में याज्ञवल्क्य के समक्ष गंभीर तात्विक प्रश्नों को उपस्थित करने वाली गार्गी का व्यक्तित्व वैदिक समाज तथा संपूर्ण भारतीय इतिहास के गौरव का प्रतीक है। ये नारियां दिव्य शक्ति की आगार थी।

वैदिक युग में स्त्री पुरुष दोनों के प्रतिभा के विकास की पूर्ण स्वतंत्रता थी। वैदिक काल में स्त्रियां शिक्षित होती थी इस और ध्यान आकृष्ट करते हुए महर्षि दयानंद उपदेश मंजरी के पूना प्रवचन में लिखते हैं “पूर्व काल में आर्य लोगों में स्त्रियां उत्कृष्ट रीति से पढ़ती थी। आर्य लोगों के इतिहास की ओर देखो! स्त्रियां आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण कर रहती थी और साधारण स्त्रियों के भी उपनयन और गुरु गृह वास इत्यादि संस्कार होते थे।“20 स्त्रियों के उपनयन संस्कार- वैदिक युग में संस्कारों का विशेष महत्व था क्योंकि व्यक्ति के असंस्कृत स्वरूप को सुसंस्कृत एवं अनुशासित करने के निमित्त ही संस्कारों की योजना की गई। संस्कारों से व्यक्ति मणि की तरह देदीप्यमान हो जाता है। जब कन्याओं को गुरुकुल में प्रवेश दिलाया जाता था तब सर्वप्रथम उपनयन संस्कार ही होता था।

स्त्री यज्ञ की ब्रह्मा- वैदिक समाज में यज्ञों का महत्व पूर्ण स्थान था तभी वैदिक संस्कृति में “यज्ञों वै श्रेष्ठतमं कर्म“ की प्रधानता थी। वर्तमान का तथा कथित कर्मकाण्ड नहीं! अपितु “अयं यज्ञो विश्ववस्य भुवनस्य नाभिः’’21 अर्थात् यह यज्ञ सारे संसार की नाभि है। प्रत्येक कार्य इसी भावना से प्रेरित होकर किये जाते थे। यज्ञ वैदिक समाज का मेरुदंड था। यज्ञों में स्त्री पुरुष सभी समान रूप से सम्मिलित होते थे, बिना पत्नी के यज्ञों के अनुष्ठान अधूरे माने जाते थे। महर्षि दयानन्द ऋग्वेद 1/72/5 में लिखते हैं कि “विद्वान् लोग पत्नी सहित यज्ञ में बैठते हैं।“ शतपथ ब्राह्मण में भी ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है कि “अयज्ञियो वैष योऽपत्नीकः “ अर्थात् बिना पत्नी के पुरुष यज्ञ का अधिकारी नहीं है। स्त्रियां यज्ञ करती थी अथर्ववेद में वर्णन प्राप्त होता है कि “ये स्त्रियां शुद्ध, पवित्र और यज्ञ करने वाली हैं।“22 वैदिक काल में विदुषी स्त्रियां बड़े-बड़े यज्ञों को संपादित करवाती थी। वेद मंत्र से ही सिद्ध होता है कि “स्त्री यज्ञ की ब्रह्मा थी“23 इससे भी आगे स्त्री को “यज्ञ की पताका“24 कहा है। अर्थात् वैदिक समाज में स्त्रियां यज्ञों की ब्रह्मा जैसे उच्च पद से सुशोभित थी।

विदुषी ऋषिकाओं ने वेद मंत्रों की व्याख्या की हैं। ऋग्वेद में 24 तथा अथर्ववेद में 5 वैदिक मंत्र द्रष्टा नारियों का वर्णन प्राप्त होता है। वैदिक युग में स्त्रियां आयुर्वेद की ज्ञाता भी थी। ऋग्वेद में "विश्वभेषजीः" 25 विशेषण प्राप्त होता है, इतना ही नहीं! धनुर्वेद की शिक्षा भी ग्रहण करती थी। इस संबंध में महर्षि दयानन्द सत्यार्थ प्रकाश में लिखते हैं कि "देखो! आर्यावर्त के राजपुरुषों की स्त्रियां धनुर्वेद अर्थात् युद्ध विद्या भी अच्छी प्रकार जानती थी।"26

स्त्रियां ब्रह्मचारिणी थी- वैदिक काल में आश्रम व्यवस्था का प्रथम चरण ब्रह्मचर्य का पालन स्त्री पुरुष दोनों के लिए अनिवार्य था। समाज में किसी प्रकार का अनाचार न बढ़े इसके लिए इंद्रिय निग्रह की शिक्षा पठन पाठन में ही सम्मिलित थी। यह काल विशेष रुप से विद्यार्जन के लिए था। कामुकता उत्पन्न करने वाली वस्तुओं का पूर्णतः निषेध था। ब्रह्मचर्य में अपार शक्ति होती है। वेद में ब्रह्मचर्य की महिमा का वर्णन प्राप्त होता है कि "ब्रह्मचर्य के तप से देवताओं ने मृत्यु पर भी विजय प्राप्त कर ली। 27 यहां देवता शब्द स्त्री पुरुष दोनों के लिये ही अभिप्रेत हैं।

नारियां ब्रह्मवादिनी थी- वैदिक युग में स्त्रियां गूढ विषयों में ऋषियों के साथ संवाद भी करती थी। ब्राह्मण ग्रंथों में महर्षि याज्ञवल्क्य के साथ विदुषी गार्गी, मैत्रेयी व कात्यायनी आदि का दार्शनिक तत्त्व ब्रह्म, आत्मा, परमात्मा विषयक संवाद इतिहास प्रसिद्ध है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने मैत्रेयी से धन का बंटवारा करने की इच्छा प्रकट की? तब ब्रह्मवादिनी मैत्रेयी बोली "सा होवाच मैत्रेयि यन्नू न इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेनामृतास्यामिति- अमृत्वस्य तु नाऽऽशास्ति वित्तेनेति भगवन्! क्या धन से पूर्ण यह पूरी पृथ्वी मेरी हो जाए तो क्या इससे मैं अमर हो जाऊंगी?"28 कितना Remarkable उत्तर था मैत्रेयी का! इससे उस काल की आध्यात्मिक स्थिति का ज्ञान होता है कि धन भौतिक

आवश्यकताएं पूर्ति का साधन मात्र था। स्त्रियों की बौद्धिक व तार्किक प्रतिभा पुरुषों से कम नहीं थी, जिसका चित्रण याज्ञवल्क्य और गार्गी संवाद से स्पष्ट होता है, याज्ञवल्क्य ने कहा "हे गार्गी! अतिप्रश्न न कर ऐसा न हो कि तेरा शिर गिर जाये"29 अर्थात् (मुझे अपमानित होना पड़े) इससे विदित होता है कि विदुषी महिलाओं की बौद्धिक स्थिति बहुत ऊंची थी।

बाल विवाह निषेध- वैदिक युग में बाल विवाह निषिद्ध थे। अथर्ववेद में वर्णन प्राप्त होता है कि "ब्रह्मचर्य के पालन से कन्या युवा पति को प्राप्त करती है"30 इसी मंत्र को उद्धृत करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं "ब्रह्मचर्य सेवन से वेदादि शास्त्रों को पूर्ण पढ़कर विद्या और उत्तम शिक्षा को प्राप्त युवती हो के पूर्ण युवावस्था में अपने सदृश प्रिय विद्वान और युवा अवस्था युक्त पुरुष को प्राप्त होवे "31 वेद मंत्रानुसार अबोध कन्या ब्रह्मचर्य के महत्व को नहीं समझ सकती अतः पूर्ण युवती ही ब्रह्मचर्य के महत्त्व को समझ सकती है। महर्षि दयानन्द वैदिक समाज में बाल विवाह का निषेध करते हुए तथा युवा अवस्था में विवाह का समर्थन करते हुए उपदेश मंजरी में लिखते हैं कि "प्राचीन आर्यों में यह दृढ़ रीति थी कि प्रत्येक मनुष्य विद्याभ्यास करे। जब तक विद्या के भूषण से भूषित नहीं होते थे तब तक स्त्री पुरुष को विवाह करने की आज्ञा राजसभा से नहीं मिलती थी।"32

स्वयंवर विवाह- वैदिक युग में पूर्ण सुशिक्षित होने पर आचार्य, आचार्या, माता व पिता आदि की उपस्थिति में गुण कर्मानुसार वर वधु का चुनाव होने पर ही विवाह होता था। वर्तमान की स्वच्छंदता नहीं थी, प्रत्युत् विवाह को समस्त संस्कारों में गौरवशाली तथा उत्तम संतति उत्पन्न कर स्त्री पुरुष की आत्मा के एकीकरण के रूप में स्वीकार किया गया था, कितना महान लक्ष्य था विवाह का! जो तात्कालिक सामाजिक स्थिति को स्पष्ट करता है। वैदिक व्यवस्था में वर्णित स्वयंवर विवाह के पूर्ण समर्थक महर्षि दयानंद संस्कार विधि के विवाह प्रकरण में ऋग्वेद के मंत्र को

प्रमाण रूप में उद्धृत करते हुए लिखते हैं- जो उत्तम ब्रह्मचर्य व्रत और सद्विद्याओं से अत्यंत युक्त (युवावस्था को प्राप्त विदुषी कन्याएं स्वयंवर द्वारा चुने हुए योग्य युवा पुरुष को विवाह द्वारा प्राप्त होती है) जैसे जल और नदी समुद्र को प्राप्त होती है।33

विधवा पुनर्विवाह- उस काल में विधवाओं को हेय दृष्टि से नहीं देखा जाता था। विधवाओं के पुनर्विवाह की व्यवस्था तथा इनके लिए निर्देश था कि वह अपने देवर या अन्य निकट संबंधी से विवाह करके संतान उत्पन्न कर सकती हैं। ऋग्वेद 10/18/8 तथा ऋग्वेद 10/40/02 में विधवा का देवर के साथ विवाह करने के संदर्भ देखने को मिलते हैं। अथर्ववेद में भी ऐसा ही वर्णन प्राप्त होता है जो कि वैदिक समाज की उच्चता और महानता के प्रतीक हैं।

नियोग प्रथा- निःसंतान विधवा के लिए नियोग (आज्ञा) प्रथा थी जिससे समाज में किसी प्रकार का दुराचार, व्यभिचार ने बढ़े। यह उस काल की बहुत ही स्वस्थ प्रथा थी, जो केवल मात्र संतानोत्पत्ति के लिए ही स्वीकार्य थी तथा जिसे समाज द्वारा ही स्वीकृति प्राप्त थी। यह व्यवस्था वैदिक समाज की उच्चतम चारित्रिक स्थिति को दर्शाती है तथा ब्रह्मचर्य पालन की अनिवार्यता को भी प्रकट करती है।

गृह स्वामिनी- वैदिक समाज में स्त्री को घर की स्वामिनी परिवार की विधातृ मानव की निर्मात्री स्वीकार किया है। जिसका वर्णन वेदों में व वैदिक साहित्य में प्राप्त होता है। ऋग्वेद के अनुसार- स्त्री गृह स्वामिनी है।34 इतना ही नहीं! आगे चलकर- स्त्री को ही गृह की संज्ञा दी गई है।35 अथर्ववेद में भी नारी के लिए आदेश है कि- पति गृह में जाकर गृह स्वामिनी बनो।36 अथर्ववेद में ही स्त्री को घर की साम्राज्ञी बताया है। ऋग्वेद के मंत्र से स्पष्ट होता है कि नववधू पति गृह में सास, श्वसुर, देवर, ननद सभी की दृष्टि में साम्राज्ञी है।37 यही भाव अथर्ववेद में भी प्राप्त

होता है।38 इसी सम्मान के स्वरूप संपूर्ण परिवार में प्रेम और सौहार्द की भावना बनी रहती थी। अथर्ववेद में पति पत्नी को आदेशित किया है कि- हे गृहस्थो! परस्पर ऐसे प्रेम करो जैसे गौ अपने सद्य प्रसूत बछड़े से प्रेम करती है।39 यदि वेद के इस आदेश का जीवन में पालन किया जाता तो वर्तमान में समाज में बढ़ रहे (तलाक) विवाह विच्छेद की स्थिति नहीं बनती तथा सामाजिक व्यवस्था अव्यवस्थित नहीं होती।

अतः निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि वैदिक काल भारत का स्वर्णिम काल माना जाता है। स्त्री व पुरुष गृहस्थ रूपी रथ के तथा समाज रूपी रथ के दो पहिए हैं, दोनों पहियों के सही स्थिति में होने पर ही गृहस्थ की व समाज की गाड़ी सही चल सकती है। समाज शास्त्रियों के अनुसार समाज की उच्चता के विभिन्न मापदंड हो सकते हैं परंतु वेद के समर्थक महर्षि दयानंद सरस्वती के अनुसार आर्य समाज के नोवें और दसवें नियम में जो समाज की परिभाषा दी गई है, वह सार्वभौमिक ,सर्वकालिक तथा सार्वजनीन हैं। प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट नहीं रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए। सब मनुष्यों को सामाजिक, सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतंत्र रहें। वर्तमान में सामाजिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न होती हुई दिखाई दे रही है। भय, भ्रष्टाचार, लूटपाट, हिंसा, बलात्कार, अपहरण, चोरी, घर परिवारों के आपसी झगड़ों ने तथा आये दिन महिलाओं की लुटती अस्मिता ने सामाजिक ताने-बाने को तार-तार कर रख दिया है। आज पुनः वैदिक समाज के शाश्वत मूल्यों व सिद्धांतो को जीवन में आत्मसात करने की अपरिहार्य आवश्यकता बन गई है। फिर से कोई अश्वपति इस धरा पर अवतरित होकर वैदिक समाज की स्थिति को पुनः स्थापित करे, जिससे प्राणिमात्र को सुख शांति प्राप्त हो सके।

संदर्भ-सूचीः-

1. ऋग्वेद 10/191/1
2. ऋग्वेद 10/191/2-3
3. अथर्ववेद 6/64/1-2-3 अथर्ववेद 3/30/5
4. छान्दोग्योपनिषद् प्रपाठकट्ट 5 खण्ड 11 वैश्वानर विद्या प्रकरण पृ.1019
5. इडे रन्ते हव्ये काम्या.. । यजुर्वेद 8/43
6. पृथिवी त्वम्। अथर्ववेद 14/2/71
7. भूरसि भूमिरसि। यजुर्वेद 13/18
8. ध्रुवा त्वम्। यजुर्वेद 12/54
9. ध्रुवासि। यजुर्वेद 13/16
10. सिंह्यसि (सिंह असि) यजुर्वेद 5/10, 5/12
11. मे माता च समय ऋग्वेद 8/1/6
12. अहं केतुरहं मूर्धा, अहमुग्रा विवाचनी। ऋग्वेद 10/159/2
13. मूद्र्धासि राड् ध्रुवासि। यजुर्वेद 14/21
14. वीरपत्निः ऋग्वेद 6/49/7
15. प्रजावती वीरसूः। अथर्ववेद 14/2/18
16. ऋतपाः, सुनृताः। ऋग्वेद 1/113/12
17. सुनृतावती अथर्ववेद 3/12/2
18. सुमंगली अथर्ववेद 14/2/26, 28
19. राज्ञयसि प्राची दिग् यजुर्वेद 14/13
20. उपदेश मंजरी पूना प्रवचन तृतीय पृ. 13-14
21. अयं यज्ञो विश्ववस्य भुवनस्य नाभिः। अथर्ववेद 9/10/14
22. शूद्धाः पूता योषितो यज्ञिया इमाः। अथर्ववेद 11/1/17
23. स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथः। ऋग्वेद 8/33/19

24. यज्ञस्य केतुः। ऋग्वेद 1/113/19
25. विश्वभेषजीः। ऋग्वेद 1/23/10
26. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास पृष्ठ 75
27. ब्रह्मचर्येण तपस्या देवा मृत्युमुपाघ्नतः। अथर्ववेद 11/5/19
28. बृहदारण्यकोपनिषद् ब्राह्मण-4 कण्डिका एक (क) एक (ख) कण्डिका- दो, तीन, चार पृ. 572-574
29. बृहदारण्यकोपनिषद् ब्राह्मण 6 कण्डिका-एक पृ. 631-632
30. ब्रह्मचर्येण कन्या युवानं विन्दते पति। अथर्ववेद 11/5/18
31. सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास पृ. 75
32. उपदेश मंजरी 11वां प्रवचन इतिहास विषय पृ. 77
33. तमस्मेरा युवतयो युवानं मर्मृज्यमानाः परियन् त्यापः। संस्कार विधि पृ. 110-111
34. ऋग्वेद 10/85/3
35. जाया इद अस्तम् 1/53/4
36. गृहान् गच्छ गृहपत्नि यथासः। अथर्ववेद 14/1/20
37. ऋग्वेद 10/85/46
38. सम्राज्ञ्येधि श्वशुरेषु सम्राज्ञ्युत देवृषु। अथर्ववेद 14/1/44
39. सहृदयं सोमनस्य विद्वेषं कृणोमि वः। अन्योऽन्यमभिहर्यत वत्सः जातामिवाघ्न्या।। अथर्ववेद 3/30/1

संदर्भ-ग्रन्थ-सूचीः-

1. ऋग्वेद भाष्य (9 भागों में) स्वामी दयानंद सरस्वती
प्रकाशक- वैदिक पुस्तकालय अजमेर
2. यजुर्वेद भाष्य (4 भागों में) स्वामी दयानंद सरस्वती
प्रकाशक- वैदिक पुस्तकालय अजमेर
3. अथर्ववेद भाष्य क्षेमकरण दास त्रिवेदी

प्रकाशक- सार्वजनिक आर्य प्रतिनिधि सभा भवन, नई दिल्ली

4. सत्यार्थ प्रकाश, ऋषि दयानंद
प्रकाशक- राष्ट्रीय आर्य निर्मात्री सभा, आर्य समाज भवन शिवाजी कॉलोनी, रोहतक हरियाणा

5. संस्कार विधि महर्षि दयानंद सरस्वती
प्रकाशक- निहाल सिंह आर्य परमार्थी, आर्य धाम जसौर खेड़ी, तहसील बहादुरगढ़, हरियाणा प्रथम संस्करण

6. एकादशोपनिषद् (छांदोग्योपनिषद्) महात्मा नारायण स्वामी, संपादक - नरेंद्र कुमार आचार्य
प्रकाशक - आर्य प्रकाशन 814 कुण्डेवालान अजमेरी गेट, दिल्ली

7. एकादशोपनिषद् (बृहदारण्यकोपनिद्) महात्मा नारायण स्वामी, संपादक- नरेंद्र कुमार आचार्य, प्रकाशक- आर्य प्रकाशन 814 कुंडे वाला अजमेरी गेट, दिल्ली 110006

8. उपदेश मंजरी, महर्षि दयानंद सरस्वती, प्रकाशक- आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, खारीबावली दिल्ली

❑❑❑

वैश्विक-संस्कृत-मञ्च

Global Sanskrit Forum

Plot no. 3-B, Khasra no. 611, Gali no. 1, B-Block,
Saraswati Avenue, Sabhapur Extn., Shahdara, Delhi-110094
Contact : 8789507760
Email : globalsanskritforum@gmail.com
Webiste : https://globalsanskritforum.org

अमृतब्रह्म प्रकाशन
63/59, मोरी, दारागंज,
प्रयागराज-211006 (उ.प्र.)
Mobile : +91-9450407739, 8840451764
Email : amritbrahmaprakashan@gmail.com

ISBN 819890242-2
9788198902429